[illegible]० राममनोहर लोहिया का राजनीतिक दर्शन

राजनीति शास्त्र में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि के निमित्त प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध

निर्देशक
डॉ0 उदयनारायण शुक्ल
एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्.
प्राचार्य
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई
बुन्देलखण्ड विश्वविद्याय, झांसी (उ० प्र०)

द्वारा
श्रीमती सविता गुप्ता, एडवोकेट
एम. ए., एल - एल. बी.
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी (उ० प्र०)

१९८७

० प्रमाण - पत्र ०

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती सविता गुप्ता ने मेरे निर्देशन में राजनीतिशास्त्र में बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी की पी०एच०डी० उपाधि के लिये (विषय - डा०राममनोहर लोहिया का राजनीतिक दर्शन) पर शोध कार्य किया है और इस निमित्त उन्होंने निर्धारित २०० दिन की अवधि से अधिक समय मेरे समीप अध्ययन के लिये व्यतीत किये। कार्य को मैंने देखा है, यह उनका मौलिक कार्य है।

मैं उनकी सफलता की कामना करता हूं।

शोधकर्ता -	शोध निर्देशक -
सविता गुप्ता	[signature]
(श्रीमती सविता गुप्ता) एडवोकेट, एम०ए०,एल०एल०बी०, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी (उ०प्र०)	(डा०उदय नारायण शुक्ल) एम०ए०, पी०एच०डी०, डी०लिट०, प्राचार्य एवं निदेशक, दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय उरई (उ०प्र०) बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी (उ०प्र०)

-------- ० --------

-: प्राक्कथन :-

आधुनिक भारतीय चिंतकों में डा०राममनोहर लोहिया एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। वे केवल एक राजनीतिक नेता ही नहीं थे बल्कि एक लेखक और एक महत्वपूर्ण विचारक भी थे। सन्दर्भ सूची के प्रारम्भ में उनकी प्रकाशित रचनाओं के नाम के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि लोहिया जी आधुनिक राजनैतिक विचारकों में अत्याधिक महत्वपूर्ण स्थान रखते थे। वे वस्तुत: भारत के समाजवादी आन्दोलन के अग्रणी पुरुषों में थे। सम्भवत: कोई अन्य भारतीय इस रूप में उनकी बराबरी नहीं कर सकता है।

लोहिया जी के इसी महत्व के कारण प्रस्तुत शोध-कार्य के वह विषय हैं। उनके विचारों को भलीभाँति समझने के लिये केवल उनकी रचनाओं का ही अध्ययन नहीं किया गया है वरन् उनके बारे में, उनके संबंध में अन्य लेखकों की रचनाओं का भी अध्ययन किया गया है तथा निज संदेह को दूर करने के लिये उनके सहयोगियों से समय-समय पर विचार-विमर्श भी किया गया है।

इस कार्य में मुझे निम्नांकित पुस्तकालयों से तथा सम्मानित व्यक्तियों से विशेष सहायता मिली है, मैं उन सब के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ :-

(अ) पुस्तकालय -

१- राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता,
२- लोहिया सदन पुस्तकालय, भोपाल
३- जिला पुस्तकालय, झाँसी,
४- दयानन्द वैदिक महाविद्यालय पुस्तकालय, उरई
५- बुन्देलखण्ड महाविद्यालय पुस्तकालय, झाँसी

६- डा०शादीलाल दुबे का व्यक्तिगत पुस्तकालय,ललितपुर

(ब) <u>व्यक्ति -</u>

अध्ययन कार्य में डा०शादीलाल दुबे ने विशेष सहायता प्रदान की है । उनके निजी पुस्तकालय से इस सम्बन्ध में अधिकांश पुस्तकें उपलब्ध हुई हैं और वे स्वतः लोहिया के विचार समझने में सहायक हुए हैं । उन्होंने मुझे अध्ययन कार्य में जो सहयोग एवं योगदान प्रदान किया, जिसके लिये मैं सदैव उनकी हृदय से आभारी रहूँगा । इसके अतिरिक्त समाजवादी नेता मधु लिमये , रघु ठाकुर , लाड़ली मोहन निगम , ब्रजमोहन यादव भी अध्ययन कार्य में सहायक हुए हैं ।

मेरे परमपूज्य गुरुदेव सुप्रसिद्ध डा०श्री उदय नारायण शुक्ल, प्राचार्य दयानन्द वैदिक महाविद्यालय, उरई के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धा अर्पित करना मेरा परम कर्तव्य है , जिन्होंने इस अध्ययन कार्य के लिये समय-समय पर मुझे बहुमूल्य निर्देश दिये और प्रोत्साहन दिया । उनकी स्नेहमयी कृपा के लिये मैं उनकी सदैव ऋणी रहूँगा ।

दयानन्द वैदिक महाविद्यालय उरई के डा०राजेन्द्र पुरवार ,डा० जयश्री पुरवार, शैलेन्द्र कुमार गुप्ता तथा डा०शरण बिहारी सहुया ने जो सुझाव एवम् तथ्य संग्रह में मदद पहुंचाई और योगदान दिया जिसके लिये मैं उनकी आभारी रहूँगी ।

मैं परिवार के सदस्यों में श्री शांति स्वरूप गुप्ता, एडवोकेट, श्री सुरेश प्रकाश सेठ , श्रीमती चिरौंजी सेठ , श्रीमती रामसूर्ति गुप्ता तथा परिवार के अन्य सदस्यों के सहयोग , उत्साह , स्नेह , शुभेच्छा और आशीर्वाद के लिये मुझ कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं । मेरे पति - श्री हरीमोहन गुप्ता ने मुझे अध्ययन कार्य में बराबर सहयोग व मदद पहुंचाई है जिसके लिये मैं सदैव हृदय से आभारी रहूँगा ।

लोहिया जी के विचारों का सम्यक अध्ययन करने हेतु इस कृति को निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया गया है :-

१- विषय प्रवेश तथा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय दशायें.

२- गांधीवाद

३- समाजवाद

४- अन्तर्राष्ट्रवाद

५- प्रजातंत्र

६- विकेन्द्रीकरण

७- भारतीय राजनीति

८- एशियायी राजनीति

९- भारतीय विदेश नीति

अध्ययन को केवल वर्णनात्मक ही नहीं रखा गया है वरन् विवेचनात्मक और तुलनात्मक भी बनाया गया है। यह कृति मौलिक है। समाजवादी चिंतकों के विचारों को समझने में एक योगदान करता है।

....श्रीमती सविता गुप्ता....

-: 0 :-

भूमिका

डॉ० राममनोहर लोहिया

(जन्म १९१०)

(मृत्यु १९६७)

-: भूमिका :-

डा०राममनोहर लोहिया का जन्म २३ मार्च १९१० वैशाख शुक्ल तृतीया को फैजाबाद जिले के अकबरपुर कस्बे में हुआ था । उनके पिता का नाम हीरालाल लोहिया था । वे जाति के मारवाड़ी वैश्य थे । ढाई वर्ष में ही उनकी माता का देहान्त हो गया था, अत: उनका प्रारम्भिक पालन-पोषण दादी के द्वारा हुआ ।

५ वर्ष की आयु में ही इनका नाम अकबरपुर की टंडन पाठशाला में लिखवाया गया । चौथी कक्षा तक वे वहाँ पढ़े । पाँचवीं कक्षा में उन्हें विश्वेश्वर नाथ हाईस्कूल अकबरपुर में भर्ती कराया गया । लोहिया जी सदैव अपनी कक्षा में प्रथम आते थे । १९२५ में इन्होंने मारवाड़ी विद्यालय बम्बई से हाईस्कूल की परीक्षा पास की । हाईस्कूल में वे प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। इण्टर की पढ़ाई करने के लिये वे काशी विश्वविद्यालय बनारस गये । १९२७ में इन्होंने इण्टर पास किया । १९२९ में आपने बी०ए०की परीक्षा कलकत्ता के विद्यासागर कालेज से उत्तीर्ण की । वे जुलाई-अगस्त १९२९ में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये इंग्लैण्ड गये । अग्रवाल जाति ने उनका विदेश जाने का पूरा अर्थ वहन किया । वहाँ भारतीयों के साथ अंग्रेजों का गंदा व्यवहार था । अत: उन्होंने अध्ययन के लिये बर्लिन जाना उचित समझा । बर्लिन में प्रोफेसर बर्नर सौम्बार्ट के निर्देशन में उन्होंने अपना शोध-प्रबन्ध " नमक और सत्याग्रह " विषय जर्मन भाषा में लिखा । १९३३ के प्रारम्भ में ही उन्हें डा०आफ फिलोसफी की डिग्री से सम्मानित किया गया।

१९३३ में भारत लौटने के पश्चात उन्होंने कांग्रेस पार्टी के माध्यम से सक्रिय राजनीतिक जीवन प्रारम्भ किया । १९३४ में समाजवादी पार्टी का गठन हुआ । २४ वर्ष की अल्पावस्था में राममनोहर लोहिया कांग्रेस समाजवादी दल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्य बने और भारतीय नेता के रूप में कार्यारम्भ किया । सन् १९३६ में फैजपुर कांग्रेस में लोहिया जी विदेश-सचिव बने यहाँ उन्होंने अत्यन्त सराहनीय कार्य किये । १९३८ में उन्होंने

विदेश-सचिव पद से त्यागपत्र दे दिया। १९४२ में "भारत छोड़ो" आन्दोलन शुरू होने पर लोहिया जी ने अन्य नेताओं के साथ भूमिगत आन्दोलन शुरू किया। इसी आन्दोलन के दौरान उन्होंने भारतीय कम्युनिस्टों की आन्दोलन विरोधी भावना देखा। तभी उन्होंने मार्क्सवाद का गम्भीर चिन्तन किया। भूमिगत आन्दोलन में कार्य करते हुए मई १९४४ को बम्बई पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। ११-अप्रैल १९४६ को वे जेल से रिहा कर दिये गये। सन् १९४६ में उन्होंने गोवा में स्वतंत्रता आन्दोलन का नेतृत्व किया, जिसका अन्ततः विजय हुई और गोवा स्वतंत्र हुआ। उसी तरह १९४७ में लोहिया जी ने नेपाल के जनसंघर्ष का भी संचालन किया।

उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में पूर्ण रूप से अपना सहयोग दिया। उन्हें अनेक बार जेल जाना पड़ा और कठोर यातनायें भी सहना पड़ा। लोहिया जी ने १९४६-४७ में भारत में हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगों की रोकथाम के लिये प्रयास किया। १९४८ में नासिक सम्मेलन में कांग्रेस से अलग समाजवादी दल बनाने का निश्चय किया गया और फिर नये दल के रूप में यह प्रारम्भ हुआ। लोहिया जी नये समाजवादी दल के प्रमुख कार्यकर्ता तथा नीति निर्धारक बने।

१९४९ में उन्होंने स्टाकहोम में विश्व सरकार के अधिवेशन में भाग लिया। २६ फरवरी १९५० को हिंद किसान पंचायत का पहला सम्मेलन रीवां में लोहिया जी की अध्यक्षता में हुआ। १९५७ में लोहिया जी बनारस जिले की चकिया-चंदौली संसदीय सीट से चुनाव लड़े परन्तु वे पराजित हुए। १९६२ में वे फूलपुर क्षेत्र से नेहरू जी के विरोध में लड़े, इसमें भी लोहिया जी हारे। १९६३ में वे कन्नौज क्षेत्र से आम-चुनाव जीतकर संसद में पहुँचे थे। उन्होंने निम्नवर्गीय जनता से सम्बन्ध रखने वाले अनेक महत्वपूर्ण प्रश्न संसद में उठाये। लोहिया जी ने संसद को सामान्य जीवन की इच्छा के प्रदर्शन का स्थान बनाया।

लोहिया जी अपने जीवन के अन्तिम दिनों में अस्वस्थ रहे। ३० सितम्बर १९६७ को दिल्ली में उनका पौरुष ग्रन्थी का आपरेशन हुआ। उनकी हालत दिन-प्रति-दिन बिगड़ती चली गई। अन्त में काल के विकराल निर्मम हाथों ने मानवता की इस अमूल्य धरोहर को १२ अक्टूबर सन् १९६७ को धरती से उठा लिया।

-: विषय सूची :-

(उ) जयप्रकाश नारायण,

(ऊ) विनोबा भावे,

(ए) आचार्य नरेन्द्र देव,

(ग) राजनीतिक दशा -

१- ब्रिटिश शासन

२- नागरिक अधिकार

३- सरकार का स्वरूप

४- राजनीतिक गतिविधियाँ

५- राजनीतिक चिंतक -

(प) मोतीलाल नेहरू

(फ) महात्मा गांधी

(ब) जवाहरलाल नेहरू

(भ) सुभाषचन्द्र बोस

(म) जयप्रकाश नारायण

(य) श्रीमती एनीबीसेन्ट

(घ) अन्तर्राष्ट्रीय दशा -

१- प्रथम युद्ध के उपरान्त युद्ध की स्थिति और समस्यायें

२- फासिस्टवाद का उदय

३- द्वितीय विश्व युद्ध

४- युद्धोपरान्त स्थिति -

(ट) संयुक्त राष्ट्रसंघ का जन्म

(ठ) साम्यवादी चरण की स्थापना

(ड) जर्मनी, जापान और इटली का पतन

(ढ) संयुक्त राज्य अमेरिका और रूस में शीत युद्ध

अध्याय १

(विषय प्रवेश तथा सामाजिक, आर्थिक
राजनीतिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय दिशायें)

-: प्रथम अध्याय :-

विषय प्रवेश तथा सामाजिक,आर्थिक,राजनीतिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय दशायें-

डा०राममनोहर लोहिया का जन्म अक्टूबर १९१० में हुआ था। उनके जन्म के समय भारत में ब्रिटिश शासन था। उस समय भारत की सामाजिक दशा शोचनीय थी और आर्थिक विकास अवरुद्ध था। देश को स्वतंत्र कराने के लिये विभिन्न राष्ट्रीय आन्दोलन हो रहे थे। लोहिया जी के जन्म के ४ वर्ष बाद ही अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर युद्ध के बादल छा गये परिणाम स्वरूप प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ गया। प्रथम विश्वयुद्ध का प्रभाव सभी राष्ट्रों पर पड़ा। एशियाई देशों की स्थिति शोचनीय थी। चूंकि व्यक्ति के विचारों पर बाह्य पर्यावरण का बहुत प्रभाव पड़ता है इसलिये लोहिया जी भी अपने समय की सामाजिक,आर्थिक,राजनीतिक और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों से बहुत प्रभावित हुए परिणाम स्वरूप उन्होंने प्रत्येक क्षेत्र में देश की उन्नति व विकास के लिये प्रयत्न किये। उन्होंने मानवतावादी दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया। लोहिया जी के विचारों को समझने के लिये उनके समय की सामाजिक,आर्थिक,राजनीतिक और अन्तर्राष्ट्रीय - परिस्थितियों पर विचार करना आवश्यक है। उनके समय की दशा निम्न-प्रकार की थी।

(क) सामाजिक दशा -

(१) निर्धनता -

अंग्रेजी राज्य के पहले भारत आर्थिक विकास में सबसे आगे था। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के शुरू में भी भारत में लोग आमतौर से सुखी व सम्पन्न थे। अंग्रेजी राज्य में भारत के उद्योग-धन्धों को नष्ट कर दिया गया। भारत से कच्चा माल इंग्लैण्ड भेज दिया जाता और वहाँ से उत्पादित माल

भारत आता था, तो वह महंगा होता था। भारत में कपड़ा उद्योग अच्छा था लेकिन उसे ब्रिटिश शासन-काल में नष्ट कर दिया गया, इस कारण कृषि पर प्रभाव पड़ा। कृषि के साधनों में सुविधा का अभाव होने के कारण कृषि की उत्पादन क्षमता क्षीण हो गई और अत्यधिक लगानों की वसूली के कारण कृषकों की स्थिति शोचनीय हो गई और परिणामस्वरूप भारत में निर्धनता का साम्राज्य फैल गया। श्री कमलापति त्रिपाठी के अनुसार - भारतीय शिल्प और व्यापार अवश्य चौपट हो गया और नवीन परिपाटी के अनुसार देश का औद्योगीकरण बलपूर्वक रोका गया क्योंकि भारत को ब्रिटेन के पूंजीपतियों की लूट के लिये, ब्रिटिश व्यवसाय के कच्चे माल के लिये और ब्रिटिश निर्मित पदार्थों की खपत के लिये मुक्त छोड़ रखना अभीष्ट था। फलत: लाखों - करोड़ों कारीगर बेकार हुए, वे नगरों को छोड़-छोड़कर गांवों में जाने के लिये बाध्य हो गये। भारत न केवल बेकारी और दरिद्रता का शिकार हुआ। प्रत्युत उसके व्यवसायिक केन्द्र उजड़ गये, भूमि पर बोझ बढ़ता गया और देश अत्यधिक ग्रामीण बनता गया।[१]

उन्नीसवीं शताब्दी का अंतिम दशक ऐसा था जिसमें भारत दुर्भिक्षों से बार-बार पीड़ित हो रहा था। देश की आर्थिक दशा शोचनीय हो गई थी। सरकार की मुद्रा की विनिमय की नीति ने भारत के आर्थिक जीवन को तहस-नहस कर दिया था। कमलेश त्रिपाठी के अनुसार - ब्रिटानी शासन का एक बड़ा दुष्परिणाम यह था कि दरिद्रता अपनी चरम सीमा पर रही और देश के अधिसंख्यक लोग सामान्य समय में जिंदा रहने के लिये आवश्यक न्यूनतम से भी कम गुजारा करते रहे और जब देश अकाल और बाढ़ की चपेट में आया तब लाखों की संख्या में मरते रहे।

१- श्री कमलापति त्रिपाठी - बापू और भारत, पृष्ठ - १८२

प्रति व्यक्ति आय कम थी और बेरोजगारी बहुत फैली हुई थी ।[1]

एक ओर भारत की हालत थी कि दुर्भिक्ष के कारण गल्ले और रुपये का अभाव था और दूसरी ओर देश की यह हालत थी कि कर में वृद्धि होती जा रही थी। सीमान्त का व्यय - साम्राज्य युद्ध चलाया जा रहा था और भारत का आर्थिक शोषण उग्र होता जा रहा था। अमरेश त्रिपाठी के अनुसार - ब्रिटेन ने भारत की अर्थव्यवस्था को अपनी अर्थव्यवस्था के अधीन रखा और भारत की मुख्य सामाजिक प्रवृत्तियों का निरूपण अपनी आवश्यकतानुसार किया परिणाम यह था भारत के कृषि और उद्योगों में गतिरोध आना, जमींदारों, भूस्वामियों, राजाओं, महाजनों, व्यापारियों, पूंजीपतियों और विदेशी सरकार के अधिकारियों द्वारा उसके किसानों-मजदूरों का शोषण और दरिद्रता, बेकारी और अर्द्ध-भुखमरी की स्थिति का विस्तार ।[2]

भारत में ब्रिटिश शासन में बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जनता की आर्थिक स्थिति बहुत गिरी हुई थी । बीसवीं शताब्दी के संघर्ष, हलचल, आतंकवाद और उथल-पुथल को कहती हुई आर्थिक व्यवस्था के प्रकाश में समझा जा सकता है, जिसके अन्तर्गत गाँवों के लाखों दीनहीन निवासियों की दुर्दशा बढ़ती जा रही थी और शहरों के असंख्य गरीब कारीगर और मजदूर गुजारे योग्य मजदूरी पाने में भी असमर्थ थे । भारत के प्रमुख अर्थशास्त्री शाह और खम्भाता ने (१९२४) में इसे इन शब्दों में व्यक्त किया - भारतीय लोगों की औसत आय इतनी ही होती थी कि उससे या तो आबादी के हर तीन आदमियों में से दो को रोटी दी जाय और या पूरी आबादी को जितनी बार भोजन की आवश्यकता है, उनमें हर तीन बार में से केवल दो बार उसे रोटी दी जाय, और इतना भी सिर्फ इस शर्त पर मिल सकता है कि पूरी

- -

१- अमरेश त्रिपाठी - स्वतंत्रता संग्राम, पृष्ठ - २३

२- - वही - पृष्ठ - २४

आबादी नंगी घूमना कबूल करे , बारहों महीने घर के बाहर खुले में रहे , किसी प्रकार के मनोरंजन या खेलकूद में भाग न ले तथा भोजन के सिवा और वह भी सबसे नीचे स्तर के, सबसे ज्यादा मोटे ढंग के और सबसे कम पोषण-शक्ति वाले भोजन के सिवा और किसी चीज की माँग न करे ।[1]

१९३१ के बाद और खास तौर पर दूसरे महायुद्ध के बाद जनता के रहन-सहन की हालत बहुत खराब हो गई थी । ब्रिटिश साम्राज्यवाद के आर्थिक शोषण के कारण भारत में गरीबी में वृद्धि हो गई। आचार्य - नरेन्द्र देव के अनुसार - अंग्रेजी शासन के कारण ग्रामसंस्थायें नष्ट होने लगी और सरकार की औद्योगिक नीति के कारण गांव की आत्मनिर्भरता भी नष्ट हो गई । बहुत से कारीगरों को रोजी की तलाश में गांव छोड़कर शहरों में बसना पड़ा । गांव के सहायक उद्योग-धन्धों का ह्रास होने लगा और खेती पर बोझ धीरे-धीरे बढ़ने लगा, यह बोझ अब भी बराबर बढ़ता जा रहा है और यही भारत की गरीबी का प्रधान कारण है ।[2]

२- अशिक्षा -

ब्रिटिश शासन में भारतीयों को शिक्षित करने का प्रयास नहीं किया गया । एक ओर अंग्रेजों ने भारतीयों के लिये औद्योगिक शिक्षा पद्धति की पूर्णरूप से उपेक्षा की, जबकि आधुनिक उद्योगों के उद्भव व विकास के लिये आधुनिक तकनीकि शिक्षा की आवश्यकता थी। दूसरी ओर शिक्षा के लिये माध्यम भारतीय भाषाओं की जगह अंग्रेजी पर बल दिया गया । इसकी वजह से न केवल जनता में शिक्षा का प्रसार रुक गया बल्कि शिक्षित समुदाय और आम जनता के बीच भाषायी और सांस्कृतिक खाई पैदा हो गई । कमलेश त्रिपाठी के अनुसार - शिक्षा के लिये आवश्यक फंड की सरकार द्वारा अस्वीकृति के कारण धीरे-धीरे

- -

१- रजनीपाम दत्त - वर्तमान और भावी भारत, पृष्ठ - ११
२- आचार्य नरेन्द्र देव -राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृष्ठ -५

उसके स्तर में ह्रास आया और वह अत्यन्त नीचे आ गया क्योंकि विद्यार्थियों को स्कूलों-कालेजों में फीस देना पड़ती थी, अत: शिक्षा पर कस्बों और शहरों में रहने वालों तथा मध्य और उच्च वर्ग के लोगों का वस्तुत: एका - धिकार हो गया ।[१]

इस प्रकार ब्रिटिश शासन में अधिकांश जनता अशिक्षित थी, जो शिक्षित वर्ग था वह अपना शिक्षा का सदुपयोग नहीं करता था । श्री कमलापति त्रिपाठी ने लिखा - निरक्षरता और अविद्या का जाला कितना तना हुआ था । अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति राष्ट्र के नैतिक और आध्यात्मिक पतन की ही साधिका हो रही थी। अपने प्रभुओं के गुणों नहीं, प्रत्युत दुर्गुणों की नकल करने में देश का अधिकतर शिक्षित समुदाय व्यस्त था ।[२]

अंग्रेजी शासनकाल में भारतीयों की शिक्षा के ऊपर व्यय कम किया जाता था । अंग्रेजों का उद्देश्य सिर्फ इस प्रकार का शिक्षित समुदाय उत्पन्न करना था, जो अंग्रेजों के शासन कार्य में हाथ बटा सके । वे भारतीयों को इसलिये भी अशिक्षित रखना चाहते थे जिससे कि वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक न हो पायें । अंग्रेजों ने भारतीयों के लिये उचित शिक्षा-प्रणाली की व्यवस्था नहीं की और ना ही जनता को शिक्षित करने का प्रयास किया। कमलेश त्रिपाठी ने लिखा - भारत की ब्रिटानी सरकार ने अपने बजट से दो प्रतिशत से भी कम खर्च किया, आम जनता और स्त्रियों की शिक्षा की उपेक्षा की ।[३]

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक अधिकांश भारतीय - जनता अशिक्षित ही रही क्योंकि अंग्रेजों का उद्देश्य भारतीयों का शोषण करके आर्थिक लाभ अर्जित करना था। वे चाहते थे कि भारत की जनता - जागरूक न हो पाये । इसलिये उन्होंने भारतीयों को शिक्षित करने के लिये शिक्षा प्रणाली में सुधार की आवश्यकता महसूस नहीं की और ना ही भारतीय जनता को शिक्षित करने का प्रयास किया ।

- -

१- कमलेश त्रिपाठी - स्वतंत्रता संग्राम , पृष्ठ-२६
२- श्री कमलापति त्रिपाठी - बापू और भारत , पृष्ठ-२१६
३- कमलेश त्रिपाठी - स्वतंत्रता संग्राम, पृष्ठ-२६

३- जातिवाद -

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में जातिवाद की भावना उग्र थी । ब्रिटिश शासकों की सहानुभूति हिन्दू संस्थाओं के प्रति नहीं थी। अंग्रेजों ने जाति की समस्या को सुलझाने की अपेक्षा उसको और भी जटिल रूप देने का प्रयास किया। साम्राज्यवादियों ने अछूतों की संख्या को बढ़ाने के लिये सदैव प्रयास किया । रजनीपाम दत्त के अनुसार - जहां तक जात-पाँत और छूत-अछूत के भेदों का सवाल है हम सब इस बात की सराहना किये बिना नहीं रह सकते कि साम्राज्यवादी लोग अछूतों और दलित जातियों पर इतने दयालु हैं कि वे सदा उनकी संख्या को बढ़ाते रहने का प्रयास करते आये हैं । लगभग एक पीढ़ी पहले, जब राजनीतिक परिस्थितियों ने इतना उग्र रूप धारण नहीं किया था तब आम तौर पर अछूतों और दलित जातियों के लोगों की संख्या ३ करोड़ बताई जाती थी । १९१० में वैलेंटाइन चिरोल ने उसे बढ़ाकर ५ करोड़ कर दिया । १९२९ में रैम्से ने उसे ६ करोड़ पर पहुंचा दिया ।[१]

ब्रिटिश सरकार के कार्य-कलापों से जाति की समस्या का कुछ भी हल नहीं हुआ । अंग्रेजों के समय में भी योग्यता परीक्षाओं में उच्च-जातियों को ही वरीयता दी जाती थी । उन्होंने जाति की समस्या पर उस दृष्टिकोण से विचार नहीं किया कि जिसका प्रभाव भारत की राष्ट्रीयता पर पड़ता है । अंग्रेजी शासकों में जाति के हानिकारक प्रभावओं को दूर करने के लिये कभी इच्छा प्रदर्शित नहीं की । उन्होंने सदैव ब्रिटिश अस्तित्व की सुरक्षा का ध्यान रखते हुए कार्य किया। श्री मिडल्टन जो सन् १९२१ की जनगणना कार्य के दो अधीक्षकों में से एक थे पंजाब में जाति पर ब्रिटिश प्रशासन के प्रभाव के सम्बन्ध में बड़े महत्वपूर्ण उद्गार प्रकट करते हैं -

---

१- रजनीपाम दत्त - भारत वर्तमान और भावी , पृष्ठ - ११४

मेरा यह संकेत करने का विचार था कि जातियों के व्यवसायिक वर्गीकरण के विरुद्ध अत्यधिक लंबा-चौड़ा विद्रोह है तथा इन जातियों को ब्रिटिश सरकार द्वारा अधिकतर बनाया गया और इन्हें पूर्णरूप से पृथक रखा गया। हमारे भूमि संबंधी विवरणों तथा सरकारी लेख पत्रों ने जातीय प्राचीन कठोरता में लौह श्रृंखलाएं जोड़ दी । उच्चतर जातियों में जाति अपने आप ही कठोर थी किन्तु निम्नतर लचीली थी ।[1]

अछूत प्रथा के खिलाफ ब्रिटिश सरकार ने नहीं बल्कि प्रगतिशील राष्ट्रीय आन्दोलन ने संघर्ष चलाया है । जब महात्मा गांधी के दक्षिण - भारत के कुछ मंदिरों ने, जिनमें सदियों से अछूतों का प्रवेश वर्जित था, उनमें द्वार उनके लिये खोल दिये गये थे । तब अछूतों को मंदिरों में घुसने से रोकने के लिये ब्रिटिश सरकार ने अपनी पुलिस भेजी थी और यह दलील दी थी कि अछूतों के मन्दिर प्रवेश से जनता की धार्मिक भावनाओं को ठेस लगेगी और इसलिये उसे रोकना सरकार का पुनीत कर्तव्य है । १९२५ में मद्रास विधान-परिषद् में विधेयक रखा गया कि परिषद् के पिछले अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्ताव के सिद्धान्त को कानून का रूप दिया जाय जिसके द्वारा समस्त सार्वजनिक सड़कों, गलियों या मार्गों जो किसी सार्वजनिक कार्यालय, कुंऐ, तालाब या सार्वजनिक समागम स्थान को ले जाती, को दलित वर्ग सहित सभी वर्गों के लोगों के गमनागमन के लिये खोल दिये जायें ।[2]

अंग्रेजों ने अछूतों की ओर जो थोड़ा-बहुत ध्यान भी दिया, उसका मुख्य उद्देश्य भारतीय कांग्रेस की नींव हिलाना था । अंग्रेजों ने दलित वर्ग को प्रतिनिधित्व प्रदान करने का अवसर दिया। रजनीपाम दत्त के अनुसार - हाँ, इस बात की ब्रिटिश सरकार को अवश्य चिन्ता थी कि

- -

१- गोविन्द सदाशिव घुर्ये - जाति, वर्ण और व्यवसाय, पृष्ठ - १६९

२- - वही - पृष्ठ - १६४

अछूतों या दलितों जातियों के लोगों की मतदाताओं की सूची अलग से बनाई जाय और उनको अलग से अपने प्रतिनिधि चुनकर भेजने की गारंटी दी जाय, ताकि भारत के लोगों में फूट का एक और तत्व पैदा हो जाय और कांग्रेस कमजोर पड़ जाय ।[१]

भारतीय राजनैतिक देश को राजनीतिक रूप से स्वतंत्र कराने के लिये एक ओर राष्ट्रीय आन्दोलन चला रहे थे, दूसरी ओर व देश की आर्थिक व सामाजिक स्थिति को सुधारने का भी प्रयास कर रहे थे । निम्न जातियों की शोचनीय दशा की ओर राजनीतिज्ञों ने अपना ध्यान केन्द्रित किया और वे उनकी स्थिति को सुधारने का प्रयास करते रहे लेकिन फिर भी जातिवाद की भावना अपनी यथास्थिति पर हो रही ।

४- धर्मवाद एवं रूढ़िवाद -

भारत में विभिन्न धर्मों के लोग रहे हैं । चूंकि यहां पर मनुष्यों में अपने धर्म के प्रति अधिक निष्ठा रही है इस कारण धर्मवाद की भावना विद्यमान रही है । रामगोपाल के शब्दों में - भारत में प्रमुख रूप से हिन्दू और इस्लाम धर्म के अनुयायी रहते थे (अब पाकिस्तान बन जाने के बाद भी वही स्थिति है) अन्य धर्म के अनुयायियों, सिक्खों और भारतीय ईसाइयों की संख्या बहुत कम थी । प्रथम दोनों धर्मों के अनुयायियों-पुरुषों और स्त्रियों के आचार-विचार और अनेक बातों में उनके जीवन का दृष्टिकोण एक दूसरे से भिन्न था । अधिकांश हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के साथ खा-पी नहीं सकते थे और इस भेदभाव का कारण हिन्दुओं की चरम रूढ़िवादिता थी ।[२]

अंग्रेजी राज्य के पहले भारत में उस तरह के हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों का कोई नामोनिशान तक न था जिस तरह के झगड़े अंग्रेजी राज्य में खासतौर

- -

१- रजनीपाम दत्त - भारत : वर्तमान और भावी, पृष्ठ - ११५

२- रामगोपाल - भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, पृष्ठ - ६५

से उसकी बिल्कुल अन्त के दिनों में देखने को मिले । देश में राष्ट्रीय आन्दोलन बढ़ने और सुधारों के आने के साथ-साथ अंग्रेजों की साम्प्रदायिक फूट को बढ़ाने की कोशिश भी बढ़ती गई । इसके लिये अंग्रेजों ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के लिये विशेष तरह की चुनाव प्रणाली का उपयोग किया । डा० पट्टाभि - सीता रामैया के शब्दों में - लार्ड मिन्टो के जमाने में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के विचार ने मूर्त रूप धारण किया ।[1]

इस तरह साम्प्रदायिक चुनाव क्षेत्रों और साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की ऐसी प्रणाली का श्रीगणेश हो गया जिसने हर तरह का जनवादी चुनाव-प्रणाली पर कुठाराघात किया । साम्प्रदायिक संगठनों तथा साम्प्रदायिक विरोध को बढ़ावा देने के लिये इससे भी अच्छा कोई साधन हो सकता है, यह कल्पना करना कठिन है और सचमुच मुस्लिम लीग का बड़ा संगठन दिसम्बर १९०६ से ही कायम हो गया ।

साम्प्रदायिक विरोधों के लिये भी बढ़ावा किया जाता था ताकि शोषण की व्यवस्था और साम्राज्यवादी शासन की रक्षा की जा सके । विश्वामित्र उपाध्याय का मत है कि इसके बाद साम्प्रदायिक समस्या दिन-प्रति-दिन उलझती गई । हिन्दू और मुसलमान दोनों ही सम्प्रदायों के धार्मिक पंथियों के बीच धार्मिक आन्दोलन तेज हो गये थे । हिन्दुओं में पवित्र संगठन और शुद्ध आन्दोलन तथा मुसलमानों में तन्जीम और तबलीग आन्दोलन, इन आन्दोलनों ने साम्प्रदायिक सद्भाव को पुनः स्थापित करने में मदद नहीं की । दोनों ओर से अविश्वास और भय था । १९२५ में कम से कम १६ दंगे हुए ।[2]

इस प्रकार धर्मान्धता से प्रेरित होकर साम्प्रदायिक दंगों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती चली गई ।

- -

१- डा० पट्टाभि सीता रामैया - संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ-५६

२- विश्वामित्र उपाध्याय - भारत का मुक्ति संघर्ष, पृष्ठ - ३४

५- स्त्रियों की स्थिति -

अंग्रेजी शासनकाल में सती-प्रथा और कन्या वध प्रथा का अन्त होने के कारण स्त्रियों को कुछ राहत मिल गई थी । मुस्लिम काल में पर्दाप्रथा के कारण स्त्रियों की शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया गया लेकिन अंग्रेजी शासनकाल में स्त्री शिक्षा पर ध्यान दिया गया । स्त्रियों की स्कूली शिक्षा प्रारम्भ हो गई थी । भारतीय नारी को स्वतंत्रता के दर्शन कराने का श्रेय निश्चय ही भारत के ब्रिटिश शासकों को है । चिरंजीलाल पाराशर के अनुसार - कांग्रेस [illegible]काल तक भारत में पर्याप्त जागृति आ चुकी थी । समाज सुधार का काफी कार्य सम्पन्न हो चुका था और भारतीय नारी भी देश और अपने अधिकारों को समझने लगी थी । यही कारण था कि कांग्रेस के आन्दोलन में भारतीय महिलाओं ने जी जान से सहायता की । उनके अन्दर की भीरुता को जहां स्वामी दयानन्द ने समाप्त किया था, वहां राजनीतिक चेतना उनमें गांधी जी ने भरी ।[१]

नारियों ने सामाजिक निषेधाज्ञाओं की अवहेलना करके, जाति प्रतिबन्धों को तोड़कर राष्ट्रीय संघर्ष में भाग लिया। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में स्त्रियां जागरूक हो गई थी ।के०एम०पाणिक्कर के अनुसार - जैसे ही सत्याग्रह का सिद्धान्त यह हो गया कि स्त्रियां संघर्ष में बराबरी का हाथ बटाएं, उनके दृष्टिकोण में गहरा परिवर्तन आ गया । स्त्रियों की पीढ़ी पर पीढ़ी केवल त्याग के वातावरण से परितोषित नहीं हो रही थी, प्रत्युत उनका आह्वान प्रत्येक प्रकार के बलिदान के लिये भी किया जा रहा था । इस कारण परम्परागत धारणाओं का धाराशायी हो जाना स्वाभाविक था ।[२]

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में स्त्री ने पुरुषों के सहायक के रूप में कार्य किया । आर्य समाज के उत्थान के समय नारी धर्म की प्रचारक बनी थी

- -

१- चिरंजीलाल पाराशर - नारी और समाज , पृष्ठ - २०६

२- के०एम०पाणिक्कर - हिन्दू समाज निर्णय के द्वार पर, पृष्ठ - ३६

पर्दा प्रथा, बाल-विवाह के बन्धन शिथिल हो चुके थे। नारियों में राजनीति में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। चिरंजीलाल पाराशर ने लिखा - उनके मण्डल आयोग बनाये गये। मण्डलों ने घर-घर जाकर महिलाओं में देश के प्रति स्वाधीनता की अग्नि प्रज्वलित की थी। एक ओर जहाँ श्रीमती एनीबीसेन्ट और सरोजिनी नायडू कांग्रेस की जड़ों को मजबूत कर रही थी, वहाँ दूसरी ओर शन्नो देवी और राजकुमारी अमृत कौर ने भी पंजाब में कांग्रेस की जड़े मजबूत जमा दी थी। इन्हीं महिलाओं के साथ नई पीढ़ी भी मैदान में आई। जहाँ स्व०श्रीमती कमला नेहरू का नाम स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायेगा वहाँ दिल्ली की चन्दो बीबी , बहन सत्यवती, श्रीमती अरुणा आसफअली, श्रीमती मनमोहिनी सहगल, श्रीमती सुचेता कृपलानी, श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित , सुभद्रा जोशी और रामप्यारी के त्याग को तिरोहित नहीं किया जा सकता।[1]

उस समय महिलायें राजनीति में ही भाग नहीं ले रही थी वरन् वे अपनी सामाजिक स्थिति को सुदृढ़ करने का प्रयत्न भी कर रही थी। अखिल भारतीय महिला सम्मेलन का जन्म १९२७ में हुआ, इसी वर्ष पूना में उसका प्रथम सम्मेलन हुआ। इसमें महिलाओं की प्रगति के साथ-साथ शिशुओं के विकास के लिये भी कार्यक्रम बनाये गये। चिरंजीलाल पाराशर के अनुसार- इस आन्दोलन में महिलाओं का उद्देश्य समाज सुधारों के लिये आन्दोलन करने का निश्चय हुआ। इस आन्दोलन में महिलाओं के प्रत्येक पुरुष के समान अधिकारों एवम् अवसरों के लिये प्रयत्न करना, समस्त भारत में स्त्रियों के लिये कार्य करते हुए उनके नैतिक स्तर को उच्च बनाना और सहयोग के लिये सरकार से मांग करना और विश्व शांति और सद्भावना के लिये प्रयत्नकरना[2]।

नारी जाति में जागरूकता शहरी क्षेत्रों में ही आई थी पर

- -

१- चिरंजीलाल पाराशर - नारी और समाज , पृष्ठ - २७

२- - वही - पृष्ठ - ११

गाँवों की अधिकांश नारियों की स्थिति शोचनीय ही रही । यह कहा जा सकता है कि इस समय नारियों की स्थिति में सुधार के लिये कार्य प्रारम्भ हो गये थे । नारियाँ स्वयं अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील हो गई थी ।

६- समाज सुधार के लिये प्रयास -

सदियों की पराधीनता के कारण भारत की चेतना पर धूल जम गई थी । इसके लिये आवश्यक था कि सुधारों की व्यवस्था के द्वारा भारतीयों को अपनी चेतना का भान कराया जाये और उन्हें अपनी गरिमा को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील बनाया जाये ।

अंग्रेजों के शासनकाल में भारतीय अन्धविश्वासों में जकड़े हुए थे, इन बन्धनों से मुक्ति के लिये भारतीयों का बौद्धिक जागरण अनिवार्य हो गया था । इसके लिये विभिन्न संस्थाओं का गठन हुआ। डा०सीताराम भा के अनुसार - नव चेतना के ऊर्ध्व धरातल पर भारत को प्रतिष्ठापित करने के लिये अनेक समाज-सुधारक देश भक्तों ने विभिन्न संस्थाओं का निर्माण किया क्योंकि राजनैतिक सुधारकों के पहले अंधविश्वासों और रूढ़ियों का अंत आवश्यक है।[१]

भारत में व्याप्त कुप्रथाओं और अंधविश्वासों का अंत करने के लिये निम्नप्रकार के समाज सुधार के प्रयास किये गये । -

(अ) ब्रह्म समाज -

ब्रह्म समाज की स्थापना समाज में प्रचलित दूषित प्रवृत्तियों को दूर कर भारतीय जीवन के सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक स्तर को ऊँचा उठाने के उद्देश्य से ३० अगस्त १८१८ ई० में श्रीयुत राजाराम मोहन राय द्वारा

१- डा०सीताराम भा - भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और हिन्दी उपन्यास
पृष्ठ-२५

की गई थी। राजा राममोहन राय को भारत की राष्ट्रीयता का पैगम्बर कहा जा सकता है । डा०पट्टाभि सीता रामैया के अनुसार - भारत के दो बड़े सुधारों के साथ उनका नाम जुड़ा है- एक तो सती प्रथा को मिटाया जाना और दूसरा भारत में पश्चिमी शिक्षा का प्रचार ।[१]

राजा राममोहन राय का उद्देश्य धर्म को उदार बनाना और मानव मात्र के भ्रातृत्व को क्रियान्वित करना था। ब्रह्म समाज न केवल एकेश्वरवाद का ही प्रचार करता था अपितु उसका उद्देश्य मनुष्यों में भ्रातृत्व की भावना पैदा करना था । सौम्येन्द्र नाथ टैगोर के अनुसार - राममोहन राय ने किसी नये धर्म या सम्प्रदाय के रुप में ब्रह्म समाज की कल्पना नहीं की थी । वे चाहते थे विभिन्न धर्मों से सम्बन्धित एकेश्वर वादी लोग ब्रह्म समाज के स्थान का उपयोग करें और उसे अपना मानें ।[२]

राजा राममोहन राय वैज्ञानिक शिक्षा पर बल देते थे । राममोहन राय बहुत चाहते थे कि भारत में शिक्षा वैज्ञानिक ढंग से दी जाये ताकि अन्ध विश्वास और अज्ञान को दूर करें और ज्ञान के प्रकाश की ओर अग्रसर हों ।[३]

राजा राममोहन राय सभी धर्मों के अनुयायियों, जातियों और सम्प्रदाय के भेद को भुलाकर मानव को एकता के सूत्र में बांधना चाहते थे । उन्होंने जातिवाद का विरोध किया । शम्भुरत्न त्रिपाठी के शब्दों में - आधुनिक युग में राजा राममोहन राय का ध्यान इस ओर गया । वह चाहते थे कि जातियों के असमान व्यवहार और एक का दूसरे पर अत्याचार समाप्त हो जाये ।[४]

- -

१- डा०पट्टाभि सीतारामैया - संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ-७
२- सौम्येन्द्र नाथ टैगोर राजाराममोहन राय, पृ - ४५
३- -वही - पृ - २७
४- शम्भुरत्न त्रिपाठी - भारतीय समाजशास्त्र, पृ - ६६

राजा राममोहनराय एक प्रगतिशील विचारों के प्रतिनिधि और सच्चे समाज सुधारक थे । वे विचार व प्रकाश की स्वतंत्रता, कृषक समाज की उन्नति, पराधीन , दलित, शोषित, अवैरित जातियों का उद्धार , नौकरियों का भारतीयकरण और सभी दृष्टियों से राष्ट्र का उन्नयन चाहते थे । जमुना नाग के अनुसार - राजा राममोहन राय ने अपनी गतिविधियां समाज सुधार तक ही सीमित नहीं रखी वरन् राजनीति , साहित्य व दर्शन के क्षेत्रों में भी उन्होंने अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ी। इसी कारण उनकी गणना भारत के प्रारम्भिक महान सुधारकों में की जाती है ।[1]

राजा राममोहन राय प्रकाण्ड विद्वान थे । उनमें स्वाधीनता प्रेम प्रबल था । उन्होंने यूरोप के उन्नत देशों की पद्धति के ज्ञान से भारतीय शास्त्रों को अधिक समृद्ध करने का प्रयास किया । रामगोपाल के शब्दों में - पाश्चात्य स्वतंत्रता , समता और भ्रातृत्व के सिद्धान्त में उन्हें इतना अधिक प्रभावित किया था कि जब वे इंग्लैण्ड की यात्रा पर थे तो मार्ग में एक फ्रान्सीसी जहाज पर स्वतंत्रता के झंडे को उड़ते हुए देखकर उन्होंने फ्रान्सीसी जहाज पर जाकर फ्रान्सीसी राष्ट्र का , जिसने प्रत्येक प्रकार की दासता के विरुद्ध क्रान्ति का झंडा ऊंचा किया था, भारत की ओर से अभिवादन करने का आग्रह किया ।[2]

(ख) प्रार्थना समाज -

बम्बई में १८४६ में परमहंस समाज और १८६४ में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई थी । इन दोनों संस्थाओं का उद्देश्य समान था । डा०सीताराम झा के अनुसार - दलितों की सेवा , नारी शिक्षा का प्रचार, जाति प्रथा का विरोध एवम् वैवाहिक संबंधों का सुधार आदि इसके मुख्य कार्य थे । रानाडे " प्रार्थना समाज " के प्रमुख नेता थे । महाराष्ट्र में

- -

१- जमुना नाग - भारत के महान सुधारक राजा राममोहन राय,पृष्ठ-२०
२- रामगोपाल - भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, पृष्ठ - २३

सामाजिक और राष्ट्रीय भावनाओं को जगाने में इन संस्थाओं ने पूरा योग दिया ।

बंगाल के ब्रह्म समाज के आदर्शों से प्रेरित होकर बम्बई में प्रार्थना-समाज को जहां तक उसके सिद्धान्तों का प्रश्न था , खण्ड-खण्ड कर दिया । जबकि जाति को खण्ड करने के इस आन्दोलन को आरम्भ किया जा रहा था, अन्य योग्य हिन्दुओं, मनीषियों ने हिन्दु समाज को वेदों में बताये हुए प्राचीन आदर्श के अनुसार पुनर्गठित करने का विचार किया । डा०श्री पट्टाभि सीतारमैया के अनुसार - पूना में प्रार्थना समाज के नाम से महादेव गोविंद रानाड़े के नेतृत्व में यह आन्दोलन शुरू हुआ । यही रानाड़े समाज सुधार आन्दोलन के जनक थे , जो वर्षों तक कांग्रेस का एक अंग बनकर चलता रहा। इस सुधार आन्दोलन में भूतकाल के प्रति एक प्रकार की श्रद्धा और प्राचीन परम्पराओं और विश्वासों के प्रति आदर के भाव भरे हुए थे और इसका कारण था , पश्चिमी संस्थाओं का जादू एवं उनके साथ चिपकी हुई राजनैतिक - प्रतिष्ठा ।[१]

(ब) आर्य समाज -

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने १० अप्रैल १८७५ को आर्य समाज की स्थापना बम्बई में की थी । आर्य समाज वेदों की अपौरुषेयता और वैदिक संस्कृति के भाव की श्रेष्ठता के हामी होते हुए भी उदार सामाजिक सुधार का विरोधी न था । इसने हमारी पूर्व परम्परा और आधुनिक वातावरण में सामंजस्य स्थापित किया । मन्मथनाथ गुप्त के अनुसार - यद्यपि आर्य समाज का नारा यह था कि वेदों के युग में लौट चलो फिर भी आर्य समाजियों ने अंग्रेजी शिक्षा से गुरुकुल खुलवाये , उन्होंने कई बड़े कालेज भी स्थापित किये।

- -

१- डा० पट्टाभि सीता रमैया , संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास पृष्ठ - ६

स्वामी दयानन्द ने सारे भारत का पर्यटन किया । स्वामी जी ने जिन बातों पर विशेष ध्यान दिया , वह था संस्कृत और हिन्दी का प्रचार , वेद अध्ययन, हिन्दू संगठन , शुद्धि , विधवा विवाह इत्यादि । पुरातनवादी होते हुए भी इन्होंने सुधार के महत्वपूर्ण कार्य किये ।[१]

आर्य समाज ने धार्मिक और सामाजिक जीवन का जो आदर्श प्रस्तुत किया उसकी सबसे बड़ी विशेषता कर्मठता , समन्वय और अनुशासन है । आर्य-समाज जाति-वर्ण रहित समाज के निर्माण के लिये निरन्तर सक्रिय रहा है कौन्द्रपालसिंह का मत है - दलितों को जाति का अलग हिस्सा न मानकर उन्हें अन्यों के समान मानवता के पूरे अधिकार देना आर्य समाज के दलितोद्धार कार्य का मुख्य लक्ष्य था ।[२]

स्वामी दयानन्द ने यह प्रचार किया था कि समकालीन जाति की अनेकानेक शाखाओं के स्थान पर लोगों के चार प्रकार के विभाजन को ग्रहण कर लिया जाये । एक महत्वपूर्ण नवीनता जो इस विचारधारा के अनुयायियों ने अपने पुनर्गठन के कार्यक्रम में सम्मिलित की , वह यह थी कि हिन्दू समाज का का चौथा वर्ग अर्थात शूद्र भी वेदों का अध्ययन कर सकता है। डा०सीताराम झा के अनुसार - आर्य समाज ने समाज निर्माण की चेतना दी और जातीयता का उन्मेष किया । यह जातीयता सांस्कृतिक राष्ट्रीयता है , आज की संश्लिष्ट राष्ट्रीयता नहीं है ।[२]

आर्य समाज में देश भक्ति के भाव प्रबल थे । उन्होंने गुरुकुलों और आर्य समाजी विद्यालयों द्वारा युवकों में देश के प्रति प्रेम उत्पन्न किया हिन्दी प्रचार और नारी शिक्षा का समर्थन किया । दयानन्द सरस्वती में सफल राष्ट्रनेता के सभी गुण उचित रूप में विद्यमान थे । उनका उद्देश्य

- -

१- मन्मथनाथ गुप्त - कांग्रेस के सौ वर्ष , पृष्ठ - २३

२- डा०सीताराम झा - भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और हिन्दी उपन्यास पृष्ठ - २७

धार्मिक और सामाजिक सुधार के साथ भारतीयों में राष्ट्रीय भावोद्दीपन भी था। कुबेन्द्रसिंह के अनुसार - आर्य समाज सुधार कार्यक्रम का प्रबल समर्थक रहा है। जाति-पाँति का उन्मूलन, स्त्रियों का उत्थान और शिक्षण, बाल-विवाह निषेध, विधवा विवाह का प्रचार, दुखी पीड़ितों की सहायता, गौ-रक्षा का प्रचार, मूर्तिपूजा का खण्डन, पाखण्ड एवं अंधविश्वास का भण्डाफोड़ आदि उसके कार्यक्रम के मुख्य अंग थे।[1]

(क) थियोसोफिकल सोसाइटी -

ब्रह्म समाज सर्वप्रथम अमरीका में रूसी महिला हैलेना पैट्रोवना ब्लेवेट्स्की और अमरीकी कर्नल आल्काट द्वारा ७ सितम्बर १८७५ में स्थापित हुआ। उक्त दोनों व्यक्तियों के प्रयास से १८८२ में इसका प्रधान कार्यालय मद्रास आया। एनी बीसेन्ट ने इस आन्दोलन को विकसित किया। सीताराम झा के शब्दों में - निःसंदेह ब्रह्म समाज में एनी बीसेन्ट के प्रवेश से भारत की राष्ट्रीय भावना अधिक विकसित हुई और उनकी देन एक अमिट छाप छोड़ गई।[2]

थियोसोफिकल आन्दोलन में यद्यपि विश्वव्यापी सहानुभूति और अध्ययन की विशेषता थी तो भी पूर्वीय संस्कृति में जो कुछ महान और गौरव-मय है उसके अविष्कार और पुनरुज्जीवन पर उसमें खास जोर दिया जाता था। इसी प्रबल भावना को लेकर श्रीमती बीसेन्ट ने भारत के पुण्यधाम काशी में एक कालेज शुरू किया। इस तरह थियोसोफिकल प्रवृत्तियों के द्वारा एक ओर जहाँ विश्व बंधुत्व की भावना बढ़ने लगी, वहाँ दूसरी ओर पश्चिम के बुद्धिवाद की श्रेष्ठता का दौर-दौरा कम हुआ और उसकी जगह संस्कृति का एक नया केन्द्र स्थापित हुआ जहाँ से इस

- -

१- डा० कुबेन्द्रसिंह - भारतीय राष्ट्रवाद एवं आर्यसमाज आन्दोलन, पृष्ठ-८४

२- डा० सीताराम झा - भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और हिन्दी उपन्यास पृष्ठ - २८

प्राचीन - भूमि में पश्चिमी देशों के विद्वज्जन खिंच-खिंच कर आने लगे । एनीबीसेन्ट ने जातिवाद की भावना का भी विरोध किया । शम्भुरत्न त्रिपाठी ने लिखा - श्रीमती एनीबीसेन्ट की थियोसोफिकल सोसाइटी ने अस्पृश्यता और जाति भेद का बहिष्कार किया और नीची जातियों का समर्थन किया ।[1]

(ज) रामकिशन मिशन -

रामकृष्ण परमहंस ने भारतीय संस्कृति का विश्लेषण कर युवकों के बीच प्रचार व प्रसार किया । अब भारतीय यह समझने लगे थे कि अंग्रेजों की संस्कृति की अपेक्षा भारतीय संस्कृति उच्च है । १८८६ में रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु के बाद श्री विवेकानन्द ने रामकृष्ण आश्रम की स्थापना की । इन्द्रास्वप्न के अनुसार - स्वामी रामतीर्थ वेदान्ती थे , उन्होंने जापान , अमरीका आदि देशों में जाकर वहां के नागरिकों को वेदान्त का व्यावहारिक ज्ञान सिखाया ।[2]

रामकिशन मिशन ना तो कोरे-साधकों की और ना केवल भौतिकवादियों की संस्था है , बल्कि एक ऐसी आध्यात्मिक आदर्श रखने वाली संस्था है , जो लोकसंग्रह या समाज सेवा के महान-कर्तव्य की उपेक्षा नहीं करती । इन्द्रास्वप्न के अनुसार - विदेशों में भारत का मान बढ़ाया । उन्होंने भारतीयों को यह संदेश दिया - समाज सेवा ही ईश्वर पूजा है । भारत से तुम्हारा स्नेह होना चाहिये ।[3]

स्वामी विवेकानन्द आस्था , आत्मनिर्भरता , स्वाभिमान , बलिदान और एकीकरण के उद्घोषक थे । उन्होंने सदा " हम भारतवासी"

- -

१- शम्भुरत्न त्रिपाठी - भारतीय समाजशास्त्र, पृष्ठ - ६८
२- इन्द्रास्वप्न - स्वामी रामतीर्थ के प्रेरक प्रसंग, पृष्ठ - दोशब्द
३- - वही - पृष्ठ - दोशब्द

होकर राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास किया । देश में सभी प्रकार के आपसी भेदभावों को छोड़कर स्वाधीन होने का आह्वान किया , स्वामी विवेकानन्द ने पराधीन देश में सभी देवताओं को छोड़कर भारतमाता की पूजा और उसकी सच्ची सेवा करने का आग्रह किया ।[1]

ब- <u>आर्थिक दशा -</u>

१) उद्योग - उन्नीसवीं शताब्दी में गाँवों में कुटीर उद्योगों का ह्रास हो रहा था और संगठित क्षेत्र में उद्योगों का धीमा और असमान - विकास था । कृषि जन्य कच्चे माल पर निर्भर रहने वाले उद्योग उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक स्थापित किये गये और लोहा, इस्पात और कोयले के उद्योग पिछड़े रहे ।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत में स्वदेशी और बहिष्कार की कार्यवाहियाँ ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध की गई । इसलिये भारत में इस समय कुटीर उद्योगों के विकास पर जोर दिया गया । डॉ० ताराचन्द के अनुसार - परिणामस्वरूप बंगाल में हथ , करघा उद्योगों का पुनरोदय हुआ, जहाँ से वह भारत के विभिन्न भागों में फैलाया गया । १९१९ में चरखा और खद्दर के प्रचार के लिये गाँधी जी ने जो शक्तिशाली आन्दोलन छेड़ा , उससे ग्रामोद्योग को फिर से खड़े करने में बहुत प्रोत्साहन मिला ।[2]

इस प्रकार १९०५-७ से कपास उद्योग का विकास तेजी से हुआ । स्थानीय उपभोक्ताओं की जरूरतें कपड़े बुनने से पूरी करने का प्रयास किया गया । यह उद्योग उतार-चढ़ाव से परिपूर्ण रहा । स्वदेशी आन्दोलन और गाँधी जी के समर्थन के बावजूद भी जुलाहों की स्थिति में कुछ सुधार नहीं हुआ ।

- -

१- डॉ० सीताराम झा - भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और हिन्दी उपन्यास
पृष्ठ - २९

२- डॉ० ताराचन्द - भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास भाग-४
पृष्ठ - ७४

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में औद्योगिक विकास होने पर भी भारत की अर्थव्यवस्था गतिहीन थी । डा०ताराचन्द के अनुसार - कपड़ा उद्योग और अन्य उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों में हुई प्रगति तथा लोहा और इस्पात - उद्योग की जरूरत के बावजूद उद्योगीकरण कीगति बहुत धीमी थी और इस-लिये देश की बहुसंख्यक आबादी के बड़े भाग को कोईराहत नहीं पहुंच रही थी।[१]

पटसन उद्योग दूसरा बड़ा उद्योग था । वह लगभग पूरी तरह यूरोपियनों के हाथों में था और इसलिये उसके विकास की परिस्थितियाँ और अधिक अनुकूल थीं । इस उद्योग पर सरकार की कृपादृष्टि थी । रजनीपाम दत्त के अनुसार - १९१४ तक साम्राज्यवाद भारत के औद्योगिक विकास का खुल्लमखुल्ला और बिना किसी लाग-लपेट के विरोध करता था । भारत के औद्योगिक विकास सिर्फ सरकारी फरमानों या सरकारी उदासीनता से नहीं रोका जाता था , बल्कि चुंगी के मामलों में एक खास तरह की नीति बरत कर भी औद्योगिक विकास पर बंदिश लगा दी गई थी । इसलिये १९१४ तक भारत का औद्योगिक विकास बहुत ही धीरे-धीरे और बहुत कम हुआ ।[२]

इस शताब्दी के प्रारम्भ में भारत की चीनी उद्योग गिरावट पर था और विदेशों से आयात तेजी से बढ़ रहा था १९१४-१८ के युद्ध ने गन्ना उपजाने को प्रोत्साहन दिया और गन्ने के अन्तर्गत क्षेत्रफल बढ़ गया ।
- १९१४-१८ की लड़ाई के खत्म होते ही दुनिया के अलग-अलग देशों में व्यापार में जो तेजी आई थी, उसका रूप भारत में और जगहों से अधिक उग्र था । सूती कपड़े और जूट की मिलों ने बेशुमार मुनाफा कमाया ,और युद्ध खत्म होने के फौरन बाद के उन वर्षों में इस बेशुमार मुनाफे में हिस्सा बटाने की उम्मीद से काफी अंग्रेजी पूंजी भारत चली आई ।[३]

- -

१- डा०ताराचन्द - भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास,४पृष्ठ-७६
२- रजनीपाम दत्त - भारत वर्तमान और भावी , पृष्ठ - ६२
३- - वही - , पृष्ठ - ६४

कोयला उद्योग की भी प्रगति हुई । विश्वयुद्ध के कारण लोहा और इस्पात के कारखानों का विकास किया गया । आचार्य नरेन्द्र देव के अनुसार - भारतीय सरकार ने यह निश्चय किया कि विविध विभागों के लिये जिस-जिस सामग्री की आवश्यकता हो , वहां जहां तक सम्भव हो, भारत में ही खरीदी जाये । इस निश्चय से भी ब्रिटिश पूंजीपति भारत में नये-नये व्यवसाय खोलने को विवश हुए । युद्ध के समाप्त होने के बाद ही कई लोहे और फौलाद के कारखाने खुल गये । धीरे-धीरे भारत में बहुत सी अंग्रेजी कम्पनियों की रजिस्ट्री हो गई और वे अपना कारोबार करने लगे ।[१]

लेकिन युद्ध के बाद गिरावट और उत्पादन दर में वृद्धि से इस उद्योग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा । बड़े पैमाने के रासायनिक उद्योगों की हालत भी बहुत अच्छी नहीं थी । कच्चे माल और बाजार बिक्री की अनुकूलता होते हुए भी , इस क्षेत्र के उद्योगों का विकास अवरुद्ध था । डा०ताराचन्द के अनुसार - बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक बीस वर्षों के कारों से कोई सहायता नहीं मिलती क्योंकि इस काल में सरकार ने अहस्त-क्षेप की नीति अपनायी और उसके कार्य-कलापों के अप्रत्यक्ष प्रभाव के अलावा उद्योग उसकी चिंता के विषय नहीं थे ।[२]

भारत में प्रथम-युद्ध के दौरान आधुनिक वृहत् उद्योगों की नींव जमी । कमलेश त्रिपाठी के अनुसार - भारत में औद्योगिक विकास बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक मुख्यत: चार प्रकार के उद्योगों तक सीमित रहा । सूती कपड़े और पटसन , कोयला-खाने और चाय बागान , आटा पीसने , धान कूटने की मिलें , बम्बई के शोधनालय, कागज और चीनी के कारखाने , नमक , कहवा, पट्रोल और लोहे की खानों आदि को विकसित किया गया ।

- -

१- आचार्य नरेन्द्र देव - राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृष्ठ - २३-२४
२- डा०ताराचन्द - भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास भाग-४ पृष्ठ-११

इंजीनियरी, रेलवे और लोहे तथा पीतल की ढलाई के कुछ कारखाने भी स्थापित किये गये ।[१]

देश तथा विदेशों से भारतीय उद्योगों में वस्तुओं की मांग में वृद्धि होने से भारतीय उद्योगपतियों ने बहुत लाभ कमाये । किन्तु युद्ध जनित परि-स्थिति में भारत पूरा लाभ न उठा सका । एक तो सरकारी नीति तथा दूसरे जापान का औद्योगिक उदय इस मार्ग में बाधक प्रमाणित हुए । जापान में वृहद् उद्योगों की बड़ी तीव्र गति से प्रगति हो रही थी । वहां बड़ी-बड़ी मशीनों का निर्माण होता था किन्तु भारत तो मशीनों के लिये विदेशों पर निर्भर था और साथ ही अब इतना शीघ्र ही आवश्यक मशीनों का निर्माण भी नहीं कर सकता था । ऐसी स्थिति में विदेशी मशीनों के मिलने में असुविधा के कारण उद्योगों के विकास में बड़ी बाधा उत्पन्न हुई ।

आर्थर बाल्फोर ने भारत सरकार की औद्योगिक नीति का परिणाम इन शब्दों में व्यक्त किया था - एक-एक करके उसके सभी उद्योगों का या तो जन्मकाल में ही गला घोंट दिया गया या उनके हाथ पैर बांधकर उन्हें इंग्लैण्ड में उनके प्रतिद्वन्द्वी संस्थाओं के हाथ में सौंप दिया गया । इस प्रकार धनो-पार्जन का प्रत्येक स्त्रोत बंद कर दिया गया और सारे राष्ट्र को खेती-बारी पर निर्भर रहने के लिये बाध्य कर दिया गया ।[२]

२) कृषि -

अर्थव्यवस्था के तीनों क्षेत्रों में कृषि, उद्योग और वाणिज्य में कृषि का प्रमुख स्थान है क्योंकि इस देश की अधिकांश आबादी कृषि पर निर्भर है । ब्रिटिश शासनकाल में कच्चे माल की मांग के कारण कपास, गन्ना, पटसन और तिलहन की खेती का क्षेत्रफल बढ़ने लगा जिसके परिणामस्वरूप

- -

१- कमलेश त्रिपाठी - स्वतंत्रता संग्राम, पृष्ठ - २२

२- रामगोपाल - भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, पृष्ठ-५८

खाद्यान्न का दोत्रफल घटने लगा। जैसे-जैसे अनाज की मांग बढ़ती जा रही थी, उसे पूरा करने के लिये कृषि की क्षमता कम होती जा रही थी। होल्डरनेस ने कहा कि १६११ में खेतिहर जनसंख्या के अन्तर्गत प्रति व्यक्ति को १.२५ एकड़ से अधिक भूमि उपलब्ध नहीं थी। इसी में से किसान को गैर-खेतिहर आबादी की उपभोग की जरूरतों को पूरा करना होता था जिससे किसान के पास केवल दो तिहाई एकड़ बच रहता था।[१]

किसान के बढ़ते हुए कष्ट तब और भी दुखदायी हो गये जब उन पर कर्ज का बोझ बढ़ता गया और गरीबी के कारण भूमिहीन खेतहर मजदूरों की संख्या बढ़ती गई। कर्ज के दबाव से किसानों को अपने छोटे-छोटे भू-भाग रहन रखना और अंतत: हस्तान्तरित करना पड़ा। इसलिये भूमि की खरीद व बिक्री बढ़ गई और मजदूरों की संख्या: बढ़ गई। कृषि की उपज आबादी के अनुपात में पीछे रही। इसलिये भारत को अनाज के लिये दूसरे देशों पर निर्भर रहना पड़ा। खेती पर दबाव बढ़ने के कारण खेती करने वालों को जमीन कम मिलती थी। १६११ में सर थामसन होल्डरनेस ने लिखा था - भारत की जमीन न सिर्फ इस बड़ी भारी आबादी को भोजन देती है, बल्कि उसके एक काफी बड़े हिस्से को उन चीजों की पैदावार के लिये अलग कर दिया गया है जो देश के बाहर भेजने के लिये बोयी जाती है। इस तरहइस्तेमाल होने वाली जमीन घटाने पर जो जमीन बचती है --- हम देखेंगे कि वह भारत की आबादी के बीच २।३ एकड़ फी आदमी से ज्यादा नहीं पड़ती। इसलिये २।३ एकड़ फी आदमी से जो कुछ पैदा हो पाता है, उसी से भारत की आबादी को भोजन और कुछ हद तक कपड़ा भी मिलता है।[२]

कृषि की आय में कमी के परिणामस्वरूप किसानों की क्रय शक्ति

- -

१- डा०ताराचन्द, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास,४पृष्ठ-५१

२- रजनीपाम दत्त - भारत वर्तमान और भावी, पृष्ठ-८०

में कमी आई। कृषि में उनकी बचत कम हुई। परिणामस्वरूप कृषि में लगे हुए बहुसंख्यक लोगों के रहन-सहन में गिरावट आई। अमलेश त्रिपाठी के अनुसार - कृषि सम्बन्धी आंकड़े केवल बीसवीं शताब्दी के ही उपलब्ध हैं और यहां पर तस्वीर बहुत निराशा जनक है। १९०१ और १९३९ के बीच जबकि सारे कृषि जन्य उत्पादन में १४प्रतिशत की गिरावट आई। खाद्यान्नों प्रति व्यक्ति उत्पादन में इस गिरावट का प्रतिशत २४ था,काफी दूर तक यह गिरावट १९१९ के बाद आई।[1]

कृषि में वैज्ञानिक सुधार करने के लिये कृषि कालेज और अनुसंधान केन्द्र भी खोले गये। १९०४ में पूना में कृषि सम्बन्धी इम्पीरियल इन्स्टीट्यूट खोला गया। १९१५ में प्रान्तीय कृषि विभागों को सुदृढ़ आधार प्रदान किया गया। ये सुधार सीमित ही रहे। खेती में अधिक उत्पादन के लिये उसे आधुनिक ढंग से विकसित करने का प्रयत्न किया गया। अच्छे बीज में विभिन्न किस्म की खाद व सिंचाई के साधनों की व्यवस्था नहीं की गई।

- जो भी सुधार हुए उन्होंने कृषि समस्याओं कास्पर्श मात्र ही किया और कृषि व्यवस्था अधिकांशत: मध्ययुगीन ही बनी रही। सिंचाई कार्यों का प्रभाव भी नाम मात्र का पड़ा।[2]

इस समय किसानों की दशा शोचनीय हो रही। ब्रिटिश शासन का उद्देश्य कृषि से उपलब्ध सम्पूर्ण राजस्व स्वयं प्राप्त करना और भारतीय कृषि को ऐसी स्थिति में पड़ जाने के लिये विवश कर देना था ताकि वह उपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में एक नियत भूमिका निभा सके।

- -

१- अमलेश त्रिपाठी - स्वतंत्रता संग्राम , पृष्ठ - २०
२- डा०ताराचन्द - भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास,पृष्ठ-४८

३) वाणिज्य -

अन्तर्राष्ट्रीय वैदेशिक व्यापार, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का तीसरा महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। वैदेशिक व्यापार का किसी देश के आर्थिक जीवन में बहुत योगदान होता है। क्योंकि व्यापार के दो पक्ष होते हैं - आंतरिक और बाह्य। किसी भी देश की आन्तरिक अर्थव्यवस्था के विकास और उत्पादन की स्थिति में उसके निर्यात की प्रवृत्ति व दिशा का निश्चय होता है अथवा अन्य देश की मांग आन्तरिक अर्थव्यवस्था के विकास का निश्चय करती है। भारतीय वैदेशिक व्यापार उसकी कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था पर निर्भर था। भारत से मुख्यतः कच्चा माल विदेशों को निर्यात किया जाता था। निर्यात के लिये भारत में विदेशी नियंत्रण था और प्रति व्यक्ति निर्यात-व्यापार का मूल्य अपेक्षाकृत अल्प था। पंडित मदनमोहन मालवीय ने - कलकत्ता के कांग्रेस अधिवेशन में कहा - हमारे देश का कच्चा माल देश से बाहर चला जाता है और विदेशों से तैयार होकर उसका माल हमारे पास आता है। अगर हम स्वतंत्र होते तो ऐसा न होने देते। उस हालत में भी उसी प्रकार अपने उद्योगों का संरक्षण करते, जिस प्रकार कि सब देश अपने उद्योगों की शैशवावस्था में करते हैं।[१]

भारत के निर्यात का प्रति व्यक्ति अल्प मूल्य निर्माता देश के रूप में उसके पिछड़े पन का सूचक है। भारत के उद्योगों और कृषि के पिछड़ेपन के कारण अंशतः उसका वैदेशिक व्यापार भी रहा है, जो देश की उत्पादन प्रक्रिया को पीछे में डालता रहा है। डा० ताराचन्द के अनुसार - प्रथम विश्वयुद्ध के पहले ब्रिटेन से भारतीय आयात ६३ प्रतिशत माल आता था और भारत से वहाँ के लिये २५ प्रतिशत निर्यात होता था। १९३९-४० में ब्रिटेन से भारत को आयात गिरकर २५.२ प्रतिशत हो गया जबकि निर्यात बढ़कर ३५ प्रतिशत हो गया।[२]

---------------------------- संदर्भिका ----------------------------

१- डा०पट्टाभि सीतारामैया - कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ - ४७
२- डा०ताराचन्द - भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ-१९५

सूती कपड़ा , लोहा और इस्पात की मशीनरी , लोहे के सामान और कागज का आयात कम होने लगा और चाय, पटसन के सामान, चमड़े के सामान और तिलहन का निर्यात बढ़ा । भारत के वैदेशिक व्यापार बाद के वर्षों में भारतीय आयात के क्षेत्र में पहले जो ब्रिटेन के आधिपत्य और जापान, अमरीका, जर्मनी आदि देशों के प्रवेश से व्यापार के बहुदेशीय स्वरूप का सूत्रपात हुआ और भारत की ब्रिटेन पर निर्भरता कम हुई ।

- यह सही है कि वैदेशिक निर्यात की अभिवृद्धि से कृषि के व्यवसायीकरण में सहायता मिली, बागान उद्योगों जैसे चाय, काफी, पटसन आदि का विकास हुआ और खनिज पदार्थों का उत्पादन बढ़ा परन्तु इन उद्यमों से मुनाफे का अधिकांश भाग ब्रिटेन ने हड़प लिया इससे भारी उद्योगों का विकास अवरुद्ध रहा ।[१]

भारत के व्यापार पर अंग्रेजों का नियंत्रण था । ब्रिटेन ने भारत से इस प्रकार के व्यापारिक सम्बन्ध रखे जिससे उसको आर्थिक लाभ हो, इसी आधार पर उसने व्यापारिक सम्बन्ध बनाये । कमलेश त्रिपाठी के अनुसार - विदेशी व्यापार की बनावट और प्रकृति में असंतुलन था । भारत में उत्पादित वस्तुओं का ढेर लगा दिया गया था और उसे मजबूर कर दिया गया था कि वह ब्रिटेन तथा अन्य बाहरी देशों की आवश्यकता के अनुसार कच्चे माल का उत्पादन और निर्यात करे ।[२]

हालांकि भारत का वैदेशिक व्यापार महत्वपूर्ण है, फिर भी उसका आन्तरिक व्यापार, आकार और मूल्य में कहीं अधिक है । आर्थिक जांच समिति की रिपोर्ट के अनुसार - अगर भारत के कुल कृषि उत्पादन को

- -

१- डा०ताराचन्द - भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास भाग-४ पृष्ठ - १४७

२- कमलेश त्रिपाठी - स्वतंत्रता संग्राम , पृष्ठ-२०-२१

लिया जाये तो गणना से प्रकट होता है कि प्रत्येक एकड़ भूमि के लिये जिस पर अनाज, तिलहन, रेशा, चाय आदि किसी भी माल का निर्यात के लिये उत्पादन होता है, ग्यारह एकड़ भूमि पर स्थानीय निर्यात के लिये उत्पादन होता है, ग्यारह एकड़ भूमि पर स्थानीय खपत के लिये उत्पादन होता है। इसके अतिरिक्त गैर कृषि-उत्पादन या खनिज और तैयार माल इस अनुपात को बढ़ा देते हैं।[1]

आन्तरिक और बाह्य व्यापार के अनुपात को निश्चित करना कठिन कार्य है। एक अनुमान के अनुसार - यह ५.२ था कुछ भी हो मात्रा काफी अधिक थी, यह निर्विवाद है। १९२८-२९ के लिये अनुमान है कि वैदेशिक व्यापार का मूल्य ६०० करोड़ रुपये था। यदि उपयुक्त अनुमान सही मान लिया जाये तो आन्तरिक व्यापार का मूल्य १५०० करोड़ रुपये से कम नहीं बैठता। इस प्रकार इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि परिवहन और संचार साधनों में वृद्धि और रेल तथा सड़क व्यवस्था के विस्तार के साथ-साथ देशाभ्यंतर माल के आवागमन को बढ़ावा मिलता रहा।[2]

४) राष्ट्रीय आय -

सम्पत्ति और आय का परिकलन केवल एक अनुमान के आधार पर ही लगाया जा सकता है। आय के संबंध में विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अपने भिन्न-भिन्न निष्कर्ष निकाले हैं। रजनीपाम दत्त के अनुसार टाक्स कमिशन ने १९२१-२२ में भारतीयों की औसत आय का जो सबसे अधिक आशावादी अनुमान लगाया, वह ५ पैसे रोजाना से ज्यादा नहीं बैठता था।[3]

- -

१- डा०ताराचन्द - भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास भाग-४, पृष्ठ-११८

२- - वही - पृष्ठ-११८

३- रजनीपाम दत्त - भारत:वर्तमान और भावी पृष्ठ-८

साइमन कमिशन ने १९२१-२२ में ५ पैस का अनुमान लगायाथा , वह १९३१-४० में आकर ढाई पैस रोजाना रह जाता है। यह संख्या केवल पूरी आबादी की आय का औसत बताती है। इससे अधिकांश आबादी की आय का पता नहीं चलता। शाह और खम्भाता नाम अर्थशास्त्रियों ने अनुमान लगाया था कि - कुल राष्ट्रीय आय का दसवें से अधिक भाग देश के बाहर चला जाता है यानि वह ढाई पैस रोजाना की आय , इस प्रकार केवल दो पैस रोजाना रह जाती है ।[१]

विभिन्न अर्थशास्त्रियों के राष्ट्रीय आय के संबंध में अनुमान भिन्न-भिन्न है । जब कभी एक ही वर्ष के दो या दो से अधिक अनुमान हैं तो वे एक-दूसरे से भिन्न है उदाहरणार्थ - वर्ष १९११ के लिये तीन अनुमान हैं एफ०ए०शानिकृत ९८६ करोड़ रुपये , जी०एफ०शीरासकृत १९२० करोड़ और बालकृष्ण कृत(१९११-१२ के लिये) ५३६ करोड़ रुपये । उक्त तीन अन्वेषणों के अनुसार प्रति व्यक्ति आय (१९४८-४९ के मूल्यों के आधार पर) ९७८रुपये, ३३९रुपये और ८६ रुपये थी । वी०एन०शर्मा ने राज्य परिषद् में १९२१ में १९१४ के लिये प्रति व्यक्ति आय ८६ रुपये बताई थी ।[२]

यदि प्रति व्यक्ति के प्रतिवर्ष आय के वर्गों और प्रत्येक वर्ग की कुल आय पर विचार किया जाये तो यह स्पष्ट हो जाता है कि आयों की संख्या के कुल योग में उच्चतर वर्ग में निचले वर्ग के मुकाबले अधिक वृद्धि हुई । डा० ताराचन्द के अनुसार - यह कि (१) प्रति व्यक्ति कृषि उत्पादनका मूल्य गिर रहा था, और (२) उद्योगों और वाणिज्य से प्रति व्यक्ति आय धीरे-धीरे बढ़ रही थी। इसका अर्थ यह हुआ कि बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में भारत के अधिकांश वे निवासी जो जीवन निर्वाह के लिये कृषि पर निर्भर थे

- -

१- रजनीपाम दत्त-भारत वर्तमान और भावी , पृष्ठ - ६

२- डा०ताराचन्द - भारती स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास भाग-४ पृष्ठ - १२१

दिनों दिन गरीब होते जा रहे थे और मुट्ठी भर वे लोग जो उद्योग, व्यापार और कतिपय उच्च सेवाओं पर निर्भर थे , अधिक आय कर रहे थे । न केवल उन लोगों की प्रति व्यक्ति आय बढ़ रही थी , उनकी संख्या में भी वृद्धि हो रही थी ।[१]

४) आर्थिक चिन्तक -

ब्रिटिश शासन काल के अंत तक भारत की दशा आर्थिक दृष्टि से बहुत शोचनीय रही क्योंकि ब्रिटिश शासकों ने भारत का आर्थिक रूप से शोषण किया, उसे विकास का अवसर प्रदान नहीं किया । ऐसी परिस्थिति में हमारे देश के बहुत से आर्थिक चिन्तक सामने आये, जिन्होंने देश की आर्थिक दशा को समझा और स्थिति को सुधारने के प्रयत्न किये । हमारे देश के प्रमुख आर्थिक चिंतक - गोपाल कृष्ण गोखले, दादाभाई नौरोजी, गांधी जी, जवाहरलाल नेहरू , जयप्रकाश नारायण , विनोबा भावे , आचार्य नरेन्द्र देव आदि हुए ।

(अ) गोपालकृष्ण गोखले -

श्री गोखले के आर्थिक विचार सुलझे हुए और भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल ढले हुए थे । उन्होंने भारत की गरीबी का काफी चिंतन किया था और देश की औद्योगिक एवम् कृषि संबंधी समस्याओं में भी अभिरुचि ली थी । उन्होंने भारत की गरीबी का कारण अंग्रेज सरकार का आर्थिक शोषण बताया। पं०र०देवगिरिकर के अनुसार - उनका विचार था कि अंग्रेज पदाधिकारी बकवास हैं और उनका एकमात्र उद्देश्य है स्वयं अपने देश के लाभ के लिये निर्धन भारत का शोषण ।[२]

वे ब्रिटेन व मैनचेस्टर की बनी हुई चीजों का बहिष्कार करने के

- -

१- डा०ताराचन्द - भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास भाग-४ पृष्ठ - १२६

२- पं०र०देवगिरिकर - गोपालकृष्ण गोखले , पृष्ठ - ११६

समर्थक थे । उन्होंने पूना में एक सार्वजनिक सभा में स्वदेशी के प्रश्न पर विचार करते हुए कहा - कि लोगों को विदेशी वस्तु पर ड्यूटी (शुल्क) न लगाने की नीति का विरोध करना चाहिये और प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि वे मैनचेस्टर की बनी हुई वस्तुओं को तब तक नहीं खरीदेंगे जब तक उन पर ड्यूटी न लगा दी जायेगी ।[१]

कृषकों की दीनहीन और ऋणग्रस्त आर्थिक दशा ने गोखले को बहुत चिंतित और दुखी कर दिया । उन्होंने अत्यधिक करों का विरोध किया । उन्होंने सुझाव दिया कि सरकार किसानों को करों में उचित राहत दे और साथ ही कर वसूली के तरीकों में भी समुचित परिवर्तन करे । गोखले ने तत्कालीन भारत सरकार पर अर्थव्यवस्था के लिये सुधार के लिये लगातार दबाव डाला। प्रतिवर्ष बजट-अधिवेशन में अपने भाषणों द्वारा उन्होंने देश की आर्थिक स्थिति और सरकार की आर्थिक नीति पर महत्वपूर्ण तथ्यों का उद्घाटन किया । पं० र० देवगिरिकर के शब्दों में - गोखले ने कहा सरकार को चाहिये था कि वह सुधार के लिये कदम उठाती और उपज बढ़ाने के उपाय सुझाती । वे किसानों को साहूकारों के चंगुल से छुड़ा सकते थे , वे भूमि न्यास बैंक अथवा सरकारी ऋण समितियों और कृषि बैंक स्थापित करके एक सीमा तक ऋणग्रस्तता रोक सकते थे ।[२]

उन्होंने देश के उद्योगपतियों से अपील की कि उद्योगों में अधिकाधिक कुशलता लाने के प्रयत्न किये जाये , उत्पादन को बढ़ाया जाये तथा भारतीय माल के विक्रय के लिये विदेशों में मण्डियां खोली जाये । उद्योगों में भारत के मध्यमवर्गीय शिक्षित व्यक्तियों को प्रोत्साहन देना चाहिये ।

गोखले पश्चिम की पूंजीवादी अर्थनीति और अविकसित अथवा

- -

१- रामगोपाल - भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, पृष्ठ -११६
२- पं०र०देवगिरिकर - गोपालकृष्ण गोखले , पृष्ठ - १०८

पिछड़े देशों की सामाजिक-आर्थिक मांगों के संघर्ष द्वारा उत्पन्न खतरों को भलीभांति समझते थे। अतः उनका स्पष्ट मत था कि पूंजीवादी देशों की अर्थनीति ज्यों की त्यों भारत में लागू नहीं की जा सकती।

(आ) दादाभाई नौरोजी -

यह कहा जा सकता है कि दादा भाई ही वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने आर्थिक राष्ट्रवाद के सिद्धान्त की नींव डाली। भारतीय राष्ट्रवाद के आर्थिक आधारों की स्पष्ट और विस्तृत व्याख्या उन्होंने अपनी पुस्तक " भारत में गरीबी और ब्रिटिश शासन " में की जो लंदन से सन् १९०१ में प्रकाशित हुई थी। इसके अतिरिक्त दादा भाई के आर्थिक विचार उनके विभिन्न लेखों और भाषणों में बिखरे हुए मिलते हैं। दादा भाई ने भारतीयों को अंग्रेजी प्रशासन द्वारा अपनाई गई आर्थिक अव्यवस्था और शोषण की वास्तविकता से परिचित कराया। अमलेश त्रिपाठी के शब्दों में - दादा भाई ने इशारा किया कि भारतवासी " मात्र परजीवी दास " थे। वे अमरीकी गुलामों से भी बदतर थे क्योंकि कम से कम उनकी देखरेख उन अमरीकी मालिकों द्वारा की जाती थी, जिनके वे सम्पत्ति थे। उन्होंने घोषणा की कि " ब्रितानी शासन " अनन्तकाल तक बढ़ता, निरंतर बढ़ता हुआ ऐसा विदेशी आक्रमण है जो धीरे-धीरे लेकिन पूरी तरह देश को नष्ट कर रहा है।[1]

दादा भाई ने इस नगण्य सत्य को खुले शब्दों में रख दिया कि विदेशी पराधीनता का एक अनिवार्य परिणाम यह होता है कि विजित देश की लक्ष्मी विजेता के देश में खिंच जाती है। दादा भाई ने यह निश्चय कर लिया कि वे इस स्थिति के विरुद्ध आजीवन संघर्ष करेंगे

- -

१- अमलेश त्रिपाठी - स्वतंत्रता संग्राम, पृष्ठ - ५८

और ब्रिटिश शासकों के घोर अपव्यय का विश्व के सामने भण्डा फोड़ करेंगे। दादा भाई ने भारत की गरीबी का दायित्व ब्रिटिश शासन पर डाला और कहा कि भारत की सम्पत्ति देश के बाहर जाती रही है जिससे भारत घोर दरिद्रता के गर्त में गिर गया । मधु लिमये के अनुसार - दादा भाई - नौरोजी जैसे भारतीय एकता के समर्थक कम ही थे, जिन्होंने अपनी प्रदीर्घ आयु में राष्ट्र को जागृत और शिक्षित करने के अखण्ड प्रयास किये । इतना ही नहीं सीधे इंग्लैण्ड जाकर वहां के राजनीतिज्ञों को हिन्दुस्तान की समस्याओं से अवगत कराने का महत्वपूर्ण कार्य भी उन्होंने किया । इंग्लैण्ड की जनता के मन में हिन्दुस्तान के प्रति रुचि उत्पन्न करने में दादा भाई को कितनी सफलता मिली , उसका सबसे अच्छा सबूत यह है कि वहां फिन-बेरी चुनाव क्षेत्र से वे इंग्लैण्ड की लिबरल पार्टी के प्रतिनिधि के रूप में चुने गये थे ।[1]

दादा भाई का कहना था कि भारत को बड़े पैमाने पर औद्योगी-करण करके अपनी आर्थिक दशा सुधारने का प्रयत्न करना चाहिये । उन्होंने सुझाव दिया कि भारत के राजस्व पर भारित अनेक मदों का व्यय इंग्लैण्ड के कोष से किया जाना चाहिये । जैसे कि इण्डिया आफिस का व्यय, भारत में रखी जाने वाली अंग्रेजी सेनाओंका व्यय आदि । दादा भाई ने ब्रिटिश शासन को चेतावनी दी कि यदि भारत का भौतिक और नैतिक - विनाश इसी तरह होता रहेगा तो देश में एक ऐसी क्रान्ति का विस्फोट होगा जो शासन की नींव को हिला देगा ।

- दादाभाई नौरोजी देश के अन्दर चलने वाली नई हवा से अपरिचित नहीं थे और उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि कलकत्ता कांग्रेस कांग्रेस के बालिग होने के बाद उसका पहला अधिवेशन है और

- -

१- मधु लिमये - स्वतंत्रता आन्दोलन की विचारधारा , पृष्ठ - ८३

स्वराज्य प्राप्ति कांग्रेस का लक्ष्य होना चाहिये । पहली बार कांग्रेस अध्यक्ष ने एक ऐसे शब्द का प्रयोग किया था , जिसका अर्थ स्वाधीनता लगाया जा सकता था ।[१]

नौरोजी का विश्वास था कि देश का आर्थिक वातावरण देश के सामाजिक , नैतिक एवं राजनैतिक तत्वों से सम्बद्ध होता है ।

(३) गांधी जी -

गांधी जी मानते थे कि सभी व्यक्ति समाज में समान जन्म लेते हैं परन्तु सब को सुविधा और योग्यता प्राप्त नहीं हो पाती, अत: विभिन्न व्यक्तियोंकी आय भिन्न होती है । वह एक बुनकर , कृषक और शिक्षक के बच्चों में भेदभाव आर्थिक असमानता के आधार पर नहीं मानते थे । वे मानते थे कि - जैसे शरीर के सब अंग बराबर होते हैं , वैसे ही समाजरूपी शरीर के सारे अंग बराबर होते हैं ।[२]

वे आर्थिक समानता को अहिंसात्मक स्वतंत्रता की कुंजी मानते थे। आर्थिक समानता के लिये कार्य करने का तात्पर्य श्रम व पूंजी के निरन्तर संघर्ष को मिटाना है । उसके द्वारा अधिक धनिकों की धन सम्पन्नता क्रमश: कम होनी चाहिये तथा करोड़ो भूखे नंगे व्यक्तियों की निर्धनता कम होनी चाहिये । उन्होंने २५-८-४० को हरिजन में लिखा - आर्थिक समानता का सच्चा अर्थ है , जगत के सब मनुष्यों के पास एक समान स्थिति का होना यानि सबके पास इतनी सम्पत्ति होना जिससे वे अपनी कुदरती आवश्यकतायें पूरी कर सके ।[३]

वे मानते थे कि किसी भी सरकार की अहिंसात्मक व्यवस्था असम्भव है , जब तक धनिकों और निर्धन के बीच व्यापक विषमता विद्यमान

- -

१- रामगोपाल - भारती स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, पृष्ठ-१५६
२- गांधीजी, संग्राहक - आर०के० प्रभु - मेरा समाजवाद, पृष्ठ-६
३- गांधी जी , सम्पादक भारतन् कुमारप्पा - सर्वोदय ,पृष्ठ-३८

है । यदि धनिकों द्वारा स्वेच्छा से यह विषमता दूर नहीं होती तो हिंसात्मक क्रान्ति का भय बना रहेगा। उन्होंने ५-१२-३६ को हरिजन में लिखा - मैं जमींदारों और दूसरे पूंजीपतियों का अहिंसा के द्वारा हृदय-परिवर्तन करना चाहता हूं और इसलिये वर्ग युद्ध की अनिवार्यता को स्वीकार नहीं करता । कम से कम संघर्ष का रास्ता लेना मेरे अहिंसा के प्रयोग का एक जरूरी हिस्सा है ।[१]

गांधी जी आर्थिकसमानता का अर्थ मानते थे कि सभी मनुष्यों के पास समान सम्पत्ति हो । वे कहते थे - मेरी कल्पना में आर्थिक समानता का अर्थ यह नहीं कि हर एक को अक्षरश: एक ही रकम मिले । इसका मतलब इतना ही है कि हर एक को अपनी आवश्यकता के लिये काफी रकम मिल जानी चाहिये ।[२]

गांधी जी की धारणा थी कि भारत में पूंजी व आय के कुछ वर्गों में ही केन्द्रीयकरण की स्थिति अवांछनीय है । वे समान वितरण की आवश्यकता पर बल देते थे । समान वितरण का वास्तविक अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति की प्राकृतिक और सामाजिक आवश्यकताओं की उचित ढंग से पूर्ति हो सके । उनका मत था कि - समान वितरण का सच्चा अर्थ यह है कि प्रत्येक मनुष्य को अपनी कुदरती जरूरत पूरी करने का साधन मिल जाये , उससे ज्यादा नहीं ।[३]

वे चाहते थे प्रत्येक नागरिक को समान वितरण वाले समाज की स्थापना में राष्ट्रीय हित में सहयोग देना चाहिये । धनिकों के पास आवश्यकता से अधिक विभिन्न वस्तुओं का संग्रह हो जाता है जबकि असंख्य

- -

१- गांधी जी, संग्राहक : आर०के०प्रभु - मेरा समाजवाद, पृष्ठ -४२
२- गिरिराज शरण - गांधी जी ने कहा था - पृष्ठ - ३५
३- गांधी जी - सम्पादक भारतन् कुमारप्पा, अहिंसक समाजवाद की ओर
पृष्ठ - २१

निर्धनों के पास आवश्यकता पूर्ति की सामग्री भी नहीं रहती । वे मानते थे प्रेम, सद्भावना, अहिंसा तथा हृदय-परिवर्तन से आर्थिक समानता स्थापित हो सकती है और धनी एवं निर्धनों की विषमता दूर हो सकती है । समाजवाद का आधार आर्थिक समानता है । गांधी जी देश की आर्थिक दशा सुधारने के लिये कुटीर उद्योग धन्धों को महत्व देते थे । उन्होंने कहा - विद्युत-शक्ति से चलने वाला तकुआ जारी करके हाथ से कातने वाले लोगों को हटा देना जुर्म है - यदि इसके साथ करोड़ों किसानों को उनके घरों में धन्धा मुहैया करने की हमारी तैयारी न हो ।[१]

गांधी जी का भारतीय राजनीति, अर्थनीति तथा भारतीय - स्वतंत्रता के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है ।

(ड) जवाहरलाल नेहरू -

नेहरूजी समाजवादी दल के सदस्य नहीं थे पर वे समाजवादको स्वीकार करते थे । देश की पंचवर्षीय योजनाओं की कल्पना नेहरू जी की देन है । उन्होंने देश के आर्थिक व सामाजिक उद्देश्यों में निरन्तर लोकतंत्रवादी समाजवाद को अपनाया और समर्थन किया । वे निर्धनता, बेरोजगारी, आर्थिक व सामाजिक विषमता के शत्रु थे । रस्किन ब्रांड ने कहा - उन्होंने यह अनुभव किया कि यदि आर्थिक असमानता बनी रही तो राजनीतिक समानता का कोई अर्थ न रहेगा । जब लोग भूखों मर रहे हों तो वोट मदद नहीं करता ।[२]

नेहरू जी ने समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने का निश्चय किया था । उनका उद्देश्य था कि समाज के हित में उत्पादन के साधनों का

- -

१- गांधी जी सम्पादक - भारतन् कुमारप्पा - सर्वोदय, पृष्ठ - ४६
२- रस्किन ब्रांड - युग पुरुष नेहरू, पृष्ठ -१२२

राष्ट्रीयकरण होना , राष्ट्र की सम्पत्ति तथा साधनों का न्यायपूर्ण वितरण तथा समाज के प्रत्येक वर्ग की उन्नति तथा विकास के समान एवं उचित अवसर प्राप्त होना आवश्यक है । रस्किन ब्रांड के अनुसार - जवाहर लाल के मस्तिष्क में निश्चित और पूर्ण समाजवादी व्यवस्था का चित्र था , ऐसी समाजवादी व्यवस्था जिसमें उत्पादन के साधनों पर सम्पूर्ण समाज के लाभ के लिये समाज का ही नियंत्रण या अधिकार हो और जहां राष्ट्रीय सम्पत्ति का समान वितरण हो ।[१]

नेहरूजी को कृषकों और श्रमिकों के प्रति विशेष सहानुभूति थी । वे उनके अभ्युदय के लिये सब कुछ करने के लिये तत्पर थे । उन्होंने समाजवाद शब्द का प्रयोग संकुचित अर्थ में नहीं लिया । उनके समाजवाद का आशय था कि देश के प्रत्येक नागरिक को विकास के समान अवसर उपलब्ध होना चाहिये । इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उत्पादन के साधनों का सामाजिक स्वामित्व एवं नियंत्रण होना चाहिये ताकि उन्हें सम्पूर्ण समाज के लाभ के लिये उपयोग में लाया जा सके । उनकी धारणा थी कि निर्धनता और दलितों को अधिक सुविधा देने के लिये अत्यधिक धनिकों की सुविधाओं और विलासिता को कम करना होगा । वे मानते थे कि निरन्तर राष्ट्रीय व आर्थिक विकास विज्ञान व तकनीक की उन्नति से सम्भव था । उन्होंने अनुभव किया कि विज्ञान और तकनीकी प्रगति से भारत के राजनैतिक , सामाजिक, आर्थिक ढांचे को परिवर्तित किया जा सकता था ।

नेहरू जी एक वर्गविहीन व जाति विहीन समाज की स्थापना करने के प्रबल समर्थक थे । उनकी धारणा थी कि किसी भी प्रकार की उग्र और हिंसात्मक आर्थिक नियोजन के सर्वोत्तम लक्ष्य वर्गविहीन समाज

- -

१- रस्किनब्रांड - युग पुरुष नेहरू , पृष्ठ - १२३

की स्थापना में बाधक होंगे । नेहरू जी ने भारत के लिये मिश्रित अर्थ-व्यवस्था को सर्वाधिक अनुकूल समझा क्योंकि उनके विचार में पूर्ण राष्ट्रीय-करण उन राष्ट्रों में ही लाभकारी होता है जिनमें अपार सम्पत्ति होती है, भारत जैसे देश में जहां तकनीक साधन सीमित हैं ये व्यवस्था उचित नहीं होगी। डा०लक्ष्मण सिंह के अनुसार - भारतीय अर्थ व्यवस्था में श्री नेहरू ने राष्ट्रीयकरण को जन्म दिया ।[1]

(उ) जयप्रकाश नारायण -

जयप्रकाश नारायण विनोबा के उत्तराधिकारी हैं । गांधी जी के सत्याग्रह में जिस प्रकार गोखले और तिलक की विरासत का मनोहारी समुच्चय है, उसी प्रकार जयप्रकाश के प्रयोग में गांधी, विनोबा की विरासत का समुच्चय है । वे समाजवादी सिद्धांतों के समर्थक थे । वे मानते थे कि जो व्यक्ति समाज में दुखी व अपमानित है, उसके पराक्रम से ही क्रान्ति होना चाहिये । इसलिये उसमें प्रतिकार की क्षमता होना चाहिये अन्यथा उसे सम्पन्न और प्रतिष्ठित तबकों की उदारता और कृपाशीलता के भरोसे ही जीना पड़ेगा । वह जीवन अपमानित और व शोषित है इसलिये उसमें प्रतिकारी प्रेरणा और क्षमता जागृत करना अनिवार्य है । अहिंसक - प्रतिकारी की इस प्रतिक्रिया को उन्होंने वर्ग संघर्ष कहा है । डा०सोमनाथ शुक्ल के अनुसार - " समाजवादी चित्र " में जयप्रकाश ने स्पष्ट कहा कि लोकतंत्र के बिना समाजवाद का अस्तित्व नहीं है । सर्वहारा वर्ग की तानाशाही मार्क्सवाद के विरुद्ध है और अनर्गल प्रलाप है । राज्य के सर्वाधिकार के रूप में विकसित करना समाजवाद के अनुकूल नहीं है । राज्य के नियंत्रण और लोक शिक्षण के लिये श्रमिक संघों और उनकी सक्रियता की आवश्यकता है ।[2]

१- डा० लक्ष्मण सिंह - आधुनिक भारतीय राजनैतिक एवं सामाजिक विचारधारा, पृष्ठ - ६२२

२- डा०सोमनाथ शुक्ल - जयप्रकाश नारायण, " व्यक्ति और विचार " पृष्ठ -२३०

वे मानते थे कि समाजवाद लोकतांत्रिक व्यवस्था में ही सम्भव है । वे कहते थे कि युवकों और छात्रों के प्रगति के मार्ग में बाधक सामाजिक - बुराइयों से लड़ाई छेड़नी होगी ताकि हमारे सपनों के समाज का सशक्त आधारशिला स्थापित का जा सके । जन-आन्दोलन का एक लक्ष्य लोकतंत्र का अधिकाधिक विकास तथा दूसरा लक्ष्य सम्पूर्ण क्रांति को पूर्ण करना है ।

उनकी सम्पूर्ण क्रांति के प्रति विचार कई क्षेत्रों, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आदर्शवादिता, शैक्षणिक और आध्यात्मिक में व्याप्त है ।

जय प्रकाश नारायण का विचार था कि समाजवाद को पूर्ण स्वतंत्रता के वातावरण में कार्य करने के लिये लोकतांत्रिक व्यवस्था को स्वीकार करना पड़ेगा । डा० सोमनाथ शुक्ल के अनुसार - जयप्रकाश ने " सर्वोदय " से समाजवाद में स्पष्ट किया है कि समाजवाद तानाशाही के किसी मार्ग से नहीं निकलता । लोकतंत्र और समाजवाद - पूरक शब्दावली है तथा लोकतंत्र समाजवाद का हृदय है ।[1]

(ज) विनोबा भावे -

विनोबा का विश्वास था कि धन का समान वितरण इस युग की मांग है । भूमि का वितरण समान होना चाहिये । उनकी धारणा थी कि भूदान-यज्ञ के द्वारा देश में गांधीवाद और समाजवाद के दो प्रवाहों का गंगा-यमुना की तरह संगम होगा । और यह मिलन देश की समृद्धि और विकास में सहायक होगा । भूदान के अलावा विनोबा का विश्वास " सम्पत्ति दान " के विचार में भी है । उनका तर्क है कि -

- -

१- डा० सोमनाथ शुक्ल - जयप्रकाश नारायण" व्यक्ति और विचार , पृष्ठ-२४२

जिस प्रकार धनवान व्यक्ति अपने धन को बैंकों में विविध खातों में रखने का प्रयास करते हैं - उसी प्रकार धन-निर्धन व धनवान सभी के घरों में वितरित होकर रखा जाना चाहिये। उन्होंने कहा - समानता का यह मतलब नहीं कि हर एक के पास पांच एकड़ भूमि होनी चाहिये और एक ही तरह के मकान और उतने ही गज कपड़ा होना चाहिये। हम चाहते हैं कि हवा, पानी और जमीन जैसी चीज जो जीवन के लिये आवश्यक है, सबको समान रूप से उपलब्ध होनी चाहिये।[१]

विनोबा का तर्क है कि ब्रिटिश शासनकाल में भारतीय ग्रामों में आत्मनिर्भरता समाप्त हो गई और वे आर्थिक रूप से पिछड़ गये हैं। ग्रामों में भूमिहीनों की समस्या बहुत विषम व जटिल है। यदि भूदान और सम्पत्ति दान के द्वारा इन विषमताओं को दूर कर ग्रामों की आधार-शिला को दृढ़ कर दिया जावे तो आर्थिक प्रगति अधिक तीव्र गति से संभव हो सकेगी। उन्होंने कहा - ग्रामदान, भूदान, सर्वोदय, ग्राम स्वराज्य आदि का विचार गांवों-गांवों पहुंचाया जायेगा और हिन्दुस्तान में ग्राम स्वराज्य होगा, इसमें कोई शक नहीं है।[२]

वे आर्थिक समानता के पक्ष में थे। उनका विचार था सभी व्यक्तियों को श्रम करके धन का उपार्जन करना चाहिये। उन्होंने कहा - अगर हम अपने पास के सादे से सादे औजारों की मदद से अपने हाथों का पूरी तरह उपयोग करें, तो हमारी जरूरतें आसानी से पूरी हो जायेंगी। अगर हम शारीरिक श्रम को इस दृष्टिकोण से देखना सीख जायें तो अशोषण-विकेन्द्रित समाज, सादगीपूर्ण जीवन, पवित्र सौन्दर्य और आर्थिक समानता अवश्य प्राप्त हो जायेगी।[३]

१- विनोबा भावे - सर्वोदय का दूसरा भाग, पृष्ठ -१८१
२- विनोबा भावे - तीसरी शक्ति, पृष्ठ - ९५
३- विनोबा भावे - सर्वोदय का दूसरा भाग, पृष्ठ - १८२

(२) आचार्य नरेन्द्र देव -

आचार्य नरेन्द्र देव समाजवाद की स्थापना के लिये राजनैतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति अत्यावश्यक मानते थे। वे मार्क्स के वर्ग-संघर्ष के सिद्धांत को नहीं मानते थे। उनके विचार से मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष को जन्म नहीं दिया बल्कि वर्ग की एकता पर बल दिया। वे कृषकों के क्रान्तिकारी संगठन में विश्वास करते थे। वह समस्त जनता के लिये ऐसा प्रवर्तन चाहते थे जिसमें आर्थिक जीवन की सभी असमानतायें दूर हो जायें तथा निर्धन व्यक्तियों को भी वह ज्ञानराशि उपलब्ध हो सके जो उनको अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार में पीढ़ी दर पीढ़ी प्राप्त हुई है। यह सब नरेन्द्र देव के दृष्टिकोण में समाजवाद में ही संभव था। उनके अनुसार - समाजवाद की व्याख्या के अनुसार समाजवाद का लक्ष्य यही है कि उत्पादन के साधन व्यक्ति विशेष की मिल्कियत न होकर समाज की मिल्कियत हो।[१]

वे चाहते थे समाज का शोषित वर्ग व दलित वर्ग अत्यन्त चेतनशील होना चाहिये और वर्ग संगठित होना चाहिये। क्योंकि बिना इसके वर्ग संगठन प्रभावशाली न बन सकेगी। उनके अनुसार - समाजवाद का ध्येय वर्गविहीन समाज की स्थापना है। समाजवाद प्रचलित समाज का इस प्रकार संगठन करना चाहता है कि वर्तमान परस्पर विरोधी स्वार्थ वाले शोषक और शोषित, पीड़क और पीड़ित वर्गों का अंत हो जाये, वह उद्योग के आधार पर संगठित व्यक्तियों का ऐसा समूह बन जाय जिसमें एक सदस्य की उन्नति का अर्थ स्वभावत: दूसरे सदस्य की उन्नति हो और वह मिलकर सामूहिक रूप से परस्पर उन्नति करते हुए जीवन व्यतीत कर सकें।[२]

वे मानते थे कि समाजवादी प्रणाली में उत्पादन के साधनों पर समाज का अधिकार होता है और शोषक तथा शोषित दोनों नष्ट हो जाते हैं।

- -

१- आचार्य नरेन्द्र देव - राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृष्ठ - ४५६
२- - वही - पृष्ठ - २६३

समाजवादी समाज में राज्य भी जो अब तक शासक वर्ग द्वारा शासित वर्ग के दमन का हिंसाप्रधान यन्त्र रहा है - भी अस्तित्व न रहेगा । मनुष्य पहली - बार पशुतुल्य जीवन त्यागकर मनुष्योचित जीवन शुरू करेगा । उन्होंने कहा वैज्ञानिक समाजवाद गरीबों की गरीबी दूर करना चाहता है, न कि अमीरों से छीनकर उनको तबाह करना । इसलिये वैज्ञानिक समाजवाद की कल्पना भी मशीन युग के पहले नहीं सकती थी । मशीन-युग तथा उससे होने वाला वर्तमान पूंजीवाद ही वैज्ञानिक समाजवाद है ।[1]

आचार्य नरेन्द्र देव पूंजीवाद और शोषण के विरोधी थे । वह विश्व समाज में स्वतंत्रता , समानता , स्वैच्छिक सहयोग में वृद्धि करना चाहते थे ताकि विश्व के सभी राष्ट्र अपना भौतिक और सांस्कृतिक विकास करके आर्थिक सुरक्षा व सुविधायें समान रूप से प्राप्त कर सकें ।

ग - <u>राजनीतिक दशा</u> -

१- ब्रिटिश शासन - लोहिया जी के जन्म के समय भारत में ब्रिटिश साम्राज्य था । उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक पहुंचते-पहुंचते भारत एक विशिष्ट उपनिवेश में बदल गया । भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध सशक्त राष्ट्रीय संघर्ष का विकास उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और बीसवीं - शताब्दी के पूर्वार्ध में हुआ । अमलेश त्रिपाठी के अनुसार - भारत ब्रितानी उत्पादकों का एक बड़ा बाजार, कच्चे माल और खाद्यान्नों का एक बड़ा स्रोत और ब्रितानी पूंजी के निवेश का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र था।[2]

अंग्रेजों ने भारतीय उद्योग-धन्धों को बिल्कुल नष्ट कर दिया था । भारत से पहले ढाके की मलमल विदेशों में खूब जाती थी और वहां बड़ी चाव

- -

१- आचार्य नरेन्द्र देव - राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृष्ठ - ४६६
२- अमलेश त्रिपाठी, स्वतंत्रता संग्राम, पृष्ठ - १६

से ली जाती थी , बाद में अंग्रेजों ने इस उद्योग को बिल्कुल नष्ट कर दिया था ताकि लंकाशायर और लिवरपूल के कपड़े के उद्योग की उन्नति हो सके । इसका परिणाम यह हुआ कि भारत में विदेशी कपड़ा खूब बिकने लगा जिससे भारत का धन बाहर जाने लगा और वह निर्धन होने लगा ।

- ब्रितानी शासन का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रभाव था शहरी और ग्रामीण हस्तशिल्प उद्योग का ह्रास और विनाश । न केवल भारत के हाथ से एशिया और यूरोप के विदेशी बाजार निकल गये वरन् भारतीय बाजार भी बड़े पैमाने पर मशीनों द्वारा बनाये माल से पट गये , परिणाम यह था देशी हस्तशिल्प की समाप्ति ।[१]

अंग्रेजों ने भारतीय शिक्षा पद्धति, कृषि और उद्योगों की उन्नति तथा सफाई की तरफ ध्यान नहीं दिया बल्कि उन्होंने भारत की स्वतंत्रता को कुचल कर मनमानी शुरु कर दी थी । भारतीयों से शासन चलाने के बारे में न सलाह ली जाती थी और ना ही उन्हें कोई भाग दिया जाता था । मधु लिमये का मत है - कि - यहाँ तक कि अंग्रेजी साम्राज्य का यह घिनौना रुप था जैसे हमारे उद्योगों का विनाश , भयंकर शोषण , गरीबी और बेकारी । इनको भी प्रारम्भ में शिक्षित लोग नजर अंदाज कर दिया करते थे लेकिन बाद में उन्होंने महसूस किया कि सारे काम अंग्रेजी शासन प्रणाली के विपरीत हैं । अतः धीरे-धीरे भारतीय कांग्रेस के नेता अंग्रेजों के कारनामों को भी प्रकाश में लाने लगे ।[२]

ब्रिटिश शासन काल में हमारे देश की जनता की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया और लोगों के रीति-रिवाजों , परम्पराओं और धर्म का तिरस्कार किया गया । अंग्रेजों ने साम्प्रदायिकता और जातिवाद की भावनाओं को प्रोत्साहित किया । कमलेश त्रिपाठी ने लिखा - अंग्रेजी नीतियां सामाजिक

- -

१- कमलेश त्रिपाठी - स्वतंत्रता संग्राम, पृष्ठ-२१

२- मधु लिमये - स्वतंत्रता आन्दोलन की विचारधारा , पृष्ठ - ४३

नीति का अनुसरण किया था, वह निष्क्रिय नहीं रह सकी। राष्ट्रवादिता को बढ़ती हुई चुनौतियों का मुकाबला करने के लिये शासकों ने तेजी के साथ फूट डालो और राज्य करो की नीति अपनाई, साम्प्रदायिकता और जातिवाद को सक्रिय प्रोत्साहन दिया। परिणाम यह हुआ कि समाज की प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ प्रभावशाली हुई।[1]

अंग्रेजों ने भारतीयों पर न केवल नियंत्रण रक्खा बल्कि उनके विशेषाधिकार भी उनसे छीन लिये। डा० पट्टाभिसीतारमैया के अनुसार - सर विलियम वेडरबर्न कहते हैं कि नौकरशाही ने न केवल नई सुविधाओं के रोकने में भी अपनी तरफ से कोई कसर रखी, बल्कि जब-जब मौका मिला पिछले विशेषाधिकार भी छीन लिये गये, जैसे प्रेस की स्वाधीनता, सभायें करने का अधिकार, म्युनिस्पलस्वराज्य और विश्वविद्यालयों की स्वतंत्रता।[2]

अंग्रेजों में इन बुराइयों के बावजूद एक अच्छी बात भी थी, वह थी रेल और डाकखानों का जारी होना। प्रारम्भ में उनका इस्तेमाल वे अपने लिये करते थे परन्तु बाद में जनता को इन सुविधाओं का उपयोग करने की आज्ञा दे दी गई थी।

यह सत्य है कि देश की बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति सरकार की राष्ट्रविरोधी आर्थिक नीति तथा भारतीयों को बड़े-बड़े पदों से वंचित रखने की नीति ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध भारतीय भावना को बढ़ाया। ब्रिटिश शासन का सारा खर्च भारत को वहन करना पड़ता था इससे लोगोंमें और असंतोष बढ़ा। अंग्रेजी शासन के अत्याचारों के परिणामस्वरूप ही भारतीयों में राष्ट्रवाद की भावनाओं का विकास हुआ। इससे भारतीयों ने विभिन्न राष्ट्रीय आन्दोलन किये जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश शासन समाप्त हुआ और देश को स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

- -

१- कमलेश त्रिपाठी - स्वतंत्रता संग्राम, पृष्ठ - २७
२- डा०पट्टाभि सीतारमैया, संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ-३

२) नागरिक अधिकार -

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारतीय नागरिकों के अधिकार सीमित थे । उनके अधिकारों को ब्रिटिश सरकार द्वारा समाप्त करने के प्रयास का प्रबुद्ध भारतीयों ने विरोध किया था । अमलेश त्रिपाठी के अनुसार- राजनीतिक दृष्टि से प्रबुद्ध भारतीयों के मन में शुरू से ही आधुनिक नागरिकों के अधिकारों (भाषण, प्रेस और संगठन की स्वतंत्रता) के प्रति तीव्र - आकर्षण था, परिणाम यह हुआ कि जब कभी सरकार ने इन नागरिक - अधिकारों को सीमित करने का प्रयत्न किया, उन्होंने जोरदार ढंग से उसका विरोध किया ।[१]

हिन्दुस्तान की परिस्थिति यह थी कि वहां विदेशी राज्य था और इसलिये यह बात साफ थी कि सामाजिक पुनर्निर्माण से पहले ही राष्ट्रीय स्वतंत्रता की समस्या को हल किया जाय किन्तु एक देश में जहां कई सौ वर्षों से विदेशी राज्य था, जहां शिक्षा के पारस्परिक सिद्धांतों को बिल्कुल उल्टा दिया गया था और जहां न्याय और आर्थिक संगठन को विकृत कर दिया गया था, वहां सामाजिक पुनर्निर्माण के बिना स्वतंत्रता प्राप्त करना दुर्लभ पाया गया, सामाजिक पुनर्निर्माण स्वतंत्रता के बाद नहीं वरन् उसको पाने की कोशिशों के साथ ही साथ ।

१९३६ में जब जिलाधीश ने दैनिक लोक शक्ति के प्रकाशन के लिये जमानत मांगी तो लखनऊ अधिवेशन के बाद भारतीय नागरिक स्वतंत्रता - यूनियन की स्थापना की गई । श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर इसके सभापति और सरोजिनी नायडू प्रमुख थीं । डा०पट्टाभि सीतारामैया के अनुसार - हिन्दुस्तान में जहां लोगों को अधिकार नहीं है और जहां तथाकथित विधान

- -

१- अमलेश त्रिपाठी - स्वतंत्रता संग्राम , पृष्ठ - ६४

भी अलोकतांत्रिक है और जो नागरिक अधिकार एवं सार्वजनिक स्वतंत्रता का उल्टा है , वहां ऐसी यूनियन खिलौना थी ।[१]

सरकार ने भाषण और प्रेस की स्वतंत्रता को कम करने और पुलिस के अधिकार को बढ़ाने के लिये कानून बनाये । विधेयक के बाद राष्ट्रवादी कार्यकर्ताओं पर वे हो कानून लागू किये जा सकते थे , जिनका इस्तेमाल गुण्डों और बदमाशों के लिये होता था । इन कानूनों का देशव्यापी विरोध हुआ। वास्तव में इसी के साथ नागरिक अधिकारों की सुरक्षा का संघर्ष स्वतंत्रता के लिये संघर्ष का एक अविच्छिन्न अंग बन जाने वाला था । क्योंकि भारतीय अपने अधिकारों के प्रति सजग होगये थे ।

३॥ सरकार का स्वरूप -

भारतीय ब्रिटिश शासन से संतुष्ट नहीं थे । भारतीयों ने प्रथम विश्वयुद्ध में अंग्रेजी सरकार की सहायता की क्योंकि उसने घोषणा की थी कि यह लोकतंत्र की सुरक्षा के लिये लड़ रही है । भारतीयों ने भी स्व-शासन के अधिकार की मांग की लेकिन ब्रिटिश सरकार चुप रही । भारतीयों ने आन्दोलन किये , तब विवश होकर ब्रिटिश सरकार को घोषणा करनी पड़ी , इस घोषणा में माण्टेग्यू ने कहा कि ब्रिटिश सरकार का लक्ष्य भारत में उत्तरदायी सरकार की स्थापना और भारतीयों को शासन में अधिक भाग देना है परन्तु यह केवल धीरे-धीरे हो सकता है ।

इस एक्ट के द्वारा स्थानीय राज्य देने का प्रयास किया गया । प्रान्तों को पहले की अपेक्षा अधिक शक्तियां दी जानी की व्यवस्था की गई । डा०ताराचन्द के अनुसार - प्रान्तीय सरकारों के विषय में एक सिद्धांत का प्रवेश हुआ । प्रथम तो प्रान्तीय शासनों को और अधिक - स्वायत्तता प्रदान की गई इसके अतिरिक्त उन्हें सौंपे जाने वाले विषयों

- -

१- डा०पट्टाभि सीतारामैया - कांग्रेस का इतिहास(दूसरा खण्ड) १९३५-४२ पृष्ठ-२२

को केन्द्रीय विषयों से पृथक परिगणित किया गया और ' सुरक्षित ' तथा ' हस्तान्तरित ' इन दो विषयों में बाटा गया ।[१]

इस प्रकार इस अधिनियम के द्वारा स्थानीय स्वराज्य लोगों को दिया गया, दूसरे प्रान्तों में थोड़े उत्तरदायी सरकार स्थापित की गई और प्रान्तों को पहले से अपेक्षा अधिक शक्तियाँ दी गई , तीसरे भारत सरकार की ब्रिटिश संसद के तरफ जिम्मेदारी ज्यों कि त्यों बनी रही परन्तु केन्द्रीय परिषद् का विस्तार किया गया ताकि वह भारत सरकार को पहले से अधिक प्रभावित कर सके,। चौथे भारत सचिव का सरकार पर नियंत्रण कुछ ढीला कर दिया गया , पाँचवे सिक्ख, ईसाई आंग्ल भारतीयों को साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व दिया गया ।

सन् १९१९ के एक्ट के अनुसार भारत सचिव को इंग्लैण्ड के कोष से वेतन दिया जाने लगा । विदेशी मामले, सीमा शुल्क, सैनिक मामले, सार्वजनिक ऋण इत्यादि को छोड़कर बाकी मामलों में भारत सचिव की पूर्ण - स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होगी । प्रान्तीय मामले का बिल भारत सचिव के सामने नहीं भेजा जायेगा, जब तक गवर्नर जनरल उनकी स्वीकृति में कोई रुकावट उत्पन्न न करे ।

ब्रिटिश शासन में कार्यकारिणी की शक्तियाँ गवर्नर जनरल और उसकी कार्यकारिणी के पास रहती थी । गवर्नर जनरल की शक्तियाँ असीमित और निरंकुश थी । डा०ताराचन्द के अनुसार - जहाँ तक प्रान्तों में हस्तान्तरित विषयों का सम्बन्ध था , सपरिषद् गवर्नर जनरल में निहित स्थानीय शासकों के पर्यवेक्षण , निर्देशन और नियंत्रण के अधिकारों का प्रयोग नियमों में निर्दिष्ट विशेष उद्देश्यों के लिये ही किया जा सकता था।[२]

- -

१- डा०ताराचन्द - भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास भाग-३, पृष्ठ-४६१

२- - वही - पृष्ठ-४६१

केन्द्रीय धारा सभा का स्वरूप बदल दिया गया। एक सदन की जगह दो सदनों की व्यवस्था की गई। निचले सदन को विधानसभा कहा गया और उच्च-सदन को राज्य परिषद्। दोनों सभाओं की सदस्य संख्या निर्धारित कर दी गई। केन्द्रीय सरकार का पूर्णतः निरंकुश स्वरूप बना रहा। केन्द्रीय विधान मण्डल का चुनाव प्रत्यक्ष होता था। इसका कार्यकाल ३ वर्ष होता था। इसका चुनाव साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के आधार पर होता था। राज्य सभा में बड़े-बड़े पूंजीपति, जमींदार व व्यापारियों के प्रतिनिधि बैठते थे।

गवर्नर जनरल कार्यकारिणी परिषद् का प्रधान होता था। उसकी सिफारिश पर कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों की नियुक्ति भारत सचिव द्वारा की जाती थी। गवर्नर जनरल ब्रिटिश प्रधान मंत्री की सलाह पर ५ वर्ष के लिये चुना जाता था। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी उसके प्रति ही उत्तरदायी थी। डा०ताराचन्द के अनुसार - प्रान्तीय सरकार के वित्तीय अधिकार सीमित थे। गवर्नर जनरल को विशेषाधिकार था कि वह जब चाहे तो यह प्रमाणित कर दे कि उन मामलों का असर प्रान्त की सुरक्षा या शांति पर, चाहे तो यह प्रमाणित कर दे कि उन मामलों का असर प्रान्तों की सुरक्षा शांति पर पड़ सकता है, अतएव उन पर विचार नहीं किया जा सकता। गवर्नर को भी अधिकार था कि वह विधान मंडल द्वारा स्वीकृत किसी प्रस्ताव को नामंजूर कर दे और पुनर्विचार के लिये लौटा दे या गवर्नर जनरल के विचारार्थ सुरक्षित रखे।[१]

१९१९ के अधिनियम का प्रभाव यह हुआ कि आपातकालीन घोषणा स्थिति को छोड़कर प्रान्तीय विषयों पर नियंत्रण विधान मंडल को हस्तान्तरित किया गया। हस्तान्तरित विषय दो प्रकार के थे - (१) सार्वजनिक विषय तथा (२) आर्थिक विकास के विषय।

- -

१- डा०ताराचन्द्र-भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास,३,पृष्ठ - २६२

प्रथम के अन्तर्गत शिक्षा , सफाई, स्वास्थ्य और स्थानीय स्वशासन थे , दूसरे के अन्तर्गत कृषि, औद्योगिक विकास , सहकारी समितियाँ , वन, मछली पालन आदि थे । सरकार का बुनियादी कार्य था - शांति और व्यवस्था अथवा पुलिस, मजिस्ट्रेटी ,न्यायपालिका, वित्त तथा आय और व्यय पर नियंत्रण, प्रांत के कल्याण और उन्नति के लिये कुछ महत्व के विषय थे पर मंत्रियों के अधिकार क्षेत्र से बाहर थे ।

इस एक्ट के अनुसार केन्द्रीय और प्रांतीय सरकारों का पहली बार बटवारा किया गया । प्रांतों में इस प्रकार की शासन व्यवस्था को दोहरा शासन कहा जाता था । ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों को कानूनी अथवा वित्तीय क्षेत्र में कुछ भाग आश्रय दिया था परन्तु अंतिम नियंत्रण अपने हाथ में रखा । इसके द्वारा भारत में थोड़ी भी उत्तरदायी शासन की स्थापना केन्द्र में नहीं हुई परन्तु चूंकि भारत सरकार के सब अनुचित - मामलों की तीव्र आलोचना विधान मण्डल में हो सकती थी, इसे थोड़ा बहुत ध्यान जनता की इच्छाओं की तरफ देना पड़ता था । जहां अंग्रेजों के हितों को हानि नहीं पहुंचती थी, वहां ब्रिटिश सरकार विधान-मण्डल के सदस्यों की इच्छा के अनुसार कार्य कर देती थी ।

४) राजनीतिक गतिविधियां -

२८ दिसम्बर सन् १८८५ को व्योमेश चन्द्र की अध्यक्षता में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की पहली बैठक हुई । कांग्रेस शुरू में एक राष्ट्रीय संस्था थी । इसमें सभी प्रकार के व्यक्तियों के लोग थे । उसने १८८५ में विधान परिषदों के विस्तार और वैधानिक सुधारों की मांग की थी । १९०५ तक कांग्रेस विधान सभाओं में चुने हुये सदस्यों की वृद्धि - भारत सचिव की काउन्सिल में भारतीयों की नियुक्ति सैनिक शिक्षा , सरकारी नौकरियों में भारतीयों की अधिक लेने और सिविल सर्विस की परीक्षायें भारत में कराने की मांग करती रही । अंग्रेज सरकार ने इस ओर ध्यान नहीं दिया

१९०६ में नौरोजी ने पहली बार कहा कि कांग्रेस का उद्देश्य राज्य अमेरिका और उपनिवेशों की तरह स्वशासन प्राप्त करना है । १८८५ से १९०५ तक अंग्रेजी सरकार ने भारतीय कांग्रेस की माँगों को पूरा नहीं किया । इसलिये कांग्रेस के नेताओं का आपस में मतभेद हो गया । उग्रवादी पूर्ण स्वराज्य के पक्ष में थे । उदारवादी काउन्सिल में जाने के लिये अधिक स्थान और अधिकारों की माँग करते थे , इनके प्रमुख नेता श्री मोतीलाल नेहरू ने इस निमित्त एक अलग राजनैतिक दल संगठित किया जिसका नाम स्वराज्य पार्टी था । उग्रवादियों ने इन माँगों को महत्व नहीं दिया। वे स्वदेशी कपड़े के पक्ष में थे और विदेशी कपड़े के बहिष्कार के लिये प्रचार करते रहे । लाला लाजपतराय और विपिन चन्द्रपाल उग्रवादी दल के स्तम्भ थे । डा०ताराचन्द के अनुसार - १९०५ में संघर्ष के कारण आन्दोलन की परिधि और क्षेत्र का विस्तार हुआ, टाटा जैसे उद्योगपतियों ने स्वदेशी क्रय से अपने आपको जोड़ा और व्यवसायिक वर्ग ने स्वदेशी उपक्रमों में अपनी पुंजी लगाई ।[१]

अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध बढ़ते हुए राष्ट्रीय आन्दोलन की गति और शक्ति क्षीण करने के लिये ब्रिटिश शासकों ने देश में साम्प्रदायिक झगड़ों का बीज बोया और फुट डालो और आपस में लड़ा दो और राज्य करो की नीति अपनाई । परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने १९०६ में मुस्लिम नेताओं को मुसलमानों की एक अखिलभारतीय संस्था बनाने के लिये उभारा, जो कांग्रेस की बढ़ती हुई माँगों का विरोध कर सके । मुसलमानों को अपने प्रतिनिधि मण्डल की सफलता को देखकर उत्साह बढ़ा और ३० दिसम्बर १९०६ को उन्होंने ढाका में मुस्लिम-लीग की नींव डाली । मुसलमानों ने साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन दिया, इस नीति पर आगे चलकर १९०९ में मार्ले मिण्टो सुधारों के अन्तर्गत पृथक साम्प्रदायिक निर्वाचनों की व्यवस्था हुई और अंत में देश के विभाजन की माँग को बल मिला । डा०ताराचन्द के शब्दों में - मार्ले - मिण्टो सुधारों से कोई

- -

१- डा०ताराचन्द - भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास,३ पृष्ठ- ३५३

वास्तविक संवैधानिक अधिकार नहीं मिले थे ।[1]

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद राष्ट्रीयता की लहर जोर पकड़ गई । मिसेज एनीबीसेन्ट ने पहली सितम्बर १९१६ को मद्रास के गोखले हाल में होमरूल लीग की स्थापना की । तिलक होमरूल के समर्थक थे । एन०जी० जोग के अनुसार - तिलक ने होमरूल लीग के लक्ष्यों और उद्देश्यों को पेश किया। " होमरूल " - स्वशासन का मतलब अपने ऊपर का प्रबन्ध अपने - हाथों में लेना है । यह अदृश्य सरकार को उसी तरह बरकरार रखते हुए दृश्य सरकार को बदलने का जरिया है ।[2]

तेज बहादुर सप्रू ने श्रीमती एनीबीसेन्ट की सराहना करते हुए कहा - उन्होंने भारत में होमरूल के विचारों को जन्म दिया । उस समय देश में आमतौर पर अशांति थी । हम सुधारों और परिषदों के विस्तार की चर्चा कर रहे थे ।स्वराज्य का संकल्प ले रहे थे लेकिन हमारे विचार अस्पष्ट थे । उनके स्पष्ट चिंतन ने अपरिभाषित और अनिश्चित विचारों को ठोस आकार दिया जिसके परिणामस्वरूप भारत के लिये होमरूल आन्दोलन चलाया गया ।[3]

१९१९ में मोण्टफोर्ड सुधारों से जनता में घोर असन्तोष हुआ था । इसी कारण " रौलट एक्ट " नामक कानून लागू किया गया था । उन्हीं दिनों महात्मागांधी भारतीय राजनीति में कूद पड़े । सरकार की दमन-नीति ने उन्हें राजद्रोही बना दिया और उन्होंने - " रौलट एक्ट " के विरुद्ध सत्याग्रह आरम्भ कर दिया । १३ अप्रैल , १९१९ को पंजाब में प्रसिद्ध जलियांवाला काण्ड हुआ और एक्ट के विरोध में

१- डा०ताराचन्द - भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास,पृष्ठ-३६१
२- एन०जी०जोग - आधुनिक भारत के निर्माता लोकमान्य बालगंगाधर तिलक । पृष्ठ-१२६
३- डा०ताराचन्द्र ,भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास,पृष्ठ-४७४

हो रही एक शांतिपूर्ण सभा में बैठे सैकड़ों नर-नारियों और बच्चों को तीन-ओर से बंद अहाते में घेर कर भून दिया गया । सुभाष कश्यप के अनुसार - इस हत्याकाण्ड से सारे देश में सनसनी फैल गई और १९२१ में गांधी जी ने अपना असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया । उन्होंने स्वाधीनता आन्दोलन को क्रांति का स्वर दिया , अहिंसा का नया हथियार दिया और उसे गांवों और कस्बों में आम आदमियों तक पहुंचाया ।[1]

भारत की राजनीतिक गतिविधियों पर विचार करने के लिये साइमन कमीशन भेजते समय ब्रिटिश शासकों ने कहा कि भारतीयों में अपने साम्प्रदायिक मतभेदों के कारण अपने लिये संविधान बनाने की क्षमता नहीं है। १९१९ के संवैधानिक सुधारों के परिणामों तथा स्वशासन की संस्थाओं पर अपनी राय देने के लिये ब्रिटिश सरकार ने नवम्बर १९२७ में सर जान साइमन के नेतृत्व में एक सात्वी कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की । बलराम नंदा के अनुसार - जनवरी १९३० में गांधी जी ने लिखा था , कि मैं आन्दोलन शुरू करने के बारे में रात दिन प्रचण्ड रूप से विचार मग्न रहता हूं । २६ जनवरी को स्वाधीनता दिवस मनाने का आदेश देकर उन्होंने आन्दोलन की दिशा में पहला कदम उठाया ।[2]

राष्ट्रीय नेताओं ने ब्रिटिश शासकों की चुनौती को स्वीकारा और एक सर्वदलीय सम्मेलन हुआ, जिसमें पंडित मोतीलाल नेहरू के सभापतित्व में एक समिति बनायी । १९२८ की नेहरू रिपोर्ट इसी समिति के परिश्रम और सूझबूझ का फल थी । यह स्वयं भारत के लिये भारतीयों द्वारा किया गया , एक पूरा नया संविधान बनाने का प्रयास था । नेहरू - रिपोर्ट में और बातों के साथ-साथ उस ढांचे की तथा व्यक्ति के लिये जिन मूल अधिकारों की संकल्पनायें की गई थी , आगे चलकर स्वाधीन भारत के

- -

१- सुभाष कश्यप - संविधान की कहानी , पृष्ठ-८

२- बलराम नंदा - गांधी जी की जीवनगाथा, पृष्ठ-५२

संविधान में प्राय: उन सब का समावेश हुआ । एस०पी०कृपलानी के अनुसार - नेहरू रिपोर्ट में उन सब बातों पर ही जोर दिया गया था , जिन पर भारत के विभिन्न राजनैतिक दल एकमत थे । नेहरू रिपोर्ट का प्रमुख आधार औपनिवेशिक स्वराज्य था ।[1]

नेहरू रिपोर्ट में केवल डोमिनियन स्टेट्स की मांग की गई थी , किन्तु १९२८ की कलकत्ता कांग्रेस ने यह घोषणा की कि यदि एक वर्ष के भीतर अंग्रेजी सरकार ने यह मांग न मानी तो फिर पूर्ण स्वाधीनता से कम पर सौदा नहीं होगा । अगले वर्ष दिसम्बर १९२९ को रावी नदी के तट पर पंडित जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस ने पूर्ण स्वाधीनता दिवस मनाया । मन्मथनाथ गुप्त के अनुसार - २६ जनवरी को सारे भारत में स्वतंत्रता दिवस जिस जोश के साथ मनाया गया , उससे यह स्पष्ट हो गया कि देश में कितना प्रबल जोश है । २५ जनवरी को वायसराय ने धारा सभा के सम्मुख जो भाषण दिया था , उससे यह साफ हो गया था कि सरकार कुछ लेना-देना नहीं चाहती । इस कारण स्वतंत्रता दिवस जोरों से मनाया गया ।[2]

उसी वर्ष नमक कर लगाने वाले कानून को तोड़ने के लिये गांधी जी ने अपनी प्रसिद्ध दाण्डी-यात्रा की और सविनय आन्दोलन का भी सूत्रपात हो गया ।

- नमक कानून तोड़ना तो एक निमित्त मात्र था । महात्मा गांधी के उस महामंत्र से सारा राष्ट्र एक पुरुष की भांति उठकर पुन: खड़ा हो गया । भारत-व्यापी सत्याग्रह आरम्भ हो गया । जब देश के कोने-कोने में नमक कानून तोड़ना, विदेशी वस्त्रों की होली जलाना , शराब की दुकानों पर धरना देना शुरू हो गया, तब ब्रिटिश शासन के कान खड़े हो गये । उसने

- -

१- एस०पी०कृपलानी - मोतीलाल नेहरू , पृष्ठ-२३
२- मन्मथनाथ गुप्त - कांग्रेस के सौ वर्ष , पृष्ठ-१९८

दमन चक्र तेज कर दिया ।[१]

इसी बीच क्रांतिकारी आन्दोलन शुरु हुआ । क्रांतिकारी दल का नाम हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन था , इसको हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक सभा भी कहा जाता है । इस दल के नेता चन्द्रशेखर आजाद , सरदार भगतसिंह , शिवराम राजगुरु , जयगोपाल आदि थे । भगतसिंह का विचार था कि क्रांति से हमारा अभिप्राय यह है कि वर्तमान वस्तुस्थिति और समाज व्यवस्था जो स्पष्ट रूप से अन्याय पर टिकी है , को बदला जाये ।

वीरेन्द्र सिन्धु के अनुसार - विचित्र बात यह है कि वे अपने क्रांतिकारी जीवन के आरम्भ से ही इस बात पर तुले थे कि मुझे मरना है, पर इस - तरह मरना है कि समाज हमारे मरने का उद्देश्य जान ले और अंग्रेजों के विरुद्ध दल को कायत एक ऐसी क्रांति का रूप ले ले , जिसके साथ जनता खड़ी हो ।[२]

१७ दिसम्बर १९२८ को उन्होंने लाहौर में साण्डर्स का वध किया और उन्होंने उसी रात लाल पोस्टर शहरों में चिपकाये । इनमें कहा गया था - हम सब विरोध और दमन के बावजूद - क्रांति की पुकार को बुलंद रखेंगे और फांसी के तख्तों से पुकारते रहेंगे - इन्कलाब जिन्दाबाद । हमारा उद्देश्य ऐसी क्रांति है , जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अंत कर देगी ।[३]

२३ मार्च १९३१ को सरदार भगतसिंह , शिवराम और सुखदेव को फांसी दे दी गई । काकोरी केस में चन्द्रशेखर आजाद भी शामिल थे लेकिन वे सरकार के हाथ नहीं आये थे । उन्होंने अपना क्रांतिकारी दल संगठित किया । मन्मथ नाथ गुप्त के शब्दों में उधर असहयोग बंद होने से क्रांतिकारी फिर अपना संगठन करने लगे और उत्तर भारत में चारों तरफ

१- स्वतंत्रता संग्राम - आज स्वर्ण जयंती के अवसर पर प्रकाशित पृष्ठ-४३
२- वीरेन्द्र सिन्धु - युगदृष्टा भगतसिंह , पृष्ठ-२७१-७२
३- - वही - पृष्ठ-२७२

क्रांतिकारियों के दूत घूमने लगे । क्रांतिकारी चाहते थे कि भारत को क्रांति से स्वतंत्र करें । चन्द्रशेखर आजाद मानो तैयार ही बैठे थे, वह फौरन क्रांतिकारी दल में भर्ती हो गये ।[१]

लार्ड इर्विन कांग्रेस को बिल्कुल कुचलना चाहते थे । इसलिये चन्द्रशेखर आजाद और यशपाल ने २३ दिसम्बर १९२९ को वायसराय की ट्रेन उड़ाने की योजना बनाई । वायसराय को उस दिन कोल्हापुर से दिल्ली वापिस पहुंचना था । २३ दिसम्बर को ट्रेन को निजामुद्दीन के पास बम द्वारा नष्ट करने का प्रयास किया गया । इसमें ट्रेन के २-३ डिब्बे टूट गये लेकिन वायसराय बच गये । चन्द्रशेखर आजाद इलाहाबाद में अल्फ्रेड पार्क में पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिये गये ।

क्रांतिकारियों में नेता सुभाष चन्द्र बोस का महत्वपूर्ण स्थान है। विद्यार्थी जीवन में उन्होंने एक अंग्रेज प्रोफेसर को गाल पर चांटा मारा था । इस पर उनके पिता ने उन्हें डांटा तो उन्होंने कहा - पिताजी मेरे जीवन की दिशा भारत की स्वतंत्रता और उसके लिये बलिदान होने की मेरी भावी भावना तैयार करेगी । देश की स्वतंत्रता के लिये लाखों नवयुवकों की आहुति की आवश्यकता होगी । जब तक यह कार्य पूरा नहीं हो जाता, मेरा जीवन अधूरा ही रहेगा ।[२]

सुभाष चन्द्र बोस पहले कांग्रेस मे थे लेकिन ये जोरदार आन्दोलन के पक्ष में थे । इस कारण उन्होंने कांग्रेस को छोड़ दिया और अग्रगामी - दल की नींव डाली । उन्होंने आजाद हिन्द फौज का गठन किया । १५ जून से २३ जून १९४२ तक बैंकाक मे रासबिहारी बोस की अध्यक्षता में एक प्रस्ताव रखा गया कि आजाद हिन्द फौज भारत की स्वतंत्रता के अतिरिक्त और किसी उद्देश्य के लिये प्रयोग में न लाई जाये । गिरधर गेहलोत के अनुसार

- -

१- मन्मथ नाथ गुप्ता, भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ२३६

२- गिरिराज शरण - क्रांतिवीर सुभाष, पृष्ठ-२६

नेताजी सुभाष बोस भारत के ऐसे ही सपूत थे, उनका विश्वास था कि सैनिक जीवन से भागने वाले राष्ट्र के बच्चों में संघर्ष से लड़ने की भावना तब तक नहीं आ सकती जब तक उन्हें सैनिक न बनाया जाये। देश की सीमा के बाहर आजादी का सबसे सशक्त एवं प्रभावी प्रयास करने वाले शीर्षस्थ नेता सुभाष बोस ही थे।[१]

सुभाष को श्रेय है कि उनके कार्यों से जहाँ जनता में ब्रिटिश - साम्राज्यवाद के विरुद्ध हिम्मत बांधी, वहाँ भारतीय सेना में भी क्रांति की लहर फैल गई जिसको दबाना फौजों को मुश्किल था।

१९३० और ३२ के बीच भारतीय संवैधानिक स्थिति पर विचार करने के लिये लंदन में तीन गोलमेज सम्मेलन किये गये। यद्यपि उनका कोई सर्वमान्य नतीजा न निकल सका। फिर भी उनके तथा ब्रिटिश संसद की संयुक्त समिति के प्रतिवेदन के फलस्वरूप १९३५ का भारतीय शासन अधिनियम बनाया गया। जिसके अन्तर्गत १९३५ में प्रांतीय विधान सभाओं के चुनाव हुए। अधिकांश राज्यों में कांग्रेस को बहुमत मिला और कांग्रेस की सरकारें बनीं।

१९३४ में समाजवादी पार्टी का गठन हुआ। उसमें डा०राम-मनोहर लोहिया, आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण, सम्पूर्णानंद आदि ने प्रमुख रूप से भाग लिया।

१९३९ में अंग्रेजी सरकार की युद्धनीति और जनता के प्रतिनिधियों की राय लिये बिना भारत को द्वितीय महायुद्ध की आग में झोंकने की नीति के विरोध में कांग्रेसी सरकारों ने इस्तीफा दे दिया। १९४० में गांधी जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह किया। श्री कमलापति त्रिपाठी के अनुसार - असहयोग

- -

१- गिरधर गेरोला - भारतीय स्वतंत्रता की कहानी, पृष्ठ-८७

और सत्याग्रह के रूप में अभिव्यक्त हुई गांधी की विचारधारा केवल देश की राजनीतिक क्रांति तक ही परिमित नहीं रही , वह सर्वदेशिक जीवन के सामूहिक और बहुविध उत्क्रांति की विराट लहर बन गई , जिसने भारत के कण-कण का अभिसिंचन कर डाला। वह एक पुरातन और महान किन्तु संप्रति अधःपतित राष्ट्र के पुनर्जागरण और नव-निर्माण के सत्प्रयास के रूप में वेग प्रवाहित हुई , जिसकी प्रबल चपेट से समस्त भारत भूमि आमूल हिल उठी ।[1]

१९४१ में असफल क्रिप्स मिशन के बाद अन्ततः अगस्त १९४२ में गांधी जी और कांग्रेस के चोटी के नेताओं ने देश की जनता के कानों में 'करो या मरो' का मंत्र फूंका । 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' के नारे से देश का कोना-कोना गूंज उठा । कमलेश त्रिपाठी के अनुसार - अखिल भारतीय कांग्रेस का अगस्त १९४२ का बम्बई का अधिवेशन ऐतिहासिक बन गया है । उसी में मशहूर 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास हुआ । जो भी हो , मांग थोथी और दुराग्रह पूर्ण नहीं थी ।[2]

सरकार का दमन चक्र चला और आन्दोलन को निर्दयता पूर्वक कुचल दिया गया । १९४५ में द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त हुआ और अगले ही वर्ष ब्रिटिश सरकार ने यह निश्चय किया कि अब भारत को और अधिक गुलाम नहीं बनाया जा सकता ।

\- मार्च १९४७ में लार्ड माउण्टबैटन भारत के नये वायसराय होकर आये । स्थिति का अध्ययन करने के बाद आपने सभी प्रमुख दलों के नेताओं से वार्ता के परिणामस्वरूप भारत के विभाजन की योजना की । ३ जून १९४७ को लार्ड माउण्टबैटन ने इस योजना की घोषणा की ।[3]

\- -

१- श्री कमलापति त्रिपाठी - बापू और भारत , पृष्ठ-२०८
२- कमलेश त्रिपाठी , स्वतंत्रता संग्राम, पृष्ठ-२१४-१५
३- आज स्वर्ण जयंती के अवसर पर प्रकाशित, स्वतंत्रता संग्राम,पृष्ठ-२६२

अन्तत: मंत्री मण्डल मिशन योजना के अन्तर्गत संविधान सभा समावेश हुई , अन्तरिम सरकार बनी और फिर माउण्ट बेटन योजना और ' भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम ' के अधीन देश का विभाजन और स्वाधीनता का अरुणोदय हुआ ।

५) राजनीतिक चिंतक -

अंग्रेजों ने भारत में प्राचीन संस्थाओं का विनाश करके देश का राजनैतिक और आर्थिक शोषण किया । उधर भारतीय नेताओं ने विदेशी शासन के दोषों को देखा और समझा । देश में राजनीतिक पुनर्जागरण हुआ। भारतीय नेता देश को आजाद कराने का प्रयत्न करने लगे । बीसवीं शताब्दी में प्रमुख राजनीतिक चिंतक- मोतीलाल नेहरू, गांधी जी, जवाहरलाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस , जयप्रकाश नारायण और एमोबीरैन्ट आदि हुए ।

(क) मोतीलाल नेहरू -

गांधी युग के राष्ट्रीय नेताओं में पंडित मोतीलाल नेहरू का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है । अपने जीवन के अंतिम १२ वर्षों में अर्थात सन् १९३१ तक वे कांग्रेस के मानसिक शक्ति के प्रबल स्तम्भ थे । १९१९ में वकालत छोड़कर , विदेशी वेशभूषा को त्यागकर गांधी जी के नेतृत्व में राजनीति में प्रवेश किया । एस०पी०कृपलानी के अनुसार - जिस समय हमारे देश में प्रतिकूल हवायें चल रही थीं, मोतीलाल नेहरू ने स्वतंत्रता की मशाल को जलाए रखा और उसे दूसरे लोगों , गांधी जी को और अपने पुत्र को दिया । उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में डटकर भाग लिया - भारी बोझ उठाये और अगणित कष्ट सहे ।[१]

उन्होंने साइमन कमीशन के बहिष्कार में कांग्रेस का पूर्णरूप से सहयोग दिया । सन् १९२७ में उन्होंने एक संविधान का प्रारूप तैयार किया

१- एस०पी०कृपलानी - दादा नेहरू, पृष्ठ - २४

इस संविधान को सभी राजनीतिक दलों ने स्वीकार किया लेकिन इसे अंग्रेजों ने स्वीकार नहीं किया । इसी पर १९२९ में कांग्रेस ने भी नेहरू रिपोर्ट पर आधारित मांगे बदल दीं । नेहरू रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद कलकत्ता में होने वाले ४३वें कांग्रेस अधिवेशन में वे अध्यक्ष चुने गये - उन्होंने कहा हमारे लक्ष्य में ऐसा भारत होना चाहिये , जिसमें बिना भेदभाव के नि:शुल्क शिक्षा दी जाती हो , जिसमें पूंजीपति और जमींदार , मजदूरों और रियाया को कष्ट न देते हों , जिसमें मजदूरों का सम्मान हो , जिसमें वर्तमान संतति को त्रस्त करने वाली दरिद्रता भूतकाल की बात समझी जाये।[1]

उन्होंने सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भी भाग लिया था । नेहरू के लिये गरीब और अमीर , ऊंच और नीच , हिन्दू और मुसलमान सब बराबर थे । वे किसानों के मित्र थे । उन्होंने देश में साम्प्रदायिक भेदभाव भी दूर करने का प्रयत्न किया । शीला गुजराल के अनुसार - जिन दिनों दादा ने राजनीतिक क्षेत्र में कदम रखा , हिन्दू-मुस्लिम समस्या जटिल थी । असेम्बली की सीटों के लिये युद्ध हो रहा था । उदार हृदय दादा नेहरू ने हिन्दुओं को समझाया कि वे अपने हृदय को संकीर्ण न बनाये और मुसलमानों को प्रसन्नता पूर्वक पर्याप्त सीटें देकर सारे देश को संगठित करें ।[2]

वे भारत के नेता बने और स्वतंत्रता संग्राम के सेनापति कहलाये।

(फ) महात्मा गांधी -

महात्मा गांधी भारत के राजनैतिक इतिहास की सबसे बड़ी विभूति और उसके मुख्य अभिनेता थे । सन् १९१९ से सन् १९४८ ई० में अपनी असामयिक मृत्यु तक वे भारतीय राजनीति के सर्वेसर्वा रहे । हमारी स्वतंत्रता

- -

१- शीला गुजराल - दादा नेहरू , पृष्ठ ८३-८४

२- - वही - पृष्ठ-९९

प्राप्ति का श्रेय उनको है उन्होंने जनता को बताया कि सहनशक्ति तथा आत्म-बलिदान की भावना के सहारे शस्त्रास्त्रों के अभाव में भी संगठित ऐक्यपूर्ण तथा दृढ़ संघर्ष द्वारा अन्याय और अत्याचार का विरोध किया जा सकता है ।

गांधी जी आदर्श रामराज्य चाहते थे । वे मानते थे कि राजनीति दृष्टिकोण से जनतंत्र वह है जिसमें सम्पत्ति ,वर्ण , जाति , धर्म तथा लिंग के भेद पर आधारित असमानताओं का लोप हो चुका है । इसके अन्तर्गत राज्य जनता का हो , न्याय-अविलम्ब व सस्ता हो और इसके फलस्वरूप धार्मिक कृत्यों , अभिव्यक्ति तथा समाचार की स्वतंत्रता होऔर सबका आधार नैतिक अनुशासन के स्वयं नियोजित नियम का नियंत्रण होगा। ऐसा राज्य निश्चय ही सत्य तथा अहिंसा पर आधारित होगा । निःसंदेह समृद्ध , सुखी तथा स्वयं सम्पूर्ण ग्रामों तथा ग्राम पंचायतों का समूह होगा । गांधी जी का सबसे बड़ा योगदान है कि उनके कारण भारत में प्रजातंत्र है । उन्होंने कांग्रेस को एक राष्ट्रीय संस्था बनाई ।

(नोट - गांधी जी के विचार अध्याय २ में विस्तार से वर्णित किये गये हैं ।)

(ज) जवाहर लाल नेहरू -

गांधी जी के बाद आधुनिक भारत के सबसे अधिक लोकप्रिय नेता भारतीय गणतंत्र के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू थे । राजसी ठाटबाट व राजसी जीवन को उन्होंने १९१६-१७ में " होमरूल " आन्दोलन में अर्पित कर दिया था । उस समय उन पर गांधी जी का यथेष्ट प्रभाव पड़ चुका था ।" असहयोग से लेकर " भारत छोड़ो " आन्दोलन तक गांधी जी के स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रत्येक युद्ध में नेहरू जी ने प्रमुख भाग लिया ।

वे संसार के प्रत्येक भाग की दलित जातियों के मित्र, जनतंत्रवादी सिद्धांतों के प्रबल समर्थक और अदम्य उत्साह की मूर्ति थे । भारत के स्वतंत्र

होने पर नेहरू जी ने कहा था - भारत की सेवा का मतलब उन करोड़ों लोगों की सेवा करना है , जो कष्ट पा रहे हों । इसका मतलब निर्धनता, अज्ञान , रोगों और अवसरों की असमानता का अंत करना है ।[१]

उन्होंने अल्पसंख्यकों के हितों पर अधिक ध्यान दिया और स्त्रियों के अधिकारों के लिये भी प्रयत्न किया । रस्किन ब्रांड के अनुसार - वे इस बात में विश्वास नहीं करते थे कि महिलायें रसोई घर की चार दिवारों में कैद रहें । सभी सेवा-क्षेत्र , जिनमें विदेश-सेवा शामिल थी , महिलाओं के लिये खोल दिये जायें ।[२]

पंडित नेहरू किसी समाजवादी दल के सदस्य न होते हुए भी देश के समाजवादी तथा क्रांतिकारी नेताओं में अग्रणी थे । वे अपने को समाजवादी मानते थे परन्तु उनके राजनैतिक कार्यक्रम का आधार सदा पाश्चात्य जनतंत्रवाद के सिद्धांतों में निहित रहा है । एम०चेलापति राव ने कहा - उनका विश्वास था कि भारत जैसे देशों में लोकतांत्रिक प्रक्रिया उतनी ही अनिवार्य है , जितना समाजवाद । उनका विश्वास था कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया और समाजवादी प्रक्रियाओं का मेल हो सकता है और मेल हो भी जाना चाहिये, जिससे समाजवाद का अर्थ राजनीतिक लोकतंत्र के अलावा सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र भी होगा और समाज का पुनर्निर्माण अनिवार्य हो जायेगा ।[३]

नेहरू जी एक विचारशील अन्तर्राष्ट्रवादी थे उन्हें किसी भी गुट में शामिल होना पसंद नहीं था । वे आधुनिक राजनीति की गुटबंदियों से तटस्थ रहकर अपनी स्वतंत्र नीति के पालन में विश्वास करते थे । वे पड़ोसी देशों से मैत्री की नीति में विश्वास करते थे । एम०चेलापति राव के

१- भाई दयाल जैन - ऐसे थे नेहरू जी , पृष्ठ-५६
२- रस्किन ब्रांड - युग पुरुष नेहरू, पृष्ठ-१२६
३- एम०चेलापति राव - आधुनिक भारत के निर्माता जवाहर लाल नेहरू पृष्ठ-२१४

अनुसार - जवाहर लाल नेहरु ने कहा कि विदेश नीति में आज मुख्य विषय है, कि अस्पष्ट रूप में यह चर्चा की जाती है कि आप इस गुट के साथ हैं या उस गुट के। ऐसा कहना प्रश्नों का अत्यन्त सरलीकरण है। हमने इस वर्ष यह घोषणा की है कि हम किसी गुट के साथ नहीं होंगे। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम तटस्थ हैं या कुछ करना नहीं चाहते या ऐसी कोई बात है नहीं।[1]

(ग) सुभाष चन्द्र बोस -

सुभाष चन्द्र बोस कांग्रेस की विकासोन्मुख वामपंथी विचार-धारा के समर्थक रहे हैं। असहयोग आन्दोलन में उन्होंने जेल की यात्रा की। १९२८ में कलकत्ता कांग्रेस के अवसर पर वे सबसे पहले एक अखिल भारतीय नेता के रूप में सामने आये। उन्होंने एक अद्भुत स्वयंसेवक दल का संगठन किया तथा अधिवेशन के सामने पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव प्रस्तुत किया - जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैं पूर्ण स्वतंत्र गणराज्य का पक्षधर हूं। यही मेरे लक्ष्य की परिणति है। भारत अपने भाग्य का निर्माण करके रहेगा और उपनिवेशीय शासन से संतुष्ट नहीं रहेगा।[2]

१९३८ में वे कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। उन्होंने अप्रैल १९३९ में अध्यक्ष पद से त्यागपत्र देकर "अग्रगामी दल" का नया संगठन बनाया जिसका उद्देश्य कांग्रेस के भीतर सुधारवादी तथा साम्राज्य-विरोधी तत्वों को संगठित करना था। २६ जनवरी १९४१ को वे गुप्त रूप से घर से निकल गये और स्वतंत्रता के लिये उन्होंने भारतीय युद्ध बंदियों का संगठन किया। ये फौज डेढ़ वर्ष तक लड़ती रही, जापान की पराजय के बाद इसको भी आत्मसमर्पण करना पड़ा। उनके नेतृत्व में भारतीय जाति,धर्म

१- एम०वेंकटपति राव - आधुनिक भारत के निर्माता, जवाहरलालनेहरू, पृष्ठ-३४८-४९

२- गिरिराज शरण - क्रांतिवीर सुभाष, पृष्ठ-६१

का भेदभाव भूल गये थे । सभी ने मिलकर स्वतंत्रता के संघर्ष में भाग लिया। उनमें उत्साह , निर्माण , आत्म-बलिदान तथा आश्चर्यजनक संगठन की शक्ति थी ।

(म) जयप्रकाश नारायण -

श्री जयप्रकाश नारायण की गणना आधुनिक भारत के सबसे अधिक लोकप्रिय , प्रभावशाली , महत्वपूर्ण नेताओं में की जाती है । उन्होंने ८ वर्ष के बाद अमेरिका में शिक्षा पाई थी । सन् १६२६ में भारत लौटने पर उन्होंने सार्वजनिक कार्यों में लगने का निश्चय किया । वे १६३२ में सविनय - अवज्ञा के समय कांग्रेस में मंत्री नियुक्त किये गये । १६३८ में देशद्रोह में कठोर कारावास १ वर्ष का मिला । उन्होंने १६४२ की क्रांति का भी संचालन किया । उसके बाद वे नेपाल में भी पकड़े गये । अंत में पंजाब में गिरफ्तार किये गये, उन पर अवर्णनीय यातनाओं का प्रयोग किया गया ।

जयप्रकाश नारायण भारत के समाजवादी आंदोलन के प्राण थे । वे मानते थे कि वही स्वतंत्रता सार्थक है , जो जनता का पेट भरने की व्यवस्था कर सके क्योंकि जनता की मुख्य आवश्यकता रोटी की है । लोकतंत्र के विषय में भी उन्होंने अपने विचारों को स्पष्ट किया वे मानते थे कि जिस सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति की उसकी प्रवृत्ति , योग्यता , क्षमता के अनुरूप विकास करने की अनुकूलता होगी , वहां लोकतंत्र का अधिकाधिक सहज स्वरूप होगा । डा०सोमनाथ शुक्ल के अनुसार - जयप्रकाश ने लोकतंत्र के लिये विशेष प्रकार के जनमानस की निर्मित आवश्यकता बताई है । इस दृष्टि से लोकतंत्र की भूमिका में सत्य , स्वातंत्र्य , सामाजिक न्याय का प्रतिकार , सहकार , सहिष्णुता , समानता , दायित्व वहन आवश्यक गुण और प्रवृत्ति है ।[१]

१- डा०सोमनाथ शुक्ल - जयप्रकाश नारायण, व्यक्ति और विचार पृष्ठ-१४६

जयप्रकाश नारायण का समाजवाद पर अधिकार था। वे मानते थे कि लोकतंत्र के बिना समाजवाद नहीं रह सकता। समाजवाद के द्वारा ही मानवता का विकास सम्भव है।

- समाजवाद जिस स्वातंत्र्य, समता और भ्रातृत्व मूलक व्यवस्था की स्थापना करना चाहता है। वह सर्व-सत्ताधारी तंत्र द्वारा नहीं - लोकतंत्र द्वारा सम्भव है। जयप्रकाश ने "सर्वोदय" से समाजवाद" में स्पष्ट किया है कि समाजवाद तानाशाही के मार्ग से नहीं निकलता। लोकतंत्र और समाजवाद पूरक शक्तियाँ है, लोकतंत्र समाजवाद का हृदय है।[१]

जयप्रकाश ने एक ऐसे विशाल आन्दोलन का नेतृत्व किया, जो सम्मति पूर्वक स्वामित्व, विसर्जन द्वारा समाजवाद के परिष्कृत रूप को अवतरित कर रहा है। समाजवाद की लोकतांत्रिक प्रक्रिया हस्तगत हो गई है।

(य) श्रीमती एनीबीसेन्ट -

श्रीमती एनीबीसेन्ट आयरलैण्ड की एक प्रसिद्ध महिला थी। उन्होंने प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारतीय संघर्ष में नया उत्साह भरा। १९१४ में उन्होंने कांग्रेस में प्रवेश किया, शीघ्र ही उनकी गणना कांग्रेस के महारथियों में होने लगी। डा०ताराचन्द के अनुसार - वर्ष १९१४ तक श्रीमती एनीबेसेंट ने अपना पूरा समय धर्म, शिक्षा और समाज सुधार के कार्यों में दिया लेकिन फिर वह राजनीति में पूरे मनोवेग से प्रविष्ट हुई।[२]

कांग्रेस में जाते ही उन्होंने भारत के लिये अविलम्ब स्वराज की माँग की। उन्होंने बम्बई अधिवेशन में "होमरूल लीग" की स्थापना की। १९२० में उन्होंने गांधी जी की अहिंसात्मक असहयोग की नीति स्वीकार कर ली। इसके पश्चात उन्होंने भारत के सब राजनीतिक दलों द्वारा स्वीकृत

- -

१- डा०सोमनाथ शुक्ल - जयप्रकाश नारायण "व्यक्ति और विचार", पृष्ठ-२४२

२- डा०ताराचन्द - प पृष्ठ-४७१

एक भारतीय मांग इंग्लैण्ड की लोकसभा के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयत्न आरम्भ किया । १९२५ में वे निराश होकर इंग्लैण्ड चली गईं। वहाँ भी वे भारतीयों की मांगों को पुरा करने का प्रयत्न करती रहीं । उन्होंने भारत तथा इंग्लैण्ड के बीच औपनिवेशिक स्वराज्य के आधार पर समझौता कराने का प्रयत्न नहीं छोड़ा । श्रीमती एनीबीसेन्ट के प्रभाव से भारत में थियोसोफिकल-सोसाइटी हिन्दु पुनरुत्थान की पर्यायवाची हो गई थी । वे जातिवाद की विरोधी थी । हिन्दु मध्यम वर्ग को अपने आध्यात्मिक औरराष्ट्रीय गौरव का भान कराने में श्रीमती एनीबीसेन्ट का प्रभाव शक्तिशाली था ।

ब- अन्तर्राष्ट्रीय दशा -

१) प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त युद्ध की स्थिति और समस्यायें -

सम्पूर्ण संसार के राजनीतिक एवम् आर्थिक जीवन को अस्त-व्यस्त कर देने वाले प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर कुछ ऐसी विकट समस्यायें उठ खड़ी हुई जिन्होंने समग्र अन्तर्राष्ट्रीय जीवन को एक लम्बे समय तक अस्थिरता और उत्थान-पतन के भँवर में फंसाये रखा । इस महायुद्ध ने सभी देशों के सम्पूर्ण आर्थिक जीवन को एकदम विशृंखलित , अस्थिर और चौपट कर दिया था , अतः युद्ध के बाद प्राथमिक एवं विशालतम समस्या अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक जीवन के पुर्ननिर्माण की थे । इस आर्थिक जीवन को पुनः स्थिर और गतिशील बनाने में सबसे बड़ी बाधा क्षतिपूर्ति , युद्ध ऋण और आर्थिक मंदी के भूकम्प की थी । इसमें बहुत अधिक सम्पत्ति का विनाश, कारखानों , नगरों और बस्तियों का विध्वंस तथा नरसंहारहुआ था और सभी देशों में कृषि , व्यापार तथा उद्योगों को जबर्दस्त धक्का लगा था । आर्थिक संकट प्रथम महायुद्ध से उत्पन्न होने वाली शक्तियों का स्वाभाविक परिणाम था। श्री कमलापति त्रिपाठी के अनुसार - सारे अनर्थ की जड़ वह आर्थिक राष्ट्रीयता है, जिसे अपना कर जगत के विभिन्न देशों ने तरह-तरह के प्रतिबंध लगाये

और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की गति को अवरुद्ध कर दिया ।[1]

१९१४ के युद्ध के बंद होने के उपरान्त एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की तीव्र आवश्यकता का अनुभव होने लगी । विश्व की समस्याओं को सुलझाने के लिये अनेक प्रयोग किये गये - गत महायुद्ध के बाद विश्व की समस्याओं को सुलझाने के लिये युरोप में मुख्यत: तीन प्रयोग हुए । एक प्रयोग हुआ पूंजीवादी देशों की ओर से जो राष्ट्र संघ तथा अन्य विश्व - सम्मेलनों के रूप में पूर्ण हुआ । दूसरा प्रयोग हुआ मार्क्सवाद का जो बोल्शेवी क्रांति के रूप में व्यक्त हुआ । तीसरा प्रयोग हुआ इटली और जर्मनी में जो फासीवाद और नाजीवाद के रूप में विख्यात हुआ ।[2]

भविष्य में संसार को इन विनाशकारी युद्धों का सामना न करना पड़े इस अभिप्राय से युद्ध समाप्त होने पर राष्ट्रपति विल्सन के प्रबल सी वारसाई में एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का निर्माण किया गया । अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों और समस्याओं के निर्णय के लिये एक संघ का वृहत् विधान प्रस्तुत किया गया, जिसके अनुसार सदस्य राष्ट्रों के युद्ध छेड़ने के अधिकार पर प्रतिबंध लगा दिया गया । संघ की १२वीं और १३वीं धारा के अनुसार सदस्य राष्ट्रों को बाध्य किया गया कि युद्ध छेड़ने से पहले वे अपने झगड़ों को राष्ट्रसंघ के पास रखें । सन् १९२८ में ब्रायराड केलॉग समझौते के अनुसार - युद्ध छेड़ने के अधिकार पर पूरा प्रतिबंध लगा दिया गया और यह निश्चय किया गया कि अन्तर्राष्ट्रीय मतभेदों का हल शांतिपूर्ण परामर्श से होगा ।[3]

युद्ध के बाद एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था लीग आफ नेशन्स की स्थापना हुई , जिसका कार्य अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को सुलझाने ,युद्ध रोकने और भिन्न-भिन्न देशों में पारस्परिक सहयोग को स्थापित करने का रखा गया।

१- श्री कमलापति त्रिपाठी - बापू और मानवता, पृष्ठ-७२
२- - वही - , पृष्ठ-७०
३- श्री राममूर्ति सिंह - महात्मा गांधी और विश्वशांति, पृष्ठ-११

२) फासिस्टवाद का उदय -

प्रथम महायुद्ध में मित्र राष्ट्रों की विजय हुई । इटली विजेताओं की पंक्ति में बैठा किन्तु उसे अनुभव यही हुआ कि जीत कर भी वह हार गया है । जिस लूट के माल को पाने की आशा से इटली युद्ध में कूदा था, युद्ध के बाद उसे लूट का माल नहीं मिला । पेरिस शांति सम्मेलन ने, वर्साय की संधि ने उसकी आशाओं पर पानी फेर दिया । पेरिस सम्मेलन से मिले - निराशा और असन्तोष के उपहार ने इटली की तत्कालीन संसदीय सरकार को बहुत बदनाम कर दिया। महायुद्ध के कारण इटली की आर्थिक दशा - शोचनीय हो गई । इस आर्थिक पतन की अवस्था ने इटली की पहले से ही कमजोर राजनीतिक अवस्था को एक अंतिम धक्का दिया। असंतुष्ट और निराश जनता का प्रजातांत्रिक शासन पद्धति से विश्वास हट गया । इटली के सभी वर्ग राष्ट्रीय अपमान के प्रतिकार और सम्मानित एवं गौरवपूर्ण प्रतिष्ठा की स्थिति के लिये बेचैन हो गये । ऐसे समय में मुसोलिनी का उदय हुआ और उसके नेतृत्व में फासीवाद फलने-फूलने लगा। श्री कमलापति त्रिपाठी के अनुसार - यहाँ इतना कह देना असंगत न होगा कि जर्मनी और इटालियन राष्ट्र के हृदय में प्रतिशोध की जो ज्वाला थी, वह नाज़ीवाद या फासीवाद के रूप में फूट पड़ी ।[1]

फासीवाद वास्तव में इटली में किसानों और मजदूरों की साम्यवादी क्रांति को विफल बनाने के लिये जमींदारों और पूंजीपतियों द्वारा समर्थित आन्दोलन था, जो इटली की संसदीय सरकार की अक्षमता, अराजकता, साम्यवाद के आतंक और समाज के सभी वर्गों के तीव्र असंतोष का सहारा पाकर तेजी से बढ़ता गया । क्योव्यार्सिंह के अनुसार - फासीवाद विश्व के राजनीतिक मंच पर विश्व समाजवादी क्रांति के आरम्भ के बाद पूंजीवाद के आम संकटकाल में प्रकट हुआ । प्रथम महायुद्ध (१९१४-१८) के

- -

१- श्री कमलापति त्रिपाठी - बापू और मानवता , पृष्ठ-४३

के बाद जब यूरोप के श्रमजीवी सोवियत संघ के श्रमजीवियों की प्रथम सफल समाजवादी क्रांति से प्रोत्साहित होकर अपने-अपने देश में पूंजीवाद के गढ़ों को ढहा देने के लिये आक्रमण कर रहे थे और जिस समय पराधीन देशों की जनता अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिये संग्राम के मैदान में उतरकर - साम्राज्यवादी शासकों से लोहा ले रही थी , उस वक्त फासिवाद ने यूरोप में सिर उठाया ।[१]

२) व्दितीय विश्वयुद्ध -

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति १९१८-१९ में हुई थी और ठीक २० वर्ष बाद व्दितीय महायुद्ध १९३९ में प्रारम्भ हुआ । व्दितीय महायुद्ध का सर्वोपरि कारण जर्मनी और इटली का उग्रवादी राष्ट्रवाद था । प्रथम विश्वयुद्ध के बाद वर्साय के संधि में इन्हें निराशा मिली । राष्ट्रों ने अपनी क्षतिपूर्ति और विद्रोहकी भावना के कारण युद्ध प्रारम्भ किया था । जापान ने भी व्दितीय विश्वयुद्ध का मार्ग प्रशस्त किया था । श्री कमलापति त्रिपाठी के अनुसार - इटली और जर्मनी में फासिस्टों और नाजी प्रवृत्तियों के उदय के प्रबल कारण वर्तमान थे । युद्धोत्तर विश्व की परिस्थिति ने ही वे कारण उपस्थित कर दिये थे । इटली अपने मित्रों व्दारा प्रवंचित था और जर्मनी था विजयोन्मत्त विजेताओं व्दारा अपमानित और प्रताड़ित ।[२]

राष्ट्रसंघ की स्थापना अन्तर्राष्ट्रीय शांति की प्राप्ति के लक्ष्यों को लेकर हुई थी , किन्तु महाशक्तियों के असहयोगी रुख के कारण और जर्मनी, इटली एवं जापान व्दारा घोर उपेक्षा के कारण यह संस्था अपने लक्ष्य को न प्राप्त कर सकी । श्री कमलापति त्रिपाठी के शब्दों में - यह

- -

१- अयोध्यासिंह - फासिवाद का उदय , पृष्ठ-१
२- श्री कमलापति त्रिपाठी - बापू और मानवता , पृष्ठ-४३

है युद्धोपरान्तकाल की असफलता की संक्षिप्त कहानी । पूँजीवादी देशों की प्रतिस्पर्धा बढ़ गई , उनका आर्थिक संघटन चूर हो गया, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध विभाजित हो गया , नि:शस्त्रीकरण के स्थान पर शस्त्रीकरण आरम्भ हो गया और शांति के स्थान पर अशांति के काले बादल क्षितिज पर एकत्र होते दिखाई देने लगे । कौन कह सकता है कि वाशिंगटन , लंदन और पैरिस के लोकतंत्रवादी गुट ने राष्ट्र संघ के रूप में जिस प्रयोग का सूत्रपात किया था , वह पूरी तरह असफल नहीं हुआ ।[१]

राष्ट्रसंघ विभिन्न राष्ट्रों के मध्य शांति सम्बन्ध बनाये रखने में असफल रहा । राष्ट्रों ने इस संस्था की अवहेलना करके युद्ध के मार्ग का अवलम्बन किया । १६३० में विश्व में एक महान आर्थिक संकट आया । आर्थिक-संकट न सुलझ सकने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध भी विभाजित हो गया और युद्ध की सम्भावना बढ़ती गई । युद्ध का भय बढ़ेगा तो नि:शस्त्रीकरण के लिये स्थान नहीं रह सकता । आर्थिक संकट के कारण सभी देशों का आन्तरिक राष्ट्रीय स्वरूप विकृत हो चला । जो अर्थ और सम्पत्ति के प्रभु थे और जिनके हाथों में प्रभुता तथा अधिकार था, उन्हें आर्थिक अवस्था ने भयभीत कर दिया, अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध के खतरे से भी संत्रस्त हो उठे ।

- १६२६ ई० में संसार व्यापक मंदी से तबाह हो रहा था । कोई देश न था , धरती का कोई कोना न था, जो उससे प्रभावित और त्रस्त न हो । पृथ्वी का राजनीतिक तथा सामाजिक संघटन विघूर्ण होता दिखाई दे रहा था । मंदी की विभीषिका का परिणाम था , उस पूँजीवादी , साम्राज्यवादी और अर्थलोलुप व्यवस्था का जिसका नग्न-ताण्डव युद्ध के बाद जगत की छाती पर आरम्भ हो गया । इसी स्थिति की प्रक्रिया सारे विश्व

१- श्री कमलापति त्रिपाठी - बापू और मानवता , पृष्ठ ६६-६७

मैं विभिन्न प्रकार से हो रहे थे ।[१]

सन् १६२६-३३ की बड़ी मंदी ने सारे संसार की अर्थव्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया था । विश्वयुद्ध की तरह यह मंदी भी एक बड़ी विपत्ति थी और दोनों में एक बात समान थी जैसे पहले विश्वयुद्ध के पहले तक दुनिया के लोगों को कभी इतने बड़े युद्धों का अनुभव नहीं हुआ था, वैसे ही संसार में पहले कभी इतनी बड़ी मंदा नहीं देखी थी, जो सारे संसार के आर्थिक ढाँचे को ही गिरा दे । इसलिये जब मंदी आई तो दुनिया भर के लोग स्तब्ध रह गये ।[२]

आर्थिक संकट ने जर्मनी में नाजीवाद के उत्कर्ष में सहायता पहुँचाई, इससे इटली में फासीवाद को बढ़ावा मिला तथा यूरोप के अनेक राष्ट्रों में साम्यवादी दलों का प्रसार व प्रभाव बढ़ने लगा । इस आर्थिक संकट का लाभ उठाकर ही जापान ने १६३१ में मंचूरिया पर चढ़ाई कर दी और १६३५ में इथोपिया पर इटली का हमला भी इसी आर्थिक संकट का एक अप्रत्यक्ष परिणाम सिद्ध हुआ ।

४) युद्धोपरान्त स्थिति -

(८) संयुक्त राष्ट्रसंघ का जन्म -

द्वितीय विश्वयुद्ध में जन-धन की अपार हानि हुई उसके कारण मानवतावादी, शांतिवादी एवं अन्तर्राष्ट्रीयता वादी विचारकों को ऐसा कोई साधन ढूंढने की प्रेरणा मिली, जो युद्ध की पुनरावृत्ति को रोक सके और मानव-सभ्यता एवं संस्कृति को अतीत की गाथा होने से बचा सके ।

- -

१- श्रीकमलापति त्रिपाठी - बापू और भारत, पृष्ठ-२८२
२- डॉ०एफ०डुटानी - आधुनिक भारत की आर्थिक कहानी, पृष्ठ-२२८-२६

राष्ट्रसंघ के अवशेष अब भी बाकी थे किन्तु उन्हें पुनर्व्यवस्थित करना ही पर्याप्त नहीं था। अत: विश्व में स्थाई शांति की स्थापना के लिये राष्ट्रसंघ से अधिक शक्तिशाली अन्तर्राष्ट्रीय संस्था बनाने की आवश्यकता का अनुभव हुआ । इसके परिणामस्वरूप २६ जून १९४५ के दिन सैन फ्रान्सिसको के वेटरन मेमोरियल हाल में ५० राष्ट्रों के ८५० प्रतिनिधियों ने उस चार्टर पर हस्ताक्षर किये और इस प्रकार संयुक्त राष्ट्रसंघ का जन्म हुआ । मैरिस क्रेन्सटन के अनुसार - लीग आफ नेशन्स की उत्तराधिकारी संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना १९४५ में हुई और अपने सब ११४ सदस्य देशों (१९६५ की सदस्य संख्या) की प्रभुसत्ता सम्बन्धी समानता पर आधारित होने के कारण यह लीग की तरह अन्तर्राष्ट्रवादी है लेकिन उसकी गैर-राजनीतिक अन्तर्राष्ट्रीयता , जिसे आर्थिक और सामाजिक परिषद् तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ के १३ विशेष संगठन में अभिव्यक्ति मिली है , कहीं अधिक विकसित और आर्थिक दृष्टि से पुष्ट है ।[1]

संयुक्त राष्ट्रसंघ का उद्देश्य दुनिया में शांति और सुरक्षा बनाये रखना और इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये शांति पर होने वाले आक्रमणों को रोकना तथा उनके विरुद्ध प्रभावपूर्ण सम्मिलित कार्यवाही करना । न्यायपूर्ण सिद्धांतों एवं अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार शांति भंग करने वाली अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं अथवा स्थितियों पर शांतियुक्त साधनों से समझौता अथवा आपसी निर्णय करवाना ।जी.मौरोजोव के अनुसार - शांति की सुरक्षा संयुक्त राष्ट्रसंघ का महत्वपूर्ण दायित्व का कार्य है । बीते हुए समय ने पहले ही सिद्ध कर दिया है कि आपसी विचार विमर्श , बड़ी अन्तर्-राष्ट्रीय समस्याओं पर संयुक्त राष्ट्रसंघ ने धनात्मक हल निकाला है और विश्व शांति को मजबूत बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है ।[2]

- -

१- मैरिस क्रेन्सटन - राजनीतिक शब्दावली , पृष्ठ-१२

२- जी मौरोजोव - दी यूनाइटेड नेशन्स - ट्वेन्टी इयर्स आफ फेल्यर्स एण्ड सक्सेस , पृष्ठ - १६

(ठ) साम्यवादी वरन की स्थापना -

साम्यवाद का एक मौलिक सिद्धांत सम्पूर्ण विश्व में साम्यवादी सिद्धांतों का प्रचार तथा पूंजीवाद का उन्मूलन है। मार्क्सवाद के अनुसार - युद्ध ने रूस में साम्यवाद उत्पन्न किया है और दूसरा विश्वयुद्ध अन्य देशों में वर्तमान बुर्जुआ राज्यों की समाप्ति करने वाला है - इस क्रांति में अग्रणी का कार्य मास्को को करना था। ट्राट्स्की के विश्व क्रांति के विचार का स्टालिन उग्र विरोध करता था किन्तु बाद में इसे दूसरे देशों में फैलाने के लिये सभी प्रकार के उपायों का अवलम्बन किया गया। यूनान के कम्युनिस्टों के गृहयुद्ध में पड़ोसी देशों अल्बानिया, बुल्गारिया और युगोस्लाविया ने सहायता की। विश्वव्यापी क्रांति के कार्यों के लिये १९४७ में एकत्रित युगोस्लाविया, बल्गारिया, रूमानिया, हंगरी, पोलैण्ड, रूस, फ्रांस ने बेलग्रेड में साम्यवादी सूचना संस्थान या कोमिन्फार्म की स्थापना की। इस अन्तर्राष्ट्रीय संस्था में विभिन्न देशों की केन्द्रीय साम्यवादी दलों की केन्द्रीय समिति के दो प्रतिनिधि होते थे। इसका कार्य पारस्परिक सहमति के आधार पर कम्युनिस्ट पार्टियों के कार्यों में समन्वय स्थापित करना था।

कोमिन्फार्म की स्थापना के घोषणापत्र में यह कहा गया था कि सं०रा०अमरीका ने पिछला युद्ध विश्व की मण्डियों में प्रतियोगिता की समाप्ति के लिये लड़ा था किन्तु रूस ने इसे यूरोप में लोकतंत्र के पुनर्निर्माण और सुदृढ़ करने के लिये लड़ा था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद रूस का लक्ष्य पूर्व में और पश्चिम में अपने राज्य का विस्तार, सब मोर्चों पर अपने समर्थक राज्यों की सरकारें स्थापित करना, पुराने बुर्जुआ साम्राज्यों का विध्वंस तथा अपने नये सोवियत साम्राज्य का साम्यवादी विचारधारा के आधार पर निर्माण था।

(ड) जर्मनी, जापान और इटली का पतन -

द्वितीय विश्वयुद्ध में हिटलर अंतिम समय तक युद्ध करता रहा

नवम्बर १९४४ में मित्र राष्ट्रों की फौजें हालैण्ड की तरफ से जर्मनी में प्रविष्ट हो गई। जर्मनी के पूर्व और पश्चिम में स्थित प्रबल शत्रुसेना अंतिम धावे के लिये तैयार थी। हिटलर के विरुद्ध षड्यंत्र किये जा रहे थे। हिटलर ने जी-जान से टक्कर लेने की चेष्टा की तथा कुछ समय के लिये अमेरिका की सेना की प्रगति को अवरुद्ध कर दिया गया। हिटलर की अंतिम चेष्टा अंततः असफल हुई। आचार्य शेखर शास्त्री के अनुसार - गत महायुद्ध में जर्मनी को अमेरिकन सेनाओं के सामने ही पराजय स्वीकार करनी पड़ी थी। यदि उसने इस बार भी इतिहास की उस पुरानी शिक्षा से काम नहीं लिया तो उसको फिर अतिरोन्मुखी विनाश का मुख देखना पड़ेगा।[1]

इसी मध्य पूर्वी क्षेत्र में रूस की लाल सेना तेजी से बढ़ रही थी। २२ अप्रैल १९४५ को मार्शल झुकोव की रूसी सेनाओं ने बर्लिन के माथे पर चोट की, २ मई को बर्लिन का पतन हो गया और ४ मई को यूरोप में समस्त जर्मनसेनाओं ने आत्मसमर्पण कर दिया।

पूर्वी ऐशिया में जापान का प्रभुत्व स्थापित हो गया। ब्रिटेन और अन्य लोकतंत्रों की सेनाओं के बावजूद भी वह पीछे नहीं रहा। जापान की सेना युद्ध के लिये पूर्ण प्रशिक्षित थी, अतः वह विजय प्राप्त करती रही। मन्मथनाथ गुप्त के अनुसार - अब तक सोवियत रूस ने जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा नहीं की थी पर १९४५ के ८ अगस्त को उसने भी जापान के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया और लाल सेना को मंचूरिया के अन्दर भेज दिया। यद्यपि इसमें और अणु बम के विस्फोट में कोई सम्बन्ध नहीं था पर इसी दिन अमेरिका ने हिरोशिमा पर अणु बम डाल दिया और वह बिल्कुल ध्वस्त हो गया। इस घटना के तुरन्त बाद नागासाकी पर भी अणु बम डाल दिया गया। यह शहर भी बात की बात में नष्ट हो गया।

१- आचार्य शेखर शास्त्री - हिटलर और युद्ध, पृष्ठ-१२४

इस पर जापान ने हथियार डाल दिये और २ सितम्बर को हार मानते हुए संधि-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये । इस प्रकार द्वितीय महायुद्ध अंतिम रूप से समाप्त हो गया ।[१]

मित्र राष्ट्रों ने इटली पर अधिपत्य जमाने का प्रयास किया । पासा तेजी से पलटा और मित्र राष्ट्रों ने शनैः शनैः इटली पर अधिपत्य जमा लिया और ४ जून १९४४ को रोम नाजियों के फन्दे से मुक्त करदिया गया । इटली की भूमि पर अवशिष्ट जर्मन सेनायें युद्ध करती रहीं पर अंत में २ मई १९४५ को उन्होंने हथियार डाल दिये ।

इस प्रकार द्वितीय महायुद्ध के बाद जापान , जर्मनी और इटली का पतन हुआ ।

(ढ) संयुक्त राज्य अमरीका और रूस में शीत युद्ध -

द्वितीय महायुद्ध का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण परिणाम यह निकला कि विश्व में प्रथम कोटि की दो महाशक्तियां रह गई - सोवियत रूस और संयुक्त राज्य अमरिका । युद्ध काल में यूरोप में हिटलरवाद और सुदर पूर्व में जापानी युद्ध राष्ट्रीयता में जो सहयोग विद्यमान था, वह समाप्त हो गया । एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह हुई कि जहां महायुद्ध के दौरान अमेरिका रूस और ब्रिटेन आदि ने परस्पर कन्धे से कन्धा मिलाकर 'धुरीराष्ट्रों' (जर्मनी, जापान व इटली) के विरुद्ध संघर्ष किया था, उनके राजनीतिज्ञों और कूटनीतिज्ञों ने सम्मेलनों व परस्पर व्यवहार आदि में एक-दूसरे से सहयोग किया था । उनके जनरल और कमाण्डर विभिन्न युद्ध मोर्चों पर सहयोग करते हुए दुश्मन से जूझे और परिणाम स्वरूप - अपने सहयोग के बल पर ही अत्यन्त शक्तिवान व प्रबल शत्रु का दमन कर सके ,

- -

१- मन्मथ नाथ गुप्त - कांग्रेस के सौ वर्ष , पृष्ठ-१६३

वहाँ युद्ध के बाद इन राष्ट्रों में सहयोग के सभी आधार समाप्त हो गये । युद्ध के समय दोस्तों में , युद्ध के बाद बल्कि युद्ध समाप्त होने के कुछ समय पूर्व से ही मतभेद उत्पन्न हो गये । शीघ्र ही इन मतभेदों ने इतने तनाव वैमनस्य और मनोमालिन्य को स्थिति उत्पन्न कर दी कि पश्चिमी और पूर्वी खेमों के राज्यों में , बारूद के गोले-गोलियों से लड़े जाने वाले सशस्त्र सैनिक संघर्ष करते हुए भी कागज के गोलों-अखबारों से लड़ा जाने वाला परस्पर विरोधी राजनीतिक : प्रचार का मुक्त संग्राम छिड़ गया । इसी संग्राम को शीत - युद्ध की संज्ञा दी गई । जिससे आज का सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय जगत बुरी तरह पीड़ित है । आचार्य नरेन्द्र देव के अनुसार - अमेरिका का साम्राज्य संसार के लिये एक बड़ा खतरा बनता जाता है । हम जानते हैं कि अमेरिका कम्यु-निज्म का सबसे बड़ा विरोधी रहा है । आज वह खुले आम रूस के विरुद्ध एटमबम का प्रयोग कर उससे लड़ाई मोल लेने के लिये उत्सुक है ।[1]

अमेरिका , ब्रिटेन तथा अन्य पश्चिमी यूरोपियन शक्तियाँ मिलकर " पश्चिमी खेमा " कहलाती हैं और सोवियत संघ व उसके पूर्वी यूरोपियन मित्र राज्य संयुक्त रूप से " पूर्वी खेमा " कहलाते हैं । पहले खेमे अथवा शिविर या गुट का नेता संयुक्त राज्य अमेरिका है और दूसरे खेमे का अगुवा सोवियत संघ है ।

निष्कर्ष -

औद्योगिक क्रान्ति के प्रादुर्भाव के समय देश विदेशी शासन के कुप्रभावों से त्रस्त था । विदेशी शासक इसका आर्थिक शोषण कर रहे थे और विकास की उपेक्षा कर रहे थे । अपने शासन को दृढ़ करने के लिये वे " विभाजन करो और शासन करो " नीति का अनुसरण करते हुए धर्मवाद , साम्राज्यवाद और जातिवाद का प्रसार कर रहे थे । इस कारण आर्यवाद , द्रविड़वाद , हिन्दू वाद , इस्लामवाद , सिक्खवाद , अछूतवाद आदि का विस्तार हो

- -

१- आचार्य नरेन्द्र देव - राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृष्ठ -४०४

रहा था । विधान सभाओं में जातिवाद के आधार पर प्रतिनिधित्व को विभाजित किया गया था । देश के नेता लोग , जो स्वत: ऐक्यविचारधाराओं वाले थे , इन दोषों से प्रभावित थे । अल्प वर्ग के नेता इन अधिकांशत: पृथकतावादी शक्तियों का ही समर्थन कर रहे थे । जब बहुवर्गीय हिन्दू एकता का प्रयास कर रहे थे , उस समय एक ओर देश को मुक्त करने हेतु राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहे थे जबकि दूसरी ओर समाज के पुनर्जागरण के लिये बहुत से धार्मिक और सामाजिक प्रयास हो रहे थे । इसी उद्देश्य से महिलाओं के उत्थान का भी प्रयास किया जा रहा था । देश में नई चेतना दिखलाई पड़ती थी और शिक्षित वर्ग विशेष रूप से उससे प्रभावित हो रहा था । जिनके प्रयास के परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय भावना नगरों तक ही सीमित न रह कर ग्रामों में भी दृष्टिगोचर होने लगी थी ।

सारांश यह कि देशवासी जहां एक ओर विदेशी शासनकी बुराइयों के प्रति जागरूक हो रहा था और उससे मुक्त होने के लिये राजनीतिक प्रयास कर रहा था , वहाँ सामाजिक दोषों को दूर करने के लिये प्रयास हो रहे थे । यद्यपि इनके नेताओं के साधनों के सम्बंध में विचार भिन्न-भिन्न थे पर लक्ष्य की दृष्टि से कम बहुसंख्यक हिन्दुओं और राष्ट्रीय भावनाओं वाले अल्प वर्ग के व्यक्तियोंमें एकता थी और ये व्यक्ति भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के तत्व विधानमें कार्य कर रहे थे। आर्थिक दृष्टि से भी लोगों में विचार भेद था और जहाँ एक ओर समाजवाद का पुष्ट पोषण हो रहा था , वहाँ दूसरी ओर पूंजीवाद को भी संरक्षण किया जा रहा था । इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय आन्दोलन वालों में विचार ऐक्य नहीं था । यद्यपि राष्ट्रीय आन्दोलन अधिकांशत: अहिंसात्मक था पर कुछ व्यक्ति क्रांतिकारी विचारों से भी प्रभावित थे और यद्यपि क्रांतिकारी विचारधारा का प्रभाव अधिक नहीं था पर समाज में उसका सम्मान उसी प्रकार हो रहा था , जिस प्रकार कि धार्मिक क्षेत्र में कष्टपूर्ण साधना करने वाले योगी का होता है।

-: o :-

अध्याय २

(गाँधीवाद)
और
(लोहिया)

-: द्वितीय अध्याय :-

गांधीवाद और लोहिया

लोहिया जी ने जब राजनीति में प्रवेश किया उस समय गांधी जी का प्रभाव था। इसलिये उनके ऊपर गांधी जी का अधिक प्रभाव पड़ा। वे उनके समस्त विचारों से प्रभावित हुए। लोहिया जी के ऊपर भौतिक क्षेत्र में मार्क्स का प्रभाव था लेकिन कुछ सिद्धांतों का उनके ऊपर गांधी जी का प्रभाव था। लोहिया जी इस तथ्य से भलीभांति परिचित थे कि गांधी जी किसी "वाद" या पद्धति प्रणाली के संस्थापक नहीं थे लेकिन उनकी कतिपय अवधारणाओं व संकल्पनाओं के आधार पर राजनीति एवं आर्थिक विकास का एक नया एवं तर्क-संगत ढांचा खड़ा किया जा सकता है। गांधी जी की ये मौलिक संकल्पनायें थी- अहिंसा, सत्याग्रह, साम्प्रदायिकता, विश्वबंधुत्व, अस्पृश्यता, महिला - उत्थान, ग्राम स्वराज्य, स्वतंत्रता और समानता, ईश्वर में आस्था, स्वदेशी, स्वतंत्र भारत का स्वरूप, स्वतंत्र भारत की अर्थव्यवस्था इत्यादि।

१) अहिंसा -

गांधी जी का साध्य सत्य है तो उसका साधन अहिंसा है। वे हिंसा को असत्य कहते हैं, जो क्रोध, स्वार्थपरता, वासना आदि को उत्पन्न करती है। यह समस्त बुराइयों और पापाचारों की जड़ है अतएव यह सत्य, एकता और पवित्रता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। यद्यपि गांधी जी सत्य और अहिंसा को एक ही सिक्के के दो पहलुओं के तुल्य मानते हैं उनके मत से दोनों के मध्य साध्य और साधन का सम्बन्ध है। उन्होंने कहा - अहिंसा साधन है, सत्य साध्य है। साधन तभी साधन हैं जब वे हमारी पहुंच के भीतर हों और इसलिये अहिंसा हमारा सर्वोपरि कर्तव्य है।[१]

- -

१- गांधी जी, सम्पादक भारतन् कुमारप्पा - सर्वोदय, पृष्ठ-३०

वे सत्य को उच्चतम कानून तथा अहिंसा को उच्चतम कर्तव्य मानते थे। उन्होंने कहा चूंकि अहिंसा सत्य की प्राप्ति का साधन है इसलिये हमारे दैनिक जीवन में अहिंसा का प्रशिक्षण तथा उस पर आचरण आवश्यक है। अहिंसा सत्य की भांति सर्वशक्तिमान है और शाश्वत है। अहिंसा का दूसरा नाम प्रेम है। अहिंसा का अभिप्राय हिंसक तत्वों को रोकने का प्रयास है, जिससे दूसरों को कष्ट पहुंचता है। वे राजनीति को सत्य और अहिंसा के अनुसार ही चलाना चाहते थे। राजेन्द्रप्रसाद ने लिखा है - अहिंसा का मूल तत्व यही है हम कोई ऐसा काम न करें जिससे दूसरों को किसी प्रकार का कष्ट पहुंचे। सत्य का पालन इस तरह बिना अहिंसा के असंभव है। इसलिये महात्मा गांधी ने सत्य और अहिंसा दोनों को ही जीवन का सिद्धांत बना लिया और सारी जिन्दगी दूसरों को सिखाते रहे कि सत्याचरण अहिंसा के बिना असंभव है।[1]

उन्होंने ईश्वर को सत्य नहीं बतलाया बल्कि सत्य को ही ईश्वर कह दिया। गांधी जी सारे संसार को सत्य और अहिंसा के द्वारा नये संगठन में जोड़ना चाहते थे। भारत में भिन्न-भिन्न धर्मों, भिन्न-भिन्न भाषाओं, भिन्न-भिन्न रहन-सहन व भिन्न-भिन्न तौर-तरीकों के लोग बसते हैं। यहां पर सभी बातों में भिन्नता देखने को मिलती है। भारत में विभिन्नता को दूरकरके एकता की स्थापना आवश्यक है। राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा - गांधी जी ने अहिंसा का आश्रय इसलिये नहीं लिया कि अंग्रेजों से लड़ने के लिये भारत के पास हथियार नहीं थे बल्कि इसलिये कि देशों की एकता, सुख-शांति और सुलह अहिंसा के द्वारा हो आ सकती है।[2]

गांधी जी सतत् लड़ाकू थे और यदि वह कोई लक्ष्य निर्धारित करते थे तो उसके लिये अनवरत् लड़ते थे। अन्तत: हम गांधी जी के बिना १९४२

- -

१- राजेन्द्र प्रसाद - गांधी जी की देन, पृष्ठ-८८

२- वही पृष्ठ-८३

की क्रांति की कल्पना नहीं कर सकते । उन्होंने ज्वालामुखी का निर्माण किया और यदि दूसरों ने उसमें आग लगा दी तो उसके बारे में शिकवा व शिकायत नहीं करते थे । किशन पटनायक ने लिखा - गांधी जी के अहिंसक तरीकों को अमल में लाने और उन पर विचार करते वक्त इस ज्वालामुखी की बात या सिद्धांत को हमेशा याद रखना चाहिये । उन्होंने लड़ते हुए, प्रचार करते हुए , यातनायें सहकर ब्रिटिश साम्राज्य की नींव हिला दी ।[1]

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के एक सर्वोच्च नेता के रूप में बीसवीं शताब्दी के तृतीय और चतुर्थ दशकों की स्थितियों के अन्तर्गत गांधी जी ने सत्य तथा अहिंसा के साधनों पर सर्वाधिक महत्व दिया । इनका आध्यात्मीकरण करके न केवल स्वयं इन पर आचरण किया अपितु आंदोलन के नेताओं को अपने क्रियाओं से नई प्रेरणा दी । उन्होंने अहिंसा के सिद्धांत के आधार पर ही अंग्रेजों का मुकाबला किया और अंत में उनके सिद्धांत की जीत हुई । गणेश मंत्री ने लिखा है - गांधी जी ने प्रेम को सामाजिक बदलाव की शक्ति बनाने के लिये ही अहिंसा से सत्याग्रह का अस्त्र दिया । सत्याग्रह में संघर्ष निहित है परन्तु संघर्ष द्वन्द्व के लिये नहीं , द्वन्द्व के समाधान के लिये । सत्याग्रह का अर्थ प्रेम और अहिंसा के माध्यम से द्वन्द्व का , विरोध का समाधान ।[2]

गांधी जी अपने देश के लोगों में आतंकवादी प्रवृत्ति के प्रसार से चिंतित थे । उनको लगा कि हिन्दुस्तानी बुराइयों का इलाज हिंसा से नहीं हो सकता । उन्होंने अहिंसा के रास्ते पर चलने के लिये जोर दिया । यू०एस० मोहनराव के अनुसार - जिस अहिंसा का गांधी जी ने जीवन भर उपदेश दिया और उस पर सफलता पूर्वक अमल किया , उसे वे निर्बलता और लाचारी नहीं समझते थे । अहिंसा वीरता की पराकाष्ठा है, उसमें कायरता

- -

१- किशन पटनायक - ' ट्रस्टीशिप पर विचार ' - जनगांधी शताब्दी अंक सितम्बर - अक्टूबर, १९६९ , पृष्ठ-१९

२- गणेश मंत्री - मार्क्स, गांधी और सामयिक सन्दर्भ , पृष्ठ-३७-३८

अथवा निर्बलता के लिये कोई स्थान नहीं है ।[1]

लोहिया जी गांधी जी के अहिंसा के विचारों से पूर्णतया सहमत थे । उन्होंने राजनीतिक जीवन में हमेशा अहिंसात्मक आन्दोलन को प्राथमिकता दी । उनका विचार था कि - सरकारी कर्मचारियों को अहिंसात्मक कार्यों को नहीं अपनाना चाहिये । उन्होंने कहा - जिनके हाथ में दण्ड रहता है उनका दिमाग बर्फ की तरह शांत होना चाहिये , जिनके हाथ में दण्ड है और कहीं उसे गुस्सा आने लगा तो वह राक्षस बन जायेगा ।[2]

लोहिया जी ने राजनीतिज्ञों से शांतिपूर्ण व्यवहार का निवेदन किया । पुलिस जनता की उत्तेजना का बहाना लेकर गोली चलाने का सहारा ले लेती है,जो कि अनुचित है । इसलिये लोहिया जी को कहना पड़ा कि - हम भीड़ की तरफ नृशंस हत्या को रोकें , अगर हो सके तो संगठितअहिंसा और पूर्ण अहिंसा के जरिये रोके अगर वह नहीं हो सकता तो तीसरा कदम है , संगठित हिंसा से रोकें ।[3]

सन् १९६६ में पुलिस कुलेआम व्यक्तियों की जान ले रही थी । लोहिया जी ने साधारण जनता का आवाहन किया जिससे वह पुलिस से अपनी रक्षा कर सके । लोहिया जी का विचार था कि जनता अहिंसा के द्वारा अपनी रक्षा न कर सके तो संगठित हिंसा का सहारा ले लेना चाहिये । पुलिस के व्यवहार के कारण लोहिया जी के अहिंसा के विचारों में कुछ बदलाव आया था लेकिन अन्यायों के खिलाफ वे दूसरों को हिंसा के लिये प्रेरित करते थे लेकिन स्वयं हिंसा से दूर रहते थे । उन्होंने हिंसा व अहिंसा के सम्बन्ध में संसद में कहा - हालांकि मेरा मन बेचैन हो रहा है कि आप जनतंत्र को खत्म कर रहे हैं। मेरा मन मामूली रूप से बेचैन है । शायद मैं अपने आखरी दिन तक अहिंसा को

- -

१- यू०एस०मोहनराव - महात्मा गांधी का संदेश , पृष्ठ-४
२- डा०राममनोहर लोहिया - देश गरमाओ , पृष्ठ-२५
३- डा०राममनोहर लोहिया - ' हत्यारे के बढ़ते हुए हाथ ' जन सितम्बर, १९६६, पृष्ठ-५

मिला ले जाऊँ लेकिन आप लोगों की हरकतों से मुझे लगता है कि शायद आखरी दिनों में मुझसे पाप हो जाये । हिन्दुस्तान को आप उस रास्ते पर जाने के लिये मजबूर कर दो ।[१]

लोहिया जी राष्ट्र के अन्दर के अन्याय को समाप्त करने के लिये अहिंसा का प्रयोग उचित समझते थे, साथ ही वे विश्वशांति के लिये अस्त्रों का विरोध करते थे क्योंकि अणुबमों और हाइड्रोजन बमों के प्रयोग से संसार का सर्वनाश हो सकता है । इसलिये लोहिया जी का विचार था - अस्त्रों को बड़े लोग हमेशा बुरा कहते रहे हैं, चाहे वे ईसामसीह हों, चाहे गौतम बुद्ध हों, चाहे महात्मा गांधी हों । इनका इस्तेमाल करने से सर्वनाश होता है, विजय और हार की बात नहीं ।[२]

लोहिया जी गांधी जी के अहिंसा के सिद्धांत के अनुयायी थे इसलिये वे कहते हैं - जिस सभ्य विकल्प को भारत ने विश्व के समक्ष गत ३० वर्षों में प्रस्तुत किया है वह सविनय अवज्ञा गोली है, विकल्प संसद और विप्लव में बोली और मतपत्र में जिस विशाल सिद्धांत को विद्वान व्यथित विश्व के सम्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं, नहीं है । विकल्प सत्याग्रह और गोली में है ।[३]

वे मानते थे जनता अपने मत का प्रयोग ५ वर्ष बाद करती है, इस क्षेत्र में मतपत्र को चुनौती नहीं दी जाती लेकिन पीड़ा और अन्याय के सम्बन्ध में जब ये उत्तम आकार धारण कर लेते हैं तो विकल्प गोली व सविनय अवज्ञा में ही है ।

डा० लोहिया गांधी जी के अहिंसा के सिद्धांत में कुछ बदलाव करना चाहते थे क्योंकि अहिंसा के सिद्धांत का आधार बहुत कम किया जाता है। उन्होंने संसद में कहा - जब यह बात बिल्कुल तय हो गई है कि पिछले

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - लोकसभा में लोहिया, भाग-५ पृष्ठ-१३०
२- डा०राममनोहर लोहिया - समाजवादी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ-१०७
३- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-१२७

१७-१८ वर्ष से भारत ने अहिंसा का सिद्धांत बिल्कुल छोड़ दिया। मुझ जैसा आदमी जोकि अहिंसा में बचपन से पला है, आज मजबूर हो रहा है कहने के लिये और मेरा दिमाग भी उलझन में पड़ गया है कि जब अहिंसा का सिद्धांत चल नहीं पा रहा है तो कुछ करना चाहिये, कुछ ऐसा सोचना चाहिये या इस सिद्धांत में कुछ नया मूल्यांकन लाना चाहिये।[१]

लोहिया जी का विचार था कि बिना काफी ताकत के अहिंसा के पक्ष में कार्यवाही करने पर खतरा होगा जिससे शत्रु को मदद मिल सकती है। जब तक आन्तरिक अहिंसा में काफी ताकत नहीं आ जाती तब तक अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में अहिंसा की कार्यवाही को स्थगित किया जा सकता है। इसमें खतरे कम नहीं हैं, जब उद्योग-धन्धे विकसित हो जायेंगे तब अहिंसात्मक प्रतिरक्षा के लिये लोगों को राजी करना मुश्किल होगा। लोहियाजी के अनुसार - अहिंसा के दो गुण हैं - निहत्थापन और प्रतिरोध। इनमें से किसी एक को छोटा करना बड़ी भारी गलती होगी। अगर प्रतिरोध के गुण में कमी आई तो निहत्थापन कायरता और अन्याय के आगे सिर झुकाना बन जायेगा। जिस तरह हथियार और युद्ध को बढ़ाना होगा इसलिये अहिंसात्मक प्रतिकार के गुणों का विकास करना आवश्यक है।[२]

वे मानते थे युद्ध शुरू हो जाने पर उसका शक्ति से मुकाबला करने के अलावा और कोई रास्ता नहीं रह जाता। अहिंसा के आधार पर पल्टन का बखास्त करना गांधीवाद के पक्ष की बात नहीं है।

२) <u>सत्याग्रह</u> -

गांधी जी एक सक्रिय राजनेता तथा एक व्यवहारिक आदर्शवादी थे। उन्होंने जिन आध्यात्मिक व नैतिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया, उन्हें स्वयं

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - लोक-सभा में लोहिया, भाग-८, पृष्ठ-११५
२- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी और सप्तक्रांति, पृष्ठ-७०

अपनाया और राजनीतिक कार्यवाही में प्रयुक्त किया । राजनीति कार्यवाही के निमित्त उनका एकमात्र अस्त्र अहिंसात्मक सत्याग्रह था । सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थ सत्य पर डटे रहना है । गांधी जी ने लिखा है - दुनिया का आधार हथियार-बल पर नहीं है परन्तु सत्य-दया और आत्मबल है ।[१]

गांधी जी ने जहां अन्याय, दमन आदि देखा वहां उसके विरुद्ध सत्याग्रह किया । उन्होंने लिखा है - जब मुझे कोई काम पसंद न आये और वह काम मैं न करूं तो उसमें मैं सत्याग्रह या आत्मबल का उपयोग करता हूं ।[२]

सत्य, अहिंसा तथा प्रेम पर आधारित सत्याग्रह एक आत्मिक शक्ति है । आत्मा शरीर से श्रेष्ठ है इसलिये सत्याग्रह अन्याय के विरुद्ध संघर्ष एक प्रकार का धार्मिक युद्ध है । युद्ध का उद्देश्य शत्रु का विनाश करना होता है लेकिन सत्याग्रह का उद्देश्य दूसरों को हानि पहुंचाना नहीं बल्कि दूसरों का हृदय जीतना होता है । उन्होंने लिखा भी है कि - सत्याग्रह एक ऐसी तलवार है जिसके दोनों ओर धार है , उससे चाहे जैसे काम लिया जा सकता है । जो उसे चलाता है और जिस पर चलाई जाती है , वे दोनों सुखी होते हैं ।[३]

सत्याग्रही में अहिंसा , अनुशासन और आत्मत्याग के गुण होना चाहिये । गांधी जी का विचार था कि - सत्याग्रह के लिये जो हिम्मत और बहादुरी चाहिये वह तोप का बल रखने वाले के पास नहीं हो सकता । शरीर से दुर्बल व्यक्ति भी सत्याग्रही हो सकता है । सत्याग्रह में अहिंसा का पालन पूर्ण रूप से आवश्यक है । गांधी जी का विचार था - शरीर , बल का उपयोग करना , गोला-बारूद काम में लाना, हमारे सत्याग्रह के कानून के खिलाफ है ।[४]

गांधी जी मानते थे कि सत्याग्रह आत्मा की शक्ति है , सत्य पर

- -

१- महात्मा गांधी - हिंद स्वराज्य, पृष्ठ -६९-७०
२- वही पृष्ठ-७०
३- वही पृष्ठ-७१
४- वही पृष्ठ-७२

आग्रह है । यह सत्य पर आग्रह दूसरों पर कष्ट देकर नहीं वरन् अपने ऊपर कष्ट सहकर हो सकता है। यह सहानुभूति के लिये एक तपस्या है । सत्याग्रही को निर्भीक होना चाहिये । गांधी जी ने लिखा है - अभय के बिना सत्याग्रही की गाड़ी एक कदम भी आगे नहीं चल सकती, अभय सम्पूर्ण और सब बातों के लिये होना चाहिये । जमीन-जायदाद का, झूठी इज्जत का, सगे-सम्बन्धियों का, शरीर को चोट पहुंचाने वालों का और मरण का अभय हो , तभी सत्याग्रह का पालन हो सकता है ।[1]

गांधी जी ने सत्याग्रह अनेक रूपों में किया जैसे - निष्क्रिय प्रतिरोध, असहयोग, बहिष्कार, धरना, अनशन, सविनय अवज्ञा । गांधी जी की यह विशेषता थी कि उन्होंने सत्याग्रह को आधुनिक और व्यापक बनाया । सत्याग्रह के अस्त्र का प्रयोग सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में उन्होंने उत्कृष्टता पूर्वक किया और सिद्ध किया कि सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन तथा क्रांति के लिये इस अस्त्र का प्रयोग युद्ध और क्रांति के समान महत्वपूर्ण है । उन्होंने कहा - सत्याग्रह के जरिये समाज के सारे राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक रोगों को मिटाया जा सकता है ।[2]

मार्क्स और लेनिन जिस परिवर्तन को हिंसापूर्ण क्रांति से करना चाहते थे , गांधी जी ने उसे अहिंसक सत्याग्रह से सम्पन्न किया । सत्याग्रह आन्दोलन और अहिंसा ने भारत की राजनीति को अध्यात्मवाद के उच्चतम धरातल तक पहुंचाया और संसार में भारत की प्रतिष्ठा और गौरव में वृद्धि की । उनका विचार था कि सत्य ही ईश्वर है और अहिंसा द्वारा सत्य का अविचरण अनुसंधान ही मेरे जीवन का ध्येय है , इस ध्येय की पूर्ति के क्रम में ही उन्होंने उस साधन को जन्म दिया जिसे हम संक्षेप में " सत्याग्रह " कहते हैं ।

गांधी जी का विचार था कि सत्याग्रही को मर जाना चाहिये ।

- -

१- महात्मा गांधी - हिंद स्वराज्य , पृष्ठ -७४

२- गांधीजी - संपादक आर०के०प्रभु, प्रजातंत्र सच्चा और झूठा,पृष्ठ-५५

परन्तु अधीनता स्वीकार नहीं करना चाहिये। उन्होंने कहा - सत्याग्रह में विरोधी को हानि पहुंचाने की जरा भी कल्पना नहीं है। सत्याग्रह का नियम है स्वयं कष्ट उठाकर विरोधी पर विजय प्राप्त करना।[१]

सत्याग्रह में साध्य और साधन पवित्र होना चाहिये। गांधीजी ने कहा - साधन बीज के समान होते हैं और परिणाम वृक्ष के समान, जिस प्रकार बीज वृक्ष का सम्बन्ध अभिन्न रखता है उसी प्रकार साधन और परिणाम का रखता है।[२]

लोहिया जी ने गांधीवाद के सिद्धांतों से अधिक उसके कार्यों की विशेष प्रशंसा की जिसमें प्रमुख थे दमन और अन्याय का अनुशासनात्मक ढंग से विरोध करना और कष्टों को पुरुषत्व से सहन करना। लोहिया जी का मत था कि - गांधी जी के कार्यों का यह अद्भुत और शक्तिशाली गुण उनके जीवन के 30 वर्षों में आधुनिक व्यक्ति का ध्यान आकर्षित करता रहा और उसमें यह विश्वास पैदा किया कि भविष्य में नये विश्व के तत्व हो सकते हैं।[३]

गांधी जी के कार्य का गुण इस बात से भी लोहिया जी को प्रभावित करता था कि वे साधनों और साध्य के सिद्धांत में विश्वास रखते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने दार्शनिक जान डी वे का उल्लेख किया, उनके अनुसार - साधन और साध्य न्यूनाधिक एक दूसरे में परिवर्तनीय है। साधन लघु काल में साध्य है और साध्य दीर्घ काल में साधन है। एक व्यक्ति अपनी इच्छित लक्ष्य की उपलब्धि के लिये जो भी साधन अपनाये दीर्घकाल में साध्य बनने की प्रवृत्ति रखते हैं और वह जिस लक्ष्य की उपलब्धि चाहता है, यदि वह प्रक्रिया को बुद्धिमत्ता से स्वीकार करता है जो साधन अपेक्षित उपलब्धियों के रूप में लक्ष्य बन जाती है।[४]

- -

१- गांधी जी सम्पादक - भारत कुमार अप्पा सर्वोदय, पृष्ठ-६२
२- गांधी जी - हिन्द स्वराज्य, पृष्ठ-६०
३- डा० राममनोहर लोहिया, मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-१२२
४- वही पृष्ठ-१२३

लोहिया जी ने इसका उदाहरण देते हुए कहा है कि असत्य द्वारा सत्य की, हत्या के द्वारा स्वास्थ्य की, राष्ट्रीय स्वतंत्रता के बलिदान के द्वारा एक विश्व की, अधिनायकवाद द्वारा प्रजातंत्र की विजय उपलब्ध करना सम्भव नहीं है। साध्य साधन के सिद्धांत के कारण गांधी जी प्रायः कहते थे कि मेरे लिये " एक पग पर्याप्त " है। यह " एक पग पर्याप्त " का सिद्धांत साध्य के सिद्धांत के साथ बंधा हुआ है और सम्भवतः इस उपरोक्त से वृहत्तर है। जिस सीमा तक आज विश्व इस मेरे लिये " एक पग पर्याप्त " है भूल गया है, उस सीमा तक उसने अपने को.... अपने तर्कहीनता का अंधकार की भूमिगत शक्तियों के समक्ष के प्रति अपने को समर्पित कर दिया है।[1]

लोहिया जी फिर भी यह स्पष्ट करते हैं कि इस कथन का यह आशय नहीं है कि जो लोग तत्कालता के सिद्धांत को मानते हैं उन्हें अपने दृष्टिकोण के लक्ष्य से अपरिचित बना रहना चाहिये। तत्कालीन पग - दृष्टिकोण के दूर लक्ष्य से निःसंदेह सम्बन्धित रहता है। लोहिया जी यह स्वीकार करते हैं कि तत्कालीनता के सिद्धांत के ग्रहण करने से दृष्टिकोण से लक्ष्य खो जाने का संकट है पर उनका मत है कि यह इतना विनाशक नहीं जितना कि वर्तमान को ध्यान न देना।

लोहिया जी ने गांधी जी के सिविल अवज्ञा आन्दोलन का विशेष सराहना की है। वे स्वीकार करते हैं कि हमारी संसद, विधानसभायें कष्टों का निवारण नहीं कर सकतीं। वे कष्ट चाहे महंगाई के हों या भुखमरी के, प्रति ५ वर्ष में एक बार में निर्वाचन भी जनता में धैर्य नहीं रख सकता और इससे हिंसात्मक साधनों के प्रति आकर्षण बनता है इसलिये लोहिया जी ने लिखा है - जब संवैधानिक पद्धतियां कष्ट निवारण कराने में असमर्थ सिद्ध हो जायें तो जनता को अनुचित विधियों और अनुचित कार्यों

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-१२३-२४

तथा उस पर किये जाने वाले अन्यायों का उल्लंघन करने का मार्ग खुला होना चाहिये । विधि का उल्लंघन करने ,गिरफ्तारी करने और अधिकारी द्वारा सजा दिये जाना, यहाँ तक कि मृत्युदण्ड कापि यह एक अधिक प्रसन्नतादायक वस्तु नहीं है , परिवर्तन लाने का एक मात्र संतोषजनक मार्ग है ।[1]

लोहिया जी इस सिद्धांत को गांधी जी द्वारा राजनैतिक कार्यवाही के प्रति किया गया निश्चित योगदान मानते थे । उनका मत था - सत्याग्रह का अधिकार उस सीमा तक रहेगा जब तक कि अन्याय और पीड़न रहेगा और इसे रहना चाहिये क्योंकि यदि यह नहीं रहता तो बन्दूक या गोली रहेगी ।[2]

गांधीवाद शोषितों के हृदय परिवर्तन में विश्वास रखता है । उन्होंने स्पष्ट: शासकों और धनवानों को हृदय परिवर्तन के लिये गांधी जी ने स्वयं ६ महीने एवं बारह पुरुषों को साक्षी बनाने के लिये वर्ष दिये पर अधिक महत्वपूर्ण शोषित निम्न और दुर्बल लोगों का हृदय परिवर्तन करने में है । लोहिया जी ने लिखा कि - एक पुरुषत्व विहीन गांधीवाद प्रतिष्ठित हो गया है जो कि निर्धनों के स्थान पर केवल उच्च व्यक्तियों के हृदय परिवर्तन में विश्वास करता है । भारत में अधिकांश लोग या तो पालित पशुओं की तरह विनीत हैं या चाहे की तरह खूंखार हैं और इस खूंखारी से वे निरंकुश शासन के विरुद्ध संघर्ष करना चाहते हैं । उन्हें अपना हृदय परिवर्तन करना चाहिये और साधारण एवं सरल मानव के रूप में सविनय अवज्ञा के निरन्तर प्रयोग से अपने लक्ष्य सिद्धि का प्रयास करना चाहिये ।[2]

लोहिया जी ने माना कि सत्याग्रह अधिकार एक बन्दूक में छुपा है।

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया, मार्क्स ,गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-१२७
२- वही पृष्ठ-४२७

व्यक्तिगत सत्याग्रह से आदमी डरता है । अकेला आदमी कानून तोड़ने की हिम्मत नहीं रखता है लेकिन वास्तव में व्यक्तिगत सत्याग्रह ही नई दुनिया बनायेगा । लोहिया जी ने कहा - सत्याग्रह एक ऐसा अस्त्र है जो मनुष्य को बिना समूह में होते हुए, बिना हथियार की सहायता से बहादुर बनाता है ।[1]

वे मानते थे कि अकेला मनुष्य सत्याग्रह की सहायता से अन्याय के खिलाफ खड़ा रह सकता है वह बिना अस्त्र व हथियार की मदद लिये अन्याय के विरुद्ध लड़ सकता है । व्यक्तिगत सत्याग्रह जितना होसके करना चाहिये। हमारे देश में प्रतिदिन लाखों अन्याय हो रहे हैं, हर व्यक्ति को रोज कोई-न कोई एक अन्याय सहन करना पड़ताहै । व्यक्तिगत सत्याग्रह की सहायता से ही इन अन्यायों को दूर किया जा सकता है । सत्याग्रह के अस्त्र द्वारा मनुष्य में अकेले में, असहाय, निहत्थे मनुष्य में इतनी शक्ति आ जायेगी कि फिर न्याय-अन्याय के प्रश्न का कुछ हल निकालते हुए अन्यों का सामना हो सकेगा । इस मायने में सत्याग्रह एक बड़ी ताकतवर चीज है । आज सारे संसार कोई अगर कोई चीज बचा सकती है, बदल सकती है, वह है व्यक्तिगत सत्याग्रह । लोहिया जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह पर जोर दिया जबकि गांधीजी व्यक्तिगत व सामूहिक दोनों प्रकार के सत्याग्रह को स्वीकार करते हैं । गणेश मंत्री लिखते हैं - गांधी के लिये अन्याय से संघर्ष का माध्यम व्यक्ति की अपनी नैतिक चेतना और उससे प्रेरित सत्याग्रह है । सत्याग्रह संगठित और सामूहिक भी हो सकता है लेकिन साधन की पवित्रता के दायरे में ही । वस्तुतः गांधी की दृष्टि में व्यक्तिगत औरसार्वजनिक नैतिकता में भेद गलत है । दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं । अखंडित जीवन हमें

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - समाजवादी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ-१०६

वांछित साध्य तक नहीं पहुंचा सकते ।[1]

गांधी जी ने सत्याग्रह के साथ-साथ सविनय अवज्ञा आन्दोलन से भी अन्यायों को दूर करने का प्रयास किया । सविनय अवज्ञा आन्दोलन पूर्णतया अहिंसा पर आधारित होना चाहिये । वे राज्य के अन्यायपूर्ण आदेशों की अवज्ञा करने को वाजिब समझते थे । कानून की अवज्ञा सविनय तभी कहा जा सकता है जब वह पूरी तरह अहिंसक हो । सविनय अवज्ञा के पीछे सिद्धांत यह है कि प्रतिपक्षी को खुद कष्ट सहकर प्रेम से जीता जाय ।

लोहिया जी ने गांधी जी के सविनय अवज्ञा के सिद्धांत को सिविल नाफरमानी (नागरिक अवज्ञा) के रूप में लिया । लोहिया जी सभी प्रकार के अन्यायों के खिलाफ सिविल नाफरमानी चाहते थे । शक्ति प्रसाद पाण्डेय ने लिखा है कि - " मैंने कहा डा० साहब सिविल नाफरमानी से तो बड़ी तबाही होती है और ज्यादा कुछ नहीं मिल पाता है " उत्तर में - डा० साहब पूछ बैठे, कुछ समझते हो अगर हमारे लोगों की आदत सिविल नाफरमानी की नहीं पड़ेगी तो बिगड़ जायेंगे और देश पर फौजी शासन हो जायेगा , नहीं तो [illegible] बढ़ जायेगी या फिर गुण्डा राज्य कायम हो जायेगा ।[2]

आजादी के बाद लोहिया जी जैसे लोगों ने यदि सिविल नाफरमानी को अपनाया न होता तो शायद सिविल नाफरमानी का सिद्धांत भी गांधी जी के साथ दफन हो जाता । आज की पीढ़ी लोहिया जी के अधिक निकट है " मारेंगे नहीं पर मानेंगे भी नहीं " । गांधी जी की सब देनों में सबसे बड़ी देन है सत्याग्रह । गांधी जी ने सत्याग्रह में क्रोध को स्थान नहीं दिया है जबकि लोहिया जी ने सत्याग्रह में सात्विक क्रोध को स्थान दिया है । श्रीकृष्ण नाथ ठाकुर ने लिखा है - बुद्ध की तरह

- -

१- गणेश मंत्री - मार्क्स ,गांधी और सामयिक सन्दर्भ , पृष्ठ-५७

२- शक्ति प्रसाद पाण्डे - " सिविल, नाफरमानी और लोहिया," जन गांधी शताब्दी अंक सित०अक्टूबर-१९६९ पृष्ठ-८७

लोहिया के हजारों शिष्य नहीं थे , न ही उन दिनों कोई सरकार लोहिया को अपना गुरु मानती थी इसलिये लोहिया अपने क्रोध को अपरिहार्य मानते थे । इस तरह शायद अपने क्रोध का एक औचित्य भी ढूंढते थे । सत्याग्रही का सात्विक क्रोध अन्यायी के तामसिक क्रोध को नाश करता है तो इसमें हिंसा भी नहीं क्योंकि तब तो क्रोध का देवता ही क्रोध को खा जाता है ।[१]

लोहिया जी ने गांधी जी के सत्याग्रह , सिविल नाफरमानी के सिद्धांत को सिर्फ आदर्श में स्वीकार नहीं किया बल्कि देश व विदेश में अन्यायों के खिलाफ इसका व्यवहारिक प्रयोग किया है । देश में लोहिया जी ने सिविल नाफरमानी का व्यक्तिगत और सामूहिक सिलसिला चलाया। अमरीका में नीग्रो जाति को गांधी के सत्याग्रह का प्रयोग करने का सुझाव दिया । अपनी दूसरी अमरीका यात्रा में उन्होंने रंगभेद के कानूनों को तोड़कर अमरीका में अपने को गिरफ्तार कराया । गांधी के बाद उनके सत्याग्रह के सिद्धांत पर सबसे अधिक अमल डा० लोहिया ने किया । वे अपने जीवन पर्यन्त अन्याय के खिलाफ सत्याग्रह करते रहे।

३) साम्प्रदायिक एकता -

भारत में ब्रिटिश शासकों ने साम्प्रदायिकता के आधार पर फूट डाली और उनके बीच झगड़ों को उभारने का प्रयत्न किया । गांधी ने अनुभव किया कि साम्प्रदायिक एकता के बिना राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन की सफलता सम्भव नहीं है । अत: उन्होंने जबसे भारतीय राष्ट्रीय - आन्दोलन में भाग लिया तभी से उन्होंने साम्प्रदायिक एकता के प्रयास शुरु

- -

१- डा० कृष्णनाथ ठाकुर " गांधी , लोहिया और सत्याग्रह" लोहिया : बहु आयामी व्यक्तित्व , पृष्ठ-२४

२-

वे सभी धर्मों का आदर करते थे। गांधी जी ने लिखा है - एक राष्ट्र होकर रहने वाले लोग एक-दूसरे के धर्म में दखल नहीं देते अगर देते हैं तो समझना चाहिये कि वे एक-राष्ट्र होने लायक नहीं है।[१]

गांधी जी का मत था कि विभिन्न धर्म ईश्वर और सत्य की प्राप्ति के विभिन्न मार्ग हैं। सभी धर्म श्रेष्ठ हैं "मिर्जा या महादेव" की नहीं बनती ऐसी कहावतें समाज में वैमनस्य पैदा करती है। गांधी जी ने कहा कि - हम इतना याद नहीं रखते कि बहुतेरे हिन्दुओं और मुसलमानों के बाप-दादे एक थे, हमारे अन्दर एक ही खून है। क्या धर्म बदला - इसलिये हम दुश्मन बन गये ? धर्म एक ही जगह पहुंचने के अलग-अलग रास्ते हैं।[२]

गांधी जी का विचार था कि हिन्दू और मुसलमान आपस में भाई-भाई हैं, उन्हें आपसे में वैमनस्य नहीं रखना चाहिये। गांधी जी ने लिखा है - हिन्दू-मुसलमान आपस में लड़े हैं। तटस्थ आदमी उनसे कहेगा कि आप गई-बीती को भूल जाइये - इसमें दोनों का कुसूर होगा, आप दोनों मिलकर रहिये।[३]

गांधी जी कांग्रेस में बिना धार्मिक भेदभाव के सबको समान रूप से प्रतिनिधित्व देने के पक्ष में थे जिससे देश की एकता सुदृढ़ रहे। उन्होंने कहा था - ऐसी एकता पैदा करने के लिये पहली जरूरी चीज हर कांग्रेसजन के लिये यह है कि उसका धर्म कुछ भी हो, उसको अपने कुल के व्यवहार में हिन्दु-मुसलमान, पारसी, यहूदी वगैरह का अर्थात हिन्दू और अहिन्दू की प्रतिनिधि बनाया जाना चाहिये।[४]

- -

१- महात्मा गांधी - हिंद स्वराज्य, पृष्ठ ४५
२- वही , पृष्ठ ४६
३- वही , पृष्ठ ७०
४- गांधी जी, सम्पादक - भारतन कुमारप्पा - सर्वोदय, पृष्ठ-१६८

गांधी जी के साम्प्रदायिकता सम्बन्धी विचारों का डा०लोहिया पर अधिक प्रभाव पड़ा । लोहिया जी सदैव हिन्दू और मुस्लिम झगड़ों का विरोध करते रहे । गांधी जी के विचारों का समर्थन करते हुए उन्होंने कहा कि - हिन्दू और मुसलमान आपस में भाई-भाई हैं और उनके पुरखे एक हैं अत: उन्हें आपस में संकीर्णताओं को त्याग कर लड़ना नहीं चाहिये । रजिया, शेरशाह, जायसी और रहिमन के साथ-साथ विक्रमादित्य, अशोक, पेशु, प्रताप हिन्दू और मुसलमान दोनों के पुरखे एक हैं ।[1]

गांधी जी की भांति लोहिया जी भी मानते हैं कि हिन्दू धर्म और मुस्लिम धर्म में कोई अन्तर नहीं है । दोनों धर्म अपने-अपनी जगह सत्य व श्रेष्ठ हैं । हिन्दू का मोहम्मद से रामकृष्ण को अच्छा समझना और मुसलमान को रामकृष्ण से मोहम्मद को अच्छा समझना गलत है । लोहिया जी ने लिखा है - दोनों धर्मों के बीच १९-२० से ज्यादा का फर्क नहीं है, इतना मुझे धर्म के बारे में कहना है, इससे दोनों का मन ठीक हो सकता है ।[2]

गांधी जी या लोहिया जी के विचारों में साम्य होने से लोहियाजी गांधी जी के अधिक निकट थे । दोनों हिन्दू और मुस्लिम एकता पर बल देते थे । दोनों का उद्देश्य मानवता का कल्याण करना था । डा० राजेन्द्र मोहन भटनागर ने लिखा है - एक नहीं, अनेक घटनायें उस समय घटित हुई जिनसे लोहिया गांधी के और निकट आ सके । उन्हीं दिनों हिन्दू और मुसलमान झगड़े जारी और हो रहे थे । गांधी व लोहिया उन्हें शांत करने में प्रयत्नशील थे । लोहिया छोटी सी घटना के प्रति भी जागरूक रहते थे । उनकी दृष्टि एक वैज्ञानिक की थी जबकि गांधी की दृष्टि एक आध्यात्मिक आचार्य की थी ।[3]

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - भारत विभाजन के अपराधी, पृष्ठ(क) भूमिका
२- डा०राममनोहर लोहिया - हिन्दू और मुसलमान, पृ१
३- डा०राजेन्द्र मोहन भटनागर - समग्र लोहिया, पृष्ठ-१००

इस तरह से गांधी जी आस्था में से उठते थे और लोहिया वैज्ञानिक प्रक्रिया से गुजर कर आस्था तक पहुंचते थे। अगस्त सन् १९४७ के अन्त में हिन्दू और मुस्लिम झगड़े तेजी से बढ़ रहे थे। हिन्दुओं ने बमबारी और आगजनी के द्वारा मुसलमानों को भगाने का प्रयास किया। इससे गांधी जी बहुत अधिक दुखी हुए और सितम्बर के पहले सप्ताह में कलकत्ते में अनशन प्रारम्भ किया। इसी बीच राममनोहर लोहिया ने आकर हिन्दू और मुस्लिम झगड़ों का शांत करने के प्रयास किया। वे स्टेशन और स्थानों से ऐसे नवयुवकों से मिलने गये और अपने शस्त्रों को गांधी जी के पास समर्पित करने के लिये राजी किया। निर्मल कुमार बोस के अनुसार - उन्होंने युवकों को कहा कि स्वतंत्र भारत में दंगे कभी नहीं होने चाहिये क्योंकि हिन्दू और मुसलमानों को भारत के समान नागरिकों की तरह एक नई जिंदगी बनानी है। राममनोहर गांधी जी के सन्देश को उन स्थानों पर भी ले गये जहाँ वह पहले कभी पहुंचा न था और न असरदार हुआ था।[१]

लोहिया जी की प्रेरणा से नवयुवकों ने अपने अस्त्र गांधी जी को समर्पित कर दिये, इस तरह कलकत्ता में गांधी जी ने अनशन तोड़ा। गांधी जी की इस अनशन की विजय का श्रेय बहुत कुछ डा० लोहिया को था। हिन्दू और मुस्लिम दंगों के समय गांधी जी व लोहिया अपने मुस्लिम मित्रों से मिलना नहीं छोड़ते थे और साम्प्रदायिक दंगों को दूर करने का भरसक प्रयत्न करते थे। लोहिया जी गांधी जी को भारत का संतरी मानते थे। उन्होंने कहा कि - यही मेरी उपलब्धि थी, चाहे अच्छी या बुरी। मेरा ऐसा व्यवहार हर दशा में भयरहित होता क्योंकि वे भारत के सन्तरी थे और हमारी हरकत पर नजर रखते थे। काश ऐसा संतरी हर राष्ट्र में होता, ऐसी योग्यता का पुरुष कई शताब्दियों में एक होता है लेकिन एक ऐसा संतरी जिसे सभी आदर दें ताकि वह अपने लोगों के कामों में अंकुश बन सके।[२]

- -

१- निर्मल कुमार बोस - 'गांधी जी और लोहिया' - जन गांधी शताब्दी अंक सितम्बर-अक्टूबर १९६९, पृष्ठ-१७

२- ओंकार शरद - लोहिया के विचार, पृष्ठ-२०१

लोहिया जी मानते थे कि देश में साम्प्रदायिक दंगों को दूर करने के लिये ही गांधी जी ने देश के बटवारे को स्वीकार किया है उनका विचार था कि भारत में मुसलमान और पाकिस्तान में हिन्दू रह सके क्योंकि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में जमीन का बटवारा हुआ है , लोगों के दिलों का नहीं। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान आपस में भाई-भाई हैं । इन दोनों ने विभाजन को अस्थाई चीज माना है । लोहिया जी ने अनुभव कियाकि सत्ता की राजनीति जनता की राजनीति से भिन्न है क्योंकि इसमें जनता के हितों का ध्यान नहीं रखा जाता । इस समय गांधी जी अनुभव करते थे कि लोहिया उनके सबसे निकट हैं । गांधी जी की इच्छा के विरुद्ध देश का विभाजन हुआ । गांधी जी को विभाजन के लिये दोषी नहीं ठहराया जा सकता । उनका दोष सिर्फ इतना ही हो सकता है कि उन्होंने विभाजन के प्रस्ताव के विरुद्ध अपने प्रभाव का इस्तेमाल नहीं किया । लोहिया जी इसके लिये स्वयं को दोषी मानते हैं और कहते हैं- मुझे इस बात का दुःख है कि मैंने भी विभाजन के समय जेल में जाने के लिये कुछ नहीं किया । मेरे जीवन के बहुत ही कठिन समय में मुझे हिन्दू-मुस्लिम दंगों की याद ने इस तरह अन्धकार दिया था कि मैं उस नाजुक परिस्थिति में कुछ न कर सका ।[१]

अगर डा०लोहिया ने प्रयत्न किया होता तो शायद विभाजन रुक जाता । लोगों ने विभाजन को रोकने के लिये उत्साह नहीं दिखाया, जैसे उत्साह लोगों को आजादी प्राप्त करने के लिये था, अगर लोग प्रयत्न करते तो विभाजन रुक जाता । देश को शक्तिशाली बनाने के लिये दोनों सम्प्रदायों में एकता और मित्रता होना चाहिये । लोहिया जी ने दोनों की एकता के प्रयत्नों में गांधी जी के आवुहान पर भारत के विभाजन के समय अपनी जान की बाजी लगायी । उन्होंने दोनों वर्गों के मतभेदों को दूर करने का प्रयास किया । उनका कहना था कि - शायद नास्तिकवाद और धार्मिक पूजा के

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - गिल्टी मैन ऑफ इण्डियाज पार्टीशन, पृष्ठ-३८

नाश के बिना विभिन्न वर्गों के भावनाओं और पैगम्बरों के बीच सम्पूर्ण बराबरी नहीं आई जा सकती ।[१]

सभी धर्मों को एक-दूसरे का आदर करना चाहिये । लोहियाजी ने एक तरीका सुझाया कि सभी धर्मों का ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन बेहतरीन तरीका है - धार्मिक मतों औरविश्वासों के एकतरफा उपलब्धियां और दूसरी तरफ उनकी खामियाँ , कमियों का संयमित और ठण्डे दिल से मूल्यांकन लाभदायी होगा । गांधी जी के साम्प्रदायिकता निराकरण - अभियान को लोहिया जी ने आगे चलाने का प्रयास किया।वे जीवन भर हिन्दू और मुस्लिम एकता का प्रयास करते रहे ।

साम्प्रदायिकता के उन्मूलन के लिये आज गांधी और लोहिया जैसे व्यक्ति की आवश्यकता है जो अपनी जान जोखिम में डालकर इस विभीषिका से निपटने की क्षमता रखते हों । गांधी जी ने साम्प्रदायिकता उन्मूलन के लिये उपवास किया और लोहिया अपनी जान जोखिम में डालकर दंगाग्रस्त इलाकों में पैदल घूमे । आज की राजनीति में लोहिया और गांधी जैसी सादगी नहीं है ।

४) विश्व बंधुत्व और भारत की विदेश नीति -

स्वतंत्रता संग्राम में गांधी जी की राष्ट्रसेवा तथा भक्ति इतनी महान थी कि देशवासियों ने उन्हें राष्ट्रपिता कहा है । इतना होते हुए भी गांधी जी उग्र राष्ट्रवादी नहीं थे । वे एक सच्चे मानवतावादी और अन्तर्राष्ट्रवादी थे । उनका राष्ट्रवाद उग्र , आक्रामक तथा विध्वंसात्मक नहीं है । उन्होंने कहा कि मानवता के प्रति प्रेम तभी हो सकता है जब उसमें राष्ट्रप्रेम की भावना हो । सच्चा राष्ट्रप्रेम अन्य राष्ट्रों से घृणा

१- डा०राममनोहर लोहिया, भारत विभाजन के अपराधी, पृष्ठ(ख) भूमिका ।

करके उत्पन्न नहीं किया जा सकता । गांधी जी का विचार था कि सामाजिक जीवन की प्रथम इकाई परिवार है। उसके बाद उच्चोच्च क्रम में बिरादरी, जाति, गांव, प्रदेश और राष्ट्र आते हैं । गांधी जी के इन्हीं विचारों को लोहिया जी ने अपनी विश्व सरकार की स्थापना के लिये आधार बनाया है । २४ अगस्त १६४६ को स्वतंत्रता के बाद लोहिया जी ने राजनेता के रूप में पहली बार विदेश यात्रा की । वे स्वीडन की राजधानी स्टाकहोम गये थे । वहां उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया था । स्टाकहोम में विश्व सरकार के सम्मेलन में लोहिया ने चौखम्भा राज्य की कल्पना को आगे बढ़ातेहुए कहा था - सारी दुनिया में एक पांच खम्भों पर आधारित व्यवस्था का निर्माण होना चाहिये । स्थानीय कारोबार में ग्राम व नगर को आजादी हो । अपने इलाके की व्यवस्था में जिले के अधिकार हों, प्रान्तीय क्षेत्र की व्यवस्था प्रान्त के हाथ मेंरहे । कुछ मुख्य प्रश्न केन्द्र की सरकार को सौंपे जाये और विश्व सरकार अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा तथा विश्व के पुनर्निमाण के सीमित कार्य करे । ऐसी विश्व सरकार ही हथियार बंदी करके युद्ध को रोक सकेगी और शांति स्थापित कर सकेगी ।[१]

वे मानते थे जब तक मनुष्य उपरोक्त क्रमों के अन्तर्गत निम्नतर स्तरों में सामाजिक एकता तथा पारस्परिक प्रेम की भावना का विकास नहीं कर लेता तब तक वह उच्च स्तरों में ऐसी भावना बना सकने में समर्थ नहीं होता । इसलिये अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना के विकास के लिये मनुष्य में राष्ट्रीयता की भावना का विकास आवश्यक है ।

गांधी जी विश्व में शांति की स्थापना के लिये एक विश्व-परिषद की स्थापना करना चाहते थे । इस परिषद के माध्यम से वे समस्त मानवता का कल्याण चाहते थे । राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है -

---

१- राजेन्द्र मोहन भटनागर - समग्र लोहिया, पृष्ठ-११२

अत: विश्व शांतिवादियों की इस परिषद् की संसार के समस्त साधारण स्त्री-पुरुषों से अपील और प्रार्थना है कि वे अपने वैयक्तिक जीवन को इस प्रकार का रूप दे दें, इस प्रकार के ढांचे में ढाल लें कि उनका जीवन शांतिमय हो जाये और इनके पास जो सामग्री और आदर्शों के साधन हैं, उनका उपयोग वे मनुष्य मात्र के विध्वंस के विनाकारी अस्त्रों को बनाने की अपेक्षा रचनात्मक और शांतिदायी कार्यों में करें, यही है महात्मा गांधी का शांति-संदेश।[1]

गांधी जी देश की प्रगति के साथ-साथ सम्पूर्ण विश्व की प्रगति चाहते थे। उनका विचार था सभी राष्ट्रों को अपने विकास का अवसर मिलना चाहिये, तभी विश्व का कल्याण होगा। गांधी जी के अनुसार विश्व के विभिन्न राष्ट्र आत्मनिर्भर नहीं हैं बल्कि उनके मध्य अन्यान्योश्रित सम्बन्ध हैं। राष्ट्रीय प्रभुता की धारणा को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के निर्धारण में बाधक सिद्ध नहीं होना चाहिये। लोहिया जी भी गांधी जी की तरह विश्व का कल्याण चाहते थे। इसलिये वे एक नई दुनिया की कल्पना करते थे - उसी दरम्यान मैंने यह प्रश्न किया कि गांधी जी दुनिया की सरकारों, जितनी भी सम्भव हो सके से कहें कि ऐसी बुनियाद बनाई जाये कि जिस पर एक नई दुनिया बन सके। मैंने चार तत्व प्रेषित किये थे।[1] - एक देश की दूसरे देश में अब तक जो भी पूंजी लगी है, उसे जब्त करना २ - सभी को संसार में किसी भी स्थान पर आने-जाने, बसने का अधिकार ३ - सभी राष्ट्रों को राजनैतिक आजादी ४ - विश्व नागरिकता।[2]

लोहिया जी उक्त प्रकार की दुनिया का निर्माण करके मानवता का कल्याण करना चाहते थे। गांधी जी ने विभिन्न देशों के मध्य युद्ध का विरोध किया है। उनका विचार था कि विभिन्न देशों के बीच के आपसी मतभेद को दूर करने के लिये एक विश्व पंचायत होना चाहिये। इसके द्वारा

१- राजेन्द्र प्रसाद - गांधी जी की देन, पृष्ठ-१००
२- ओंकार शरद - लोहिया के विचार, पृष्ठ-१६०

राष्ट्रों के बीच होने वाले झगड़ों का फैसला होना चाहिये । लोहिया जी भी चाहते थे कि सभी राष्ट्रों में ऐसी पार्टियां बनें जो अपनी-अपनी सरकारों के खिलाफ सिविल नाफरमानी करें और उससे मांग करें कि विश्व पंचायत बनाने के लिये कदम उठावो । लोहिया जी ने कहा है कि - मैं समझता हूं कि गांधी जी के सिद्धांत को बाहरी मामलों में प्रयोग करने का इससे अच्छा रास्ता और अवसर नहीं हो सकता कि सारी दुनिया में कुछ लोग उठे और विश्व पंचायत की स्थापना की मांग करें और अपनी-अपनी सरकारों से शांतिपूर्ण अवज्ञा करें । जिस दिन ऐसा होगा, वह दिन निःसंदेह गांधी के सिद्धांतों के लिये एक बड़ा दिन होगा।[१]

गांधी जी के समान लोहिया जी भी विश्व के समस्त देशों से अच्छे सम्बन्ध बनाना चाहते थे । दोनों विश्व बंधुत्व के सिद्धांत को मानते थे । उन्होंने युद्ध का तीव्र विरोध किया । वे विश्व समुदाय को विविधता के मध्य एकात्मक रूप में देखना चाहते थे ।

चूंकि विश्व बंधुत्व के विचार को व्यावहारिक रूप देने के लिये गांधी जी ने सर्वप्रथम भारत से आशा की कि भारत अपनी विदेश नीति का निर्माण इस प्रकार करे जिससे उसके अपने पड़ोसी देशों और अन्य देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हों । लोहिया जी भी भारत की विदेश नीति इसी प्रकार की चाहते थे । (विस्तार से देखियेअध्याय-६) लोहिया जी विश्व बंधुत्व की भावना के विकास के लिये विश्वपंचायत या विश्व संघ का निर्माण शीघ्र ही करना चाहते थे । उन्होंने कहा था - यदि हम स्वर्णयुग की प्राप्ति की कोशिश करें , शायद अगली पीढ़ी के लिये एक ऐसी हालत मुमकिन कर दें कि जिसमें युद्ध-गरीबी और भय न रहे।[२]

१- डा०राममनोहरलोहिया - समाजवाद का सगुण रूप , पृष्ठ-२४
२- डा०राममनोहर लोहिया - इतिहास चक्र , पृष्ठ-४५

गांधी के मानवतावादी दृष्टिकोण से लौहिया बहुत प्रभावित थे। लौहिया ने देश व विदेश में सभी जगह पीड़ित मानवता का साथ दिया और उसे कष्ट से मुक्त कराने का प्रयास किया। ये विश्व सरकार की स्थापना के द्वारा विश्व के समस्त राष्ट्रों का कल्याण करना चाहते थे। मधु दण्डवते के अनुसार - लौहिया के अधिकतर राजनीतिक विचार गांधीवाद पर आधारित थे। ये दोनों ही विश्व नागरिक थे। इन दोनों ने विश्व सरकार की कल्पना की थी किन्तु फिर भी दोनों ही राष्ट्रीयता को अन्तर्राष्ट्रीयता का पूरक मानते थे।[1]

४) जातिवाद एवं अस्पृश्यता -

गांधी जी ने वर्णाश्रम की बड़ी प्रशंसा की पर जाति प्रथा में अनेक बुराइयां देखी हैं। इस जाति प्रथा की अनेक बुराइयों में एक बुराई यह भी है कि उसमें छुआछूत की भावना ने घर कर लिया है। छूत हिन्दू जाति का सबसे उपेक्षित वर्ग है। हिन्दू जाति का अछूत वर्ग धीरे-धीरे हिन्दू जाति से पृथक हो गया था। दयानन्द सरस्वती ने ही प्रथम बड़े पैमाने पर अछूतोद्धार का आन्दोलन चलाया। आर्य समाज में ब्राह्मणों को वही स्थान दिया गया जो एक भंगी या चमार को मिला। रामकृष्ण मिशन ने भी अछूतों के प्रति प्रेम दिखलाया। पर जितना गहन प्रभाव महात्मा गांधी के अछूतोद्धार आन्दोलन का पड़ा उतना अन्य किसी समाज सुधारक का नहीं पड़ा। उन्होंने कहा - अस्पृश्यता निवारण का अर्थ है मनुष्य-मनुष्य के बीच और भिन्न-भिन्न श्रेणी के प्राणियों के बीच की दीवारें तोड़ डालना।[2]

गांधी जी ने हरिजनों के कष्टों को महसूस किया और हरिजनोद्धार

- -

१- मधु दण्डवते - गांधी, लोहिया और दीनदयाल, पृष्ठ ३६

२- गांधी जी, सम्पादक - भारतन कुमारप्पा - सर्वोदय, पृष्ठ ३१

के लिये कार्य शुरू किया । इसी कारण आज जनता में जागरूकता आई है। वर्तमान समय में आज देश में उनके जीवन स्तर में कुछ परिवर्तन आया है । गांधीजी सभी जातियों के समान निम्न जातियों को उन्नति का समान अवसर देने के पक्ष में थे ।

गांधी जी ने हरिजन का अर्थ बताया ' हरि का जन ' । संसार के सभी धर्म ईश्वर को अनाथ का रखवाला और असहाय तथा निर्बल का रक्षक बताते हैं । भारत में करीब ४ करोड़ या इससे भी अधिक अनाथ, असहाय, निर्बल व्यक्ति हैं जिन्हें अस्पृश्य कहा जाता है । गांधी जी को हरिजनों की स्थिति देख कर बहुत कष्ट होता था । वे उनकी स्थिति में सुधार के लिये जीवन पर्यन्त प्रयत्न करते रहे । यू०एस०मोहनराव के अनुसार - अस्पृश्यों के लिये गांधी जी के दिल में सबसे ज्यादा दर्द था । उन्हें उन्होंने हरिजन कहा और हरिजनों की उन्होंने सबसे अधिक सेवा की ।[१]

उन्हें अछूतोद्धार में पर्याप्त सफलता मिली । उनके स्वप्नों को साकार करने के लिये भारत के संविधान में अछूतों के लिये एक विशेष - व्यवस्था की गई और सार्वजनिक स्थानों पर अस्पृश्यता का व्यवहार दण्डनीय माना गया । डा०पट्टाभि सीतारमैया के अनुसार - गांधी जी ऐसे नेता के लिये स्फूर्ति हैं, जिन्होंने एक सामाजिक, राजनैतिक कार्यक्रम को जन्म दिया है जिसमें अछूत कहे जाने वाले वर्गों, जिनको उन्होंने हरिजन का नाम दिया है, के सामाजिक और आर्थिक सुधार का महत्वपूर्ण स्थान है ।[२]

गांधी जी के अस्पृश्यता सम्बन्धी विचारों से डा०लोहिया बहुत प्रभावित थे । वे अस्पृश्यता को भारतीय जीवन के लिये अभिशाप समझते थे।

- -

१- यू०एस०मोहनराव, महात्मागांधी का संदेश, पृष्ठ-१५

२- डा०पट्टाभि सीतारमैया, महात्मा गांधी का समाजवाद, पृष्ठ-१६२

लोहिया जी सार्वजनिक स्थानों में सभी जातियों को प्रवेश का अधिकार देने के पक्ष में थे । उन्होंने कहा - अगर हरिजन को मंदिर में जाने से रोका जाता है तो और कोई भी नहीं जा सकेगा ।[1]

लोहिया जी का विचार था कि प्रजातंत्र में सभी जातियों, वर्गों, धर्मों के व्यक्तियों को समान अवसर मिलना चाहिये । भारत में समानता लाने के लिये आवश्यक है कि जाति विहीन समाज की स्थापना की जाये । बड़ी जाति के लोगों से लोहिया जी का आग्रह था - जाति मिटाओ लोगों को बराबरी का मौका दो जो योग्य हैं, उनको ऊँची जगहों पर बिठाओ ।[2]

लोहिया जी अस्पृश्यता को दूर करने के लिये निम्न जातियों की स्थिति को सुधार करने का मौका देने के पक्ष में थे । लोहिया जी की धारणा था - इनके पुराने संस्कार, परम्परा, परिपाटियों को बदल कर, आदतों को बदलकर नई आदतों और नये संस्कार उनमें आयें, इनको नया मौका मिले । इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं रह गया है ।[3]

लोहिया जी विशेष अवसर देकर हरिजनों का विकास करना चाहते थे । उनका विचार था कि शूद्रों से ऐसे नेता आगे आने चाहिये जो अपने विकास के लिये कार्य करें । राजनीतिक दलों को चाहिये कि वह निम्न वर्गों में से नेतृत्व का सृजन करें । उनका विचार था कि - जरूरत इस बात की है कि शूद्रों में से ऐसे नेता निकलें जो ना तो पलटन वाले हों और न सिर झुकाने वाले हों बल्कि नई आकांक्षा हासिल करें ।[4]

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - जाति प्रथा, पृष्ठ-२५
२- वही, पृष्ठ-१८
३- वही, पृष्ठ-११३
४- वही, पृष्ठ-३४

लोहिया जी मानते थे कि निम्न जातियों के विकास के लिये आवश्यक है कि इनको अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करना होगा और ऊँची जाति की तरह समाज में स्थान प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहित करना होगा । इसके साथ ही लोहिया जी का सुझाव था कि - अन्तर्जातिय विवाहों और सहभोजों की व्यवस्था के द्वारा जाति की संकुचित भावनाओं को तोड़ा जा सकता है । जिस दिन प्रशासन और फौज में भर्ती के लिये और बातों के साथ-साथ शूद्र और द्विज के बीच विवाह की योग्यता और सह-भोज के लिये इन्कार करने पर अयोग्यता मानी जायेगी । उसदिन जाति पर चोट मारने में कमाल शुरू होगा ।[१]

गांधी जी के साथ ही साथ डा० लोहिया ने भी जाति-व्यवस्था को समाप्त करने के लिये सराहनीय कार्य किया । इन दोनों ने न केवल जाति प्रथा की निंदा की बल्कि इसको दूर करने के सुझाव भी दिये । अपने सुझावों को इन्होंने स्वयं व्यवहार रूप में लागू किया और जातिगत भेदभाव को नहीं माना ।

वास्तव में देशकेविकास के लिये जाति में पूर्ण परिवर्तन की आवश्यकता है , इसके लिये गांधी और लोहिया के विचारों को अपनाकर ही कुछ परिवर्तन लाया जा सकता है । गांधी जी ने अछूतोद्धार के सम्बन्ध में जो विचार प्रस्तुत किये उन्हें लोहिया जी ने स्वीकार किया लेकिन वे गांधी जी से आगे निकल गये क्योंकि गांधी जी केवल जाति को मिटाने के पक्ष में थे जबकि लोहिया जी जाति के साथ-साथ वर्ण को भी समूल नष्ट करना चाहते थे । जहां गांधी जी वर्ण के पीछे कर्म पर जोर देते थे ,वहां लोहिया उसे जड़ से निर्मूल मानते थे । जहां गांधी जी समन्वयवादी थे वहीं लोहिया जाति और वर्ण को जड़ से नष्ट करने के पक्ष में थे । गांधी जी की जाति नीति समझौते की भूमिका प्रस्तुत करना चाहते थे , उसी को

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया, जाति प्रथा , पृष्ठ-४

बल भी मिला । बल उच्च जाति से मिलना था जिससे उनको उच्च जातीय धार्मिकता की आंच न आ सके । यही वजह है जिससे आज तक इस समस्या का समाधान नहीं हो सका । लोहिया जी पिछड़े वर्ग, हरिजन वर्ग को विशेष सुविधायें देकर उत्थान करना चाहते थे । वे उनके हृदय की हीन-भावना को समाप्त करना चाहते थे । यह तभी सम्भव हो सकता है जब इन लोगों को विशेष सुविधायें मिलें, इन्हें सरकारी श्रेष्ठ नौकरियां मिलें, राजनीतिक क्षेत्र में वरीयता मिले ।

लोहिया जी मानते थे कि जाति अवसर को सीमित करती है और योग्यता सिकुड़ने से अवसर और अधिक सीमित होते हैं । जाति देश में बौद्धिक बांझपन का सूखा रेगिस्तान बना देती है । बुद्धि में शायद आत्म प्रवंचना और समन्वय का पाखण्ड और कैजान भाव में शब्द लालित्य का गुण आ जाता है लेकिन इसकी मौलिकता खत्म हो जाती है विशेष अवसर देकर ही नीची जातियों में नई स्फूर्ति पैदा की जा सकती है । लोहिया जी का मत था कि - जाति का प्रारम्भिक रूप सभी जगह एक है, इसके साथ ही योग्यता व अवसर का सिकुड़ना भी । इसके निकलने का एक ही रास्ता है कि जिन समूहों को जाति ने कम या ज्यादा दबाया है, उन्हें विशेष अवसर दिये जायें ।[1]

जाति भेद का सबसे बड़ा परिणाम यह रहा है कि कुछ जातियों को अस्पृश्य माना गया । कुछ उच्च वर्णियों ने अस्पृश्य जाति में जन्मे व्यक्ति की छाया भी अपने शरीर पर पड़ना बड़ा निषिद्ध माना । इस तरह दलितों को पशु-पक्षियों से भी हीन माना गया । सामाजिक व्यवस्था में इतना गौण माना गया कि उनके निजि गुणों और शक्ति को प्रकट करने का उन्हें कभी अवसर नहीं मिला । गणेश मंत्री ने लिखा - विगत १०० वर्षों में भारत में सामाजिक विषमता के विरुद्ध आन्दोलन जारी है । महात्मा

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया " बिना अधिकारों की दुनिया और आत्म-भ्रान्तियां, जन मार्च अप्रैल-१९७०, पृष्ठ-१३

गांधी ने तो अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म पर कलंक बता कर सबका आंखें खोला।[१]

वास्तव में कर्म की प्रतिष्ठा और जाति का उन्मूलन लोहिया जी की दृष्टि में बहुत जरूरी था, बिना इसके समाजवाद की कल्पना करना सम्भव नहीं है। जाति की गहरी पकड़ ने कर्म के प्रति अनास्था पैदा की है। जिससे देश का इतिहास जकड़ गया है और देश का पतन हुआ है। इसलिये लोहिया जी ने जाति का जबर्दस्त विरोध किया।

वास्तव में गांधी जी के बाद देश में जो पीड़ित वर्ग है, पिछड़ा वर्ग है, हरिजन वर्ग है उसके उत्थान के लिये और उन्हें समाज में समान अधिकार का दर्जा दिलाने के लिये जितना काम डा० लोहिया ने किया उतना आज तक किसी ने भी नहीं किया।

४) महिला उत्थान -

महात्मा गांधी व्यक्ति की स्वतंत्रता पर बहुत जोर देते थे इसलिये वह व्यक्तिवादी विचारक थे। पुरुष की स्वतंत्रता के साथ-साथ वे स्त्रियों को भी पर्याप्त स्वतंत्रता देना चाहते थे। वह पुरुष और स्त्री को समान रूप से समस्त सामाजिक तथा राजनैतिक अधिकारों का अधिकारी मानते थे। उन्होंने कहा - "मैं स्त्री-पुरुष की समानता में विश्वास करता हूं इसलिये स्त्रियों के लिये "उन्हीं अधिकारों की कल्पना कर सकता हूं, जो पुरुषों को प्राप्त हैं।"

वे कानून और सम्पत्ति के सम्बन्ध में स्त्री व पुरुषों को समान अधिकार देना चाहते थे। स्त्रियों को हर क्षेत्र में पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिये। गांधी जी राजनीति में भी पुरुषों के बराबर स्त्रियों को

- -

१- गांधी जी सम्पादक भारतन् कुमारप्पा, सर्वोदय, पृष्ठ-६८

अधिकार देना चाहते थे। स्त्रियों को अपने विकास के लिये पुरुषों के समान अवसर प्राप्त होना चाहिये। उन्होंने कहा - दोनों (स्त्री-पुरुष) एक सा जीवन बिताते हैं। दोनों की एक सी भावनायें हैं। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। एक की सक्रिय सहायता के बिना दूसरा जी नहीं सकता।[१]

लोहिया जी का विचार था कि हिन्दू धर्म में स्वर्ण युगों में स्त्री के प्रति उदार दृष्टिकोण मिलता है जबकि कट्टरता के युग में उसे एक प्रकार की सम्पत्ति माना गया है जो पुरुष के अधिकार में रहती है। वे मानते थे कि जब तक कानून या रीति-रिवाज या दिमागी आदतों में स्त्री-पुरुष के बीच विवाह व सम्पत्ति के बारे में फर्क रहेगा, कट्टरता पूरी तरह खत्म नहीं होगी। जब तक उदारता व कट्टरता जुड़ी रहेगी तब तक हिन्दू अपनी स्त्रियों को अपने समान ही इन्सान नहीं मानने लगता।[२]

वर्तमान समय में औरतों को पुरुषों के समान अवसर प्राप्त न होने के कारण उनका दिमाग कुंठित हो गया है। वे देश व समाज की उन्नति के लिये अपनी राय देने में असमर्थ रहती हैं। समाज के विकास के लिये आवश्यक है कि उसके एक बड़े भाग को जो कूपमण्डूक बना हुआ है, उसका विकास हो। लोहिया जी औरतों की स्थिति देखकर बहुत चिंतित थे। उन्होंने कहा - नर-नारी की गैर-बराबरी शायद है सब गैर-बराबरियों के लिये या अगर आधार नहीं है तो जितने आधार हैं, बुनियाद की चट्टानें हैं, समाज में गैर-बराबरी की और नाइंसाफी की, उनमें शायद यह सबसे बड़ी चट्टान है। मर्द-औरत के बीच की गैरबराबरी और नर-नारी की गैर-बराबरी।[३]

- -

१- गांधी जी, सम्पादक - भारतन् कुमारप्पा, सर्वोदय, पृष्ठ-६५
२- डा० राममनोहर लोहिया, हिन्दू बनाम हिन्दू पृष्ठ ५-६
३- डा० राममनोहर लोहिया - जाति-प्रथा, पृष्ठ-१६२

लोहिया जी ने शोषित औरतों की आत्मा को पहचाना और उन्होंने औरतों के विकास के लिये और उन्नति के लिये नर-नारी आन्दोलन खड़ा किया था। यही कारण है कि उनके प्रति आकर्षित होने वाले औरतों की संख्या अधिक थी।

लोहिया जी ने बीसवीं शताब्दी में दुनिया में चल रही सात-क्रान्तियों में नरनारी समता क्रांति को महत्त्वपूर्ण मानकर कहा कि - नर-नारी के बीच की गैर-बराबरी खत्म किये बिना अन्य गैर-बराबरियाँ समाप्त करना असम्भव है। वे पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा आदि का विरोध करते थे क्योंकि इन प्रथाओं के कारण स्त्रियों की स्थिति दयनीय हो गई है। इसलिये वे स्त्री शिक्षा पर बल देते थे जिससे वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होकर उनके लिये लड़ सके। गांधी जी ने सार्वजनिक जीवन औरतों के लिये खुला किया, लोहिया ने महत्त्वपूर्ण स्थान पर बिठाया। वे औरतों को उपभोग की निर्जीव वस्तु या गुड़िया नहीं मानते थे।

लोहिया जी स्त्रियों के स्वास्थ्य के लिये भी चिंतित थे उनका विचार था कि महिलाओं के स्वास्थ्य से पुरुषों, बच्चे व बच्चियों का स्वास्थ्य जुड़ा है। वे परिवार-नियोजन के पक्ष में थे। वे कहते थे कि - मेरा विश्वास है कि हर पति-पत्नि की जिनके तीन बच्चे हो चुके हों, प्रजनन शक्ति नष्ट कर देना चाहिये।[१]

उन्होंने माना कि दहेज प्रथा की समस्या नारी जाति के लिये बहुत बड़ा अभिशाप है। इस प्रथा ने नारी की स्थिति को बहुत शोचनीय बना दिया है क्योंकि दहेज की मांग पूरी न होने पर लड़की को उसकी ससुराल में सताया जाता है, यहाँ तक कि जान से भी मार दिया जाता है। वे दहेज प्रथा का उन्मूलन शीघ्र ही चाहते थे।

- -

१- इन्दुमति केलकर - लोहिया सिद्धांत और कर्म, पृष्ठ-४४७

लोहिया जी का विचार था कि हमारे समाज में हर आदमी चाहता है कि नारी उसकी कितना भी अच्छी हो , बुद्धिमान हो, चतुर हो , तेज हो पर उसके कब्जे में रहे । भारत की अपेक्षा यूरोप में नारियों की स्थिति अच्छी है । उन्हें पुरुषों के समान प्रत्येक क्षेत्र में अधिकार प्राप्त है । नारी को आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न बनाकर उसकी स्थिति को सुधारा जा सकता है । उन्होंने नारी के सहयोग के बिना समाजवादी आन्दोलन को नपुंसक कीर्ति विवाह की संज्ञा दी थी । इसलिये वे स्त्रियों की स्थिति सुधारना चाहते थे। अनिल कुमार ने लिखा है - लोहिया जी की छुआछूत और पिछड़ेपन की परिधि में मात्र अछूत जातियाँ नहीं है , वहाँ पिछड़ा तबका औरत भी है । चाहे पढ़ी-लिखी ब्राम्हण विदुषी हो , पुरुषवर्ग में उसका दर्जा अबला का ही रहता है । यह बात लोहिया ने गांधी जी की अपेक्षा अच्छी तरह समझी थी ।[१]

गांधी जी ने स्त्रियों की जो समस्यायें बताई उनको लोहिया जी ने विस्तार से देखा और वे स्त्रियों की समस्याओं को दूर करने का प्रयास करते रहे । उनका विचार था कि नारी का उत्थान होने पर ही समाज का कल्याण सम्भव है । वे स्त्रियों को प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के समान अधिकार देने के पक्ष में थे । वे गांधी जी के 'रामराज्य' के स्थान पर सीता राज्य लाना चाहते थे जिसमें स्त्री-पुरुषों दोनों की समता पर आधारित स्नेहयुक्त सुखी भरा रिश्ता रहेगा । एक बार लोहिया जी ने कहा भी था कि स्त्री और पुरुष दोनों में हार-जीत का कोई सवाल नहीं उठेगा बल्कि परस्पर प्रेम बढ़ेगा ।

७) <u>ग्राम स्वराज्य -</u>

गांधी जी की धारणा आदर्श रामराज्य की है । रामराज्य

- -

१- अनिल कुमार 'गांधी और लोहिया चिंतन के स्वर' पर जन सित०-अक्टूबर १९७०, पृष्ठ-२३

ग्रामीणगणतंत्रों की संघात्मक व्यवस्था है जिसमें निम्नतम स्तर पर प्रत्येक ग्रामीण जन-समूह एक स्वायत्तशासी इकाई का निर्माण करेगा । लोक-तंत्र तथा केन्द्रीयकरण की धारणाओं में परस्पर अन्तर्विरोध है । गांधी जी का विचार था कि केन्द्र में बैठकर २० व्यक्ति लोकतंत्र का क्रियान्वयन नहीं नहीं कर सकते । लोकतंत्र का कार्यान्वयन नीचे से प्रत्येक गांवों के लोगों द्वारा किया जायेगा। ऐसी व्यवस्था में ग्राम का प्रत्येक व्यक्ति जन-समूह के सार्वजनिक मामलों के प्रबन्ध में सक्रिय भाग लेगा । गांधी जी की धारणा में लोकतंत्र शासन , संगठन, पंचायती राज्य की व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत शासन का मूल तत्व इकाई एक आत्मनिर्भर और स्वायत्तशासी गांव होगा । उनका विचार था - मेरा उद्देश्य ग्राम-शासन का नक्शा पेश करना है । इस शासन व्यवस्था में व्यक्तिगत स्वतंत्रता के आधार पर पूर्ण लोकतंत्र है । व्यक्ति अपने शासन का आप ही निर्माता है , उस पर और उसकी सरकार पर अहिंसा के कानून का राज्य होता है । उसमें और उसके गांवों में दुनिया भर की ताकत का सामना करने की सामर्थ्य होती है क्योंकि प्रत्येक ग्रामीण के लिये मुख्य धर्म यह है कि वह अपनी और अपने गांव की रक्षा में प्राण दे दे ।[1]

गांधी जी चाहते थे कि प्रत्येक गांवों अपनी सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अपने पड़ोसियों पर निर्भर नहीं होगा । गांवों में भोजन के लिये पर्याप्त उत्पादन कृषि योग्य भूमि से हो और वस्त्रों के लिये कपास की खेती , चर्खे , करघे आदि की व्यवस्था हो जिससे गांव के लोग सुखी व समृद्ध हों । उन्होंने कहा - ग्राम स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि प्रत्येक गांव सम्पूर्ण गणराज्य होना चाहिये जो अपनी जीवन सम्बन्धी आवश्यकताओं के लिये अपने पड़ोसियों से स्वतंत्र हो और फिर

१- गांधी जी , सम्पादक - भारतन् कुमारप्पा, सर्वोदय, पृष्ठ-९८

भी अन्य बहुतसी बातों में जिनमें आश्रितता जरूरी है , वे एक-दूसरे पर निर्भर रहें ।[१]

गांधी जी मानते थे कि बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण होने से गांव का शोषण होता है इसलिये वे चाहते थे कि मशीनों के द्वारा मनुष्यों का शोषण न हो । बड़ी मशीनें राज्य के अधीन रहें और इनका प्रयोग लोकहित में हो । गणेश मंत्री के अनुसार - शोषण पर प्रतिबन्ध गांधी जी के विचार में यह एक आधारभूत लक्ष्मण रेखा है । उद्योगों को बड़ा आकार , उनकी निरन्तर बढ़ती हुयी विराटता , उत्पादन-उपभोग के बीच फैलती हुई दूरी ये इस लक्ष्मण-रेखा को नष्ट नहीं करती । इसलिये गांधी जी का आग्रह रहा उत्पादन और उपभोग के सामीप्य पर याने अधिक से अधिक मामलों में आत्मनिर्भर ग्राम-समुदाय पर ।[२]

उन्होंने ग्राम स्वावलम्बन पर विशेष जोर दिया। विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था और ग्राम स्वराज्य पर आधारित राजनीतिक शक्ति के वितरण की परिकल्पना रखी । गांधी जी चाहते थे कि प्रत्येक गांव अपने कुएं, चौपाल , मनोरंजन-स्थल , चारागाह , प्रारम्भिक पाठशाला, जलाशय आदि की व्यवस्था तथा प्रबंध स्वयं करेगा । गांवों के आपसी वाद-विवाद पंचायत तय करेगी। ऐसी व्यवस्था वास्तविक लोकतंत्र होगी । डा०पट्टाभि सीतारामैया के अनुसार , गांधी जी ने स्वराज्यका शक्ति और सत्ता का उपयोग नहीं बतलाया बल्कि प्रेम और अहिंसा के सिद्धांत के प्रचार के द्वारा सब के लिये समान भोजन और वस्त्र की प्राप्ति बतलाया।[३]

लोहिया जी का कहना है कि तत्काल नीति के सिद्धांत ने अर्थशास्त्र और राजनीति के क्षेत्र में दो संकल्पनायें - प्रथम स्वयपूर्ण ग्राम और द्वितीय ग्राम गणतंत्र या ग्राम सरकार है । लोहिया जी इन

- -

१- गांधी जी , सम्पादक भारतन कुमारप्पा, सर्वोदय, पृष्ठ-१४७
२- गणेश मंत्री - मार्क्स , गांधी और सार्थक सन्दर्भ , पृष्ठ-२७
३- डा०पट्टाभि सीतारामैया, महात्मा गांधी का समाजवाद,पृष्ठ-६५

दोनों संकल्पनाओं को गांधी जी की देन मानते हैं और उन्हें विकेन्द्रीकरण पर आधारित करते हैं। वे कहते हैं कि - यद्यपि गांधी जी की रचनाओं में जटिल मशीनों, वायुयानों, रेलवे इंजिनों, रेलवे उद्योग आदि वस्तुओं के बारे में लिखा है पर उनके विचारों की सामान्य दिशा मस्तिष्क में किंचित मात्र सन्देह नहीं छोड़ती कि वे आत्म पर्याप्त और ग्राम गणतंत्र के पक्ष में थे।[1]

लोहिया जी कहते हैं कि अब समस्या इस बात की है कि उपरोक्त जटिल यंत्रों के विकास के साथ यह आत्म पर्याप्त गांव और ग्राम गणतंत्र के सिद्धांत का कैसे सामंजस्य किया जाये। उनका विचार है कि - ग्राम गणतंत्र शब्द वैसा ही प्रतीकात्मक है जैसा कि कताई का चरखा जो कि कपड़े बनाने की बड़ी-बड़ी मिलों के होते हुए भी गणतंत्र दिवस के अवसर पर एक सार्वजनिक पार्क में हजारों अन्य व्यक्तियों के साथ गणतंत्र के राष्ट्रपति द्वारा समारोही रूप में सूत कातने के लिये प्रयोग होता है। वह केवल एक दिशा है कि विषय और दिशा एक विकेन्द्रीकरण, एक विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था और विकेन्द्रित पद्धति की है।[2]

लोहिया जी कहते हैं कि समाजवादी वर्तमान सभी उपकरणों का प्रयोग करेंगे और खोजे गये उपकरणों का भी प्रयोग करेंगे। विकेन्द्रीकरण राज्य शक्ति के विकेन्द्रीकरण के लिये यह सिद्धांत निश्चित किया जा सकता है कि देश की रक्षा और एकता के अनुरूप वांछनीय शक्तियां ग्रामों और नगरों को दी जाये। इस सिद्धांत को एकाएक लागू नहीं किया जा सकता। इसे व्यवहारिक बनाने में पूरी शताब्दी लग सकती है। जहां तक अर्थव्यवस्था का सम्बन्ध है, लोहिया जी का मत यह न था कि

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया, मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-१२०
२- वही पृष्ठ-१२१

बरते की अर्थव्यवस्था हो, उनका आशय यह था कि - छोटी इकाई के उपकरण से इनके लिये बहुत बड़ी पूंजी की आवश्यकता न हो और ग्राम स्वायत्त हो ।[1]

वे आत्म पर्याप्त संकल्पना को त्याग देने के पक्ष में थे और ग्रामों के पारस्परिक और विश्व के सम्बन्ध के पक्ष में थे । उनके मस्तिष्क में सम्पन्न नहीं सदजीवन महत्व रखता था और इसी को वे विश्व स्तर पर उपलब्ध करना लक्ष्य मानते थे ।

लोहिया जी गांधी जी के ग्राम स्वावलम्बन और ग्राम स्वराज्य दोनों के समर्थक थे । वे विकेन्द्रीकरण के द्वारा गांवों में गणतंत्रात्मक सरकार की स्थापना करना चाहते थे । गांधी जी के प्रभाव के कारण ही लोहिया जी के चिंतन का विकेन्द्रीकरण महत्वपूर्ण अंग बन गया । लोहिया जी ने गांधी जी के ग्राम स्वराज्य की कल्पना को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास अपने चौखम्भा सिद्धांत के द्वारा किया , वे चौखम्भा योजना के द्वारा गांवों को स्थानीय स्वशासन से सम्बन्धित अधिकार देने के पक्ष में थे । इसी तरह वे आर्थिक क्षेत्र में भी छोटी मशीन योजना के द्वारा ग्रामवासियों की स्थिति में सुधार करना चाहते थे जिससे वे पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर बन सकें । अपने इन सिद्धांतों के द्वारा लोहिया जी गांधी जी के ग्राम स्वराज्य की स्थापना करना चाहते थे । वे मानते थे कि गांवों का विकास होने पर ही देश की उन्नति सम्भव हो सकती है ।

(८) स्वतंत्रता और समानता -

नोट - (वैसे समानता और स्वतंत्रता के सम्बन्ध में अध्याय-५ में विस्तार से वर्णन किया गया है, चूंकि गांधी जी ने स्वतंत्रता व समानता के विचारों को व्यक्त किया है इसलिये इसको यहां लिखा जा रहा है ।)

१- डा० राममनोहर लोहिया, मार्क्स गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-१३१

व्यक्ति को आत्मानुभूति की उपलब्धि कराना गांधी जी की विचारधारा का मुख्य उद्देश्य है जिसके लिये व्यक्ति को समाज से अनेक अधिकारों और स्वतंत्रताओं की अपेक्षा रहती है और उनकी प्राप्ति करता हुआ व्यक्ति समाज की सेवा कर सकता है। स्वतंत्रता का अर्थ निर्भीकता से है। निर्भय होकर व्यक्ति समाज की सेवा कर सकता है और व्यक्ति स्वयं अपने ऊपर वही प्रतिबन्ध लगाता है जो उसकी अन्तरात्मा से उत्पन्न होते हैं। ऐसी स्वतंत्रता के पीछे नैतिक बल होता है न कि कानूनी गांधी जी का राजनैतिक स्वतंत्रता से अभिप्राय स्वराज्य प्राप्ति से है। इस स्वतंत्रता के आधार पर गांधी जी ने राष्ट्रीय आत्म निर्णय के सिद्धांत का समर्थन किया है। राष्ट्रीय आत्मनिर्णय की मांग राष्ट्रनिर्माण करने वाली समस्त जनता द्वारा की जा सकती है, तभी वास्तविक राजनीतिक स्वतंत्रता होगी। व्यक्ति को विचार और अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता होना चाहिये। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि बिना आर्थिक स्वतंत्रता के राजनीतिक और वैयक्तिक स्वतंत्रतायें कोई अर्थ नहीं रखता है। इसलिये उन्होंने बड़ी मशीनों का विरोध किया क्योंकि इससे आर्थिक केन्द्रीयकरण बढ़ता है और जनता का आर्थिक शोषण होता है। गणेश मंत्री के अनुसार - " हिन्द स्वराज्य " में गांधी ने मशीन का पूर्ण विरोध किया था पर इस बात को सर्वथा भुला दिया कि मशीन का यह विरोध एक खास सन्दर्भ में था। व्यापक बेरोजगारी और फालतू मेहनत के रहते हुए मशीनीकरण की दीवानेपन के विरुद्ध बाद के वर्षों में गांधी की दृष्टि बहुत कुछ साफ हो चुकी थी। मशीन मनुष्य का स्थान ना ले ले, वे उसे बेरोजगार ना बनाये, उसकी स्वतंत्रता - स्वायत्ता का अपहरण न करे।[१]

उन्होंने लोकतंत्र के निर्माण के लिये समानता की धारणा को महत्वपूर्ण माना है। वे लोकतंत्र के आधारभूत सिद्धांत समानता, स्वतंत्रता

- -

१- गणेश मंत्री - मार्क्स, गांधी और आधुनिक सन्दर्भ, पृष्ठ २७-२८

और न्याय मानते थे । वे व्यक्तियों के मध्य जाति , सम्पत्ति और रंग आदि के भेदभाव का विरोध करते हैं और समान कार्य के लिये समान वेतन की बात कहते हैं । गांधी जी ने आर्थिक समानता के लिये पुंजीवाद का जबर्दस्त विरोध किया है और घरेलू उद्योग-धन्धों का समर्थन किया है जिससे गरीब व्यक्तियों को भी रोजगार प्राप्त हो सके । राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है - इस तरह गांधी जी घरेलू उद्योगों पर जोर देते हैं । सूत कातना, खद्दर बुनना , तेल या चावल तैयार करना वगैरह उनके घरेलू उद्योगों के उदाहरण हैं , जिनका प्रयोग भी बहुत कुछ हो चुका है । इससे बेकारी बिल्कुल दूर होती है और धन का समान वितरण होता है ।[१]

समाजवाद हिंसा के द्वारा पुंजीपति वर्ग को समाप्त करना चाहता है । समाजवाद में अमीरों की सम्पत्ति छीन कर गरीबों में बांटने की व्यवस्था की गई है लेकिन इस व्यवस्था के द्वारा पुंजीपति वर्ग में भी प्रतिहिंसा की भावना पैदा होती है । इस प्रकार समाज में संघर्ष व्याप्त रहता है जबकि - गांधी वाद के अनुसार - हम अमीरों को इस प्रकार बदल देंगे और शोषण का मोह इस प्रकार बंद कर देंगे कि वह स्वयं अपनी खुशी से साधारण लोगों की श्रेणी में उतर आवेगा , उसका यह परिवर्तन हृदय से होगा ।[२]

गांधी जी मानते थे जिस प्रकार शरीर के सभी अंग समान हैं उसी प्रकार समाज के सभी सदस्य समान हैं वे मानते थे - समाजवाद एक सुंदर शब्द है और जहां तक मैं जानता हूं समाजवाद में समाज के सभी सदस्य समान हैं , कोई ऊंचा नहीं है , कोई नीचा नहीं है ।[३]

- -

१- राजेन्द्र प्रसाद - गांधी जी की देन, पृष्ठ-५२
२- वही पृष्ठ-५६
३- कृ०रा० मोहनराव, महात्मा गांधी का संदेश, पृष्ठ-६८

लोहिया जी भी गांधी जी की भांति हृदय-परिवर्तन के द्वारा परिवर्तन लाये जाने पर जोर देते थे । वे मानते थे कि हिंसा से परिवर्तन लाने पर बहुतों को तकलीफ होगी । हृदय से हुआ परिवर्तन प्रजातांत्रिक मान्यताओं के अनुकूल होगा । वे कहते थे हृदय परिवर्तन जो क्रांति को छोड़ सत्य के आधार पर लाया जायेगा , वह सही होगा।कृष्ण नन्दन ठाकुर के अनुसार - इस प्रकार लोहिया जी यह मानते हैं कि गांधी जी के विचारों में जो सबसे महत्वपूर्ण बात है , वह है हृदय परिवर्तन की । क्रांति और खून-खराबा से परिवर्तन लाने की बात इतिहास में भरी पड़ी है । नर-संहार होते हैं - परिवर्तन होता किन्तु सत्य का दामन थामकर और हृदय परिवर्तन के माध्यम से समाज को बदलना और अपना राजनीतिक - उद्देश्य पूरा करना, यह दुनिया के लिये बड़ी उपलब्धि है । गांधी जी को ही इसके लिये सारा श्रेय अगर दिया जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी ।[1]

डा० लोहिया के धार्मिक दृष्टिकोण में हृदय परिवर्तन की जो बात है , वह गांधी जी के सिद्धांत पर आधारित है । लोहिया जी ने गांधी जी की इस बात को दिखलाया है कि गांधी ने क्या किया , बड़े लोगों का हृदय परिवर्तन गांधी जी ने अपने ६० वर्ष के राजकीय जीवन में शायद ६ महीने बिताये होंगे , इरविन साहब और बिड़ला साहब के हृदय परिवर्तन के लिये साठ-उनसठ वर्ष बिताये , खेत-मजदूर किसान , दुकानदार , किरानी , मास्टर, मध्यम वर्ग , विद्यार्थी का दिल बदलने के लिये ।[1]

लोहिया जी ने गांधी जी की भांति कुटीर उद्योग और छोटी मशीन योजना का विचार देश में समानता लाने के लिये व्यक्त किया ।

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया, देश गरमाओ - पृष्ठ ६८-६९

गांधी जी ने यह माना कि नेहरू जी की समाजवाद में आस्था वास्तविक है लेकिन उन्हें इस बात पर विश्वास नहीं था कि अहिंसा, ट्रस्टीशिप और ग्रामोद्योग द्वारा समाजवाद लाया जा सकता है, उनके तरीके में अन्तर है। फिर भी गांधी जी ने एक गांधीवादी की अपेक्षा एक समाजवादी को अपना उत्तराधिकारी चुना।

किशन पटनायक के अनुसार - सम्पत्ति जब्त किये जाने के पहले हृदय परिवर्तन हो, यह गांधी जी के सामाजिक सिद्धांत की विशेषता है। हृदय परिवर्तन का व्यवहारिक मतलब यही है कि सम्पत्ति जब्त किये जाने से पहले ही सम्पत्तिवाले के हृदय में इस तरह परिवर्तन हो जबकि वह सम्पत्ति का मोह छोड़ दे।[1]

गांधी जी औद्योगीकरण को विषमता का मुख्य कारण मानते थे। यशपाल के अनुसार - गांधीवाद मशीन की सहायता से बढ़ी हुई समाज की पैदावार की शक्ति को ही सामाजिक विषमता, अन्तर्द्वन्द्व और हिंसा अर्थात् वैमनस्य संघर्ष का मूल कारण मानता है। इस विषमता से मुक्ति का उपाय वह विकसित मशीनों का उपाय छोड़कर आवश्यक वस्तुओं की पैदावार से चलने वाले औजारों की सहायता से व्यक्तिगत और घरेलू रूप से करना चाहता है।[2]

सम्पत्ति की समानता के साथ-साथ गांधी जी नर-नारी की समानता आवश्यक समझते थे। उन्होंने माना - स्त्री-पुरुष की साथिनी होती है और उसे वही मानसिक शक्तियां प्राप्त होती हैं, जो पुरुष को। उसे पुरुष की समस्त गतिविधियों में पूरा तरह भाग लेने का अधिकार होता है। उसे भी स्वतंत्रता का उतना ही हक

- -

१- किशन पटनायक, "ट्रस्टीशिप का विचार" जन गांधी शताब्दी अंक सितम्बर-अक्टूबर, १९६९ पृष्ठ-२१

२- यशपाल - गांधीवाद की शव-परीक्षा, पृष्ठ- १०१

है, जितना पुरुष को। उसका अपने कार्यक्षेत्र में वही स्थान है जो पुरुष को अपने कार्यक्षेत्र में।[१]

लोहिया जी भी जहाँ मानवमूल्यों का क्रम करते थे वहाँ नारी जाति को ऊँचा उठाने के लिये प्रयत्न करते थे। उन्होंने गांधी जी के विचारों को मान्यता प्रदान की और उनके आदर्शों को यथार्थ रूप देने का प्रयत्न किया। मानवता के बारे में करुणा, मानव जीवन को छूने वाली सर्वव्यापकता का बुनियादी विचार और अन्याय के प्रति संघर्ष आदि बातें लोहिया व गांधी में समान हैं। मानुषी व्यक्ति को केन्द्र बिन्दु मानकर उसी धुरी पर दोनों के विचार और कर्म घूमे। दोनों का उद्देश्य सम्पूर्ण मानव जाति का कल्याण करना था।

६- ईश्वर में आस्था -

गांधी जी को व्यवहारिक आदर्शवादी कहा जाता है। उन्होंने राजनीति की समस्याओं को आध्यात्मिक चिंतन के रूप में व्यक्त किया है। वे हिन्दू धर्म में अटूट आस्था रखते थे। परन्तु हिन्दू धर्म को उन्होंने एक मानव धर्म के रूप में अपनाया है, न कि अन्ध-विश्वास या धार्मिक उन्मादिता के रूप में। वे धर्म और नैतिकता में भेद नहीं करते थे। उनका ईश्वर में अति विश्वास था, उनके मत से बिना ईश्वर में विश्वास किये मनुष्य न तो अपने ऊपर विश्वास कर सकता है, न दूसरों के ऊपर। वे आध्यात्मवाद में विश्वास रखते थे। ईश्वर और आत्मा के सम्बन्ध में उन्होंने गहरा अध्ययन किया है। आत्मा और ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करना मनुष्य का परम कर्तव्य है। राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है कि -महात्मा जी चाहते थे - कि सब ईश्वर को पहचानें

- -

१- कृ०एल०मोहनराव - महात्मा गांधी का सन्देश, पृष्ठ-८०३

और याद रखें । इससे उनका सारा जीवन सुसंस्कृत हो जावेगा और वे शुद्ध और पवित्र हो जावेंगे ।[1]

वे ईश्वर के विश्वास के आधार पर समाज में व्याप्त अन्याय को दूर करने के लिये सत्याग्रह करते थे । कई दिनों तक लगातार उपवास करते थे । बड़ी से बड़ी समस्याओं को सुलझाने में सफल हो जाते थे । यू०एस०मोहनराव के अनुसार - गांधी जी की शक्ति का सबसे बड़ा स्रोत ईश्वर में उनका यही पूर्ण विश्वास था । उनका विश्वास था कि मैं ईश्वर के हाथों में एक छोटा-सा उपकरण हूं और ईश्वर ही जानते हैं कि मुझसे कैसे और क्या काम लिया जाये ।[2]

लोहिया जी को गांधी जी के समान ईश्वर में आस्था नहीं थी। गांधी जी ने एक बार लोहिया जी से पूछा ' क्या तुम ईश्वर में विश्वास करते हो '? लोहिया जी ने मना कर दिया । गांधी जी का कहना था कि बिना ईश्वर में विश्वास किये हुए उनका सत्याग्रह सफल नहीं हो सकता । लोहिया जी ईश्वर के मानने वालों का विरोध नहीं करते थे । वे धर्म के रास्ते में रुकावट नहीं डालते थे । उन्होंने स्पष्ट कहा कि - मैं ईश्वर को नहीं मानता यद्यपि मैं इतना बेवकूफ नहीं हूं कि अपने को ईश्वर मानने वालों से श्रेष्ठ समझूं, हर एक का अपना ढंग होता है । मैंने उन लोगों को देखा जो ईश्वर में विश्वास करते हैं , साधारण लोग जो मंदिर , मस्जिद या गिरजा में जाकर शांति पाते हैं और मैं उन्हें ऐसा करने से कभी नहीं रोकूंगा।[3]

लोहिया जी ने आदर्श की अपेक्षा कार्य को महत्व दिया।

- -

१- राजेन्द्र प्रसाद, गांधी जी की देन, पृष्ठ-६८
२- यू०एस०मोहनराव - गांधी जी का संदेश, पृष्ठ २-३
३- ओंकार शरद - लोहिया के विचार , पृष्ठ-२०२

चूंकि ईश्वर और धर्म सम्बन्धी विचार आदर्शवादी दृष्टिकोण रखते हैं, इस कारण लोहिया जी उनमें विश्वास नहीं करते थे। उन्होंने कहा कि - आधुनिक व्यक्ति मस्तिष्क गम्भीर रूप से पीड़ित है, वह यह है कि आदर्श को यथार्थ बनाने के प्रयास के स्थान पर यथार्थ को आदर्श बनाने की प्रवृत्ति रखता है। भले चाहे व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित हो या सामूहिक जीवन से, वह सामूहिक जीवन चाहे राज्य के अन्दर हो या अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों से सम्बन्धित हो।[1]

लोहिया जी को ईश्वर में आस्था नहीं थी, इस कारण उन्हें नास्तिक नहीं कहा जा सकता। गांधी जी के पूछने पर लोहिया जी ने यह तो कहा कि मैं ईश्वर को नहीं मानता लेकिन साथ में उन्होंने यह भी कहा "मनुष्य के अन्दर करुणा का जो सागर है, वह कभी नहीं सूखना चाहिये। लोहिया जी का दूसरा वाक्य " मनुष्य में करुणा करुणा रखनी चाहिये " उनके व्यक्तित्व को उजागर करता है। उनकी निगाह में अन्याय से लड़ना ही राजनीति और न्याय का सबसे बड़ा धर्म है। डा० लोहिया की यह दृष्टि बहुत ही मार्मिक व मानवीय है। लोहिया जी में गांधी जी की तरह ईश्वर में आस्था अवश्य नहीं थी, पर वे न्याय के प्रति संघर्ष करना अपना धर्म समझते थे, मानवता का हित ही उनका सबसे बड़ा धर्म था।

१०) <u>स्वदेशी -</u>

महात्मा गांधी राष्ट्रवादी थे यद्यपि उन्हें समस्त मानवता से प्रेम था उनका कहना था कि पहले मैं भारतीय हूं और बाद में कुछ और हूं। आर्थिक स्वतंत्रता के लिये उन्होंने स्वदेशी के आन्दोलन का आधार

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-१८१

उनकी स्वदेशी की धारणा था । उन्होंने कहा - विदेशी वस्तुओं को छोड़कर सारी वस्तुएं देश की बनी हुई इस्तेमाल की जायें । देशी वस्तुओं का उपयोग देश के उद्योगों की रक्षा के लिये जरूरी है , खास तौर पर उन उद्योगों की रक्षा के लिये , जिनके बिना भारत दरिद्र हो जायेगा इसलिये मेरी राय में स्वदेशी की प्रत्येक विदेशी वस्तु का भले ही वह कितनी ही उपकारक क्यों न हो और किसी को दरिद्र भी क्यों न बनाती हो ,बहिष्कार करता है , वह संकुचित स्वदेशी भी है ।[1]

स्वदेशी का प्रयोग उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में किया है । धर्म के क्षेत्रों में स्वदेशी का अर्थ था , अपने वंशानुगत धर्म का पालन करना, वे धर्म परिवर्तन के विरुद्ध थे । राजनीतिक क्षेत्र में स्वदेशी का अर्थ वे बताते थे कि हमें अपने देश की ही राजनीतिक संस्थाओं को स्वीकार करना चाहिये अर्थात् गांधी जी भारतीय राजनीतिक संस्थाओं को स्वतंत्र भारत में पुनः चलाना चाहते थे । वे आर्थिक क्षेत्र में स्वदेशी का अर्थ बताते थे कि हमें अपने निकटतम पड़ोसियों की बनी हुई चीजों का प्रयोग करना चाहिये । जयदेव सेठी के अनुसार - गांधी जी के लिये स्वदेशी का आशय था - व्यक्तिगत , सामाजिक और राजनीतिक स्तरों पर एक अत्यन्त ऊँचे स्तर की आत्मनिर्भरता ।[2]

स्वदेशी आन्दोलन से उन्होंने देशवासियों के मन में स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्यार उत्पन्न किया । उनका विचार था कि विदेशी वस्तुओं से बना हुआ सामान भारत में आने से भारत बर्बाद हो गया है। गांधी जी ने लिखा है - मैनचेस्टर ने हमें जो नुकसान पहुंचाया है , उसकी

- -

१- गांधी जी सम्पादक- भारतन् कुमारप्पा, सर्वोदय, पृष्ठ-२७-२८
२- जयदेव सेठी - गांधी की प्रासंगिकता , पृष्ठ-५१

ढंग से चुना और अपनाया जाता है अगर हिन्दुस्तानी लोग कभी दासवृत्ति और समन्वय में फर्क करना सीख लें, तो मुमकिन है कि गांधी का विचार सचमुच विकसित हो और फूले-फले ।[1]

स्वदेशी का प्रचार देशवासियों में आत्मनिर्भरता की भावना भरेगा और उनका शोषण कम होगा । छोटे उद्योग-धन्धों के पनपने से गरीबों की स्थिति में सुधार होगा, इस प्रकार से आर्थिक सन्तुलन स्थापित होगा । गांधी जी के स्वदेशी आन्दोलन से प्रभावित होकर लोहिया जी ने छोटी मशीन योजना की व्यवस्था का निर्माण करना चाहा जिससे देश में अत्यधिक उत्पादन कार्य बढ़ाया जा सके और लोगों को पूर्ण रोजगार प्राप्त हो सके ।

१७ स्वतंत्र भारत का स्वरूप -

गांधी जी राज्य को मानव की दुर्बलताओं की उपज मानते थे । और गांधी जी ने राज्य को वर्ग संगठन न कहकर हिंसा का केन्द्रीय व संगठित रूप कहा है । उनके मत से ऐसा राज्य आत्मा विहीन यंत्र के तुल्य है जो केन्द्रानुकूल संगठन के रूप में हिंसा का प्रतिनिधित्व करता है । वह मनुष्य के विकास के मार्ग को अवरुद्ध करता है । वे राजनीतिक सत्ता को साध्य नहीं बल्कि मानव की उन्नति के प्रत्येक क्षेत्र में साधन मात्र मानते थे । गांधी जी मनुष्य को महत्व देते थे । गणेश मंत्री ने लिखा है कि - गांधी जी की मूल प्रणाली में जोर तंत्र पर नहीं मनुष्य पर रहा है । मनुष्य जिसका अपना नितान्त निजी जीवन भी है और जो परिवार, ग्राम, समुदाय और राष्ट्र के सदस्य के रूप में एक बड़े तंत्र का सजीव अंग भी है, पुर्जा नहीं सजीव अंग । यही कारण है कि गांधी के लिये जितना साध्य महत्वपूर्ण है, उतना ही साधन भी ।[2]

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी और सप्त क्रांति, पृष्ठ-२६
२- गणेश मंत्री, मार्क्स, गांधी और सामयिक सन्दर्भ, पृष्ठ-२५

गांधी जी राज्य की कानूनी प्रभुसत्ता की धारणा के विरोधी थे क्योंकि यह राज्य को केन्द्रीकृत संगठन के रूप में परिणित कर देता है। गांधी जी भारत के लिये विकेन्द्रित व्यवस्था के पक्ष में थे। वे राज्य की शक्ति को विकेन्द्रित कर ग्रामों को स्वशासन की शक्तियां देने के पक्ष में थे। मधु दण्डवते के अनुसार - भारत जैसे कृषि-प्रधान देश की अर्थव्यवस्था के मशीनीकरण की समस्या से जूझते हुए और दूसरी तरफ मनुष्य और मशीन के रिश्तों को समझने की कोशिश करते हुए गांधी जी ने विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था की बात कही थी।[1]

लोहिया जी गांधी जी के विकेन्द्रीकरण के विचारों से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने कहा - जहां तक गांधी जी का सम्बन्ध है वे हमें दो विचार देते हैं - एक स्वावलम्बी गांव और दूसरा ग्रामीण गणराज्य या ग्रामीण सरकार। ये दोनों सिद्धांत विकेन्द्रीकरण की नीति पर आधारित हैं। स्वावलम्बी गांव का सिद्धांत पर कार्य करेंगे कि वे अपनी आवश्यकता की चीजें खुद उत्पादन करेंगे। ग्रामीण सरकार भी एक प्रयोग है, प्रथम श्रेणी का जनतंत्र प्राप्त करने के लिये क्योंकि आधुनिक समाज का प्रजातंत्र द्वितीय श्रेणी का है।[2]

लोहिया जी मानते थे नागरिक अवज्ञा की भांति महात्मा गांधी ने लोगों को आर्थिक व राजनैतिक क्षेत्र में बहुत से मौलिक विचार व्यक्त किये हैं।

गांधी जी ने भारत के विकास के लिये सर्वाधिक जोर जनता को सुशिक्षित करने के लिये दिया। उन्होंने अंग्रेजी भाषा का विरोध किया और कहा कि - आप को समझना चाहिये कि अंग्रेजी शिक्षा लेकर अपने

- -

१- मधु दण्डवते - गांधी, लोहिया और जयप्रकाश, पृष्ठ-११
२- डा० राममनोहर लोहिया, मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-१२८

राष्ट्र को गुलाम बनाया है। अंग्रेजी शिक्षा से दम्भ, राग, जुल्म वगैरह बढ़े हैं। अंग्रेजी शिक्षा पाये हुए लोगों ने प्रजातंत्र को ठगने में, उसे परेशान करने में कुछ भी कसर उठा नहीं रखी है।[१]

गांधी जी का विचार था कि मातृभाषा में बच्चों को शिक्षा देनी चाहिये, बाद में उम्र पक्की होने पर अंग्रेजी शिक्षा देने की व्यवस्था होनी चाहिये। सारे हिन्दुस्तान के लिये हिन्दी भाषा ही होनी चाहिये। हमें अपनी सभी भाषाओं का विकास करना चाहिये। लोहिया जी ने गांधी जी के भाषा सम्बन्धी विचारों का समर्थन किया है। वे भारत से अंग्रेजी हटाने के पक्ष में थे। उनका विचार था कि अंग्रेजी के रहते हुए प्रजातंत्र सफल नहीं हो सकता। उन्होंने लिखा है कि - अंग्रेजी हटाने का सम्बन्ध देश में लोकतंत्र व समानता प्रस्थापित करने के प्रयास में है। अंग्रेजी के रहते हुए प्रजातंत्र झूठा है। अंग्रेजी रहने से समानता असम्भव है। देश में एक तरफ शासक वर्ग की सामन्ती भाषा अंग्रेजी और दूसरी तरफ जनसाधारण की लोक भाषायें हैं। शासक वर्ग लोगों के मन में यह हीन भावना पैदा करता है कि वे गंवार हैं, शासन करने के लायक नहीं है।[२]

गांधी व लोहिया दोनों ही आजाद देश का शासन अपनी भाषा में ही स्वीकार करने के पक्ष में थे। गांधी जी देश के आर्थिक विकास के लिये छोटे उद्योग धन्धों के पक्ष में थे, उन्होंने चरखे का महत्व दिया। गांधी जी का ठोस प्रतीक तात्कालिक कार्य के लिये जरूरी है लेकिन अहिंसकता को जारी रखने के लिये यह भी उतना जरूरी है कि ठोस प्रतीक में से उसका अमूर्त सिद्धांत निकाला जाये। लोहिया जी ने कहा - ये सिद्धांत है - आदमी के पास ऐसे औजार होने चाहिये जिन पर कई अर्थों में नियंत्रण

- -

१- महात्मा गांधी - हिन्द स्वराज्य, पृष्ठ-८०
२- डा० राममनोहर लोहिया - "अंग्रेजी हटाओ", पृष्ठ-२०-२१

हो । उसका तात्कालिक विकास - दोनों आत्मनिर्भर और प्रत्यक्ष लोकतंत्र द्वारा शासित हो । बरते का उद्देश है नियंत्रण - योग्य मशीनें और बांध शासन ।[1]

गांधी जी के समान लोहिया जी भी देश के लिये ऐसी शासन-पद्धति उचित बताते थे जो सत्य , अहिंसा , न्याय , स्वतंत्रता और समानता आदि की धारणाओं को साकार करती हो । ऐसी शासन व्यवस्था होने पर ही देश की प्रगति सम्भव है ।

१२) <u>स्वतंत्र भारत की अर्थव्यवस्था -</u>

गांधी जी उत्पादन के वैज्ञानिक साधनों का विरोध नहीं करते थे परन्तु वे मशीनों तथा औजारों के केन्द्रीकरण को अनुचित मानते थे । वे केवल ऐसी मशीनों को उचित मानते थे , जिनका उपयोग जन-साधारण कर सके । गांधी जी ने यंत्र के गुण व अवगुण बताते हुए लिखा है - यंत्र जहर की दवा जहर है , की मिसाल है , इसमें यंत्र का कोई गुण नहीं है । यंत्र मरते-मरते कह जाता है " मुझसे बचिये, होशियार रहिये , मुझसे आपको कोई फायदा नहीं होने का " अगर ऐसा कहा जाय कि यंत्र ने इतना ठीक कोशिश की, तो यह भी उन्हीं के लिये लागू होता है जो यंत्र के जाल में फंसे हुए हैं ।[2]

बेकारी को घटाने के लिये गांधी जी का उत्तर था , कुटीर - और लघु उद्योग, इसका अर्थ यह नहीं है कि गांधी जी बड़े उद्योगों के पूरी तरह खिलाफ थे । वे जानते थे कि कुटीर उद्योगों की स्थापना

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स , गांधी और सप्त क्रांति,पृष्ठ-३०-३१

२- महात्मा गांधी - हिन्द स्वराज्य , पृष्ठ-८५

और प्रोत्साहन के बाद भी कुछ क्षेत्रों में बड़े उद्योगों की जरूरत रहेगी। देश की अर्थव्यवस्था के नवीनीकरण की समस्याओं से जूझते हुए और दूसरी ओर मनुष्य तथा मशीन के रिश्तों को समझाने की कोशिश करते हुए गांधी जी ने विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था की बात कही थी। एक ऐसी व्यवस्था जो गांव को सम्पूर्ण इकाई माने और जो मनुष्य को दास न बनाये, मशीन मनुष्यों की सहायक बने लेकिन स्वामिनी नहीं। गणेश मंत्री के अनुसार - स्वाभाविक ही गांधी की अर्थनीति में मशीनों का स्थान साध्य के रूप में नहीं, समाज में व्यापक मानवीय आदर्शों की प्राप्ति के साधन के रूप में मर्यादित रहा।[1]

गांधी जी ने व्यक्ति के संग्रह करने की प्रवृत्ति को अनुचित ठहराया है। यह प्रतियोगिता उत्पन्न करती है और इसके कारण शक्तिशाली और चतुर धनी बनते हैं, जबकि निर्धन तथा भोलेभाले व्यक्ति गरीब होते जाते हैं। ऐसी आर्थिक विषमता को गांधी जी अहिंसात्मक राज्य के लिये अभिशाप मानते थे। इस तरह अन्याय की शृंखला सी बन जाती है जिससे सम्पूर्ण समाज को कष्ट उठाना पड़ता है।

लोहिया जी गांधी जी के अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित विचारों का विश्लेषण करते हुए कहते हैं कि - चूंकि हमारे पास धन की कमी है, इस कारण बड़े उद्योगों को न लगाकर हमें छोटे उद्योगों की ओर ध्यान देना चाहिये। छोटी मशीन योजना की व्यवस्था में पूंजी कम लगेगी और उत्पादन अच्छा होगा। लोहिया जी का विचार था कि - गांधी जी में सादगी और छोटी मशीनों पर आग्रह व्यापक है जबकि दुनिया बराबर पेचीदा मशीनों और विलासिता की ओर बढ़ रही है - कम से कम दुनिया के गोरे लोग बढ़ रहे हैं। उनकी मिसाल का दबाव जबर्दस्त है और उनके नमूने के असर से कोई नहीं बच सकता। इसी कारण गांधी जी

- -

१- गणेश मंत्री, मार्क्स, गांधी और सामयिक सन्दर्भ, पृष्ठ-२८

का आर्थिक चिंतन स्वतंत्र स्थापना से अधिक एक संशोधन है ।[1]

लोहिया जी गांधी जी के आदर्शों से बहुत प्रभावित थे । लोहिया जी विशालीकरण के सभी पर रोक लगाना चाहते थे । उनका विचार था कि आर्थिक व्यवस्था में नैतिक मान्यताओं से प्रभावित होना चाहिये तब सभी व्यक्ति आदर्श का स्वागत करेंगे । लोहिया जी ने कहा - समाज व्यवस्था से नैतिक नियम निकलना चाहिये या नैतिक नियम पर आधारित व्यवस्था बननी चाहिये अन्यथा ऐसा लगेगा केवल आदर्श या व्यवस्था का उल्लंघन रह जायेगा , जब तक साधनों से रहने की इच्छा को आधुनिक मशीनों ढांचे में गूंथकर चिंतन और विचार की संगत व्यवस्था नहीं बनाई - जाती तब तक जनता लोग न गांधी वाद का स्वागत करेंगे ।[2]

लोहिया जी का मत था कि रचनात्मक कार्यों के प्रति जनता को सदैव आकर्षित करना चाहिये क्योंकि कोई भी व्यक्ति दल-संघर्ष के बल पर स्थाई रूप से नहीं रह सकता । कोई भी व्यक्ति , समाज , जनता को अन्य तथा पंथ और धर्मों में जिनको मैं जानता हूं ऐसी अन्तकाल के लिये एक मंद संघर्ष के अतिरिक्त कोई निदान नहीं है लेकिन गांधी जी ने रचनात्मक कार्यों का प्रयोग किया ।[3]

गांधी जी पूंजीपतियों की शक्ति को ले लेना चाहते थे और उसे जनता समाज के हाथ में देना चाहते थे । वह समाज विनोबा की तरह एक केन्द्र से शासित एक संगठन के रूप में हो या एक ऐसा समाज हो जिसमें शक्ति अनेक गांवों , जिला परिषदों , प्रान्त और केन्द्र में बंटा हो । गांधी जी ने इस पर विचार नहीं किया पर लोहिया जी स्वतः आर्थिक स्वामित्व के केन्द्रीय निर्देशन में विश्वास नहीं करते थे क्योंकि उनकी धारणा थी

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी और सप्त क्रांति, पृष्ठ-२१
२- वही पृष्ठ-२२-२३
३- डा०राममनोहर लोहिया, मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-४८७

कि एक समाजवादी निदेशक भी एक व्यक्तिगत पूंजीपतियों के समूह की भांति अत्याचारी हो सकता है। यदि एक देश की सारी अर्थव्यवस्था एक केन्द्र से चाहे वह दिल्ली, पेकिंग, वाशिंगटन या मास्को कोई भी हो, से निर्देशित होता है। लोहिया जी का कहना था कि - यदि पूंजीपतियों की सम्पत्ति उनसे ले ली जाय और उसको उचित अनुपात में समाज के विभिन्न अधिकरणों जैसे - ग्राम, जिला, नगर, प्रान्त और केन्द्र को दे दी जाये तो स्वतंत्रता और समानता के प्रत्यय, न्याय पद्धति के रूप में ही विकसित किये जा सकते हैं।[1]

ऐसी व्यवस्था की सम्भावनाओं के बारे में लोहिया कुछ आशावादी थे। वे कहते थे कि यद्यपि गांधी जी ने अपनी न्यास पद्धति के बारे में केवल एक व्याख्या को आधा रहस्य कर गया था पर भय और घृणा के स्थान पर यदि प्रेम और विरोध के तत्वों का प्रयोग किया जाये तो पूंजीपतियों को बिना समाप्त किये हुए पूंजीवादी व्यवस्था परिवर्तित की जा सकती है। लोहिया जी ने स्पष्ट रूप से यह नहीं कहा कि उनकी पूर्ण परिवर्तन की योजना गांधी जी की योजना से कितना अनुकूल था। उनकी यह धारणा थी कि हम गांधी जी के सिद्धान्तों से कुछ तत्वों को संघर्ष की यांत्रिकी में सम्मिलित करते हुए अपने लिये एक मार्ग विकसित कर सकते हैं।

लोहिया जी का विचार था कि गांधी जी की मृत्यु के बाद गांधीवाद दो हिस्सों में बंट गया था - मठी और सरकारी। मठी - गांधीवाद का सरकारी गांधीवाद से मेल हो गया कि इन्हीं बातों में उसने किसी अन्याय के विरुद्ध संघर्ष नहीं किया। वे मानते थे कि मठी गांधीवाद की सारी चमक-दमक ज्यादा दिनों तक नहीं रह सकती। यह न अन्याय के विरुद्ध संघर्ष कर सका, न मनुष्य के नवीनीकरण के लिये

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-१५६

किन्हीं नये स्रोतों का निर्माण कर रहा है और अधिकारी के विरुद्ध जिसकी सारी बात पाखण्ड है क्योंकि अन्यायपूर्ण राज्य में ही हथियार पैदा होते हैं और अपेक्षतया न्यायपूर्ण राज्य की स्थापना होने पर ही हथियार खत्म हो सकते हैं ।

सरकार में आने के बाद गांधीवाद का आचरण ऐसा रहा है जैसे उसे कुछ करना ही नहीं । उसके अपने कुछ कार्य ही नहीं है । लोहिया जी के अनुसार - सरकारी गांधीवाद ने अपने रोजमर्रा के काम की पूंजी गैर-गांधीवादी किताबों से बनाई है, जिसका आधार है कि परिवर्तन जितना कम हो उतना अच्छा और जिसका उद्देश्य यह नहीं है कि वह अन्य सिद्धान्तों से भिन्न रीति से शासन चला सकता है । सरकारी गांधीवाद बिल्कुल परिवर्तन नहीं करता, वह हर चीज को या लगभग हर चीज को पहले जैसा रहने देता है ।[1]

सरकारी सिद्धांत के रूप में गांधीवाद में चाहे जितनी खामियां निकाली जायें लेकिन यह बुराई का विरोध करने का एक सिद्धांत के रूप में अनुपम था। लोहिया जी के अनुसार - व्यक्ति की आदत और सामूहिक संकल्प दोनों ही रूपों में नाफरमानी बुद्धि को ताकत से जोड़ता है, ताकतवर बुद्धि है जबकि अन्य सभी तरीके या तो निर्बल बुद्धि के होते हैं या अबुद्धिपूर्ण ताकत के । ऐसी सिविल नाफरमानी मनुष्य जाति को गांधी जी की प्रत्यक्ष देन है ।[2]

लोहिया जी गांधी जी के सरल जीवन यापन में विश्वास करते थे । सरलता स्वतः एक अनुकरणीय वस्तु है ही क्योंकि सरल जीवन मितव्ययी होता है परन्तु अधिक चिंता का विषय भी नहीं बनता । महात्मा

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - गांधीवाद, सम्पत्ति और सिविल नाफरमानी नव भारती-१९[illegible]-पृष्ठ-६

२- वही पृष्ठ-१२

बुद्ध ने जिनसे गांधी जी विशेष रूप से प्रभावित थे , स्वयं बौद्ध भिक्षुओं को यह उपदेश देते थे कि वे कूड़े के ढेरों पर पड़े कपड़ों को साफ करके अपने वस्त्रों के लिये प्रयोग करें । महात्मा गांधी द्वारा सरल जीवन ग्रहण करना इस सिद्धांत पर भी आधारित था कि इस प्रतिनिधि को सिगरेट का प्रयोग नहीं करना चाहिये , ये परामर्श उन्होंने डा० लोहिया जी को दिया और उसके परिणाम स्वरूप लोहिया जी ने धूम्रपान गांधी जी के हत्या के दिन तक नहीं किया । हत्या के दिन लोहिया जी के कथनानुसार - गांधी जी ने इतनी जल्दी उनको और उनके देखभारियों को छोड़कर उनके साथ विश्वास-घात किया और इसलिये उनके प्रति अब लोहिया जी का धूम्र पान न करने का आधार नहीं रहा और इस उपहासात्मक विचार से उनका मस्तिष्क प्रभावित हुआ ।[1]

लोहिया जी गांधी जी के विचारों में कुछ दोष भी बतलाते हैं उनके अनुसार - प्रथम गांधी जी ने जीवन के भौतिक आधार , भौतिक और आर्थिक जीवन की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया । दूसरा उन्होंने वस्त्र , भोजन , पुरुष और स्त्री आदि के सम्बन्ध में बहुत सी बातें कहीं जो अत्यधिक आत्म निग्रह की अनावश्यकता रखती है और उनके वर्तमान मानव जाति द्वारा स्वीकृत न होने के कारण जो समारोही गांधी जी के नम्र अनुयायी कभी-कभी उनका स्मरण कर लेते हैं और उग्र अनुयायी कार्ल मार्क्स के अनुयायी बन गये ।[2]

लोहिया जी का मत है कि गांधी जी के आधारभूत सिद्धांतों को व्यावहारिक बनाना चाहिये अन्यथा क्राइस्ट , बुद्ध की भांति गांधीवाद समारोहिक रह जायेगा और ग्राम गणतंत्र स्थापित नहीं होंगे । यदि गांधीवाद व्यावहारिक बनाया जा सका तो भारत एक नई सभ्यता का निर्माण

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-१६७
२- वही पृष्ठ-१३३

कर सकेगा और यह सारे विश्व विशेषकर भारतीय समाजवादियों का निश्चित कार्य है ।

लोहिया जी के हृदय में गांधी जी के प्रति आदर था , वे गांधी जी के परम भक्त थे । आगे चलकर उन्होंने गांधी जी के सत्याग्रह और अहिंसा को नई दिशा दी लेकिन अपने स्पष्ट और खरे स्वभाव के कारण उन्होंने समय-समय पर गांधी जी की आलोचनाओं का विरोध करने में संकोच नहीं किया। उन्होंने गांधीवादी आन्दोलन को नई शक्ति प्रदान की थी और गांधी जी के अस्पृश्यता निवारण , हरिजनों को मंदिर में प्रवेश , नरनारी समता , साम्प्रदायिकता आदि के सपने को पूरा करने का प्रयत्न किया और गांधीवादी विचारधारा को नई दिशा दी ।

-: o :-

अध्याय ३

(समाजवाद)

-: तृतीय अध्याय :-

समाजवाद -

१) समाजवाद का अर्थ और स्वरूप -

आधुनिक विचारों के क्षितिज पर समाजवाद प्रगामी शक्ति के रूप में पश्चिम में पूंजीवाद की स्थापना के परिणामस्वरूप उभरा । पूंजीवाद ने सामन्तवादी सामाजिक , राजनीतिक ढांचे को तहस-नहस कर दिया और मनुष्य के लिये प्रगति के नये द्वार खोले । पूंजीवाद ने सम्पत्ति का उत्पादन काफी बढ़ाया किन्तु उसका वितरण असमान रूप में किया। पूंजीवादी - व्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर मालिक भी समाज का बहुत छोटा अल्पमत है , अपार लाभ अर्जित करते हैं , जबकि श्रम करने वाला वर्ग नितान्त निर्धनता का जीवन व्यतीत करता है ।

यह सही है कि समाजवादी प्रवृत्तियां प्राचीन काल से राजनीतिक विचारों में और राजनीति ढाँचे में रही हैं । यह कहना सम्भवतः उचित ही होगा कि समाजवादी विचार इन्हीं समानतावादी विचारों का विस्तृत और परिष्कृत स्वरूप है ।

चूंकि इतिहास के हर युग में थोड़े व्यक्तियों द्वारा बहुतों पर नैतिक और भौतिक अत्याचार होता रहा है किन्तु ऐसे विचारशील व्यक्ति भी रहे हैं , जो इस दुखद स्थिति का निदान खोजने का प्रयास करते रहे ।

समाजवाद समाज के इस विस्फोटक स्थिति के विरुद्ध प्रतिक्रिया है । यह मनुष्य के अन्तःकरण को आन्दोलित करता है और उसे उस दासता से मुक्ति पाने के लिये प्रेरित करता है , जो विभिन्न शोषण, प्रणालियों के अन्तर्गत मानवता को गुलाम बनाये हुए है । समाजवाद मनुष्य को मुक्त करना चाहता है ताकि वह भौतिक , नैतिक और आध्यात्मिकपूर्णता को

और अग्रसर हो सके। इस सन्दर्भ में समाजवाद की परम्परा शानदार है। एलेक्जेन्डर ग्रे के अनुसार - यद्यपि प्राचीन काल के समाजवाद को स्वयं के लिये समाजवाद के इतिहास के अभिन्न अंग होने का दावा करने का अधिकार भी न हो फिर भी इसके प्रतिनिधि अनेक शताब्दियों में औरों के लिये अपने को समाजवाद के प्रेरक के रूप में मान जाने का दावा करते हैं।[1]

फिर भी आधुनिक समाजवादी विचारों को सुधारवादी परिप्रेक्ष्य में देखना अधिक सरल होगा यद्यपि समाजवादी परम्परा में उनके महत्व को कम नहीं किया जा सकता। आधुनिक समाज वैज्ञानिक और तकनीकि प्रगति के परिणाम स्वरूप जटिल हो गया है। मनुष्यों के सम्बन्ध अब न केवल घनिष्ठ हैं वरन् एक-दूसरे पर निर्भरता के भी हैं। सामाजिक चेतना और जागरण औद्योगिक क्रांति तक प्रभावी था किन्तु अब इसे नकारा नहीं जा सकता। अब लोगों को सामाजिक समस्याओं की पर्याप्त जानकारी है और वे इस आवश्यकता को समझ चुके हैं कि आधुनिक कार्यवाही द्वारा उनकी आकांक्षाओं की पूर्ति सम्भव है।

व्यक्तिगत सम्पत्ति और समाज की स्थापना के साथ ही समानता-वादी विचारों का उदय अवश्यम्भावी था क्योंकि राज्य एवं सम्पत्ति ये दोनों ही संस्थायें हितकर होते हुए भी किसी न किसी रूप में शोषक थी।

सर्वप्रथम १८२७ में कोआपरेटिव मैग्जीन में समाजवादी शब्द का प्रयोग उन विचारों के लिये किया गया जो उदारवादी व्यक्तिवाद के विरोधी थे। आज इस शब्द का तात्पर्य ऐसी व्यवस्था में से है जो अन्य व्यवस्थाओं से बहुत भिन्न है क्योंकि इसका उद्देश्य सम्पत्ति के सम्बन्धों का पुनर्निर्धारण करना है जिससे उसका स्वामित्व सामाजिक और सहकारी हो तथा स्वामित्व का वह निहित अधिकार जो व्यापक सामाजिक हित में नहीं है, समाप्त हो

- -

१- एलेक्जेन्डर ग्रे - दि सोशलिस्ट ट्रेडिशन, पृष्ठ-११

जाये । इस शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है । समाजवाद एक आन्दोलन है और ऐसी शक्तियों की विचारधारा है, जो राजनीतिक सत्ता पर अधिकार स्थापित कर शोषण और असमानता से मुक्त समाज की रचना करना चाहता है । जब आन्दोलन सत्ता पर अधिकार कर लेता है और नये सामाजिक ढाँचे को अपने आदर्शों के अनुरूप निर्मित करता है, तब इस शब्द का अर्थ होता है, एक नई सामाजिक संरचना । इस प्रकार समाजवाद ऐसे आदर्शों का समूह है, जिनकी प्राप्ति आन्दोलन को प्रेरित करती है तथा ऐसे सिद्धांतों का समूह है, जो राज्य की आर्थिक नीति का निर्धारण और संचालन करते हैं ।

ए०सी०पीगू ने समाजवाद की परिभाषा देते हुए कहा - समाजवादी व्यवस्था वह है, जिसमें उत्पादन के साधनों का प्रमुख भाग समाजीकृत उद्योगों में लगा होता है । समाजीकृत उद्योग वह है । जिसके उत्पादन के भौतिक औजारों का स्वामित्व लोकसत्ता या ऐच्छिक परिषदों के हाथ में होता है और जिसका प्रयोग दूसरे लोगों को विक्रय के द्वारा लाभ कमाने की दृष्टि से नहीं बल्कि प्रत्यक्ष रूप से उनकी सेवा के लिये होता है, जिनका प्रतिनिधित्व वह लोकसत्ता या परिषद् करता है ।[१]

प्रारम्भ से ही समाजवादी आन्दोलन की यह समस्या रही है कि किस प्रकार स्वतंत्रता और समानता में एकता कायम की जाये । व्यावहारिक क्षेत्र में समाजवाद की केन्द्रीय समस्या है, राजनैतिक एवं आर्थिक जीवन संगठित करना जैसे कि एक ओर शोषण, असमानता एवं अन्याय को समाप्त करना और दूसरी ओर व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं पृथकता को रक्षा करना । यह दोहरी समस्या समाजवाद और लोकतंत्र को मिलाने से हल की जा सकती है ।

- -

१- ए०सी०पीगू - कैपिटलिज्म वर्सेस सोशलिज्म, पृष्ठ-२

लोहिया जी भी मानते थे कि आर्थिक समता और वितरण की समानता के आधार पर ही सबको सम्पत्ति का समान भाग प्राप्त होगा । उनकी समाजवाद की परिभाषा देखने योग्य है। उन्होंने कहा - एशिया के लिये प्रयुक्त समाजवाद और समाजवादी विचार की अत्यन्त स्पष्टता से व्याख्या हो सकती है। मेरी समझ में यह प्रशासन के जनतंत्रीकरण, कम पूंजी के प्रतिष्ठान जैसी छोटी मशीन योजना, समानीकृत सम्पत्ति तथा अधिकतम प्राप्त व्यय, समानता जैसी धारणाओं के आधार पर होनी चाहिये ।[१]

समाजवाद का विस्तृत और बहुत व्यापक अर्थ - वर्गविहीन, शोषण मुक्त और समाज रचना का कार्यक्रम है । आन्दोलन के रूप में समाजवाद किसानों, मजदूरों, मध्यम वर्ग तथा अन्य वेतनभोगी व्यक्तियों जो आज की समस्याओं को विस्तृत सामाजिक हित के परिप्रेक्ष्य में देख सकें, की सक्रिय भागीदारी की आकांक्षा करता है। एलेक्जेन्डर ग्रे ने समाजवाद की संतोषप्रद परिभाषा देते हुए कहा कि - समाजवाद अपने प्रथम स्वरूप में इस विश्व के अन्याय के खिलाफ एक प्रतिरोध है, दरिद्रों के पीसे जाते हुए चेहरे एवं मनुष्यों की जीवन दशा की घोर असमानताओं को देखते हुए यह उनके जीवन की कठोर वास्तविकताओं के स्थान पर एक अधिक उच्च जीवन की कल्पना करता है, जहां केवल न्याय होगा ।[२]

समाजवाद के अन्तर्गत व्यक्तिगत सम्पत्ति का प्रभुत्व है तथा वितरण का निर्धारण स्वैच्छिक समझौते एवं स्वार्थ के आधार पर होता है, चाहे इससे कैसी भी असमानता क्यों न उत्पन्न हो ।

कार्ल मार्क्स के पूर्व कल्पनावादी विचारकों ने सर्वप्रथम पुष्ट समानतावादी विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया । वे महान स्वप्नदृष्टा थे और समाज की भ्रष्ट स्थिति ने उन्हें उद्वेलित किया था । इन्होंने समाज

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - दि विल टू पावर , पृष्ठ-५८
२- एलेक्जेन्डर ग्रे - दि सोशलिस्ट ट्रेडिशन - पृष्ठ-४६६

में आदर्श संगठन बनाने की बात कही किन्तु उनकी योजना स्थिति की कटु वास्तविकताओं के अनुरूप नहीं था । यद्यपि कल्पनावादी विचारों का सकारात्मक महत्व अधिक नहीं था किन्तु वे मौलिक प्रश्नों को उठाने तथा आनन्दवादी , पूंजीवादी समाज व्यवस्था में निहित कमियों को उजागर करने में सफल हुए ।

इस सन्दर्भ में कार्ल मार्क्स पिछली समाजवादी प्रवृत्तियों के क्रमबद्ध संकलन के रूप में प्रगट हुए और उन्होंने समाजवाद को वैज्ञानिक - आधार प्रदान किया । उनके द्वारा किया गया इतिहास का सूक्ष्म विश्लेषण और सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन के पुनर्गठन की योजना भले ही आज पूरी तरह प्रासंगिक न हो किन्तु इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि उन्होंने समाजवाद को एक सम्पूर्ण तार्किक सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत किया। उसे वैज्ञानिक पद्धति प्रदान की एवं कार्यक्रमोन्मुख बनाया। मार्क्स के समय से समाजवादी विचार विभिन्न उपधाराओं में उभरे । उनकी विभिन्नताओं के बावजूद इनमें काफी समानता है ।

ये सभी गतिविधियाँ एक ऐसी औद्योगिक व्यवस्था की स्थापना के लिये एकीकृत की गई है , जिसका ध्येय लाभ की अपेक्षा सेवा अधिक है और जो उत्पादन एवं वितरण के साधनों के सार्वजनिक या सहयोगी स्वामित्व के सिद्धांत पर आधारित है ।

मार्क्स के बाद के समाजवादी विचार तीन प्रमुख श्रेणियों में वर्गीकृत किये जा चुके हैं । १- कट्टर पंथी २- मार्क्सवादी समाजवादी ३- दक्षिण पंथी समाजवादी ।

यद्यपि मार्क्स के लेखों का इन समाजवादियों पर बहुत प्रभाव पड़ा और आमतौर से समाजवादियों ने उन्हें अपना आधार बनाया किन्तु साम्यवादियों ने उन्हें पूरा तरह स्वीकार किया और धर्मान्धता की सीमा

तक आस्था व्यक्त की । श्रम संघवाद और श्रेणी समाजवाद बाईं ओर झुके जबकि संशोधनवाद और फेबियन समाजवाद ने मार्क्सवाद और प्रजातंत्र का समन्वय किया । श्रम संघवादियों ने राज्य विरोधी और राजनीतिक-दल विरोधी दृष्टिकोण अपनाया और आम हड़ताल तथा हिंसा द्वारा सीधी कार्यवाही की वकालत की । गिल्ड समाजवादियों ने विभिन्न कार्यात्मक श्रेणियों द्वारा समाज को पुनर्गठित करने की बात कही । उन्होंने लोकतंत्र का विस्तार प्रत्येक प्रकार के सामाजिक कार्य तक एवं विशेष रूप से औद्योगिक एवं आर्थिक तथा साथ ही राजनीतिक कृत्यों तक सीमित करने की बात कही।

जहाँ मार्क्सवाद का जर्मनी तथा अन्य यूरोपीय देशों में प्रभाव बढ़ रहा था , इंग्लैण्ड में १८८३ में चन्द युवक बुद्धिजीवियों द्वारा समाजवादी विचारों का प्रचार करने के लिये फेबियन सोसाइटी की स्थापना की गई । सामाजिक परिवर्तन के लिये उन्हें लोकतांत्रिक राज्य एक कार्यकारी तंत्र लगा , जिससे सामाजिक परिवर्तन सम्भव था । अत: वे संशोधनवादियों की तरह वर्ग संघर्ष व एकाएक आमूल परिवर्तन के मार्ग से हट गये । उनका मत था कि सुविचारित और संगठित प्रयासों द्वारा राजनीतिक लोकतंत्र के अन्तर्गत श्रमिक वर्ग को सकारात्मक रूप दे सकता है और राज्य के माध्यम से समाजवादी कार्यक्रम चला सकता है ।

२) मार्क्स के विचार -

मार्क्स के विचारों ने समाजवाद को समझने की एक बहुत ही गहरी दृष्टि हमें मिलती है । अपने समय में उनकी सूझ युग प्रवर्तक की थी लेकिन सभी चिंतकों के विचारों की तरह मार्क्स के विचार भी अपने समय के सामाजिक और वैचारिक सन्दर्भ से गहरे रूप से जुड़े थे । मार्क्स एक विचारक के साथ-साथ प्रतिबद्ध क्रांतिकारी भी थे और क्रांति की

सफल देखने की आशा और उत्साह में उन्होंने उन परिस्थितियों की कल्पना नहीं की , जो उनका पथ अवरुद्ध कर सकती थीं या उसे पथभ्रष्ट । फिर भी मार्क्स के पक्ष में यह बात कही जा सकती है कि कोई भी मनीषी भविष्य की सभी सम्भावित स्थितियों की कल्पना नहीं कर सकता । मार्क्स के विचारों को निम्नांकित शीर्षक में विभक्त कर सकते हैं -

१- द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

२- इतिहास की आर्थिक व्याख्या

३- अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत

४- वर्ग संघर्ष का सिद्धांत

५- सर्वहारा की क्रांति तथा अधिनायकवाद

६- साम्यवादी समाज

मार्क्स मानता है कि विश्व एक भौतिक जगत है इसमें घटनायें तथा वस्तुएं एक-दूसरे से पृथक नहीं अपितु पूर्ण-तया सम्बद्ध रहती है । चूंकि भौतिक जगत में परिवर्तन निरन्तर होते रहते हैं , अत: सामाजिक जीवन में भी परिवर्तन होते रहते हैं । इन परिवर्तनों का कारण किसी दैवी सत्ता या दैवी विवेक नहीं है , प्रत्युत भौतिक परिस्थितियां होना है । मार्क्स का निष्कर्ष था कि ऐतिहासिक विकास क्रम में विभिन्न - व्यवस्थाओं के अन्तर्गत द्वन्द्व का कारण उत्पादक शक्तियां तथा उत्पादन के साधनों के मालिकों के मध्य द्वन्द्व होना था । जब उत्पादन शक्तियों का स्वरूप परिवर्तित हुआ तथा समाज में दो वर्गों का अस्तित्व रहा और उनके मध्य संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई ।" गोपी नाथ दीक्षित के अनुसार - कम्युनिज्म का कहना है कि सम्पत्ति " इतिहास में प्रारम्भ से अन्त तक मानवीय संघर्षों का वास्तविक कारण रहा है ।" सम्पत्ति ही कथित धार्मिक युद्धों अथवा स्त्रियों तथा राज्यों के लिये किये गये युद्धों की जड़ में था । इसलिये मानना चाहिये कि आर्थिक प्रेरणा से इतिहास का निर्माण किया गया ।[१]

- -

१- गोपी नाथ दीक्षित - गांधी की चुनौती कम्युनिज्म को, पृष्ठ- ६

मार्क्स इतिहास के विभिन्न युगों तथा उनके परिवर्तन की व्याख्या भौतिक तत्वों के आधार पर करता है । उसके मत से ऐतिहासिक विकास क्रम में प्रथम युग आदिम साम्यवादी युग था । मानव के पास व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं थी । जब कृषि आजीविका का साधन बन गई तो व्यक्ति एक स्थान पर बसने लगे । वर्ग-व्यवस्था विकसित होने पर समाज के नेता सम्पूर्ण भूमि के स्वामी बन गये । वे कृषि भूमि को संविदा के आधार पर सामंतों को देने लगे । वे सामंत छोटे-छोटे कृषकों को लगान देने लगे। कृषि में उत्पादन कार्य वही वर्ग करता था । दासों ने अपनी आजीविका चलाने के लिये दस्तकारी का काम शुरू किया, अतः विनिमय और व्यापार की आवश्यकता प्रतीत होने लगी । कृषि की व्यवस्था तक समाज सीमित न रह कर उद्योग , कृषि तथा व्यापार युक्त समाज में परिवर्तित होने लगा। उत्पादन कार्य श्रमिक वर्ग करता था परन्तु उत्पादन के साधनों का स्वामित्व उद्योगपति का हो गया ।

मार्क्स ने कहा - बड़े पैमाने पर उत्पादन चूंकि सर्वप्रथम पूंजीवादी युग में ही विकसित होता है इसलिये एक ओर लाभ की लिप्सा और दूसरी ओर प्रतिस्पर्धा , जो सबसे सस्ता उत्पादन करने के लिये मजबूर करती है , के कारण स्थिर पूंजी के नियोजन में यह मितव्ययता कुछ ऐसी प्रतीत होने लगती है मानो यह पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली की ही विशिष्टता है और इसलिये पूंजीपति का ही कार्य है ।[1]

इस प्रकार मार्क्स बतलाता है कि उद्योगपति वर्ग के पास पूंजी संचय होने लगी । पूंजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत शोषक तथा शोषित दो वर्गों का अभ्युदय उत्पादन प्रणाली का ही परिणाम है । उसने कहा- पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली का सतत फैलाव और विकास का नियम उत्पादन साधनों को श्रम से अधिकाधिक जुदा करना और बिखरे हुए

- -

१- मार्क्स - पूंजी , पृष्ठ-८३

उत्पादन साधनों का बड़े समूह में अधिकाधिक संकेन्द्रण करना इस प्रकार श्रम का बुनरती श्रम में उत्पादन साधनों का पुंजी में रुपान्तर करना है।[1] था।

मार्क्स के अनुसार - श्रम के आधार पर ही वस्तु का मुल्य - निश्चित होता है। वस्तु का मुल्य उसमें लगे हुए श्रम के आधार पर निश्चित होता है। अत: इसे मुल्य का श्रम सिद्धांत कहते हैं। अतिरिक्त मुल्य का निर्माण श्रमिक करता है लेकिन वह लाभ के रुप में पुंजीपति के पास रह जाता है। ये श्रमिक के शोषण का साधन है। किसी वस्तु के निर्धारण में उपयोगिता और श्रम दोनों की ही भुमिका रहती है। रोबर्ट फ्रोउर्मा के अनुसार - उपयोगिता मुल्य या उपयोगी वस्तु में इसलिये मुल्य होता है क्योंकि श्रम अपने अभौतिक रुप में इसमें लगा होता है या अभौतिक श्रम का भौतिकीकरण कर दिया जाता है। मुल्य के इस तत्व की माप कैसे होती है ? स्पष्टत: मुल्य निर्धारक वस्तु श्रम की मात्रा के द्वारा जो वस्तु में निहित होता है।[2]

अतिरिक्त मुल्य को बढ़ाना पुंजीपति का लक्ष्य होता है क्योंकि पुंजी अधिक होने से बड़े पैमाने पर उत्पादन कार्य होगा, नये तथा अच्छी मशीन लगाकर उत्पादन बढ़ाने से उत्पादन व्यय कम होगा, इससे उसे अधिक मुनाफा होगा। श्रमिक का श्रम दो भागों में बंटता है - श्रम दिवस का एक भाग जिसमें श्रमिक अपनी श्रम शक्ति के मुल्य के समान मुल्य पैदा करता है, यह आवश्यक श्रम है। कार्य दिवस के एक अंश में श्रम अतिरिक्त मुल्य पैदा करता है जो पुंजीपति ले लेता है, इसे ही अतिरिक्त मुल्य कहेंगे। अतिरिक्त श्रम द्वारा उत्पन्न किया हुआ अतिरिक्त मुल्य होगा। अतिरिक्त मुल्य बिना भुगतान वाले श्रम का परिणाम है।[3]

- -

१- मार्क्स - पुंजी पृष्ठ-७७६
२- फ्रोउर्मा - मार्क्स ओन एकोनोमिक्स, पृष्ठ-३०
३- एल०लियोनतिव - फन्डामेन्टल ओफ मार्क्सिटपोलिटिकल इकोनोमी, पृष्ठ-६२

मार्क्स का कहना था कि एक ही देश में पूंजीपति धनी होता जाता है और श्रमिक निर्धन क्योंकि श्रमिकों को मिलने वाला मूल्य को तो पूंजीपति अपने पास अतिरिक्त मूल्य के रूप में रख लेता है । मार्क्स के अनुसार - पूंजीवादी प्रवृत्तियों का परिणाम यह होता है कि पूंजीवादी व्यवस्था पूंजीपति के हित के उद्देश्य से जिन प्रवृत्तियों को अपनाती है, वे अन्ततोगत्वा स्वयं पूंजीवाद का विनाश का मार्ग प्रशस्त करते हैं । इस व्यवस्था के द्वारा दो ऐसे परस्पर विरोधी वर्गों का अभ्युदय होता है जिनसे शोषक वर्ग की संख्या निरन्तर कम होती है और शोषित वर्ग की अधिक ।

मार्क्स का विचार है कि - स्वयं श्रमिक मात्र के स्वामी-पूंजी के स्वामी और भूस्वामी,- जिनकी आयों के स्रोत क्रमशः मजदूरी, लाभ तथा किराया जमीन है , दूसरे शब्दों में उजरती मजदूर , पूंजीपति और भू-स्वामी पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली पर आधारित आधुनिक समाज के तीन बड़े वर्गों का निर्माण करते हैं ।[1]

मार्क्स मानता है कि पूंजीवादी व्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर पूंजीपति का ही अधिकार रहता है । उसने कहा - पूंजीवादी उत्पादन के आधार पर उत्पादन प्रक्रिया में प्रवेश करने के बाद श्रमिक स्वयं कार्यशील उत्पादन पूंजी का एक संघटक अंश बन जाता है , जिस पर पूंजीपति का स्वामित्व होता है । इसलिये माल का वास्तविक उत्पादक पूंजीपति ही है । इस कारण माल की लागत , जो कि पूंजीपति को अनिवार्यतः माल का वास्तविक लागत प्रतीत होती है ।[2]

शक्ति राज्य का आधार है और शोषण उसकी विशेषता । जैसे ही उत्पादन अवस्था परिवर्तित होती है, राज्य शोषित वर्ग की

१- मार्क्स - पूंजी , पृष्ठ - ७७६
२- वही पृष्ठ - ३२

आवश्यकताओं की पूर्ति करना बंद कर देता है । सी०एल०वेपर के अनुसार- समाज का इतिहास वर्ग युद्ध का इतिहास है । वर्ग युद्ध का विचार नवीन नहीं था । सेन्ट साइमन तथा प्रूधोर दोनों ने इसका प्रयोग मार्क्स के पूर्व किया था परन्तु इस विचार का हीगल के तर्क विचार संयोजित कर देना , मार्क्स की मौलिकता का उदाहरण है ।[१]

हीगल के तर्क विचार को ध्यान में रखने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक शासक वर्ग अपने विरोधी वर्ग को क्रांति - उग्र बनाता है तथा दोनों के संघर्ष से नवीन वर्ग का जन्म होता है । अमर बहादुर सिंह अमरेश के अनुसार - कार्ल मार्क्स का यह संबोधन विश्व के समान हित वाले मजदूर वर्ग को वर्ग-संघर्ष के लिये प्रोत्साहित करता है । मजदूर वर्ग शोषितों का वर्ग है और इस वर्ग का संसार के पूंजीपतियों से संघर्ष है, यह संघर्ष शोषित और शोषक का है ।[२]

गांधी जी वर्ग संघर्ष के हिंसात्मक , राज्यक्रांति ,तानाशाही और सार्वभौमिकता के विरोधी थे । गोपीनाथ दीक्षित के अनुसार - गांधी जी की राय में वर्ग संघर्ष का सिद्धांत बुनियादी तौर पर गलत है। उन्होंने कहा - भारत वर्ष मूलभूत प्रकृति के लिये वर्ग संघर्ष अग्राह्य है और वर्ग संघर्ष का विचार मुझे नहीं जंचता ।[३]

मार्क्स यह भविष्यवाणी करता है कि पूंजीवादी व्यवस्था यह अन्तर्विरोध अन्तत: वर्ग संघर्ष का रूप धारण करेगा। एक स्थान विशेष के नहीं अपितु राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय दोनों में शोषित वर्ग-द्वारा वर्ग क्रांति के द्वारा पूंजीपतियों का विनाश कर देगा ।

- -

१- सी०एल०वेपर - राज्य दर्शन का स्वाध्ययन ,पृष्ठ-२१३
२- गोपीनाथ दीक्षित - गांधी की चुनौती कम्युनिज्म को , पृष्ठ-१२
३- अमर बहादुर सिंह अमरेश - हमारा समाजवाद ,पृष्ठ-२८

मार्क्स का विश्वास था कि पुंजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत श्रमिक वर्ग का शोषण इस सीमा तक पहुंच गया है कि वैधानिक तरीके से समाप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि राज्य सत्ता पर पूंजीपतियों का ही प्रभाव है। स्वयं पूंजीवाद ने अपने विनाश का मार्ग प्रशस्त कर लिया है और शोषित वर्ग की चेतना इतनी बढ़ चुकी है कि वह अब संगठित होकर अपने शोषितों के विरुद्ध क्रांति करके उन्हें नष्ट कर देगा। सी०एल०वेपर के अनुसार - मार्क्सवाद की उड़ान निश्चय ही विकासवाद की ओर है उत्पादन शक्तियाँ प्रत्येक समाज में पूर्णतया तभी तक विकसित होती हैं, जब तक कि वहाँकोई परिवर्तन न आये। यह परिवर्तन उसी प्रकार आकस्मिक होगा जिस प्रकार पानी का वाष्प में परिवर्तन हो जाना। इस आकस्मिक क्रांतिकारी परिवर्तन में सम्पूर्ण समाज का रूप परिवर्तित हो जायेगा और एक नवीन समाज का निर्माण होगा।[१]

मार्क्स का मत है कि क्रांति के पश्चात राज्य की सत्ता पर विजयी सर्वहारावर्ग का अधिनायकवादी शासन कायम रहेगा। क्रांति के पूर्व बुर्जुआ वर्ग का अधिनायकवाद था, उसके बाद सर्वहारा वर्ग का अधिनायक वाद होगा। सर्वहारा वर्ग के हाथ में ही पूर्णतया स्वामित्व तथा नियंत्रण उत्पादन के समस्त साधनों पर रहेगा।

- मार्क्स को प्रजातंत्रवादी नहीं कहा जा सकता। वह एक महान निरंकुशवादी था और उसके विचार कट्टर थे। उसने क्रामवेल की तरह यह कभी नहीं कहा कि मनुष्य गलतियां भी कर सकता है। उसके लिये व्यक्ति नहीं, समूह ही सर्वस्व है। जहाँ उसका यह विश्वास था कि क्रांतियां केवल तभी सम्भव हैं जब सम्पत्तिहीन वर्ग बहुसंख्या में हो, वहाँ एंजिल्स की भांति वह यह भी मानता है कि वर्ग युद्ध के बाद जो

- -

१- सी०एल०वेपर - राज्य दर्शन का स्वाध्ययन, पृष्ठ-२१२

प्रजातंत्र स्थापित होगा,वह श्रमजीवी वर्ग का निरंकुश शासन होगा ।[1]

मार्क्स ने पूंजीवाद के अंत हो जाने पर जिस समाजवादी व्यवस्था की कल्पना की है , वह साम्यवादी समाज है । वह समाज वर्ग विहीन तथा राज्य विहीन होगा । इसमें समस्त व्यक्तियों को समान समझा जायेगा । इसमें मानवों को साध्य समझा जायेगा न कि किसी वर्ग विशेष के हित का साधन । सी०एल०वेपर के अनुसार - उसका विश्वास था कि भविष्य में एक वर्गविहीन समाज की स्थापना होगी क्योंकि वर्गों के आपसी संघर्ष के परिणाम स्वरूप क्रांति में पुर्ण वर्ग समाज नष्ट हो जायेगा क्योंकि वर्गों का विनाश कभी नहीं हुआ है अत: वर्ग विहीन समाज की कल्पना एक आशा रखिा है ।[2]

मार्क्स व्यक्तिगत सम्पत्ति को अपनी सामाजिक व्यवस्था में स्थान नहीं देता है । वह पूंजीवादी व्यवस्था की समस्त बुराइयों को अपने साम्यवादी समाज से दूर करना चाहता है । गोपी नाथ दीक्षित के अनुसार - आज कम्युनिस्ट देशों में जैसी तानाशाही पाई जाती है वैसे ही कम्युनिस्ट तानाशाही सारे विश्व में स्थापित करना मार्क्सवाद का व्यवहारिक लक्ष्य था ताकि औद्योगिक उन्नति के लिये समस्त भौतिक साधनों का और मानव बुद्धि का उपयोग किया जा सके । ईश्वर, धर्म और वे कार्य और विचार जिन्हें दार्शनिकों और संतों ने आध्यात्मिक माना था , मार्क्सवादी दर्शन में कोई स्थान नहीं रखते ।[3]

मार्क्स मानता है कि इस साम्यवादी समाज में सभी मानवों को पुर्ण स्वतंत्रता होगी । मनुष्यों को वैविध्य पुर्ण विकास का अवसर प्राप्त होगा । वह समाज से शोषण का अंत करना चाहता था ।

- -

१- सी०एल०वेपर - राज्य दर्शन का स्वाध्ययन, पृष्ठ-२१५
२- वही , पृष्ठ-२२१
३- गोपी नाथ दीक्षित, गांधी जी की चुनौती कम्युनिज्म को,पृष्ठ-२२

अमर बहादुर अमरेश के अनुसार - मार्क्स के आर्थिक सिद्धांतों का आधार मजदूरों के वर्ग संघर्ष के रूप में संसार के शोषितों का आर्थिक इतिहास है। उन्होंने प्रमाणित कर दिया है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का जब तक सर्वनाश नहीं हो जाता और समाजवादी समाज की स्थापना नहीं हो जाती, वर्ग मिट नहीं सकता। एक का सर्वनाश और दूसरे की प्रतिष्ठा अवश्यम्भावी है।[1]

मार्क्स पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त करने के पक्ष में था क्योंकि उसमें मजदूरों का शोषण होता है वह वर्ग संघर्ष के आधार पर पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त करके साम्यवादी समाज की स्थापना करना चाहता है। सच्चिदानंद सिन्हा ने लिखा है - मार्क्स की मौलिकता में कई आयाम विकसित थे। वह हीगल का दार्शनिक शिष्य था और वैज्ञानिक समाजशास्त्री और अर्थशास्त्री था और सर्वहारा की मुक्ति के लिये प्रतिबद्ध मसीहा था।[2]

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या प्रस्तुत करके मार्क्स ने पूंजीवादी विकास को ऐसे आधार प्रदान किये हैं, जिनके अनुसार मार्क्सवादी परिणाम अनिवार्यतः घटित होना चाहिये। मानव इच्छा न तो परिवर्तन कर सकती है और न उन्हें रोक सकती है, यही मार्क्स का कठोर नियतिवाद है। इसी कारण यह आलोचना की जाती है कि मार्क्स के इतिहास को मनुष्य मशीन बनाकर ढोता है। मार्क्स के विकास के नियम अपरिवर्तनीय और कठोर हैं। इस कारण मार्क्स के विचारों की आलोचना की गई या उनमें संशोधन किये गये।

मार्क्स के उपरांत उसके विचारों में संशोधन और परिवर्तन किया गया और उनसे कई प्रकार की विचारधारायें उत्पन्न हुई जैसे-

- -

१- अमर बहादुर सिंह अमरेश - हमारा समाजवाद, पृष्ठ-२८
२- सच्चिदानंद सिन्हा - मार्क्स को कैसे समझें, पृष्ठ-३

लेनिन वाद ट्राटस्की का समाजवाद , सुधारवाद , सिंडीकेट वाद, फेबियन सोसाइटी और गिल्ड समाजवाद इत्यादि । जिस प्रकार यूरोप में विभिन्न देशों में मार्क्सवाद को देश काल की विभिन्न अवस्थाओं के कारण रूपान्तरित रूप में प्रतिपादित किया गया, उसी प्रकार विश्व के कुछ अन्य देशों में भी राजनीतिक विद्वानों ने मार्क्सवाद में अपने देश काल की स्थिति के अनुसार मार्क्सवादी सिद्धांतों को कुछ परिवर्तन करके अपनाया । यही बात भी लोहिया जी के बारे में लागू होती है , उन्होंने मार्क्सवाद का अध्ययन किया और इनमें अपने अन्य प्रभावों के कारण कुछ संशोधन एवं परिवर्तन किये ।

३) <u>लेनिन का संशोधन -</u>

लेनिन ने मार्क्सवाद के पृथक साम्यवादी विचारों को प्रस्तुत किया । वह पूंजीवाद को साम्राज्यवाद की उत्पत्ति मानता है । लेनिन ने मार्क्स के विचारों को संशोधित करके साम्यवाद के सम्बन्ध में अपने पृथक विचार प्रस्तुत किये ।

हीगल और मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धांत के आधार पर ऐतिहासिक विकास को समझाया था । हीगल ने इस सिद्धांत का आध्यात्मीकरण किया तो मार्क्स ने भौतिकवादी बताया । द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की संरचना के अन्तर्गत लेनिन दो प्रकार के सामाजिक विज्ञान की सम्भावना को मानता है , जिनमें से एक मध्यम वर्ग के हितों को पोषक है और दूसरा सर्वहारा वर्ग के हितों का । इनमें से वह सर्वहारा वर्ग के विज्ञान को उच्चतर मानता है क्योंकि उसके मत से यह भविष्य की गतिविधियों का प्रतिनिधित्व करता है जिसके अन्तर्गत सामाजिक प्रगति के मार्ग में यह वर्ग ऊपर उठने की दिशा में प्रवृत्त रहेगा । मध्यम वर्ग तो

केवल पूंजीवाद के विनाश में विलम्बकारी पद्धति है लेनिन ने कहा - सर्वहारा वर्ग को बलपूर्वक स्वतंत्र के विरोध में कुचल देने के लिये और पूंजीपति वर्ग की अस्थिरता को निष्क्रिय कर देने के लिये अधिकांश किसानों को अपने साथ लेकर जनवादी क्रान्ति को पूर्ति तक पहुंचाना चाहिये सर्वहारा वर्ग को बल पूर्वक पूंजीपति वर्ग के विरोध को कुचल देने के लिये और किसान वर्ग तथा निम्न पूंजीपति वर्ग की अस्थिरता को निष्क्रिय कर देने के लिये जनसंख्या के अधिकांश अर्ध-सर्वहारा तत्वों को अपने साथ मिलाकर समाजवादी क्रांति को पूरा करना चाहिये ।[1]

लेनिन के द्वारा प्रतिपादित द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी व्याख्या में हीगल या मार्क्स की सी मौलिकता का अभाव है । द्वन्द्वात्मक के आधार पर ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया को समझने में हीगल और मार्क्स ने जो कुशलता दर्शाई थी , वह लेनिन के विचारों में विद्यमान नहीं है ।

लेनिन ने पूंजीवाद से विकसित साम्राज्यवाद का विश्लेषण किया है । लेनिन का कहना है कि जब पूंजीवाद विकसित होता है तो उसके अन्तर्गत अतिरिक्त पूंजी बढ़ती जाती है । एकाधिकार के कारण इस अतिरिक्त पूंजी में भी वृद्धि होती है, यह पूंजी श्रमिकों के हितार्थ नहीं लगाई जाती अन्यथा पूंजीपतियों के लाभ की धारणा ही समाप्त हो जाती। इसके विपरीत इस अतिरिक्त जमा हुई पूंजी का निर्यात किया जाता है । निर्यात के लिये विश्व के विभिन्न भागों के पिछड़े देश ढूंढे जाते हैं । वहां सस्ते मजदूर और सस्ता माल उपलब्ध होता है और पर्याप्त लाभ कमाया जा सकता है। विकसित पूंजीवादी देश ऐसे उपनिवेशों की खोज के लिये प्रतियोगिता करते हैं और वहां अपना साम्राज्य-विस्तार में लगे रहते हैं । लेनिन ने कहा - साम्राज्यवाद पूंजीवाद की

- -

१- व्ला० इ० लेनिन - संकलित रचनायें - , पृष्ठ-२११

चरम अवस्था है ।[१]

लेनिन का विचार है कि जहाँ साम्राज्यवाद पूंजीवाद का विस्तार करता है , वहाँ वह सर्वहारा वर्ग का भी विस्तार करता है । इस प्रकार समस्या विश्व-व्यापी रूप धारण करती है । उसने कहा - साम्राज्यवाद पूंजीवाद की एक बुनियादी आवश्यकता है ।[२]

लेनिन का विश्वास था कि प्रथम विश्वयुद्ध पूंजीवाद के अंत का प्रारम्भ है । यदि इसमें पूंजीवाद का अंत नहीं होता तो अन्य विश्व-युद्धों की सम्भावनाओं से इन्कार नहीं किया जा सकता क्योंकि पूंजीवादी देश विश्व के पिछड़े देशों के पुनः बटवारे के कार्यों में रत रहेंगे परिणामस्वरूप सर्वहारा वर्ग अधिक क्रांतिकारी बनता जायेगा और क्रान्ति द्वारा इसका नाश करेगा । लेनिन का यह सिद्धांत मार्क्स की धारणा का परिमार्जन था क्योंकि यह सिद्धांत केवल युद्ध की व्याख्या नहीं करता , अपितु यह स्पष्ट करता है कि मार्क्स ने विकसित औद्योगिक देशों के सर्वहारा वर्ग द्वारा क्रांति की सम्भावनाओं को समझने में भूल की थी लेकिन इस भूल को इस सिद्धांत द्वारा दूर किया जा सकता है ।

मार्क्स का विचार था कि पूंजीवाद चरम सीमा पर पहुँचते ही श्रमिक वर्ग पूंजीवाद के विरुद्ध क्रांति करके उसे नष्ट कर देगा । लेकिन लेनिन ने माना मार्क्स ने यह मानने में बड़ी भूल की कि सर्वहारा वर्ग बिना किसी बाह्य स्रोत से नेतृत्व, सहायता या प्रेरणा प्राप्त किये ही ,ऐसी क्रांतिकारी वर्ग चेतना प्राप्त कर लेगा जो उसे पूंजीवाद के विरुद्ध संघर्ष करने को प्राप्त कर सके। लेनिन की धारणा थी कि मार्क्सवादी विश्लेषण के अन्तर्गत सर्वहारा वर्ग की क्रांति व्यापार संघों का ही होगा । उन्हें पूंजीवादी लोकतंत्र अपना चालों से किसी न किसी तरह तुष्ट करने में

- -

१- व्ला० इ० लेनिन - संकलित रचनायें, पृष्ठ-४११
२- वही पृष्ठ-४१२

सफल हो जायेंगी । लेनिन का विचार ऐसे दल को तैयार करने का नहीं जो पूंजीवादी क्रांति उत्पन्न करे वरन् वह ऐसे दल की स्थापना करना चाहता था कि समाजवादी क्रांति उत्पन्न करे । लेनिन मानता था कि दल का नेतृत्व मध्यम वर्ग के लोग करेंगे । सी०एल०वेपर के अनुसार - लेनिन के दल सम्बन्धी विचारों में अनेक गुत्थियां है । प्रथम तो यह है कि क्रांति के कारणविचार है, उत्पादन की भौतिक दशायें नहीं, यह विचार मार्क्स के बिल्कुल विरुद्ध ही है। द्वितीय यह है कि शक्ति उससे भी से भी अधिक प्रभावशाली हो सकती है, जितनी कि मार्क्स और एंजिल्स निर्धारित करते हैं। तृतीय यह क्रांति सदैव हिंसक होगी - जबकि मार्क्स के मतानुसार यह हिंसक नहीं होना चाहिये । जहां यह प्रतीत होता है कि लेनिन अमार्क्सवादी है , वहां यह भी मान्य है कि वह रूढ़िवादी मार्क्सवादी भी है ।[१]

लेनिन की धारणा थी कि बिना क्रांति के पूंजीवादी तत्वों का अंत नहीं हो सकता और न ही सर्वहारा वर्ग को शोषण से मुक्ति हो सकती है । लेनिन ने यह दर्शाया कि बुर्जुआ राज्य को बल प्रयोग तथा सर्वहारा वर्ग की क्रांति के द्वारा नष्ट किया जायेगा और उसका स्थान सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतंत्र लेगा जो पूंजीवाद से साम्यवाद की स्थापना के मध्य के संक्रमण काल तक रहेगा। इस संक्रमण काल में सर्वहारा वर्ग के हितों का सम्पादन उसके प्रतिनिधिक साम्यवादी दल द्वारा किया जायेगा । साम्यवादी व्यवस्था में सर्वहारा का वर्गीय अधिनायकवाद स्वयं अनावश्यक हो जायेगा । उस स्थिति में राज्य स्वयं तिरोहित हो जायेगा । सी०एल०वेपर के अनुसार - लेनिन का सिद्धांत एक अन्य महत्वपूर्ण गुत्थी भी रखता है । मार्क्स की श्रम वर्ग का निरंकुशता सम्बन्धी विचार को यह आवश्यकीय बताता हुआ नये रूप में प्रस्तुत करता है ।[२]

- -

१- सी०एल०वेपर - राज्य दर्शन का स्वाध्ययन,पृष्ठ-२२९

२ वही पृष्ठ-२३०

लेनिन के दल सिद्धांत ने उसके क्रांति के कार्यक्रम के लिये विभिन्न पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत की । लेनिन के अनुसार - पुंजीपति वर्ग के विरुद्ध सशस्त्र हैं , आधुनिक पूंजीवादी समाज की एक सबसे बड़ी ,सबसे बुनियादी महत्वपूर्ण बात है और इस बात के होते हुए क्रांतिकारी सामाजिक जनवादियों से वर्ग - संघर्ष के दृष्टिकोण को बिल्कुल त्याग देने , क्रांति के हर विचार का परित्याग करने के बराबर है । हमारा नारा यह होना चाहिये , पुंजीपति वर्ग को परास्त करके , उससे उसका सब कुछ छीन लेने और उसे निःशस्त्र कर देने के लिये सर्वहारा वर्ग को सशस्त्र किया जाय ।[१]

लेनिन मानता था कि दल को संगठित करके ही क्रांति प्रारम्भ करना चाहिये । सी०एल०वेपर के अनुसार - इस कथन में यदि लेनिन उचित तथा मार्क्स अनुचित था कि श्रमिक क्रांतिकारी चेतना विकसित नहीं करते तो इसका तात्पर्य यह होगा कि यदि निर्देशों से पूर्व ही श्रमिक वर्ग ने क्रांति प्रारम्भ कर दी तो वे असफल रहेंगे । अतः सुशिक्षित एवम् सुनियंत्रित क्रांतिकारियों का एक छोटा सा दल शक्ति प्राप्त करके - क्रांतिकारी चेतना हेतु उसका सदुपयोग करें । श्रमिक वर्ग का निरंकुशता श्रमिक वर्ग के ऊपर ही होना चाहिये ।[२]

लेनिन धर्म को शोषण का साधन मानता है , इसकी आड़ में शासक तथा शोषक वर्ग निम्न वर्ग का आध्यात्मिक शोषण करते हैं।

मार्क्स ने संसद का विरोध किया और उन्हें शोषण करने वाली संस्था माना है । लेनिन भी मानता है कि संसद जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों से निर्मित होता है और जन-प्रतिनिधि जनता के नाम पर सम्प्रभुसत्ता का प्रयोग करते हैं । सी०एल०वेपर के अनुसार - लेनिन के अपने कार्य भी स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश ही थे । उसका प्रसिद्ध क्रांतिकारी

- -

१- व्ला० इ० लेनिन, संकलित रचनायें , पृष्ठ-६६४
२- सी०एल०वेपर - राज्य दर्शन का स्वाध्ययन, पृष्ठ-२३१

नारा , सभी शक्ति सोवियत राज्य को प्रजातंत्रीय शक्ति की अस्वीकृति ही थी , स्वीकृति नहीं । यद्यपि लेनिन का मार्क्सवाद जंगली तथा वर्णसंकर है फिर भी विश्व और रूस को उसकी जो देन है , उसको महत्वहीन नहीं कहा जा सकता ।[1]

४) ट्राटस्की का संशोधन -

ट्राटस्की ने साम्यवाद के विभिन्न पक्षों पर अपने विचार प्रकट किये हैं किन्तु उसका स्थाई क्रांति का सिद्धांत विशेष महत्वपूर्ण है और यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि ट्राटस्की के स्थाई-क्रांति के सिद्धांत का आशय उस क्रांति से है जिसके अन्तर्गत वर्ग शासन के किसी भी स्वरूप को स्वीकार नहीं किया जाता और क्रांति केवल लोक-तांत्रिक व्यवस्था तक ही सीमित नहीं रहती वरन् उसका उद्देश्य समाजवादी क्रांति की उपलब्धि होता है । इसके अतिरिक्त मोर्चा देश के बाहर प्रतिक्रियावादियों के विरुद्ध भी गतिशील रहता है । ट्राटस्की का विश्वास था कि जब तक वर्ग भेद का उन्मूलन नहीं हो जाता , रूस में समाजवाद की पूर्ण स्थापना नहीं हो जाती - रूस की साम्यवादी क्रांति के विरोधियों को समाप्त कर उन्हें समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत नहीं लाया जाता , तब तक इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये निरन्तर संघर्ष करना होगा। ट्राटस्की अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद का पोषक था । वह - मानता था कि साम्यवादी क्रांति रूस तक ही सीमित नहीं रहना चाहिये वरन् उसका प्रसार समस्त विश्व में होना चाहिये । उसका विश्वास था कि विश्वव्यापी निरन्तर और स्थाई क्रांति से ही रूसी क्रांति की सुरक्षा और स्थायित्व की प्राप्ति होगी। -सी०एल०वेपर के अनुसार - संघर्ष में ट्राटस्की के " स्थाई क्रांति " सिद्धांत को अनेक चोटें खानी पड़ीं।

- -

१- सी०एल०वेपर - राज्य दर्शन का स्वाध्ययन, पृष्ठ-२३३

१९०६ में प्रतिपादित ट्राटस्की के सिद्धांत के अनुसार- रूस की पूंजीवादी क्रांति से यह आशा की जाती थी कि वह शीघ्र ही पूंजीवाद विरोधी तथा समाजवादी क्रांति में परिणित हो जायेगी । अत: मार्क्सवाद के सिद्धांत के विरुद्ध रूस ही समाजवाद का पथ अनुसरण करेगा, अन्य पश्चिमी देश नहीं परन्तु बिना किसी देश का साथ प्राप्त किये रूस अकेला इस रास्ते पर नहीं चल सकता था ।[१]

ट्राटस्की मानता है कि सभी क्रांतियों का उद्देश्य केवल एक राष्ट्र में समाजवाद की स्थापना करना नहीं अपितु एक विश्व में समाजवाद की स्थापना करना होना चाहिये । सर्वहारा वर्ग की क्रांति की सर्वोच्चता स्वयं सर्वहारा वर्ग में एक दलीय राजनैतिक सर्वोच्चता की पूर्ण कल्पना है, जिसका एक स्पष्ट कार्यक्रम और दोष मुक्त आन्तरिक अनुशासन है । दल के सदस्य केवल वही होते हैं जो सबसे अधिक वर्ग चेतना - पूर्ण निष्ठावान होते हैं और दल बहुत सावधानी से सदस्यों का चुनाव करके विचार करता है ।

ट्राटस्की सैन्यीकरण का पोषक था । जब क्रांति के बाद यौद्धिक साम्यवाद कार्यक्रम की स्थिति से निकल कर रूस को सामान्य - साम्यवादी व्यवस्था के अन्तर्गत लाने की बात की जाने लगी तो ट्राटस्की का सुझाव था कि यौद्धिक साम्यवाद का विकल्प ही उग्र होना चाहिये। उसने ट्रेड यूनियनों के सैन्यीकरण का सुझाव दिया जिसके अनुसार - प्रत्येक श्रमिक एक जन सैनिक है ।

लेनिन के बाद ट्राटस्की साम्यवादी सिद्धांतों का अग्रणी टीकाकार माना जाता था । और लेनिन के उत्तराधिकारी के रूप में उसका नाम लिया जाता था पर स्टालिन के साथ सैद्धांतिक और सत्ता

- -

१- सी०एल०वेपर - राज्य दर्शन का स्वाध्ययन , पृष्ठ-२३६

सम्बन्धी संघर्ष चलता रहा । दोनों के बीच मतभेद इस बात पर था कि स्टालिन एक राज्य के अन्तर्गत समाजवाद स्थापित करने की बात कहता था जबकि ट्राटस्की इसे मार्क्सवाद - लेनिनवाद के प्रति धोखा मानता था और विश्वव्यापी क्रांति और इसके फलस्वरूप समाजवाद की स्थापना का प्रतिपादन करता था ।

५) <u>समाजवादी विचारधारायें -</u>

मार्क्सवाद के विरोध में कई समाजवादी विचारधाराओं का प्रादुर्भाव हुआ । ऐसी समाजवादी विचारधारायें निम्नांकित हैं -

(क) सुधारवाद - सुधारवाद समाजवादी विचारधारा की प्रणाली है जिसे बर्नस्टीन ने जर्मनी में मार्क्सवाद के विरोध में जन्म दिया था। इस प्रकार के सम्प्रदाय को सुधारवाद का नाम इसलिये दिया गया है क्योंकि इस प्रकार के विचारकों का विश्वास है कि धीरे-धीरे विभिन्न प्रकार के सुधारों द्वारा समाज वाद का लाना और विकास करना मार्क्सवादी क्रांतिकारी प्रणाली की अपेक्षा अधिक अच्छा होगा। आधार पर इस प्रकार के आन्दोलन का दूसरा नाम विकासवादी समाजवाद भी है।

मार्क्सवादी मानते थे कि जब पूंजीवाद चरम सीमा पर पहुंच जायेगा तो उसका पतन निश्चित है । मार्क्सवादी विचारधारा के - विरोध में सुधारवादियों का यह कहना कि पूंजीवाद के विकास से श्रमिकों की दशा बिगड़ नहीं रही थी वरन् मजदूरों के रहन-सहन का स्तर ऊंचा उठ रहा था । संक्षेप में सुधारवादियों के कहने का तात्पर्य यह था कि सम्पत्ति और धन के अधिक वितरण के कारण मार्क्सवादियों द्वारा अनुमानित आर्थिक संकटों की तीव्रता कम होती जा रही थी ।

मार्क्सवादी पूंजीवाद को समाप्त करने के लिये हिंसा का

बाधक होते हैं । सुधारवादियों की नीति के अनुसार हिंसा को बहुत बुरा और हेय समझा गया था तथा संसदीय कार्यक्रम और प्रचार के विकासवादी ढंग से समाजवाद को लाना था। मैरिस क्रेन्सटन के अनुसार - संशोधनवाद मार्क्सवाद का नया परिष्कृत रूप है । मार्क्सवाद के कट्टरपंथी - सिद्धांत से जिसे लेनिन ने विकसित किया था आगे बढ़ाया , इसमें यह भिन्नता है कि संशोधनवादी यह स्वीकार नहीं करते कि पूंजीवाद के बाद समाजवाद की स्थापना अनिवार्य रूप से हिंसा द्वारा ही हो सकता है।[1]

सुधारवादियों का विश्वास था कि [illegible] आन्दोलनों का सुधारवादी नीति का परिणाम निश्चित ही समाजवाद की स्थापना होगी । सुधारवादी यह विश्वास करते थे कि कृषकों को भूमि पर स्वामित्व मिलना चाहिये , उद्योगों तथा सार्वजनिक सेवाओं की संस्थाओं पर नागरिकों का सरकारी स्वामित्व होना चाहिये और राजनीतिक जागरूकता से परिपूर्ण नागरिकों को सामाजिक प्रबन्ध में सक्रिय भाग लेना चाहिये ताकि अपने लाभ के लिये वे सार्वजनिक कार्यों और उपायों को प्रोत्साहन दे सकें ।

(ख) श्रमिक संघवाद - श्रमिक संघवाद एक क्रान्तिकारी आन्दोलन है । इस विचारधारा के जनक सोरेल थे । इस आन्दोलन तथा दर्शन पर मार्क्सवाद की अपेक्षा अराजकतावाद का अधिक प्रभाव पड़ा । यह आन्दोलन पूर्णरूप से अराजनीतिक है परन्तु इसके साथ ही यह उग्ररूप से संघर्षशील है। इस आन्दोलन के संगठनकर्ताओं का विश्वास है कि आन्दोलन की सफलता श्रमिकों पर निर्भर है क्योंकि उनके मतानुसार श्रम संघ ही ऐसे संगठन हैं जो पूंजीवाद के आर्थिक पतन द्वारा समाजवाद की स्थापना करा सकने में समर्थ हो सकते हैं । अतः संघवादी राजनीतिक कार्यक्रम को छोड़कर प्रत्यक्ष आन्दोलन व संघर्ष का सहारा लेते हैं । प्रत्यक्ष संघर्ष के मुख्य साधन हैं-

- -

१- मैरिस क्रेन्सटन - राजनीतिक शब्दावली , पृष्ठ-८७

ध्वंस और उखाड़ । ध्वंस अंग्रेजी शब्द सैबोटेज का हिन्दी रूपान्तर है। इसका शाब्दिक अर्थ है " तोड़फोड़ " या नष्ट करना परन्तु पारिभाषिक अर्थ में ध्वंस " से कुछ उपायों या कामों का बोध होता है जिससे मजदूर लोग जानबूझकर उत्पादन को क्षति पहुंचा सकते हैं और पूंजीपतियों के लाभ को कम कर सकते हैं ।

श्रमिक संघवादी किसी भी राजनीतिक कार्यक्रम को अस्वीकार करते हैं क्योंकि श्रमिकों की दशा सुधारने के लिये राज्य के प्रयत्नों में विश्वास नहीं करते । उनका विश्वास है कि श्रमिकों की मांगों को पूरा करने के लिये सीधी आर्थिक कार्यवाही की जानी चाहिये । इस प्रकार की कार्यवाही के लिये वे औद्योगिक उत्पादन की तोड़फोड़ या पूंजीपतियों की कार्यवाही के बहिष्कार में विश्वास रखते थे । श्रमिक संघवादी अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किसी वैधानिक उपाय अथवा मध्यस्थता में विश्वास नहीं करते थे । उनका सबसे उत्तम अस्त्र आम-हड़ताल जो सफल होने पर राष्ट्रव्यापी [illegible] आर्थिक क्रियाओं को स्थगित कर देगा और इस प्रकार पूंजीवाद को उखाड़ फेंकेगा ।

मेरिस क्रेन्सटन के अनुसार - आधुनिक पश्चिमी समाजों में अनेक अन्य हित वर्गों की तरह मजदूर संघ भी एक दैनिक दबाव वर्ग के रूप में कार्य करते हैं । यद्यपि उनकी कुछ नीतियां और कार्यक्रम शक्तियां (जैसे - आम हड़ताल और तालाबन्दी) वे ऐसी बातें हैं जो सामान्यतः दूसरे संगठनों में नहीं मिलती । जैसे-जैसे सरकार ने अर्थव्यवस्था का नियंत्रण अधिकाधिक मात्रा में अपने हाथ में लिया , मजदूर संघों को आर्थिक नियोजन और राष्ट्रीय वेतन नीति की योजनाओं से सम्बद्ध करने के प्रयास किये ।[१]

मार्क्सवाद आम हड़ताल के विरोध में है । वह राज्य संस्था को वर्ग शासन का एक अंग मानते थे परन्तु श्रमिक संघवादी किसी

१- मेरिस क्रेन्सटन - राजनीतिक शब्दावली, पृष्ठ-[illegible]

भी प्रकार की भी राज्यसत्ता को सहन करने के लिये सहमत नहीं है ।

श्रमिक संघवाद का वास्तविक महत्व यह है कि इस प्रकार के विचार ने नौकरशाही राज्य समाजवाद और वैधानिक कार्यक्रम का विरोध किया है क्योंकि उनके कारण श्रमिक वर्ग आन्दोलन के क्रांतिकारी विकास में बाधा पड़ती है ।

(ग) फेबियन वाद - फेबियनवादी पूंजीवाद से पूरे संघर्ष को बचाना चाहते हैं और समाजवाद की स्थापना के लिये क्रमिक परिवर्तन और उपायों में विश्वास करते हैं ।

सन् १८८३ में फेबियन सोसाइटी की स्थापना के पश्चात अनेक बड़े विद्वान और महान व्यक्ति सम्मिलित हुए उनमें जार्ज - बर्नार्डशा , सिडनी वेब , श्रीमती एनीबेसेन्ट के नाम उल्लेखनीय हैं ।

फेबियन सोसाइटी सदैव ही एक अराजनैतिक और बौद्धिक संगठन रहा है । इसके सदस्य अधिकांश में मध्यम वर्ग से ही बने हैं और उन्होंने समाजवाद के विकास के लिये जनता को शिक्षित करने का काम , शोध कार्यों के प्रकाशन , समाचार पत्रों , सभाओं और विभिन्न प्रकार की गोष्ठियों द्वारा किया है । हेनरी पेलिंग के अनुसार - वास्तव में समाजवादी आन्दोलन मध्यम वर्गीय लोगों द्वारा प्रेरित , निर्देशित व चलाया गया । फेबियन सोसाइटी यद्यपि मध्यम वर्ग नेताओं द्वारा अभद्रता और सामाजिक संकीर्णता पर आक्रमणों द्वारा बिल्कुल भी आकर्षित नहीं हुई । फिर भी इसने समाजवादी प्रदूषण का - विरोध किया और इसने उन सभी वर्गों का जिनमें समाजवादी भावनायें फैलती जा रही थी , और पहचाना की ।[1]

फेबियन का आधार आध्यात्मिक और नैतिक है परन्तु मार्क्सवाद का भौतिक और आर्थिक सिद्धांत उनके आदर्शवाद का एक

- -

१- हेनरी पेलिंग - दि चैलेंज आफ सोशलिज्म,पृष्ठ-१७५-७७

अनिवार्य भाग नहीं है , व्यक्तिगत सदस्यों को विभिन्न सिद्धांतों से सहमत अथवा असहमत होने की स्वतंत्रता है । फैबियनवादी आन्दोलन आर्थिक सिद्धांतों पर आधारित नहीं है वरन् इसके महत्वपूर्ण तत्व ऐतिहासिक , आध्यात्मिक , सामाजिक और नैतिक रहे हैं । मार्क्सवाद केवल श्रमजीवी वर्ग को ही लाभान्वित करना चाहता है परन्तु फैबियनवादियों के दृष्टिकोण में समाजवाद की स्थापना केवल श्रमिकों के संगठन में उत्थान से नहीं वरन् शिक्षित और ज्ञान सम्पन्न मध्यम वर्ग के उत्थान से भी हो सकेगा ।

फैबियनवाद मार्क्स के वर्ग संघर्ष के सिद्धांत में विश्वास नहीं करते , वे इस बात पर बल देते हैं कि समाजवाद क्रांतिकारी नहीं बल्कि विकासात्मक है । हैनरी पैलिंग के अनुसार - यह साधारण - नागरिकों की क्रमिक और शांतिपूर्ण बदलाव की इच्छा के साथ सहानुभूति रखता है और क्रान्ति , झगड़े , सेना, पुलिस और अदालत का प्रतिरोध करता है ।[१]

फैबियनवादी मार्क्सवाद की सम्पत्ति के हस्तान्तरण द्वारा पूंजीवाद के पतन के सिद्धांत को अस्वीकार करते हैं । उनका विश्वास है कि समाजवाद की स्थापना बिना किसी संघर्ष के कानूनों द्वारा धीरे-धीरे हो सकती है । उदाहरण के लिये वे मानते हैं कि प्रगतिशील करों द्वारा आर्थिक लाभ के लिये धन एकत्र करना , राजकीय व्यापार का विस्तार , व्यक्तिगत पूंजीपतियों पर नियंत्रण करना , श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा के लिये औद्योगिक कानून बनाना , उद्योगों का राष्ट्रीयकरण तथा उद्योगों पर सामूहिक नियंत्रण का विकास भी ऐसे समाजवादी उपाय हैं ,जिनसे समाजवाद के उद्देश्य की पूर्ति की जा सकती है ।

- -

१- हैनरी पैलिंग - दि चैलेंजिंग आफ सोशलिज्म, पृष्ठ-१७३

(घ) श्रेणी समाजवाद - श्रेणी समाजवाद आन्दोलन इंग्लैण्ड में प्रथम विश्वयुद्ध के पहले संगठित किया गया था। जी०डी०एच०कोल को श्रेणी समाजवाद के एक प्रमुख दार्शनिक का स्थान प्राप्त है। श्रेणी - समाजवादी मानते थे कि राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने के पहले आर्थिक सत्ता प्राप्त करना आवश्यक है। अतः उनके मतानुसार श्रमिकों का उद्देश्य राजनैतिक शासनतंत्र पर अधिकार करने की अपेक्षा उद्योगों का आर्थिक नियंत्रण होना चाहिये। व्यावहारिक साधन अपनाने के क्षेत्र में श्रेणी समाजवादियों द्वारा प्रतिपादित श्रम संघों को सेवायोजकों के साथ सामूहिक सौदा करने का कर्तव्य बताया गया था। क्योंकि उनका विश्वास था कि इस प्रक्रिया से धीरे-धीरे श्रम संघों को औद्योगिक नियंत्रण में अधिकाधिक सत्ता प्राप्त हो जायेगी। श्रेणी समाजवादी उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का समर्थन करते हैं क्योंकि उनका विश्वास था कि राष्ट्रीयकरण द्वारा समाजवाद की स्थापना सरल हो सकती है। गिल्ड में प्रत्येक प्रकार के कर्मचारियों का एक संगठन होता है।

हेनरी पेलिंग के अनुसार - गिल्ड एक सभी श्रमिकों के चाहे, नियंत्रण मंडल के अधिकारी हों, चाहे कर्मचारी किसी भी उद्योग के उत्पादन के कार्य करने वाले कर्मचारी हों, का एक मिश्रित स्वरूप होता है। इस गिल्ड में वे सभी भी शामिल होते हैं जो अपने मस्तिष्क शक्ति का कार्य में उपयोग और सब जो अपने श्रम-शक्ति का कार्य में उपयोग करते हैं।[1]

ये मार्क्सवाद के क्रांतिकारी उपायों का विरोध करता है। श्रेणी समाजवाद ब्रिटेन की उपज है। ये क्रांति में विश्वास न रखकर वैध व शांतिमय उपायों का ही आश्रय लेता है। आर्थिक व्यवस्था में

- -

१- हेनरी पेलिंग - दि चैलेंजिज आफ सोशलिज्म, पृष्ठ-२२३

भी वह कोई क्रांतिकारी अथवा आमूल परिवर्तन नहीं चाहता । श्रेणी-समाजवाद राज्य का अंत नहीं करना चाहता पर वह उसके आर्थिक व औद्योगिक कार्य उससे छीनकर श्रेणियों व उनकी प्रतिनिधि संस्थाओं को दे देना चाहता है ।

श्रेणी समाजवादी विश्वास करते थे कि औद्योगिक एवं सामाजिक परिवर्तन की क्रिया शांतिपूर्ण और विकासात्मक होना चाहिये । इसके विचारकों का मत है कि श्रम संघों को शिक्षित करना, संगठित करना और अनुशासन सिखाना चाहिये ताकि वह परिस्थितियों के बदलने और उपयुक्त अवसर आने पर औद्योगिक नियंत्रण अपने हाथ में लेने के योग्य बन सकें ।

४) **लोहिया के विचार -**

मार्क्स ने अपने पूर्व समाजवादियों के विचारों का अध्ययन करके वैज्ञानिक समाजवाद की रचना की । मार्क्स मानता था कि जब पूंजीवाद चरम सीमा पर पहुंच जावेगा तब क्रांति होगी जिससे पूंजीवाद समाप्त हो जावेगा और साम्यवाद की स्थापना होगी । लोहिया जी ने मार्क्स की भविष्यवाणी अनुचित बतलाई और साम्यवाद की स्थापना के संबंध में उसके विचारों और सिद्धांतों में त्रुटियां बतलाई । उन्होंने कहा - हम देखें कि पूंजीवाद के विकास की घटनायें कहां तक इन नियमों का समर्थन करती हैं या उनके विरुद्ध जाती हैं ।[१]

लोहिया जी चेतना को प्रधान मानते थे । मार्क्स विश्व को एक भौतिक जगत मानता है । लोहिया जी के अनुसार - द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी भी विश्व और वास्तविकता का विश्लेषण केवल उसकी व्याख्या से नहीं वरन् उसके परिवर्तन से कर सकते हैं और ये परिवर्तन इस सिद्धांत से

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया, इन्टरवल ड्यूरिंग पोलिटिक्स, पृष्ठ-८४

होता है कि स्थिति चेतना को निश्चित करती है और चेतना चाहे वो धर्म-कविता, अन्य चिकित्साशास्त्र, अर्थशास्त्र और इसी प्रकार अन्य विषय किसी में ही एक दार्शनिक उच्च सेंठ है जो कि किसी समय का उत्पादन पद्धति से उत्पन्न किया इसलिये कोई भी मूल्य और आध्यात्मिकता स्थाई प्रवृत्ति के नहीं होती।[1]

लोहिया जी के विचारों में अभी तक इस प्रश्न का उत्तर निश्चित रूप से नहीं मिला है कि मस्तिष्क प्राथमिक है या पदार्थ। उनका कहना है कि यदि ये निश्चय भी हो जाये तो ये कहना कठिन है कि अधिक प्रभावी कौन है ? इसलिये ऐसा नहीं होना चाहिये और क्या विश्व पूंजीवाद अपनी क्षमता से इतना पर्याप्त पुर्नगठन हो जाना चाहिये, जो कि विश्व युद्ध को यह बताना कठिन है कि व्याख्या करने के लिये कौन से नियम माने जायेंगे ?

मार्क्स का मत था कि जब पूंजीवाद का केन्द्रीकरण होगा तब पूंजीपति अधिक धनी होते जायेंगे और मजदूर वर्ग अत्यधिक निर्धन होता जायेगा। लोहिया जी के अनुसार - गरीबी की बढ़ोत्तरी और कंगालीकरण का नियम तो कभी यहीं खत्म हो जाता है। इस बात से इन्कार करना निरर्थक होगा कि मार्क्स इस नियम के प्रतिपादन के सत्तर वर्ष बाद और अमेरिकन पूंजी के बड़े-बड़े केन्द्र बनने के पचास वर्ष के उपरान्त पूंजीवादी देशों में श्रमिक वर्ग न केवल धनहीन हुआ, पहले से अधिक गरीब नहीं हुआ वरन् उसके जीवन के स्तर में निरन्तर सुधार ही होता गया। यहाँ तक कि जर्मन अर्थशास्त्री यह दावा करने में समर्थ हो सके हैं कि मध्यम वर्ग के सर्वहारा बनने के बजाय, सर्वहारा वर्ग ही क्रमशः मध्यम वर्ग में बदलता जा रहा था।[2]

मार्क्स का मत था कि जब मजदूरों की निर्धनता बढ़ेगी तो वे पूंजीवाद के खिलाफ आवाज उठायेंगे, इससे वर्ग संघर्ष होगा और औद्योगिक संकट पड़ेंगे। लोहिया जी ने माना कि चूंकि मजदूर निर्धन नहीं हुए इस कारण वे पूंजीवाद के विरुद्ध क्रान्ति नहीं करते। लोहिया जी के अनुसार -

---

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-३०१
२- डा०राममनोहर लोहिया - अर्थशास्त्र मार्क्स के आगे, पृष्ठ-१८

सम्पूर्ण उन्नीसवीं शताब्दी में उद्योगकालिक संकटों में फंसे लेकिन उसी कालिक रूप में उससे मुक्त भी हुए ।[1]

लोहिया का यह मानना है कि जिस प्रकार पूंजीवाद कालिक संकटों से बच सका है । उसी प्रकार वह सामान्य संकट से भी बच सकता है । उन्होंने कहा - क्या यह सम्भव नहीं है कि इस आधार पर पूंजीवाद जो कि अब सामान्य संकट से प्रविष्ट कहा जाता है , उस स्थिति को भी सहन कर ले जैसा कि उसने अपने कालिक संकटों को सहन किया है और सम्भवतः जब वह एक देश में समाप्त हो तो दूसरे देश में पुनः प्रकट हो जाये ।[2]

मार्क्स का विचार था कि पूंजी के केन्द्रीकरण होने से छोटे पूंजीपति नष्ट हो जायेंगे और बड़े पूंजीपति अधिक धनी होते जायेंगे । वृहद् मशीन उत्पादन व्यवस्था से मजदूरों की अधिकांश संख्या बेकार हो जायेगी और वे निर्धन हो जायेंगे । लोहिया जी ने मार्क्स के इस विचार का खंडन करते हुए कहा - सामाजिकृत उत्पादन के सम्बन्ध में यह स्वीकार करना पड़ेगा कि बड़े-बड़े उद्योग धन्धों और एकाधिकार वाली पूंजी का जन्म तो हुआ किन्तु छोटे पूंजीपति समाप्त नहीं हुए हैं बल्कि बड़े उद्योग-धंधों के हिस्सेदार या स्वयं अपने धन्धों के स्वामी - व्यवस्थापक के रूप में छोटे पूंजीपतियों की संख्या बढ़ रही है । इस प्रकार यद्यपि हजारों मजदूरों के एक ही स्थान पर सहयोग से काम करने के कारण एक अर्थ में श्रम का सामाजीकरण हुआ है , किन्तु उनमें एकता नहीं आई है ।[3]

मार्क्स का यह मत कि जिस देश में पूंजीवाद चरम सीमा पर पहुंच जायेगा वहां पर मजदूर वर्ग पूंजीवाद के खिलाफ क्रांति करेंगे । लोहिया जी ने इस तथ्य को नहीं माना उनका विचार है कि इतिहास में जो सबसे बड़ा मात मार्क्स के पूंजीवाद के विकास के नियम के विरुद्ध पड़ी है ,वह

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-६
२- वही पृष्ठ-७
३- डा० राममनोहर लोहिया - अर्थशास्त्र मार्क्स से आगे , पृष्ठ-१६

यह है कि क्रांति जर्मनी में नहीं, जहां की अपेक्षा की और न पश्चिमी यूरोप के अन्य किसी विकसित देश में वरन् रूस में हुई ।[१]

लोहिया जी का विचार था - कि पूंजीवादी विकास के नियमों के अनुसार उसका विनाश तभी होना चाहिये जबकि वह पूंजी के एकत्रण और श्रम के समाजीकरण के विपरीत सिद्ध हो । वर्ग संघर्ष का यह नियम किस प्रकार एक स्वैच्छिक मार्ग ग्रहण कर गया, इसे मार्क्स के सिद्धांत से अब तक स्पष्ट और समायोजित नहीं किया जा सका है । उन्होंने कहा - मार्क्सवाद पूंजीवाद के संग्रहण के सम्बन्ध में अपने विचारों के बारे में पूर्ण उचित है पर औचित्य,औद्योगिक संकटों में एकाधिकार और श्रम के समाजीकरण की दृष्टि से है पर दरिद्रता संग्रहण आकस्मिक वर्ग संघर्ष और विश्व क्रांति की दृष्टि से तथ्य रूप से असत्य है।[२]

लोहिया जी प्रश्न करते है कि उत्पादन की अन्तर्दृष्टि और वितरण के सम्बन्ध में यह अपेक्षायें कहां से आई ? ऐसा नहीं कि हीनता और दरिद्रता उत्पन्न नहीं हुई या वर्ग संघर्ष और विश्व क्रांति के केन्द्रों को जाना नहीं जा सकता । यह भी नहीं है कि मार्क्स और उसके शिष्य उन्दोलित तथ्यों को जानते नहीं थे । मार्क्स केवल इन तथ्यों को आत्मसात करने और पूंजीवाद के सम्बन्ध में सामान्य सिद्धांत में उसे समायोजित करने के लिये पर्याप्त रूप से सशक्त नहीं था ।[३]

लोहिया जी ने तथ्य देखकर यह निष्कर्ष निकाला है कि साम्राज्यवाद उर्फ पूंजीवाद का विकास संयुक्त रूप में हुआ है । साम्राज्यवाद ने पूंजीवाद के विकास में सहायता की है । इस प्रकार उन्होंने लेनिन के मत का खण्डन किया है कि साम्राज्यवाद पूंजीवाद का अंतिम चरण है।

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-८
२- वही पृष्ठ-९
३- वही पृष्ठ-९

उन्होंने यह भी कहा कि वर्तमान शताब्दी के प्रथम दशक में ब्रिटेन के पूंजीवाद के अतिरिक्त मुख्य पूंजीवाद थे - जर्मनी, जापान और अमरीका । इन पूंजीवादियों को उन्होंने संयुक्त पूंजीवाद का संज्ञा दी है, इससे पूंजीवादी विस्तार द्वारा जीवित विश्व के विभाजन का संघर्ष बढ़ा। वे वर्तमान युग को पूंजीवादी युद्धों का युग कहते हैं और भविष्य के संबंध में कई प्रश्न प्रस्तुत करते हैं । वे पूछते हैं क्या पूंजीवाद एक नये संयुक्त साम्राज्य को जन्म दे सकता है, क्या वर्तमान में से किसी को प्रभावहीन कर सकता है, क्या विश्व समाजवादी बनने के बजाय अविकास की प्रक्रिया से पूंजीवाद रह सकता है ? वे कहते हैं कि ये भविष्य के विकास के कुछ जटिल प्रश्न हैं । उनका मत है कि - इतिहास में अब तक साम्राज्यवाद के बिना पूंजीवाद नहीं हुआ है और केवल आन्तरिक गत पर आश्रितपूंजीवाद सैद्धांतिक रूप में स्पष्टतया एक के लिये बृहद् संख्या के विशाल देश के लिये सम्भव नहीं है । उस पर एक समय में दो पूंजीवादी साम्राज्यवादी संयुक्त भाग होंगे जिनसे कि उसके चूर-चूर हो जाने की सम्भावना है । यह अत्यधिक निश्चित है कि इससे अब तक अज्ञात मात्रा में हानिकारक होगा ।[१]

लोहिया जी का यह कथन गलत है कि साम्राज्यवाद के बिना पूंजीवाद सम्भव नहीं हुआ क्योंकि बहुत से पूंजीवादी देश हैं जो साम्राज्य वादी नहीं हैं, जिन देशों से साम्राज्यवाद नष्ट कर दिया गया जैसे - जापान व जर्मनी का साम्राज्यवाद नष्ट हो गया लेकिन वहां पूंजीवाद नष्ट नहीं हुआ ।

लोहिया जी मानते थे कि मार्क्स साम्राज्यवादी शोषण से अज्ञात नहीं था और उसका शिष्य लेनिन उससे अधिक उत्सुक ज्ञान रखता था। मार्क्सवादी विकास का एक सामंजस्य पूर्ण सिद्धांत देने में सफल नहीं हुआ

उसका पूंजीवादी चित्र एक पश्चिमी इकाई का चित्र है जिसमें बाद में अमरीका

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-१५-१६

और जापान इस प्रकार जोड़ दिये गये हैं जोकि विश्व से पृथक न्यूनाधिक आन्तरिक रूप में विकसित हुए हैं। पूंजीवाद के सम्पूर्ण गतित्व, इसकी आन्तरिक संरचना, मूल्य और श्रम शक्ति का प्रयोग मूल्य के मध्य श्रमिक वर्ग और उसकी संरचना के पूंजीवादी वर्ग के मध्य विरोधाभासों में निहित है।[१]

लोहिया जी का विचार था कि मार्क्स का पूंजीवाद आत्मघातक था। यद्यपि बाह्य विश्व में उसके व्यापक प्रभाव पड़े लेकिन उसका गति के सिद्धांत और नियम अनन्य रूप में आन्तरिक रहे। आज तक मार्क्सवाद इसी चित्र से जुड़ा हुआ है, यद्यपि इसमें बाह्य प्रक्रियों के सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है लेकिन वह पूंजीवाद के आन्तरिक और बाह्य गतियों की अन्तक्रिया को प्रस्तुत करने में असमर्थ रहा है। लोहिया जी के अनुसार - समाजवाद को मार्क्सवाद के इस अवास्तविक चित्र को सदैव के लिये दूर कर देना होगा। उसके स्थान पर एक, दो वृत्तों का चित्र उत्पन्न होगा। उसमें एक दूसरे के अन्दर हो, आन्तरिक वृत्त ऐसे स्वतंत्र पूंजीवादी संरचना का प्रतिनिधित्व करेगा। जिसकी गतिशीलता पूंजीवादी लाभों और स्वीय श्रम के विरोधाभासों में होगी और दूसरा वृत्त शेष विश्व की उपनिवेशीय आर्थिक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करेगा, जिसकी गति साम्राज्यी शोषण और उपनिवेशीय श्रम के मध्य होगी। आन्तरिक वृत्त का किनारा एक विशाल आकार का होगा जो स्वतः बाह्य वृत्त की गति को छू सके। यही एक मार्ग है जिसके द्वारा हम पूंजी श्रम गति को साम्राज्य उपनिवेश गति से संयुक्त कर सकते हैं और पूंजीवाद के विकास को सामंजस्यपूर्ण ढंग से समझ सकते हैं।[२]

लोहिया जी यह स्वीकार करते हैं कि पूंजीवाद के मार्क्सवादी अध्ययन में ये दोनों गतियां विद्यमान हैं। पर उनका मत है कि उन दोनों गतियों को इस प्रकार अन्तसम्बन्धित नहीं किया गया है और इस अन्तसंबंधित आधार पर नियमों को इस प्रकार खोजा नहीं गया है जिससे विश्व को

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया, मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-१६
२- वही पृष्ठ-१६-१७

सामंजस्यपूर्ण ढंग से समझा जा सके। समाजवादी को इस अन्तर्सम्बन्धिता का अध्ययन करना पड़ेगा।

लोहिया जी का विचार था कि पूंजीवादी विकास के साम्यवादी सिद्धांत का प्रारम्भ मूल्य के प्रायोगिक सिद्धांत के मध्य विरोधाभास से होता है और इस प्रकार अतिरिक्त मूल्य की उत्पत्ति होती है। वे मार्क्स की आलोचना करते हुए कहते हैं कि - मार्क्स ने श्रम को एक अमूर्त वस्तु बना दिया, यद्यपि वह ऐसा नहीं है वास्तव में पूंजीवाद के अन्तर्गत श्रम के दो स्वरूप प्रकट हुए हैं, जो एक दूसरे से व्यापक रूप से भिन्न हैं - प्रथम साम्राज्यी, दूसरा उपनिवेशीय। दोनों के मूल्यों मे विशाल अन्तर किया गया है। इसी विभेद के कारण साम्यवाद को श्रम की सामाजिक रूप से प्रभावशाली अपेक्षाओं की संकल्पना विकसित करनी पड़ी है पर उसका श्रम की आवश्यक अपेक्षाओं का आधारभूत सिद्धांत मार्ग बाधक हुआ और नये सत्य संकल्पना के समुचित समझ को रोका है।[1]

लोहिया जी का कहना है कि श्रम की कोई आवश्यक अपेक्षायें नहीं है, कम से कम अकाल के समय के अतिरिक्त वे कोई आर्थिक सन्दर्भता नहीं रखती। सामान्य श्रम में एक जीवित रहने और कार्य करने की एक अद्भुत क्षमता प्रकट की है, और उसकी अपेक्षायें उपनिवेशीय श्रम के लिये न्यूनतम रूप में दो आना प्रतिदिन से साम्राज्य श्रम के लिये चार रुपये प्रतिदिन तक हुई है। यह प्रकट करता है कि श्रम की अपेक्षायें प्रकृति और शरीर से नहीं वरन् इतिहास से निश्चित होती हैं। इस सम्बन्ध में लोहिया जी ने विश्व विद्यालय अर्थशास्त्र के श्रम की आवश्यक अपेक्षाओं, श्रम की उत्पादकता, पूंजीवादी अथवा राष्ट्रीय मोल सिद्धांतों की विवेचना की है और अतिरिक्त मूल्य की नई परिभाषा दी है। उन्होंने लिखा - श्रम चाहे वह कृषक का हो या कारखाना श्रम का हो उसी सीमा तक अतिरिक्त मूल्य का निर्माण करता है जितना कि उसकी

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ- १७-१८

जाय । इसके समय के विश्व उत्पादन में प्रतिश्रमिक के औसत के नीचे होता है ।[१]

लोहिया जी का सुझाव है कि हमें देश आर्थिक संरचना की परीक्षा एक आत्मचालक इकाई के रूप में नहीं करना चाहिये । अतएव हमें पूंजीवाद का आत्मचलन पश्चिम यूरोपीय घटक के रूप में विचार करना त्याग देना चाहिये पूंजीवाद अपने प्रारम्भ से अर्वाचीन विकास तक मुख्य रूप में साम्राज्यवादी गति के रूप में चला है , इसलिये हमें एक ऐसे सिद्धांत का विकास करना चाहिये जो उसकी आन्तरिक और बाह्य गतियों को एक साथ समझ सके । हमें एकमात्र आर्थिक संरचना में श्रम के पृथक उत्पादन के विचार को त्यागना होगा और उसके स्थान पर विश्व के यौगिक उत्पादन को कार्यरत जनसंख्या में औसत वितरण की संकल्पना प्रस्तुत करना होगी , इस प्रकार विरोधाभास श्रम की अपेक्षायें और उसके उत्पादन के मध्य नहीं है बल्कि श्रम की राजनैतिक रूप में प्रभावशाली अपेक्षायें और विश्व के प्रत्येक श्रमिक के लिये औसत उत्पादन के मध्य में है।

लोहिया जी के अनुसार - अतिरिक्त मूल्य की गणना नहीं की जा सकती और न उसे श्रम की अपेक्षाओं और उसके उत्पादन के अन्तर के आधार पर जैसा कि साम्यवादी करते हैं , उसे समझा जा सकता है । जहां कहीं भी और जिस मात्रा में यह उत्पन्न होती है , अतिरिक्त मूल्य श्रमिक की वास्तविक कमाई और तत्कालीन विश्व उत्पादन के प्रति श्रमिक औसत का अन्तर है । इस अतिरिक्त मूल्य के सन्दर्भ में पूंजीवादी विकास के - नियमों को समझा जा सकता है । अतिरिक्त मूल्य जो पूंजीवादी व्यवस्था की उच्च कमाइयों और सकल लाभ का निर्माण करता है , मुख्य रूप में उपनिवेशीय फार्मों , खेतों और खानों से आता है । पूंजीवादी संरचना

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स , गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-२४

का आन्तरिक साम्राज्यवादी वृत्त इस प्रकार चलता है कि वह आज उपनिवेशीय वृत्त का श्रम उत्पादन वति शक्ति से खींच लेता है ।[1]

इस प्रकार लोहिया जी ने मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य के सिद्धांत की आलोचना की है ।

मार्क्स मानता है कि पूंजीवाद में उत्पादन की शक्तियों के केन्द्रीयकरण से पूंजीपति शक्तिशाली होते जाते हैं और मजदूर वर्ग निर्धन। एका-धिकार वादी पूंजीपतियों और बहुसंख्यक कुछ समानीकृत श्रमिक वर्ग का द्वन्द्व बन जाता है । वर्ग संघर्ष जब आखरी दौर पर आ जाता है तब मजदूर वर्ग पूंजीवादी ढांचे को तोड़ देता है । लोहिया जी का विचार है कि - मार्क्स का वर्ग संघर्ष का सारा दर्शन ही इस सिद्धांत पर आश्रित है कि अब तक के सारे समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है । वे भूल जाते हैं कि जाति संघर्ष ने भी इतिहास में एक समान महत्वपूर्ण भूमिका की है ।[2]

लोहिया जी ने यह कह कर के मार्क्स के इतिहास की आर्थिक व्याख्या की संकीर्णता बताई है । उन्होंने इतिहास के वर्ग संघर्ष के सिद्धांत को खंडित किया है । उनका कथन था - सारा इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है, अपर्याप्त है और सारपूर्ण रूप में अपने पूंजीवादी सभ्यता के विश्लेषण तथा उसके सम्बन्ध की भविष्यवाणी में सारपूर्ण ढंग से असत्य है । एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र और एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप को शक्ति व सत्ता का स्थानान्तरण होता रहता है । इतिहास के सिद्धांत की ये दो चालक शक्तियां इतिहास की उन्नति के सिद्धांत के स्थान पर उसके वृत्तात्मक दृष्टिकोण का समर्थन करती हैं । सारा मानव इतिहास आंतरिक रूप में वर्गों और जातियों के मध्य परिवर्तन का इतिहास है और अपने बाह्य

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया, मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-२५८-५९
पृष्ठ-२६

२- वही पृष्ठ-३६७

रूप में वह शक्ति और सम्पन्नता का इतिहास है ।[१]

उन्होंने कहा सौभाग्य से भौतिक और सांस्कृतिक सन्दर्भों में दूसरी प्रेरक शक्ति भी दृष्टिगोचर हो रही है, यह है समानता के लिये प्रयास की शक्ति और ऐसा प्रतीत होता है कि इतिहास पहली बार सभी मानव जाति को भौतिक और सांस्कृतिक समता के पक्ष में है । इतिहास की इन शक्तियों को समझना और फिर उन्हें सभी विषमताओं के विरुद्ध और समता के लिये लघु और वृहद् कार्यों के लिये व्यापक सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करना एक चुनौती है ।

लोहिया जी ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि पूंजीवाद का विकास साम्राज्यवाद के कारण ही सम्भव हो सका है और उसके शिकार प्रमुख रूप में उपनिवेशों के निवासी ही हुए हैं । इसलिये उनका मत है कि यदि साम्यवादी वर्ग संघर्ष के सिद्धांत का औचित्य स्वीकार करना पड़ेगा पर उसके आधार के बदलने की स्पष्ट आवश्यकता है । उन्होंने कहा - पूंजीवाद के अन्तर्गत सर्वाधिक हानि उठाने वाले उपनिवेश के निवासी होते हैं । साम्यवादी वर्ग संघर्ष के नियम को यदि सत्य मान लिया जाय तो उसका आधार परिवर्तित करना होगा। पूंजीवादी देशों का श्रमिक वर्ग ने ही वरन् उपनिवेशीय जनता पूंजीवाद की कब्र खोदने वाले हैं ।[२]

वर्ग संघर्ष के इस सिद्धांत को रूस की राज्यक्रांति भलीभांति सामंजस्य रखती है । एक ऐसे देश के रूप में जो विश्व अर्थव्यवस्था के आंतरिक पूंजीवादी वृत्त का किसी प्रकार अंग नहीं था बल्कि क्रमशः पाश्चात्य बाह्य उपनिवेशीय वृत्त में लाया जा रहा था । उसके अर्द्ध-उपनिवेशीय श्रमिक फिर भी इतने शक्तिशाली थे कि वे उन विदेशी और देशी व्यवस्थाओं का उन्मूलन कर सके जिससे उनकी दासता उत्पन्न होती थी । लोहिया जी के अनुसार -

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-२५८-५६

२- वही पृष्ठ-२६-३०

हम यह प्रश्न करें कि मार्क्स ने कैसे अपने ही उपकरण का अव्याप्ति प्रयोग किया और पूंजीवाद पर पश्चिमी युरोपीय पृथकत्व में विचार किया ? इसका उत्तर मार्क्स के तरीके से देने को प्रेरित होते हुए कहा जा सकता है कि युरोपीय अर्थव्यवस्था के अंग के रूप में मार्क्स युरोपीय श्रमिक वर्ग के हितों के आगे नहीं देख सका ।[1]

मार्क्स सिर्फ पूंजीपतियों का ही अन्त करना चाहता था, जबकि लोहिया जी उत्पादन के साधनों में भी परिवर्तन चाहते थे । उन्होंने कहा कम्युनिस्ट केवल एक काम ही पूरा करता है वह पूंजीपति वर्ग को खत्म कर देता है और इसी को अपना लक्ष्य मानता है जबकि सोशलिस्ट पूंजीपति वर्ग को भी खत्म करेगा और उत्पादन के उन तरीकों को भी जिन्हें पूंजीवाद ने दुनिया में लागू किया, यह दोहरा काम है ।[2]

वर्ग संघर्ष के सिद्धांत के बारे में लोहिया जी मार्क्स से आगे हैं क्योंकि मार्क्स ने समाज में व्याप्त वर्ग संघर्ष पर ही ध्यान दिया है, शेष वर्ग संघर्ष की ओर ध्यान नहीं दिया जबकि लोहिया जी ने सभी प्रकार के संघर्षों पर विचार किया है । डा० युगेश्वर ने लिखा है - मार्क्स ने - इतिहास को मात्र वर्गों के संघर्ष की दृष्टि से देखा था जबकि लोहिया ने उसे राष्ट्रों और जातियों के संघर्ष की दृष्टि से भी देखा है ।[3]

लोहिया जी समाज में व्याप्त अन्याय और पीड़ा के विरुद्ध संघर्ष करते रहे । उनका विचार था कि वर्ग संघर्ष सामाजिक परिवर्तन की गतिशक्ति है, फिर भी हमारे संघर्ष का स्वरूप और संगठन उसके आर्थिक और सामाजिक दोनों लक्ष्यों के अनुरूप होना चाहिये और वह भी

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-३१
२- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्सवाद और समाजवाद चौखम्भा चुनाव विशेषांक १२ फरवरी १९६२, पृष्ठ-७०
३- डा० युगेश्वर - मार्क्स और लोहिया, "लोहिया" पृष्ठ-३

सुदूर की नीति बल्कि तत्कालीन परीक्षणों से प्रयुक्त होना चाहिये । हम समाजवाद का निर्माण वर्ग संघर्ष की साम्यवादी पद्धतियां तत्कालीन के परीक्षण में पूर्णतया असफल होती है ।

मार्क्स मानता था कि जब पूंजीवाद चरम सीमा पर पहुंच जायेगा तब श्रमिक वर्ग अत्यधिक निर्धन हो जायेगी तत्पश्चात ये वर्ग संगठित होकर - क्रांति करेगा । लोहिया जी ने कहा - इस बात में कोई शक नहीं कर सकता कि पूंजी का संकलन, मजदूरों का समाजीकरण और उसकी बढ़ती हुई निर्धनता ये सब कुछ साथ-साथ हुआ है । लेकिन मार्क्स की विचारधारा में गलती यह रही है कि उसने यह सोचा कि तीनों क्रम एक ही मुल्क के भीतर पैदा होंगे, उदाहरण के लिये बरतानियां की या जर्मनी की अर्थव्यवस्था में । इन तीनों लक्षणों को एक दूसरे से जुदा करके इस तरह समझने का वक्त आ गया है कि पूंजी का संकलन और मजदूर का समाजीकरण तो होता है पश्चिम यूरोप और अमरीका की अर्थव्यवस्था में और गरीबी बढ़ती है , उन मुल्कों में जिनकी पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था की प्रगति धीमी हुई है । दो लक्षण घटते हैं एक किस्म की दुनिया में तीसरा लक्षण घटता है, दूसरे किस्म की दुनिया में । मार्क्स द्वारा किये गये पूंजीवादी विकास के विश्लेषण को इस तरह संशोधित करने के बाद मुझे यह नतीजा निकालने में आसानी हो जाती है कि पूंजीवादी सभ्यता का ढांचा उन इलाकों में गिरेगा , जिनमें गरीबी बढ़ती चली गई है लेकिन जैसा मैं कह चुका हूं कि अगर मैं मार्क्सवादी होता तो मार्क्स के सिद्धांत में यह संशोधन जरूर करता।[१]

लोहिया जी का विचार था कि मार्क्सवादी विचार के समर्थक मार्क्स, लेनिन और ट्राटस्की तीनों ने पूंजीवादी विकास के तीन अलग-अलग तरह के नियमों का प्रतिपादन किया है । तीनों इस सम्बन्ध में एक मत नहीं हैं। लोहिया जी ने कहा - मार्क्सवादी इन्कलाब रूस में हुआ और इसलिये

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया -" मार्क्सवाद और समाजवाद, चौखम्भा चुनाव विशेषांक,१२ फरवरी १९५२,पृष्ठ-६६

ट्राटस्की ने यह कह कर समझाने की कोशिश की कि पूंजीवादी कड़ी उस स्थल पर टूट गई , जहां वह सबसे कमजोर थी। एक मार्क्सवादी यानि मार्क्स खुद कहता है कि यह कड़ी उस स्थल पर टूटेगी जहां वह सबसे ज्यादा मजबूत होगी और दूसरा मार्क्स-वादी यानि ट्राटस्की यह कहता है कि वह कमजोर स्थल पर टूटेगी । लेनिन क्योंकि वह राजनीतिज्ञ था और इसलिये इन दोनों की अपेक्षा ज्यादा होशियार था ,उसने ऐसा जवाब दिया जिसके वक्त के मुताबिक कई अलग-अलग मतलब निकाले जा सकते हैं। उसने कहा पूंजीवादी कड़ी उसी स्थल पर टूटेगी जहां मजदूर वर्ग की राजनैतिक पार्टी जोरदार होगी। फिर चाहे वह स्थल सबसे ज्यादा मजबूत हो या सबसे ज्यादा कमजोर , बीच वाला हो या किसी तरफ वाला ।[1]

मार्क्स का विचार था कि क्रांति के बाद उत्पादन के स्वामित्व पर राज्य का अधिकार होगा । उसने व्यक्तिगत सम्पत्ति का विरोध किया । वह उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में था । वह मानता था कि आर्थिक लक्ष्य प्राप्त हो जाने पर सामान्य लक्ष्य स्वत: प्राप्त हो जाते हैं । लोहिया जी ने उसके इस विचार का खण्डन करते हुए कहा - इन आर्थिक लक्षणों (मार्क्सवाद) की मारीचिका के पीछे भागते रहना और इसके लिये सामान्य लक्ष्यों की बलि चढ़ा देना बहुत ही खतरे का और बेवकूफी का काम होगा ।[2]

लोहिया जी का विचार था कि साम्यवाद एक सामाजिक न्याय के कार्यक्रम के रूप में प्रारम्भ हुआ , इसका आधार एक वर्ग विहीन समाज की उपलब्धि करना था । उन्होंने कहा - साम्यवाद के दर्शन का दावा है कि यह पूंजीवाद के विकास का आवश्यक अंत है और वर्ग विहीन समाज आना ही है ।[3]

लोहिया जी मानते थे कि साम्यवादी राज्यों में व्यक्ति की स्वतंत्रताओं

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया ' मार्क्सवाद और समाजवाद' चौखम्भा चुनाव विशेषांक १२ फरवरी १९६२, पृष्ठ-४५

२- डा०राममनोहर लोहिया' मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-११२

३- वही , पृष्ठ-२

पर नियंत्रण लग जाता है । उन्होंने कहा - सोवियत संघ में जनता और उसके नेता तक असुरक्षा और स्वेच्छाचारी गिरफ्तारियों और मृत्यु की दशा में रहे हैं, वहाँ न्याय स्वतंत्रता नहीं है, विधि है ही नहीं और सामान्य आतंकवाद ने बहुसंख्यक जनता को सुरक्षित कल्याण के भाव से वंचित कर दिया है ।[१]

लोहिया जी का मत है कि ये परिस्थिति अधिक दिनों तक नहीं चल सकती, उसके बाह्य सम्बन्ध भी विश्व परिषदों में पृथक्करण के हैं । आन्तरिक आतंक और बाह्य पृथक्करण को हटाना सोवियत संघ के नेतृत्व की प्रथम आवश्यकता है । यह स्टालिन से पृथक किये बिना नहीं हो सकता है । उन्होंने कहा - साम्यवाद एक ऐसे पिछड़े हुए राष्ट्र के लिये जिसकी जनसंख्या कम हो , विश्व में प्रतियोगिता की दौड़ में दौड़ने के लिये आदर्श रूप में उपयुक्त है ।[२]

लोहिया जी ने स्टालिन को विश्व के इतिहास के महानतम् अपराधियों में एक बताया और उनकी कठोरता को अत्यन्त भयंकर बताया है, जो अतिरंजित है । ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने भारतीय समाजवादी दल के विरुद्ध प्रतिस्पर्धा करते हुए ये भावना बना ली है क्योंकि वह सोवियतमुखी रही है । स्टालिन ने रूस में कठोरता दिखाई ,उसके तीन कारण थे - पहला कारण राज्यक्रांति के उपरान्त यूरोपीय देशों द्वारा रूस की नाकाबंदी करना और उसकी आपूर्तियों को रोक देना और दूसरा आन्तरिक पंचमांगियों को प्रतिक्रांति के लिये प्रेरित करना और तृतीय हिटलर के रूस पर आक्रमण करने के लिये उकसाना और सुविधा देना । यदि पश्चिमी यूरोप के देश रूस के विरुद्ध इस प्रकार की नितांत

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स,गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-२७१
२- वही ,पृष्ठ-२७२

शत्रुतापूर्ण भावना न दिखाते तो न रूस में आन्तरिक कठोरता की इतनी आवश्यकता होती और न दूसरे राष्ट्रों के प्रति उसकी इतनी संदेहपूर्ण दृष्टि होती । रूस में स्टालिन के बाद में लौह पर्दा पड़ा रहा , उसका कारण भी संयुक्त राज्य अमरीका और उसके मित्रों द्वारा वृत्तीयकरण की नीति अपनाना और उसे राजी रखना है । लोहिया जी ने कहा - उन राष्ट्रों और सरकारों को दुर्बल न करने के लिये जिनकी सहायता रूस के लिये अमरीका का सामना करने और उससे अधिक शक्तिशाली होने के लिये अनिवार्य है और रूस का अलगाव समाप्त करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद को सहमति , आधारित पुनर्निर्माण की संकल्पना को कम से कम उन क्षेत्रों में व्यवहार में लाना पड़ेगा ।[1]

लोहिया जी का विचार था कि विनोबा भावे की सर्वसम्मति-पंचायतें , अशोक मेहता के समझौते का क्षेत्र , जय प्रकाश नारायण के दलविहीन राजनीति,प्रारम्भिक साम्यवादियों के सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद की संकल्पना और वर्तमान सर्व सम्मति पुनर्निर्माण सब एक ही विचारधारा के अंग हैं । उनका लक्ष्य दूसरा हो सकता है और इसलिये उनके सिद्धांत तब तक एक दूसरे के विरोधी रहेंगे जब तक कि उनमें से एक देश की सरकार पर अधिकार नहीं कर लेता । साम्यवादी सर्वसहमति का सिद्धांत इसलिये कहते हैं कि वे पुनर्निर्माण के संगठनों जैसे - गांधी ट्रस्ट , भूदान संगठन और देश की सरकारों में सम्मिलित हो सकें ।

लोहिया जी ने कहा - सर्वसम्मतीय पुनर्निर्माण जब वह विपदा में हो तो शासनकालीन सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद का दूसरा नाम है। बीसवीं कांग्रेस तक साम्यवादियों ने नेहरू वाद को भारत के अतिरिक्त सारे विश्व में पसंद किया और नेहरू ने साम्यवाद को भारत के अतिरिक्त सारे विश्व में पसंद किया । इस विशेष कांग्रेस में जो प्रपत्र तैयार हुए और जो

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया, मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-२७६

सैद्धांतीकरण हुआ , उसके अनुसार यह निश्चित हुआ कि नेहरू और साम्यवादी विश्व में निर-अपवाद प्रत्येक स्थान पर एक दूसरे को चाहेंगे ।[१]

लोहिया जी का विचार था कि कोई भी देश एक मत होकर साम्यवाद को कभी भी सत्ता में नहीं लायेगा । वे कठिनाई के समय उसे सहन कर सकते हैं या स्वागत कर सकते हैं ।[२]

लोहिया जी की यह मान्यता पश्चिमी बंगाल , त्रिपुरा और केरल में स्थापित वामपंथी सरकारों के चुनाव द्वारा स्थापित होने से असत्य सिद्ध हुई है ।

लोहिया जी ने साम्यवाद के सम्बन्ध में कहा कि प्रत्येक अन्य स्थान पर साम्यवादी जब तक युद्ध की ऐसी स्थिति स्थाई रूप में स्थापित नहीं होती , अपना प्रभाव खोयेंगे ।[३]

विश्व के अन्य स्थान जैसे क्यूबा, अर्जिन्टाइना, निकारागुआ आदि जहां साम्यवादी सत्ता में आये और जहां संयुक्त राज्य अमरीका ने षड्यंत्री विप्लव करवाये, लोहिया जी के मत के विरुद्ध प्रमाण हैं ।

लोहिया जी प्रत्येक दशा में वर्तमान से भिन्न एक ऐसी आर्थिक चिंतन की व्यवस्था चाहते थे जिसमें समस्त विश्व को समान कल्याण की सुन्दर रूपता प्राप्त हो । लोहिया जी ने मार्क्सवाद के सिद्धांतों का खण्डन किया पर वैसे उसकी अच्छाई बताते हुए कहते हैं कि - सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में मार्क्स के सिद्धांत के द्वारा की गई उन भूलों के बावजूद भी, उसे मान्यता मिलनी ही चाहिये क्योंकि इसने निजी सम्पत्ति के अस्तित्व

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया, मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-२७७

२- वही पृष्ठ-२७८

३- वही पृष्ठ-२७८

को मिटा देने की पुरजोर वकील की है ।[1]

लोहिया जी न पूर्णतया मार्क्सवाद को मानते थे और न गांधीवाद को । उन्होंने दोनों सिद्धांतों को ध्यान में रखकर अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन किया । उन्होंने कहा - मैं विश्वास करता हूं कि गांधीवादी या मार्क्सवादी होना मूर्खता है और एक गांधीवाद विरोधी और मार्क्सवाद विरोधी होना भी समान मूर्खता है । मार्क्स और गांधी दोनों ही शिक्षा ग्रहण करने के लिये अमूल्य कोष है , पर यह शिक्षायें तभी ग्रहण की जा सकती हैं जब सन्दर्भ संरचना एक व्यक्ति या युग से ग्रहण नहीं की जाती ।[2]

लोहिया जी का आरोप था कि मार्क्सवाद सिर्फ पूंजीवाद के सम्बन्धों को चुनौती देता है । वह उनको तो बदलना चाहता है परन्तु पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली , भारी मशीन योजना का प्राद्योगिकी को ज्यों का त्यों स्वीकार करता है । उसे उसी दशा में विकसित रहने देता है जिस दिशा में उसे पूंजीवाद , साम्राज्यवाद ने प्रवृत्त किया था । इसमें क्रांतिकारी परिवर्तन के बिना न तो औपनिवेशिक शोषण के आधार पर स्थापित यूरोपीय श्रेष्ठता का दुश्चक्र तोड़ा जा सकता है और न ही समता और सम्पन्नता की नई दुनिया बनाई जा सकती है । गणेश मंत्री ने लिखा है - मार्क्स की टीका करते समय लोहिया का दोहरा उद्देश्य रहा है । एक ओर उन्होंने मार्क्स के विचारों के साथ स्वाभाविक रूप से जुड़ी हुई उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोप की विशेषताओं को पहचानने की कोशिश की है , तो दूसरी ओर उन्होंने भारत जैसे निर्धन और अविकसित एशियाई देश की अपनी परिस्थितियों के सन्दर्भ में मार्क्सवाद की जांच पड़ताल की है। मार्क्स की जांच पड़ताल करते समय लोहिया की दृष्टि एक प्रमाण - वैज्ञानिक की दृष्टि रही है ।[3]

१- डा० राममनोहर लोहिया -" मार्क्सवाद और समाजवाद " चौखम्भा चुनाव विशेषांक, १२ फरवरी, १९६२, पृष्ठ-७३

२- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-१

३- गणेश मंत्री, मार्क्स, गांधी और सामयिक सन्दर्भ, पृष्ठ-१३०

लोहिया जी के समाजवादी विचारों पर यूरोप की समाजवादी विचारधाराओं का भी प्रभाव पड़ा। डा०लोहिया की मार्क्सवाद की समीक्षा देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि बर्न्सटाइन की भाँति लोहिया जी ने भी मार्क्स की ऐतिहासिक व्याख्या में अविश्वास प्रकट किया तथा श्रमिक-संगठन, समाजवाद के विचारों के क्रमिक विकास तथा लोकतंत्र के विचारों को प्रोत्साहन देने की बात पर विशेष बल दिया है। डा०लोहिया ने औद्योगिक प्रशासन में श्रमिकों को भागीदार बनाने के लिये विशेष जोर-दिया। वे श्रम संघवाद से भिन्न अहिंसात्मक प्रणाली में विश्वास करते हैं। उत्तेजक क्रांतिकारी विचारों के आधार पर डा०लोहिया पर श्रम संघवाद के विचारों का प्रभाव माना जा सकता है।

फेबियन समाजवाद के समान ही डा०लोहिया के समाजवाद में पूँजी को सार्वजनिक स्वामित्व में लाने हेतु विशेष आग्रह किया गया है। वे भी विकासशील, प्रजातांत्रिक तथा राष्ट्रीय परिस्थितियों में उपयुक्त सिद्ध हुए समाजवाद में विश्वास रखते थे। वे लास्की से बहुत प्रभावी थे। डा०लोहिया को अपने समाजवादी विचारों का निर्माण करने में फेबियन समाजवाद से प्रेरणा मिली।

चौखम्भा व्यवस्था की स्वशासन पद्धति तथा अहिंसा में विश्वास डा०लोहिया के विचारों की दो प्रमुख विशेषतायें थीं, जो श्रेणी समाजवाद में भी देखने को मिलती हैं। अपने इन विचारों की रचना में डा० लोहिया के ऊपर श्रेणी समाजवाद की गिल्ड व्यवस्था का भी प्रभाव-स्पष्टत: परिलक्षित होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पश्चिम के सभी समाजवादी विचारधाराओं के कुछ न कुछ तत्व डा०लोहिया के समाजवाद में पाये जाते हैं। इन्होंने अपने विचारों के निर्माण के दौरान निश्चित रूप से यूरोपियन समाजवादी विचारधाराओं का अध्ययन किया होगा तभी तो उनके ऊपर

यह प्रभाव आया ।

७) <u>पूंजीवाद -</u>

पूंजीवाद का विकास यूरोप में औद्योगिक क्रांति के बाद हुआ । सर्वप्रथम मशीनों के आविष्कार से कम लागत पर अधिक उत्पादन प्रारम्भ हुआ। श्रम विभाजन, विशिष्टीकरण और मशीनों का अधिक प्रयोग उस समय के उत्पादन की विशेषतायें थीं । उत्पादन का सभी लाभ पूंजीपतियों को मिलता है और श्रमिकों को उनके श्रम के बदले वेतन मिलता है । पूंजीवादी उद्योग वह है जिसमें उत्पादन के भौतिक औजार निजी व्यक्तियों द्वारा या तो स्वामित्व में होते हैं या किराये पर लिये जाते हैं तथा उन्हीं की आज्ञा से इस दृष्टि से प्रयोग किये जाते हैं कि वस्तुएं या सेवायें जो उनकी सहायता से बनेंगी , उन्हें लाभ से बेचा जायेगा । पूंजीवादी अर्थव्यवस्था या प्रणाली वह है जिसके अधिकांश उत्पादन के साधन पूंजीवादी उद्योगों में लगे रहते हैं ।

लोहिया जी मानते थे कि पूंजीवादी व्यवस्था श्रमिकों के अतिरिक्त मूल्य के कारण समृद्ध हो जाता है क्योंकि पूंजीपति श्रमिकों के श्रम द्वारा उत्पादित वस्तु का अतिरिक्त मूल्य अपने पास रख लेते हैं । इस कारण पूंजीपति वर्ग अधिक धनी और मजदूर वर्ग अधिक निर्धन होता जाता है । उन्होंने कहा - स्पष्टतः इसलिये पूंजीवादी विकास का गत्यात्मक मूल्य तथा श्रम के उपयोग मूल्य पारिश्रमिक तथा उत्पादन के अन्तर्विरोध में निहित होता है । यह अन्तर्विरोध उस अतिरिक्त मूल्य का साधन है जो सम्पूर्ण लाभ का निर्माण करता है ।[१]

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया , मार्क्स , गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-३

लोहिया जी ने पूंजीवाद के विकास को स्पष्ट करने का निम्न-प्रकार से प्रयास किया -

१) ब्रिटिश पूंजीवाद - लोहिया जी का मत था कि पूंजीवाद सबसे पहले ब्रिटेन में विकसित हुआ । यहाँ सबसे पहले कम-उद्योग ने मशीनों का निर्माण किया । ब्रिटेन ने अपने वस्त्रों को भारत में विक्रय करने की शुरुआत की और धीरे-धीरे भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के माध्यम से ब्रिटेन में व्यापार में एकाधिकार प्राप्त कर लिया। भारत से जूट, कपास, चाय, तिलहन, चमड़ा ब्रिटेन को भेजा जाने लगा । इससे ब्रिटेन के पूंजीवाद को अधिक शक्ति प्राप्त हुई । भारतीय बुनकरों पर प्रत्यक्ष आक्रमण करने के अलावा आन्तरिक व्यापार का एकाधिकार अपने हाथ में लेकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी और उनके कर्मचारी ही यह फैसला कर सकते थे कि कौन सी वस्तु बाजार में आयेगी और कौन सी नहीं । भारतीय वस्त्रों पर अंग्रेजों की विजय राजनीतिक विजय थी । लोहिया जी ने कहा - पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के आरम्भ और विकास एक साथ हुए। स्वयं अपने साम्राज्यवादी विस्तार अथवा आस्ट्रिया, ब्रिटेन और फ्रांस के साम्राज्यवादी विस्तार में भाग लेते हुए, जर्मनी पूंजीवाद का - विकास भी इसी प्रकार हुआ ।[१]

२) अमरीकी पूंजीवाद - लोहिया जी का विचार था कि अमरीकी पूंजीवाद का विकास भिन्न रीति से हुआ परन्तु वास्तव में अमरीका के पूंजीवाद में उन्हीं तत्वों का प्रयोग किया जिनका कि ब्रिटेन ने किया था । ब्रिटेन ने अपने पूंजीवाद के विकास के लिये भारत का उपयोग किया । इन दोनों तत्वों, क्षेत्र और जनसंख्या का उपयोग

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - अर्थशास्त्र मार्क्स के आगे , पृष्ठ-१६-२०

अमरीकी पूंजीवाद ने किया । यह प्रादेशिक फैलाव उन्नीसवीं शताब्दी के अधिकांश भाग में हुआ । सभी मध्य-पश्चिमी रियासतें, टेक्सिस रियासतें और पूर्वी रियासतें जिनका क्षेत्रफल भारत से अधिक है, इसी प्रसार के परिणामस्वरूप सामने आईं । इन क्षेत्रों में जनसंख्या का प्रश्न साम्राज्य-वादी ढंग से हल किया गया । इस शताब्दी में तीन करोड़ धनहीन व्यक्ति आकर बस गये । इन व्यक्तियों के साथ अमरीकी निवासियों के सम्बन्ध औपनिवेशिक रूप वाला ही रहता । लोहिया जी ने कहा - पूंजीवाद और साम्राज्यवाद साथ-साथ विकसित हुए - यह अमरीका के उदाहरण से स्पष्ट है । एक ही देश और एक ही राष्ट्र के भीतर उनके संयुक्त विकास का परि-णाम ब्रिटिश पूंजीवाद एवं साम्राज्यवाद के विकास से भिन्न है ।[1]

३)   अन्य देशों का पूंजीवाद - लोहिया जी का विचार था कि अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग ५० सालों तक ब्रिटेन में ही पूंजीवाद था, इसके बाद अमरीका में विकसित हुआ । लोहिया जी के अनुसार - ब्रिटेन के अलावा इस तरह के ४ पूंजीवादों का जन्म हो चुका था - जर्मन, अमरीका, जापानी और फ्रांसीसी । पूंजीवाद की इस वृद्धि ने पूंजीवादी प्रसार और सीमित विश्व के संघर्ष को और तीव्र कर दिया । इस प्रकार हम ऐसे युग में रह रहे हैं, जो साम्राज्यवादी युद्धों का युग कहलाता है और जिसे अधिक औचित्य के साथ पूंजीवादी युद्ध का युग भी कहा जा सकता है ।[2]

लोहिया जी का यह विचार मौलिक नहीं है क्योंकि उनसे पूर्व ये विचार लेनिन द्वारा व्यक्त किये गये हैं लेनिन की भांति ही लोहिया जी का विचार था कि इतिहास में साम्राज्यवाद के बिना

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - अर्थशास्त्र मार्क्स के आगे - पृष्ठ-२०-२१

२- वही   पृष्ठ-२३-२४

पूंजीवाद नहीं पनपा । साम्राज्यवाद से ही पूंजीवाद को शक्ति मिलती है और वह विकसित होता है । मार्क्स ने पूंजीवाद को साम्राज्यवाद के साथ नहीं जोड़ा । मार्क्स ने पूंजीवाद में सिर्फ पूंजीपति और मजदूर का संघर्ष देखा है । मार्क्स का पूंजीवाद एक काल्पित पश्चिमी यूरोप के घेरे का पूंजीवाद है । जिसका बाहरी दुनिया पर प्रभाव तो निश्चय ही बहुत अधिक पड़ता है किन्तु जिसकी गति के सिद्धांत और नियम पूर्णत: आन्तरिक हैं । मार्क्सवाद आज दिन तक इसी तस्वीर के साथ जुड़ा हुआ है । बाह्य प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में सिद्धांत को निश्चय ही बनाता है, किन्तु पूंजी की बाह्य और आन्तरिक गति के आपसी सम्बन्धों के बुनियादी सिद्धांत को प्रकट करने में पूर्णत: असमर्थ है ।

लोहिया जी ने पूंजीवाद को एक विशेष प्रकार की सभ्यता माना है । इसके आर्थिक संगठन की विशेषता है कि इसने पश्चिमी मनुष्य में भविष्य के प्रति एक विश्वास पैदा कर दिया । पूंजीवाद में मशीनों के निरन्तर सुधार होने से सभी का ज्यादा से ज्यादा भला होगा । उन्होंने कहा - जब पूंजीवाद के आरम्भ में बच्चों से काम लेना, राष्ट्रों में युद्ध और घोर शोषण का बोलबाला था - जैसा आज भी है, तब भी इस सिद्धांत की राय थी कि जब अस्थाई घटनायें और जब औद्योगीकरण पूरा हो जावेगा, जब उद्योग धन्धे और खेती से हर जगह मनुष्य की जरूरत पूरी होने लगेगी और दोष रहित स्पर्धा का राज्य होगा,[१] तो दुनिया में सभी मनुष्यों के लिये शांति और समृद्धि होगी ।

लोहिया जी मानते थे कि पूंजीवादी व्यवस्था में उपनिवेशों का शोषण होता है। पूंजीवादी तब समाप्त होगा जबकि उपनिवेशों की जनता संगठित होकर मजबूती से संघर्ष करने के लिये तैयार हो जावेगी ।

१- डा०राममनोहर लोहिया - इतिहास चक्र, पृष्ठ-१९-२०

मार्क्स की अपेक्षा लोहिया जी ने पूंजीवाद के विकास की उचित व्याख्या की है। उन्होंने पूंजीवाद को समाप्त करने के लिये कहा। इस दृष्टिकोण के अनुसार - क्रांति उन्हीं इलाकों में होगी जहाँ पैदावार की शक्तियाँ शक्ति-शाली के बहुत आगे नहीं बढ़ी है या उनका ह्रास हुआ है।[१]

लोहिया जी मानते थे कि पूंजीवाद के विकास में किसी एक देश के आर्थिक ढाँचे को अलग करके नहीं देखना चाहिये। पूरे विश्व के मजदूरों को एक सा देखना चाहिये। पूरे विश्व के मजदूरों के प्रति मजदूर औसत उत्पादन को देखना होगा, तभी अतिरिक्त मूल्य की समस्या का समाधान होगा। इस तरह से मजदूरों के श्रम और कार्यकौशल को एक देश विशेष की सीमाओं के अन्दर रखकर नहीं देखना चाहिये बल्कि पूरे विश्व के मजदूरों को एक जैसा देखना चाहिये,तभी पूंजीवादी देश दूसरे देशों के मजदूरों के श्रम का अधिक उपयोग नहीं कर पायेंगे।

उन्होंने कहा - आरम्भ से अब तक पूंजीवाद साम्राज्यवादी वाल दोनों शक्तियों को समझ सके, ऐसा सिद्धांत बनाने के लिये हमें किसी एक आर्थिक ढाँचे के अन्दर श्रम के अलग उत्पादन को या वितरित विश्व के कुल उत्पादन का विचार अपनाना होगा। इस प्रकार यह श्रम की आवश्यकता है और उसके उत्पादन में विरोधी न होकर श्रम का राजनीतिक दृष्टि से प्रभावशाली आवश्यकता में और हर श्रमिक के लिये विश्व के औसत उत्पादन से होगा।[२]

गांधी जी के स्वदेशी आन्दोलन पर टिप्पणी करते हुए उनसे कहा गया था कि वह दर्शन एकांगी है क्योंकि वह अफ्रीका और भारत के श्रमिकों का ही हित देखता है, इंग्लैण्ड के श्रमिकों का नहीं। इसलिये

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - इतिहास चक्र, पृष्ठ-२७
२- डा०राममनोहर लोहिया - अर्थशास्त्र मार्क्स के आगे, पृष्ठ-३५

लोहिया जी ने इस बारे में स्पष्ट कहा कि समस्त विश्व के श्रमिकों के बारे में सोचना चाहिये । मार्क्स ने भी अपने साम्यवादी घोषणापत्र में संसार भर के श्रमिकों को एक होने के लिये आह्वान किया था । लोहिया जी का विचार था कि अति दरिद्रता की दशा में सामाजिक चेतना या तो समाप्त हो जाती है या अति दुर्बल हो जाती है। विलासिता या आराम से रहने वाले व्यक्ति अपने और दरिद्रियों के मध्य उपेक्षा का ऐसा जाल लगा लेते हैं जिसमें सामाजिक चेतना उत्पन्न ही नहीं हो सकती । इसलिये इन जालों को हटा देना आवश्यक है और यह तभी हो सकता है जब आय एक उचित सीमा में आयें , न्यूनतम और अधिकतम आय में दस गुने का अन्तर उचित ही नहीं प्रतीत होता है परन्तु सामाजिक चेतना के पुनरुत्थान - आवश्यकताओं की अपेक्षाकृत अनुशासन और उत्पादन के अपेक्षाकृत बहुगुणन की पूर्ण दशा है । ये कार्य विधि द्वारा हो और ऐसी विधियां बनाई जायें जिसके लिये उचित जनमत उत्पन्न किया जाये । आय की ऐसी विधियों की सहयोगी व्यवस्था है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति कम की जावे। अविकसित क्षेत्रों का पूंजीवाद अपनी आवश्यकता के अनुरूप पूंजी प्रस्तुत करने का कार्य भी नहीं कर सकता । श्वेत देशों में पूंजी,जनसंख्या, प्राविधिकता सभी का एक साथ विकास हुआ है इसलिये वहां इनमें असन्तुलन नहीं हुआ पर एशिया और अन्य ऐसे क्षेत्रों में जनसंख्या बढ़ गई है । उन्होंने कहा मानवता को पूंजी उपलब्ध कराने का काम ही पूंजीवाद नहीं कर सकता।

जिस पूंजीवादी समाकलन का अब तक गोरे लोगों के बीच स्थानीय प्रयोग भर ही किया गया है, उसे फैला कर पूरी मानवता के लिये प्रयोग करना , उसे सार्वभौमिक बनाने का प्रयास करना,निश्चित तौर पर असफल होगा। गरीबी और युद्ध पूंजीवाद की रासायी संताने हैं । दो-तिहाई मानवता के लिये गरीबी और शेष के लिये युद्ध ।[१]

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - समाजवादी सिद्धांत का पराजय, समाजवादी आन्दोलन के दस्तावेज, पृष्ठ-३७८

लोहिया जी का विचार था कि पूंजीवाद समाप्त होना चाहिये अविकसित देशों में यह शीघ्र और तीव्र गति से जाना चाहिये। भारत के नवयुवक उत्पादन के अपेक्षाकृत बहुगुणन और आवश्यकताओं के अपेक्षाकृत अनुशासन की आशा, सामाजिक स्वामित्व और आय की अपेक्षाकृत समता की योजना के अन्तर्गत ही कर सकते हैं । यूरोप और अमरीका के युवकों की चिंता उत्पादन की अपेक्षा वितरण से अधिक सम्बन्ध रखती है। कुछ विकास सुधार से काम चला सकती है। एशिया तथा अन्य स्थानों के समाजवादी युवकों को अति न्यून उत्पादन और अपर्याप्त भोजन की चिंता है, अतः उन्हें एक क्रांति करना होगी ।

८) पूंजीवाद और साम्यवाद की समान स्थिति -

लोहिया जी का विचार था कि संयोग से दो दुर्ग संतोष्य विचारधारायें साम्यवाद और पूंजीवाद जो मृत्यात्मक संघर्ष कर रहे हैं, एक निकटवर्ती सादृश्य रखते हैं । दोनों राजनैतिक और आर्थिक केन्द्रीकरण, शक्ति प्राविधिक और संगठनात्मक कुशलता किसी एक राष्ट्र में एक ऐसा चित्र देखना जो दूसरों के लिये अनुकरणीय हो और पर्यावरण-वाद के सिद्धांत हैं ।[1]

यह उपर्युक्त कथन कहां तक सही है, इसको लोहिया जी ने स्पष्ट नहीं किया । साम्यवाद में केन्द्रवाद का सिद्धांत है लेकिन पूंजीवाद में अनिवार्यतः केन्द्रवाद नहीं है । साम्यवाद शक्ति में विश्वास रखता है लेकिन पूंजीवाद शक्ति में विश्वास नहीं रखता है । पूंजीवाद यदि शक्ति में विश्वास रखता होता तो अमरीका में प्रजातंत्र नहीं होता और जितना अच्छा प्रजातंत्र अमरीका में है, उतना विश्व में कहीं नहीं है ।

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-२८४

अमेरिका का नागरिक सबसे अधिक जागरूक है। अमेरिका में जन-साधारण की स्थिति अन्य देशों की अपेक्षा अधिक अच्छी है। अमेरिका का पूंजीवाद सफल इसलिये है क्योंकि उसका शोषण नहीं हुआ है और क्षेत्रफल अधिक है और जनसंख्या कम है। अमेरिका का राज्य शक्ति पर आधारित नहीं है, इच्छा पर आधारित है। मानवीय गुण को ध्यान में रखते हुए प्राविधिक और संगठनात्मक कुशलता एक राष्ट्र के लिये आवश्यक है। सरकारी उद्योग भी बिना संगठनात्मक व्यवस्था के नहीं चल सकते इसलिये लोहिया जी का यह मत भी उचित प्रतीत नहीं होता है। पूंजीवादी और साम्यवादी - देशों में कई और आदर्शवादी राज्य हो गये हैं,परिस्थितियों के अनुसार पर्यावरण को बदलना पड़ेगा। इसलिये लोहिया जी के विचार कुछ अर्ध-सत्य हैं और कुछ सत्य होते हुए भी आलोच्य नहीं हो सकते।

लोहिया जी का विचार था कि साम्राज्यवादी युग में उपकरण विश्व के दो-तिहाई भागों के लिये एक महान आकर्षण की वस्तु है और वे मृग मारीचिका में उनके पीछे दौड़ सकते हैं। साम्यवादी ऐसा करना चाहते हैं और वे स्वतंत्रता और रोटी के लिये औद्योगिक संघर्ष में पराजित होंगे। औद्योगिक प्रजातंत्र और श्रमिक का नियंत्रण सोवियत संघ की भांति यदि मशीन ऐसी अत्यधिक जटिल है कि उस पर केन्द्रीकरण सम्भव नहीं हो सकता, तब स्वाभाविक रूप से असफल होगा। लघु इकाई की मशीन के लिये प्रयास करके समाजवादी औद्योगीकरण और संस्कृति के लिये संघर्ष जीत सकता है। छोटी इकाई मशीन को वर्तमान प्राविधिकता का उन्नत रूप समझना चाहिये और उसे आवश्यक रूप से भारी पूंजीवादी मशीनों से कम कुशल नहीं समझना चाहिये क्योंकि इससे सामाजिक लाभ होता है। यही नहीं छोटी मशीन के समर्थक वृहद् उत्पादन के विरोधी नहीं है, वे इसे एक व्यवस्था में स्वीकार करते हैं।[1]

१- डा०राममनोहर लोहिया, मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-३७७

लोहिया जी का उपर्युक्त कथन सत्य प्रतीत नहीं होता क्योंकि वर्तमान समय में जो स्वतंत्रता है, वह स्वतंत्रता भी पूर्ण स्वतंत्रता नहीं है या वास्तविक स्वतंत्रता नहीं है। पूंजीवादी युग में जो स्वतंत्रता है, वह धनिकों की स्वतंत्रता है और जालसाज की स्वतंत्रता है। जन-साधारण के लिये कोई स्वतंत्रता नहीं है। रूस में कहा जाय कि स्वतंत्रता नहीं है यह अशुद्ध है। स्वतंत्रता का अर्थ है कि व्यक्तियों को अपनी प्रतिभा के विकास का अवसर मिले। उसकी प्रतिभा के स्वीकार करने का अवसर ● जितना सोवियत रूस में है, उतना वर्तमान समय में कहीं नहीं है और उतना लोहिया जी की व्यवस्था में भी नहीं होगा। स्वतंत्रता विभिन्न देशों में असामाजिकतत्वों के कारण नहीं है, यहां तक कि अमेरिका में भी पूर्ण स्वतंत्रता नहीं है क्योंकि वहां पर हत्यायें होती रहती हैं। लोहिया जी की व्यवस्था में भी जब व्यक्तिगत सम्पत्ति का संचय होगा तो वहां अपराधी बढ़ेंगे। देश में आन्तरिक संघर्ष व्यक्तिगत सम्पत्ति के कारण होते हैं। अपनी स्वतंत्रता का सही अवसर सही तरीके से साम्यवाद में ही है। साम्यवाद व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर केवल दो प्रतिबन्ध लगाता है - पहला साम्यवाद में व्यक्ति दल के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता और दूसरा व्यक्ति धार्मिक समर्थन नहीं कर सकता। रूस की स्वतंत्रता का प्रमाण है कि पिछले ओलम्पिक में रूस ने ही सबसे अधिक इनाम जीते थे। ओलम्पिक में रूस आगे था, एशिया में चीन सबसे आगे है। ओलम्पिक की ये उपलब्धियां यह बतलाती हैं कि साम्यवादी व्यवस्था में मनुष्य की क्षमता का अधिक विकास हो सकता है।

पूंजीवादी व्यवस्था में रोटी नहीं है, यह कथन लोहिया जी का गलत प्रतीत होता है क्योंकि अमेरिका सबसे अधिक पूंजीवादी देश है लेकिन वहां रोटी की समस्या बिल्कुल नहीं है। जबकि हमारे देश में रोटी का अभाव है क्योंकि हमारे यहां उद्योग कम हैं क्योंकि पूंजी का

अभाव है । लोहिया जी के उपर्युक्त दोनों विचार उपयुक्त प्रतीत नहीं होते ।

लोहिया जी का विचार था कि हमारे समय की एक महानतम उपलब्धि आर्थिक विकास और स्वतंत्रता तथा शांति की आध्यात्मिकता का संयोग है । इस पर सन्देह है कि क्या इससे पहले कभी इस प्रकार का मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता था । पूंजीवाद अपने द्वारा उत्पन्न विश्व - दरिद्रता के राक्षस को , जिसे उसने उत्पन्न किया है , व्यक्तिगत सम्पत्ति द्वारा मार नहीं सकता इसलिये वह आर्थिक लक्ष्य की पूर्ति नहीं कर सकता । साम्यवादी भी अपने आर्थिक लक्ष्य को पूरा नहीं कर सकता क्योंकि व्यक्तिगत पूंजी का विनाश करके वह पूंजीवाद की प्राविधिकता का पुनर्स्थापन चाहता है।

वास्तव में पूंजीवादी खोज का उद्देश्य लाभ बढ़ाना , साम्यवाद का उद्देश्य मनुष्य के कष्ट का निराकरण करना है । लोहिया जी पूंजीवाद व साम्यवाद के लाभों को भी स्वीकार नहीं कर पाते हैं । लोहिया जी के उपर्युक्त सिद्धांत के आधार पर कहा जा सकता है कि उन्होंने साम्यवाद व पूंजीवाद दोनों को ही समान रूप से अस्वीकार किया है । वह समस्त मानवजाति का कल्याण अपनी समाजवादी व्यवस्था के माध्यम सेकरना चाहते थे ।

६) <u>लोहिया जी का समाजवाद -</u>

(ट) समाजवाद में आदर्श व यथार्थ का समन्वय - लोहिया जी ने समाजवाद में कुछ प्रचलित विश्वासों की चर्चा की है । इनमें से कुछ सिद्धांत और व्यवहार में एकता से सम्बन्ध रखते हैं । प्रायः अभी यह समझा जाने लगा कि आदर्श और यथार्थ दो पृथक भाव हैं पर हम कभी-कभी अपना आदर्श

बच्चों की भांति जिसके लिये माता-पिता आदर्श होते हैं यथार्थ में ही आदर्श के दर्शन करते हैं। इस प्रकार आदर्श और यथार्थ एक प्रतीक में एकीभूत होते हैं। यह यथार्थ के आदर्शीकरण का मिथ्याभास मनुष्य के चिंतन में प्राय: आ जाता है। इस संबंध में सामाजिक, दार्शनिक भी त्रुटि करते हैं - हीगलवाद मार्क्सवादी पूंजीपति सभी समझ की पद्धति दूषित किये हुए हैं। यूरोपीय मस्तिष्क में प्रकट होने वाली ऐतिहासिक घटनाओं में ही उन्नति की खोज करते हैं। समाज निरंतर उन्नति के दर्शन इस विचार में त्रुटि रखते हैं कि वर्तमान ही सर्वोच्च है। मैं चाहता हूं कि आप साम्यवादी मस्तिष्क को समझें। महात्मा गांधी मैं आदर्श का प्रतिक था।[१]

लोहिया जी का विचार था कि सामाजिक दशाओं के सुधारने के लिये आवश्यक है कि उसका अध्ययन किया जाय। यथार्थ में आदर्श का परिचय का प्रयास मृत्यु पर चलता है और प्रेम इसके लिये मुख्यत: उत्तरदायी है। उन्होंने कहा - साम्यवादियों के लिये रूस ही वर्तमान उन्नति की अभिव्यक्ति है। वह उसका निर्बाध आदर्श है। इसी प्रकार पूंजीपतियों को उन्नति का आदर्श - अमरीका है। इस प्रकार दर्शन देखने की, परीक्षा करने की और समझने की आलोचनात्मक क्षमता क्षीण होकर एक वस्तु को आदर्श बना देती है। इसके कारण मानव मस्तिष्क या तो औचित्य बताता है या उसकी आलोचना करता है या समझना बंद कर देता है। इस संबंध में अहिंसा को स्वीकार करने वाले व्यक्ति भिन्न नहीं हैं। वे भी केवल एक आदर्श को स्वीकार करते हैं, उसे समझते नहीं। आदर्श को भाषणों में समझा जा सकता है, पर आलोच-नात्मक गुणों द्वारा नहीं।[२]

लोहिया जी का मत था कि - महात्मा गांधी के उपरान्त किसी

- -

१-राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-२१०
२-वही पृष्ठ-२११

आदमी ने किसी आदर्श को मस्तिष्क से समझने का प्रयास नहीं किया। वे पर्याप्त रूप से सावधान करते हैं कि कोई व्यक्ति किसी वस्तु का खंडन-मंडन करने का प्रयास न करे , उसे समझने का प्रयास करे। सार रूप में गांधीवादी और साम्यवादी एक ही मस्तिष्क रखते हैं । महात्मा गांधी निःसंदेह भिन्न थे । यद्यपि उनमें भी कुछ दोष आ सकता है। उदाहरणार्थ - उन्होंने बताया कि बिहार में भूकम्प आने का कारण भारत में व्याप्त अस्पृश्यता था । उन्होंने ये कार्य निःसंदेह अस्पृश्यता के निवारण के उच्च उद्देश्य से किया पर साथ ही वे मानव मस्तिष्क का उल्लंघन कर रहे थे । लोहिया जी ने कहा - मैं उस समय यह देख नहीं सका क्योंकि मेरे लिये एक अच्छा लक्ष्य कार्य को न्यायोचित बनाता था लेकिन एक महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिये वे स्वतः लक्ष्य और साधन के अपने ही उच्च सिद्धांत का खंडन कर रहे थे । समाजवाद के साथ भी ऐसी परिस्थिति है वस्तुओं को समझने का प्रयास नहीं किया जाता। जिन व्यक्तियों ने प्रजा सोशलिस्ट कार्यकारिणी के दृष्टिकोण को अपना लिया है, उन्होंने आलोचना करने और समझने की क्षमता को खो दिया है ।[१]

यथार्थ क्यों आदर्श का प्रतीक होता है उसका एक कारण बताते हुए लोहिया जी का मत था कि मनुष्य के मस्तिष्क में आदर्श दो रूपों में आता है , एक अमूर्त दूसरा मूर्त । अमूर्त आदर्श का मूर्त रूप होता है। यद्यपि वह फिर भी आदर्श रहता है। कभी-कभी यह होता है कि सामान्य प्रत्यय मूर्त रूप न ग्रहण कर पाये तब वह अर्थहीन हो जाता है। आदर्श को अमूर्त और मूर्त दोनों स्वरूप में होना चाहिये। अमूर्त आदर्श सामान्य - इच्छाओं से संबंधित होता है। प्रजातंत्रवाद न्याय, समता मनुष्य के शोषण का अंत ऐसे सामान्य आदर्श हैं । इनसे मानव मस्तिष्क का शक्तिशाली अभि-प्रेरण हुआ है। ये विशुद्ध रूप से अमूर्त और शाश्वत है । यद्यपि इनकी

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-२११

अमूर्तता समय समय पर परिवर्तित होती रहती है। इस प्रकार फ्रांसीसी राज्य क्रांति की समता उसकी वर्तमान अर्थ से भिन्न अर्थ रखती थी इसलिये जब आदर्श मूर्त रूप में प्रकट होता है तभी वह मानव कार्यों को प्रभावित कर सकता है और रूस की राज्य क्रांतियों ने सामान्य आदर्श में नहीं वरन् उसके मूर्त तत्वों में जो कि उस समय से परिवर्तित हो चुके हैं, कार्यवाही कराई। इस प्रकार अमूर्त रूप में आदर्श ने चिंतन को प्रेरित किया है और उसके मूर्त रूप ने कार्य को प्रेरित किया। इस प्रकार एक के बिना दूसरा नहीं रह सकता। यदि सामान्य आदर्श और वर्तमान वास्तविकता को सम्बद्ध करना है तो उसे व्यक्ति के समक्ष मूर्त छवि होना चाहिये। पहले अमूर्त को मूर्त करना चाहिये जिससे कि वर्तमान वास्तविकता का मापन करने के लिये एक स्तर बनाया जा सके। उन्होंने कहा- उदाहरण के लिये समता एक अत्यन्त सामान्यीकृत और अमूर्त सिद्धांत है। समता और अद्वैत एक मनुष्य के जीवन को या समाज के विकासक्रम को परिवर्तित करने के लिये अत्यन्त विध्वंसात्मक है। हमारी राजनीति में सैद्धांतिक संकट मूर्त स्वरूपों का अभाव प्रमुख रूप से उत्तरदायी है। हम लोगों को व्यापी रूप से बता दिया गया है कि कांग्रेसियों और समाजवादियों में कोई सैद्धांतिक अन्तर नहीं है। यह तभी सत्य माना जा सकता है, जब हम केवल अत्यन्त अमूर्त - आदर्श को ही देखें क्योंकि ऐसा कौन है जो प्रजातंत्रवाद, समता, न्याय और समानता के अमूर्त आदर्शों को नहीं मानता, जब मूर्त अर्थ पर विचार किया जाता है तभी अन्तर प्रकट होता है।[१]

लोहिया जी का विचार था कि यूरोपीय मस्तिष्क आदर्श को यथार्थ में देखता है जबकि भारतीय मस्तिष्क ने वास्तविकता से आदर्श को पृथक कर दिया है, इसलिये आज मानव मस्तिष्क संकट में है।

(ठ) समाजवाद : साम्यवाद व पूंजीवाद - लोहिया जी समाजवाद को युग का एक मात्र आशापूर्ण सिद्धांत मानते थे। पूंजीवादी और साम्यवादी

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-२३४

विश्वों में बटे हुए,समाजवाद एक ऐसे सिद्धांत को विकसित करने में असमर्थ है जो स्थायित्व और परिवर्तन के दावों में सामंजस्य स्थापित कर सके,जो यथास्थिति को दृढ़ किये बिना स्थायित्व की आवश्यकताओं तथा अराजकता को उत्पन्न किये बिना परिवर्तन की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके । इस अभाव के कारण भारत में कार्यवाही करने में खिचखिचाहट उत्पन्न होती है। समय समय पर पूंजीवाद को साम्यवाद के पीछे चरण रखना पड़ता है । दूसरे इंग्लैण्ड में मितव्ययता की आवश्यकताओं और सम्पन्नता के विकास के लक्ष्यों के मध्य अनिदानीय तनाव पैदा हुआ है। यह संयुक्त राज्य में सच्चे समाजवादियों को विरोध की भावना के साथ उस काल के लिये प्रतीक्षा कराये है जबकि [illegible] संकट उत्पन्न हो , जिसके समय वे अपने उद्देश्य को उत्साहित और उत्सुक जनता तक ले जा सकें । अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में यह विभिन्न देश के समाजवादियों को पृथक-पृथक मार्ग पर चलाता है उदाहरणार्थ - कोयला और लोहे तथा यूरोपीय सेना के प्रकरणों पर , फ्रांसीसी समाजवादी और जर्मन समाजवादी विभाजित हैं । पूंजीवाद और साम्यवाद की तुलना में समाजवाद एक नया सिद्धांत है । यह भी उसकी असफलताओं के लिये स्पष्टीकरण करेगा और आशा भी देगा । दोषपूर्ण प्रवृत्तियां और संगठन अन्य कारण हैं पर समाजवाद का जीवनक्रम सबसे अधिक सैद्धांतिक आधारशिला के अब तक न प्राप्त करने के कारण रुका हुआ है । लोहिया जी के अनुसार - समाजवाद को सदैव एक ऐसा सिद्धांत होना चाहिये जो विकसित हो पर साथ ही वह अपने विभिन्न अंगों को एक साथ रखने वाले सिद्धांत को रखता हो । वह ऋण ली हुई सांस पर जीवित ना रहे , उसने बहुत समय तक साम्यवाद से अपने आर्थिक उद्देश्य और पूंजीवाद या उदार युग से अनार्थिक और सामान्य ऋण लिया है जिससे एक तीव्र असामंजस्य उत्पन्न हो गया है । समाज के आर्थिक और सामान्य लक्षणों को पुन: खोजना और उन्हें एक सामंजस्य में समेकित करना समाजवादी सिद्धांत का अन्य प्रयास होना चाहिये ।[१]

(ख) समाजवाद के उद्देश्य - वर्तमान उत्पादन साधनों पर समाजवादी

१- डॉ० राममनोहर लोहिया मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-३२१- - -

स्वामित्व स्थापित करना और वृहद् उत्पादन का आगे विकास करना तथा किसी प्रकार की एक योजित अर्थव्यवस्था विभिन्न अंशों में समाजवाद के आर्थिक उद्देश्य स्वीकार किये जाते हैं। राष्ट्रीय स्वतंत्रता, प्रजातंत्र और मानव अधिकार का संरक्षण तथा वह जो संस्कृति के मूल्य या जीवन के आध्यात्मिक गुण समझे जाते हैं, उन्हें स्थापित करना समाजवाद का सामान्य लक्ष्य है। एक का दूसरे पर इस प्रकार पैबंद लगाना समाजवाद के भविष्य के लिये संकटपूर्ण है क्योंकि यह एक विनाशक विश्वास प्रोत्साहित करता है कि साम्यवाद के अन्तर्गत आर्थिक प्रजातंत्र रहता है और पूंजीवाद के अन्तर्गत राजनैतिक प्रजातंत्र रहता है तथा आवश्यकता मात्र इसका है कि उन्हें संयुक्त किया जाय, जब तक समाजवाद उन प्रस्थापनाओं को विकसित नहीं करता जिन पर पूंजीवाद और साम्यवाद आधारित है और उनके स्थान पर अपना आर्थिक और सामान्य लक्ष्यों का सामंजस्यता का व्यवस्था नहीं करता, वह एक अतार्किक सिद्धांत रहेगा जो अभी वयस्क नहीं हो पायेगा।

लोहिया जी के अनुसार - समाजवाद को सदैव ऐसा सिद्धांत बना रहना चाहिये जो निरंतर विकसित होता है लेकिन इसे सदैव ऐसा सिद्धांत अपनाना चाहिये जो इसके विभिन्न अंगों को एक साथ जोड़ सके। समाजवाद को उधार ली गई टांग पर चलना छोड़ना चाहिये। बहुत लम्बे समय तक उसके अपने आर्थिक लक्ष्य साम्यवाद से उधार लिये हैं और गैर-आर्थिक एवं सामान्य लक्ष्य पूंजीवाद या उदारवादी रूप से। इसके परिणामस्वरूप एक विकट असंगति उत्पन्न हुई। एक बार फिर से समाजवाद के आर्थिक एवं सामान्य लक्ष्यों को सोचना और उनका संगत रूप में समाकलन करना समाजवादी सिद्धांत की कोशिश होनी चाहिये।[१]

लोहिया जी का मत था कि साम्यवाद व पूंजीवाद दोनों में ही

१- डा० राममनोहर लोहिया - "समाजवादी सिद्धांत का नया परातल" समाजवादी आन्दोलन के दस्तावेज, पृष्ठ-३७७

बेरोजगारी है - एक में प्रकट है और दूसरे में अर्धबेरोजगारी के रूप में छिपी है। इसे दूर करने के लिये समायुक्तिकरण और स्वामित्व की संघरूपी पद्धति सोचना पड़ेगी। बिजली या तेल से चलने वाले लघु इकाई मशीन इसका उत्तर है। ऐसी मशीनें थोड़ी ही हैं, अधिक का आविष्कार करना पड़ेगा केवल राज्य द्वारा केन्द्र पर आधारित स्वामित्व और उसके साथ वृहद उत्पादन जीवन और स्वतंत्रता दोनों के लिये विनाशक है। उपर्युक्त प्रकार की सम्पत्ति गांव, जिला, प्रदेश और केन्द्र के स्वामित्व में होना चाहिये। उनके अनुसार - समाजवाद को सीमित पूंजीवाद और मिश्रित अर्थव्यवस्था के सारे सिद्धांतों को निश्चित रूप से अस्वीकार कर देना चाहिये। साम्यवाद विश्व के दो-तिहाई भाग को न तो जीवन दे सकता है और न स्वतंत्रता। व्यक्तिगत सम्पत्ति समाप्त हो जाना चाहिये, केवल ऐसी को छोड़कर जिसके लिये एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति की नियुक्ति का अवसर नहीं आता।[१]

इसके अतिरिक्त लोहिया जी का विचार था कि समाजवाद के सामान्य लक्ष्य स्वाभाविक रूप से साम्यवादी सिद्धांत द्वारा प्रस्तावित आर्थिक लक्ष्यों से निर्मित नहीं होते, उच्च जनसंख्या और निम्न प्राविधिकी में समाजवाद के आर्थिक लक्ष्यों की पूर्ति का प्रयास एक भारी चिन्ता है और विनाश है। स्वयं साम्यवादी तर्कों के अनुसार पूर्ण जीविका की उपलब्धि के उपरान्त ही पूर्ण स्वतंत्रता आयेगी लेकिन चूंकि साम्यवादी अविकसित अर्थव्यवस्था के युक्तिकरण का कोई मार्ग दर्शित नहीं करते, समाज के केवल सामान्य लक्ष्य ही स्थायी होने की प्रवृत्ति रखते हैं। केन्द्रीभूत दल और राज्य ही साम्यवाद के सामान्य लक्ष्य हैं जिनकी वो उपलब्धि करते हैं। जब साम्यवाद भारतीय कृषि का युक्तिकरण करेगा तो गाता और ऐसे ही दर्शन जिन्हें भारत ने गाया है, प्रारम्भ में ही समाप्त हो जायेंगे। चीन में रूस से अधिक आतंक रहा है और यह नहीं कहा जा सकता कि मनुष्य की आत्मा कहां तक दमन करना पड़ेगी ?

१- डा० राममनोहर लोहिया, मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-२२६

लोहिया जी के अनुसार - साम्यवाद केवल पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों को परिवर्तित करता है और उसकी शक्तियों को पुनंउत्पादित करने का प्रयास करता है। समाजवाद को इन दोनों को परिवर्तित करना चाहिये। ये मशीन की अस्वीकृति नहीं है, यह केवल उस स्थिति की स्वीकृति है जिसमें बड़ी मशीनें और उसकी प्रतिपक्षी सर्वशक्तिशाली राज्य की अस्वीकृति है। साम्यवाद इतिहास को पीछे चलाना चाहता है और पूंजीवाद के द्वारा किये गये विनाश को सामान्य उत्पादन के तरीकों के अनुकरण से ठीक करना चाहता है, ऐसे किया नहीं जा सकता। समाजवाद को इतिहास को आगे बढ़ाना सीखना चाहिये।[१]

लोहिया जी मानते थे कि विश्व के दो-तिहाई भाग से पूंजीवाद और सामंतवाद समाप्त करना है। पूंजीवाद शरीर और आत्मा दोनों का दरिद्रीकरण है। यह इस जनसंख्या को पूर्ण भोजन नहीं दे सकता और उसे निरंतर न्यून पोषण की व्यवस्था करना पड़ता है। ये केवल लाभ उत्पन्न कर सकता है और अविकसित अर्थव्यवस्था में लाभ के लिये कोई क्षेत्र नहीं है, उत्तरोत्तर मनुष्य के स्तर को गिरा रहा है और मनुष्य को आधा मनुष्य और अच्छा घोड़ा बना रहा है, फुटकर व्यापार बहुगुणित हो रहा है और कारखाने नष्ट हो रहे हैं। विकसित क्षेत्रों में ईमानदारी एक अच्छी नीति हो, पर भारत और ऐसे क्षेत्रों में एक ईमानदारी की जीविका कमाने की असम्भाव्यता को सिद्ध करते हैं। प्रत्येक वस्तु पर विनाश और मृत्यु की गंध जमी हुई है। विनाश शरीर और आर्थिक ऊर्जा का और मृत्यु आत्मा और सामान्य ऊर्जा की, ऐसे पूंजीवाद का अब सुधार और संशोधन नहीं किया जा सकता। इसका उन्मूलन करना होगा और उसके लिये अब खोने का अधिक समय नहीं रहा है।

लोहिया जी के अनुसार - यदि यूरोप के समाजवादी विकास क्रम

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-२२८

का सार्वभौमिकीकरण किया गया और उसे विश्व के अन्य दो तिहाई भाग में पुनरुत्पन्न किया गया तो उससे अधिक नाश नहीं होगा। यूरोप में समाजवाद क्रमिक, संवैधानिक और वितरणात्मक था। शेष विश्व में अब समाजवाद को कठोर और आवश्यक होने पर असंवैधानिक होना पड़ेगा तथा उत्पादन पर बल देना होगा। राज्य के कल्याणकारी क्षेत्र में यूरोपीय पूंजीवाद के महान कार्य एक प्रेरणा और आदर्श की वस्तु रहीं लेकिन यूरोपीय समाजवाद के पास उत्पादन शक्तियों का एक विशाल समूह था जिसे यूरोपीय पूंजीवाद ने उत्पन्न किया था, इसलिये वह वितरण पर बल दे सका। शेष विश्व के समाजवाद को ऐसा भण्डार बनाना पड़ेगा जिससे वह अपनी सामग्री उचित रूप से वितरित कर सके, उसे एक योजक और पूंजी निर्मारक समाज बनाना पड़ेगा तभी वह एक लोक कल्याणकारी राज्य उत्पन्न कर सकता है।[१]

लोहिया जी का विचार था कि जहां पर ऐसा उत्पादन संयंत्र अभी निर्माण करना है, पूंजीवाद को कठोर कार्यवाही करनी पड़ेगी जिससे वह संवैधानिकता की धीमी प्रक्रिया से बच सके। जब यूरोपीय समाजवाद ने यह ख्याति कर रखी है कि अपने विरोधियों को पराजित करने के लिये शासन शक्ति का दुरुपयोग नहीं करेंगे और यह कि वे प्रजातांत्रिक ढंग से पराजित होना अच्छा समझते हैं, जबकि वे अधिनायकवादी ढंग से जीते हैं और पद पर बने रहते हैं। विपक्ष में समाजवाद को संघर्ष का मार्ग अपनाना पड़ेगा। समझौते और विधि निर्माण प्रक्रिया सदैव उपलब्ध नहीं होती या सामयिक नहीं होती। इसलिये उनके साथ वर्ग संघर्ष की पद्धति का विशेष कर अविकसित क्षेत्र में योग करना पड़ेगा। वर्ग संघर्ष से पूंजीवाद का विनाश तीव्र और पूर्ण रूप से होता है और उसके बिना दो-तिहाई विश्व प्रथम श्रीगणेश भी नहीं कर सकता। पूंजीवाद के विरुद्ध

१- डा०राममनोहर लोहिया, मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-२२६-३०

वर्ग संघर्ष की अभिव्यक्ति दो प्रकार से होता है - प्रथम जो कि पूंजीवाद का विनाश करती है और उसको सशक्त बनाता है और द्वितीय जो समाजवाद उत्पन्न करती है । ऐसे वर्ग संघर्ष को कितना भी भयंकरता से प्रारम्भ किया जाय, प्रतिक्रियावादी होता है क्योंकि व्यक्तिगत सम्पत्ति में पूंजीवाद को समाप्त करता है, पर प्राविधिकी के स्थान में उसे पुनर्स्थापित करता है और दो तिहाई विश्व में पूंजीवाद की प्राविधिकी की ये पुनर्स्थापना आर्थिक - रिक्तता और सामान्य असमानता प्रारम्भ करेगा ।

लोहिया जी के अनुसार - समाजवाद को अपने संघर्ष और संगठन को ऐसे रूप में निर्मित करना पड़ेगा जो पूंजीवाद के दोनों पक्षों का विनाश करे । वह पूंजीवाद को सम्पूर्ण रूप से समाप्त करे । मनुष्य आज ऐसे सिद्धांतों का शिकार बन गया है जो दूर की सफलता का लक्ष्य रखते हैं जिससे कठोर कार्यों की शृंखला बढ़ती जाय और तिरस्कार कार्य को अनिवार्य कहा न जाये । समाजवादी वर्ग संघर्ष के अच्छे कार्य का तत्कालीन परिणाम तभी होगा जब वह पूंजीवाद को समाप्त करने के लिये पर्याप्त जनशक्ति उत्पन्न करेगा ।[१]

लोहिया जी का विचार था कि समाजवाद का सिद्धांत सफलता के लिये लघु मार्ग नहीं खोजता । साम्यवाद दूसरे देशों से ऋण लेता है, असत्य कहता है, वह राष्ट्रीय अहित करता है, विश्वासघात करता है, प्रजातंत्र और संसद का प्रयोग केवल विनाश के लिये किया जाता है । युद्ध हिंसा और शुद्ध निष्कासन यंत्र बन जाते हैं । वह जनसंख्या पर विश्वास नहीं करता इसलिये जनता के मत द्वारा साम्यवादी सरकार का निर्माण शब्दों का विरोधाभास है । उनके अनुसार - अनुदारवाद और साम्यवाद दोनों का समाजवाद के विरुद्ध सामान्य हित है । पूंजीपति समाजवाद को अपना

१- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-३३१

प्रजातांत्रिक प्रतिद्वन्द्वी मानते हैं और साम्यवादी समाज को मारक भय समझते हैं क्योंकि इसके अन्तर्गत विप्लव के अवसर कम हो जाते हैं। साम्यवाद का वर्ग संघर्ष धोखा, झूठ, विद्रोह, निरंकुशता, संस्कृति के विनाश तथा पूंजीपतियों की सहायता जब तक कि स्वयं सफल नहीं होते, का सिद्धांत है।[१]

लोहिया जी का विचार था कि अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद की प्रकल्पना के नियोजन और सामान्य उत्पादन के आर्थिक जीवन और उन्नत जीवन स्तर पर समाजवाद के सामान्य आदर्शों की इच्छा के प्रयास से निबन्ध किया जा सकता है। आवश्यकता केवल प्रजातांत्रिक प्रतिनिधित्व के अधिकार, मानव अधिकार की स्वीकृति, श्रमिकों का नियंत्रण और सामान्य रूप से मानव व्यक्तित्व के मूल्य की आवश्यकता है। ऐसा विश्वास स्पष्ट रूप से अतार्किक है और यह कुछ दशाओं में लाभकारी परिणाम उत्पन्न कर सकता है जो सत्य के सिद्धांत की ओर अग्रसर करे।

(ख) दल सम्बन्धी विचार - लोहिया जी का विचार था कि समाजवाद में रचनात्मक कार्य जनता के संगठन और शिक्षा के लिये मुख्य उपकरण है। केवल सदस्यों के नाम लिखने से कोई संगठन नहीं बनता, इसके लिये उसके अपने अध्ययन मण्डल भी बनना चाहिये। प्रत्येक गाँव और इकाई की एक रचनात्मक इकाई होना चाहिये, रचनात्मक कार्य का सम्पूरक अन्याय के विरुद्ध विरोध होना चाहिये। उनके अनुसार - जब समाजवादी निरंतर रचनात्मक कार्यक्रम और संघर्ष कर सकने में सफल होंगे तो स्वाभाविक रूप में मतों की भी जीत होगी ही। मत की गरिमा का कभी उपहास नहीं करना चाहिये क्योंकि उसका कोई विकल्प नहीं है, मत या गोली दुष्ट प्रभुता है जिसका निर्माण पूंजीपतियों और समाजवादियों ने किया है।[२]

१- डा० राममनोहर लोहिया, मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-३३३

२- वही पृष्ठ-३४८

लोहिया जी का विचार था कि समाजवादी संगठन को यह प्रयास करना चाहिये कि वह अपने क्षेत्र के जीवन और मृत्यु का साथी बन जाये , उसमें वह कला और मैत्री भाव होना चाहिये कि कोई भी भोज या उत्सव उसके बिना पूर्ण न समझा जाये , उसमें साम्प्रदायिकता, उग्रवाद या घृणा और साम्यवादी प्रतिक्रियावाद नहीं होना चाहिये । दल का एक अंग शैक्षणिक और प्रशिक्षणिक तैयारी के लिये होना चाहिये । उन्होंने कहा- दल में अनुशासन की व्यवस्था होनी चाहिये यद्यपि अनुशासनात्मक कार्यवाही जितनी कम करना पड़े उतना ही उत्तम है । उपक्रम भी केन्द्रित होना चाहिये। राजनीतिज्ञों को कभी-कभी राजनीतिक जीवन से स्थाई विश्राम ले लेना चाहिये जिससे उनमें नवस्फूर्ति आ सके । दल के सदस्य को कोई ऐसी वस्तु धारण नहीं करना चाहिये जोकि धारक के राजनीति या धर्म को प्रकट करे।[1]

लोहिया जी का विचार था कि वैज्ञानिक और प्राविधिक व्यक्तियों की कमी नहीं है पर ऐसा संगठन नहीं है जोकि उन्हें प्रयोग कर सके ,इसलिये वे इधर-उधर चले जाते हैं । प्रशिक्षित इंजीनियर को प्रायः विदेशी सामग्री बेचते हुए और फल विशेषज्ञों को कविता की शिक्षा देते हुए पाया जाता है । उनके अनुसार - विशेषज्ञ और प्राविधिक व्यक्तियों का एक संगठन होना चाहिये , वे व्यक्तियों को एक स्थान पर नियुक्त करें, जिनके पास वैज्ञानिक जानकारी के लिये लिखा जा सके । विदेशी प्रशिक्षकों का चयन कठोरता से किया जावे । स्थानीय परिषदों और नगरपालिकाओं को स्वास्थ्य बीमा को एकदम शुरु करना चाहिये जोकि आपके आधार पर निश्चित हो । इस व्यवस्था में वैद्य और हकीमों के लिये भी स्थान होना चाहिये ।[2]

लोहिया जी ने बराबर आग्रह प्रकट किया कि समाजवाद को

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-३५४

२- वही पृष्ठ-३८५

निजी सिद्धांतों की बुनियाद निश्चित करनी चाहिये । उन्होंने उनके निरूपण का भी प्रयत्न किया । इसी सिलसिले में इशारा किया कि कांग्रेसवाद, नेहरू-वाद, साम्यवाद और पूंजीवाद आज की दुनिया के सवाल हल नहीं कर सकेंगे। समाजवादी ही ये सवाल हल कर सकता है । उन्होंने कहा - जिस पथ पर समाजवादी दल जा रहा है, वह ऐसा है कि आप सबको उस पर आने का प्रयत्न करना चाहिये । हम पार्टियों को मत देखो, हम तो कहते हैं जो बाकी और किसी दल के लोग हैं । हम में अन्तर नहीं, हम सब भारतवासी हैं लेकिन पथ अलग हैं और पथ है सम्पन्न बराबरी का, यह पथ है मातृभाषा का, यह पथ है पिछड़े समूह और गरीब इलाकों के लिये विशेष अवसर का, यह पथ है शांति व्यवस्था का ।[1]

१०) समाजवाद का संगठन -

लोहिया जी का विश्वास था कि पूंजीवाद और साम्यवाद का तुरन्त विनाश हो जाना चाहिये । साम्यवादी सिद्धांत का यह दोष है क्योंकि उसने माना कि उत्पादन के पूंजीवादी सिद्धांत वहाँ टूटते हैं जहाँ उत्पादन की शक्तियाँ कम विकसित होती हैं । साम्यवाद पूंजीवाद से प्राविधि लेता है और केवल उत्पादन सम्बन्ध जोड़ता है । पूंजीवादी प्राविधि साम्यवाद के उद्देश्य के लिये उन देशों में लागू नहीं हो सकता है जहाँ जन-संख्या ज्यादा है, और प्राविधि निम्नस्तर का है । उन्होंने कहा - राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय अधःपतन का इस स्थिति में, यह आवश्यक है कि समाजवाद को प्रतिपादित किया जाय पर उसके कुछ पारम्परिक स्वरूप छोड़ना पड़ेंगे पर समाजवाद का यूरोपीय ढंग, संवैधानिक और क्रमिक रूप सफल नहीं हो सकता । समाजवाद को अभी कठोर, असंवैधानिक और जहाँ आवश्यक है, उत्पादोन्मुख होना पड़ेगा । समझाने-बुझाने और विधि का प्रयोग करने की

१- डा० राममनोहर लोहिया - समदृष्टि, पृष्ठ-१-२

पद्धति सदैव उपलब्ध या समयानुकूल नहीं होती इसलिये उसके साथ वर्ग संघर्ष की पद्धति संयुक्त करनी पड़ेगी ।[1]

लोहिया जी का विचार था कि वर्ग संघर्ष पूंजीवादी विनाश को आक्रामक और परिपक्व बनाता है , पूंजीवाद के विरुद्ध वर्ग संघर्ष दो मुख्य पद्धतियों से अभिव्यक्त होता है - पहला पूंजीवाद का विनाश करता है और दूसरा समाजवाद की स्थापना करता है ।

लोहिया जी के अनुसार - समाजवाद के सामान्य तीन सिद्धांत होना चाहिये - (१) समता (२) प्रजातंत्र (३) बाहुल्यता । उन्होंने कहा - समता के सिद्धांत का पूर्ण रूप उच्चतम-न्यूनतम आय में अनुपात , व्यक्तिगत स्वामित्व का स्वरूप , प्रत्येक राष्ट्र के सैनिक व्यय का प्रतिशत अन्तर्राष्ट्रीय निधि में देना है , जिससे समान विश्व उत्पन्न हो सके ।

लोहिया जी का यह विचार मौलिक प्रतीत होता है । उन्होंने माना प्रजातंत्र का पूर्ण रूप विकेन्द्रीकरण में आ जाता है , जिसमें प्रत्यक्ष प्रजातंत्र की लघु इकाइयों को राजनीतिक अधिकार निहित हों । बाहुल्यता के लिये उद्योग और कृषि में विज्ञान का प्रयोग हो । संघर्ष और रचना दोनों साथ-साथ चलें । उत्पादन के साधन के रूप में जिसमें श्रम को वेतन पर लगाना पड़ता है , राष्ट्र के अधीन हों । व्यक्तिगत सम्पत्ति केवल उसी सीमा तक व्यक्ति रख सकता है जिसमें कि उसको श्रमिकों को न रखना पड़े जो स्वामी के परिवार के द्वारा चलाई जाये । सामाजिक स्वामित्व ग्राम से संघ तक विभिन्न स्तरों पर होगा । बैंक , वित्त संस्थायें और सभी बड़े उद्योग राज्य के अधिकार के अधीन होंगे इसी प्रकार भूमि से जिसे पांच व्यक्तियों का एक परिवार स्वयं कृषि के लिये बिना श्रमिक या मशीन प्रयोग किये हुए,प्रयोग कर सकता है । तीन गुने से अधिक को निर्धन कृषकों में या भूमिहीन श्रमिकों में बांट दिया जायेगा । जिस सामूहिक भूमि पर

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया,मार्क्स,गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-८७
२- वही पृष्ठ-[illegible]

व्यक्तिगत लोगों ने स्वामित्व स्थापित कर रखा है , वह राज्य के अधीन आ जायेगा । राष्ट्रीयकृत सम्पत्ति के लिये कोई क्षतिपूर्ति नहीं दी जायेगी बल्कि उसके स्थान पर पुनर्वास पूर्ति दी जायेगी जिससे कि जीविका का अन्य मार्ग अपनाया जा सके । आय और व्यय की भी सीमाएं स्थापित की जायेगी, कोई आय और व्यय एक और १० के अनुपात से ज्यादा न हो । भूमिकर समाप्त कर दिया जायेगा । भूमि की बटाई समाप्त कर दी जायेगी और श्रमिक को जीवनानुकूल पारिश्रमिक दिया जायेगा । लोहिया जी के अनुसार - बाहुल्यता और रोजगार की सुनिश्चितता कार्यों द्वारा होगा, मनोनीत पुलतंत्र के स्थान पर जहां तक सम्भव होगा निर्वाचित प्रतिनिधि होंगे । प्रत्यक्ष प्रजातंत्र की इकाइयाँ जैसे-ग्राम , नगर, जिले, गणतंत्र की सम्प्रभुता में भाग रखेंगे , जिलाधीश का पद समाप्त कर दिया जायेगा, पुलिस जिला के नियंत्रण में होगा , नियोजन व राजस्व का काम कम से कम १।४ भाग जिला और ग्राम कौन्सिलों और कार्यपालिका द्वारा खर्च किया जायेगा ।[1]

लोहिया जी चाहते थे कि कृषि और उद्योग में विषमता न रहे, इसका प्रयास किया जाना चाहिये । उन्होंने कहा - असल में तो हमें हिंदुस्तान के वन ,खेत और कारखानों से जानदार बनाना है ।[2]

लोहिया जी सामान्य अवस्था के सुधार के लिये चाहते थे कि खलिहान के समय कृषि मूल्य अधिक नहीं गिरें और बाद में अधिक नहीं बढ़े उन्होंने कहा जनता को भोजन ,वस्त्र, भवन, औषधियाँ और शिक्षा का अत्यावश्यक अधिकार होगा और उसको वास्तविक बनाने के लिये क्रमिक शिक्षा-योजना बनाई जाये । चिकित्सा व्यवस्था का शनैः शनैः राष्ट्रीयकरण कर दिया जायेगा और अध्यापकों का स्तर ऊँचा उठाया जायेगा ।

उनका मत था कि दलों के गठन में आन्तरिक प्रजातंत्र रहेगा और

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स ,गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-४८२
२- डा० राममनोहर लोहिया - लोकसभा में लोहिया,भाग-२ पृष्ठ-६५

दलों में भाषण की स्वतंत्रता रहेगी । वे चाहते थे - पूंजीवाद और साम्यवाद से समान सम्बन्धता रखी जायेगी और उनके सह-अस्तित्व के लिये एक तीसरा राष्ट्र समूह बनेगा , जो उनका शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व विश्व के लिये रहेगा ।[1]

११) <u>समाजवादी सरकार के कार्य -</u>

लोहिया जी ने समाजवादी सरकार के निम्नलिखित कार्य बतलाये - (१) उत्पादन बढ़ाना (२) रोजगार बढ़ाना (३) उत्पादक-उपकरण और पूंजी निर्माण की उन्नति करना (४) सामाजिक और आर्थिक समता में वृद्धि करना (५) सरकार की शक्ति बढ़ाना (६) राजनीति सत्ता का विकेन्द्रीकरण करना (७) कृषि सम्बन्धी योजना ।[2]

लोहिया जी का विचार था कि वर्तमान कृषि का सुधार और नये क्षेत्र का विस्तार,वर्तमान कृषि के सुधारों के लिये अच्छी सिंचाई सुविधा के लिये नहरें, बांध, तालाब इत्यादि बनाये जायें । इसके लिये प्रत्येक वयस्क से एक घण्टे का श्रमदान कराया जाये , भूमि का पुनर्वितरण किया जाये , किसी भी परिवार के पास उस भूमि के तीन गुने से अधिक भूमि न रहे ,जितनी पांच व्यक्तियों का परिवार बाहरी श्रमिक या मशीन का प्रयोग किये बिना कर सकता है , जो भूमि बचे उसे भूमिहीनों को दे दी जाये । उन्होंने कहा - कोशिश करना चाहिये खेती को सुधारने की लेकिन उस सुधार में भी एक योजना में किसी एक चीज को पकड़ लेना चाहिये कि उसको जो हम हर हालत में हासिल कर ही लेंगे । जैसे- खेती के मामले में लिखा है कि हम मिट्टी का संरक्षण करेंगे , यहाँ तो जो मिट्टी कटती है और जो जलमग्न जमीन है उसको खेती-योग्य बनायेंगे ।[3]

लोहिया जी चाहते थे कि उद्योगों संस्थाओं का गठन करना चाहिये

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स,गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-४८४
२- वही पृष्ठ-३६६
३- डा०राममनोहर लोहिया - लोकसभा में लोहिया,भाग-२, पृष्ठ-७५

उपरान्त स्वतंत्र स्वायत्त निगम बनाये जायें , जिनमें श्रमिक,उपभोक्ता और सरकार के प्रतिनिधियों जो उनका संचालन करें ।[१]

लोहिया जी का मत था कि जाति व्यवस्था समाप्त कर दी जाय और अनुसूचित जातियों और जनजातियों , भूमि वितरण , शिक्षा ,रोजगार विषयों को वरीयता दी जाय । पुलिस व्यवस्था स्थानीय इकाइयों के हाथ में होगी पर राज्य कर्मचारियों की भर्ती करेंगे और उन्हें प्रशिक्षित करेंगे , विशिष्ट सशस्त्र पुलिस राज्यों के हाथों में ही रहेगा , अनेक कल्याणकारी विकास विभाग जोकि वर्तमान राज्य द्वारा संचालित होते हैं , स्थानीय इकाइयों को हस्तान्तरित कर दिये जायेंगे और इसके राजस्व को उचित भाग दे दिया जायेगा । उनके अनुसार - कानूनों में जैसे - संरक्षण विधि,दण्ड प्रक्रिया आदि में परिवर्तन करना पड़ेगा जिससे न्याय शीघ्र और सस्ता उपलब्ध हो । उच्च न्यायालयों और लोकसेवा आयोगों की संख्या कम की जायेगी और उनका एक क्षेत्र बढ़ाया जायेगा और एक उच्च न्यायालय और सेवा आयोग के अन्तर्गत दो या तीन राज्य होंगे ।[२]

वर्तमान समय में उत्तर प्रदेश में लखनऊ और इलाहाबाद में उच्च न्यायालयों की व्यवस्था है , मेरठ में उच्च न्यायालय खोलने की मांग हो रही है । जब दो न्यायालय एक राज्य के लिये न्याय देने में असमर्थ हैं तो लोहिया जी की प्रणाली के अनुसार यदि तीन राज्यों के बीच एक न्यायालय होने पर न्याय समय पर मिलना कैसे सम्भव हो सकता है ।

लोहिया जी का विचार था कि स्वास्थ्य , भवन , शिक्षा का कार्य सरकार प्रारम्भ करेगी , चिकित्सा निःशुल्क होगी, चिकित्सा सेवा राष्ट्रीयकृत होगी । ग्रामीण और चलते-फिरते अस्पताल होंगे । शिक्षा के क्षेत्रों में वयस्क शिक्षा , जन-महाविद्यालय स्थापित होंगे , प्राइमरी -

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-४०१
२- वही पृष्ठ-४७

शिक्षा अनिवार्य होगी । उनके अनुसार - भूदान आन्दोलन के द्वारा वर्ष के लघुकाल के कार्य में प्राप्त की गई सफलता बड़ी महत्वपूर्ण उपलब्धि है ।[१]

लोहिया जी का विचार था कि उपनिवेश समाप्त कर दिये जायेंगे, प्रत्येक मनुष्य को विश्व के किसी भी भाग में जाकर रहने का अधिकार होगा । उन्होंने कहा - नागरिक विरोध का अधिकार दिया जायेगा। चूंकि वह हिंसात्मक नहीं होगा, उसके लिये केवल बंदी बनाने और कारावास की सजा होगी। सामूहिक विरोध, सामूहिक निर्णय के बाद ही होना चाहिये ।[२]

उनका मत था मेन्टानेन्स आफ पब्लिक आर्डर एक्ट और प्रिवेन्टिव डिटेन्शन एक्ट समाप्त कर दिया जायेगा । विचार अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता होगी । सेना और पुलिस के अतिरिक्त सभी सरकारी कर्मचारियों को पूर्ण राजनीतिक अधिकार होंगे । न्याय सस्ता और पूर्ण शीघ्र बनाया जायेगा । न्यायपालिका कार्यपालिका से पृथक होगी और न्यायाधीश को अवकाश ग्रहण करने के बाद केवल ऐसे पदों पर नियुक्त किया जायेगा जिनमें सरकार के संरक्षण की आवश्यकता न होगी । उन्होंने कहा - अंग्रेजी सभी सरकारी और संवैधानिक प्रयोग से समाप्त कर दी जायेगी । भारत सरकार प्रत्येक राज्य की सरकार को पत्र हिन्दी में लिखेगी और राज्यों को स्वतंत्रता है कि अपनी भाषा में केन्द्र को पत्र लिख सकते हैं ।[३]

लोहिया जी का विचार था कि सार्वजनिक रसोईघर बनाये जायेंगे जिससे महिलाओं को अवकाश मिलेगा । वस्तुओं का मूल्य डेढ़ गुने से अधिक नहीं होना चाहिये । दो फसलों के बीच खाद्यान्न का मूल्य १५ प्रतिशत से ज्यादा नहीं बढ़ना चाहिये । कृषक को अपने उत्पादन का मूल्य मिलना - चाहिये जिससे वह उचित ढंग से रह सके और कृषि तथा औद्योगिक मूल्यों में

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-४२०
२- वही पृष्ठ-१९२
३- वही पृष्ठ-५०४

समता होना चाहिये । कृषि और खनिज उत्पादन के मूल्यों में भी कुछ समता होना चाहिये । उन्होंने कहा - महिलाओं , शूद्रों,हरिजनों , आदिवासियों पिछड़ी जातियों , धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिये ६० प्रतिशत स्थान सुरक्षित होना चाहिये । द्विजों और अद्विजों के मध्य विवाहों को प्रोत्साहन देना चाहिये ।[१]

वे अपने समाजवादी सिद्धांतों में खेलों की उचित व्यवस्था करना चाहते थे । इससे अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता मिलती है । क्रिकेट को हतोत्साहित करना चाहिये क्योंकि ये अन्तर्राष्ट्रीय खेल नहीं है । ये केवल ब्रिटिश राष्ट्रकुल तक ही सीमित है और सामंतवादी विलासिता का उपकरण है, इस पर व्यय धन एक विनष्टि है । उनके अनुसार - खेलों में भाग लेने वाली महिलाओं को कुछ आर्थिक सहायता देना चाहिये । विश्व के ओलम्पिक में भारत और पाकिस्तान द्वारा संयुक्त टीम भेजने के बारे में विचार व्यक्त करना चाहिये । भारतीय फिल्मों की विचारधारा , पात्रों के अभिनय , निर्देशन और चित्रों में सुधार होना चाहिये,वे भाषा और विचार की एकता में वृद्धि करते हैं । मनोरंजन कर का कुछ भाग मंच और नृत्य तथा नाटक समितियों की सहायता के लिये व्यय होना चाहिये और स्वायत्त परामर्शीय समिति का गठन करना चाहिये ।[२]

लोहिया जी समाजवादी सरकार के द्वारा देश में व्याप्त असमानता को दूर करना चाहते थे । उन्हें समाजवाद में पूर्ण निष्ठा थी वे कहा करते थे - आज के युग की पूंजीवाद और कम्युनिज्म की दो जुड़वा राक्षसी शक्तियों के खिलाफ लड़ाई छेड़ती हुई सोशलिस्ट पार्टी अपनी लड़ाई में अक्सर अवरुद्ध हो सकती है , मगर वह बार-बार जीवित होती रहेगी । क्योंकि इन्सान जिंदा रहेगा और आखिरकार जीत समाजवाद की ही होगी ।[३]

लोहिया जी मानते थे कि भारतीय समाजवाद का यह दोष रहा

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-५२२
२- वही पृष्ठ-३८८
३- इन्दुमति केलकर - लोहिया सिद्धांत और कर्म पृष्ठ-२५४

है कि उसके कार्य , चिंतन और संगठन द्वारा समर्पित नहीं है । यदि समाजवादी दल की उन्नति करना है तो ये दोष दूर करना पड़ेंगे और इस प्रक्रिया के आधारभूत रूप में साहसी और ईमानदार मनुष्यों को आकर्षित करना पड़ेगा ।

१२) समाजवाद की स्थापना के साधन -

समाजवाद की स्थापना राज्य में आर्थिक,सामाजिक और राजनैतिक स्तर समान होने पर ही सम्भव है । श्री मन्नारायण के अनुसार - जहाँ समाजवाद की स्थापना के लिये कृषि और औद्योगिक उत्पादन की रफ्तार तेज करना बहुत आवश्यक है , वहाँ न्यायोचित वितरण व्यवस्था करना वर्तमान आर्थिक और सामाजिक विषमताओं में कमी करना भी कम जरूरी नहीं है ।[१]

वर्तमान समय में समाजवाद के द्वारा ही देश की प्रगति सम्भव है । यदि समाज में व्याप्त शोषण को मिटाना है और पृथ्वी पर सुख व समृद्धि लाना है , तो समाजवाद का ही समर्थन करना होगा । सम्पूर्णानंद के अनुसार - यदि वर्तमान परिस्थित को देखते हुए हमारी यह धारणा हो कि समाजवाद को अंगीकार करने में ही मनुष्य का कल्याण है तो समाजवाद ही युगधर्म है । इसका प्रचार करना , इसके सिद्धांतों को क्रियान्वित होने का अवसर देना ही हमारा कर्तव्य अर्थात् धर्म है ।[२]

लोहिया जी भी समाजवाद की स्थापना के लिये आवश्यक मानते थे कि समाज में व्याप्त असमानता दूर हो । वे मानते थे कि भारत ही नहीं बल्कि पूरा विश्व दो वर्गों में विभाजित है , ये वर्ग हैं - उच्च वर्ग और निम्न वर्ग । वे मानते थे कि समाज में व्याप्त असमानता को दूर करने के लिये एकक्रांति नहीं बल्कि अनेक क्रांतियों की आवश्यकता है । लोहिया जी

१- श्री मन्नारायण - भारतीय संयोजन में समाजवाद,पृष्ठ-४१
२- डा० सम्पूर्णानंद - समाजवाद , पृष्ठ-८

ने समाज में व्याप्त अन्याय को दूर करने के लिये सात क्रांतियों का उल्लेख किया है । सारी दुनिया में व्यक्ति और समूह इन लड़ाइयों के लिये लड़ रहे हैं । यह सारी मनुष्य जाति के लिये आशा की किरण है ये लड़ाइयां है,

१- नर-नारी समता के लिये
२- चमड़े रंग रबो राज्यकाय, आर्थिक और दिमागी असमानता के विरुद्ध
३- लम्बे संस्कारों पर आधारित पिछड़े और ऊंचे समूहों या जातियों की असमानता के विरुद्ध और पिछड़ों को विशेष अवसर देने के लिये ।
४- स्वतंत्रता के लिये और परदेशी गुलामी के विरुद्ध और विश्व राज्य के लिये।
५- आर्थिक समानता के लिये और निजी पूंजी के स्वामित्व और मोह के विरुद्ध तथा योजना द्वारा पैदावार के लिये ।
६- निजी जीवन में अन्यायी हस्तक्षेप के विरुद्ध और लोकतंत्री तरीके के विरुद्ध
७- हथियारों के विरुद्ध सिविल नाफरमानी के लिये ।

लोहिया जी उपर्युक्त क्रांतियों के लिये जीवनभर संघर्ष करते रहे । वे मानते थे कि समस्त अन्यायों को समाप्त करके ही समाजवाद की स्थापना की जा सकती है । वे समाज में सम्पूर्ण बराबरी लाना चाहते थे । लोहिया जी की सम्पूर्ण बराबरी का मतलब साफ था, हर प्रकार से सब बराबर हो। ऐसी बराबरी देखने में नहीं आती,ये एक सपना है । वे मानते थे कि परिवार के सभी सदस्यों में बराबरी रहती है चाहे वह कमानेवाला हो या ना हो, बच्चा हो, मर्द या औरत हो, जवान हो या वृद्ध सभी को परिवार में बराबर स्थान मिलता है । कई जगह तरह तरह के फर्क परिवार देखे जाते है फिर भी परिवारों में सम्पूर्ण बराबरी का सपना नहीं है, देखा जाता है ।इसलिये लोहिया जी ने कहा कि - आखिर जो बात परिवार में हो सकती है वह सारे संसार में क्यों नहीं हो सकती । हाँ यह अवश्य है कि इसमें शायद ४००-५०० वर्ष लग जायें । सब बातों में सम्पूर्ण बराबरी चाहे ना भी हो किन्तु रोटी,

कपड़ा ,मकान के मामले में तो संसार भर में सम्पूर्ण बराबरी का सपना देखा जा सकता है ।[१]

लोहिया जी का विचार था कि सम्पूर्ण बराबरी का सपना देखने वाला अपने काम में हमेशा सम्भव बराबरी का आदर्श रखे । अगर सम्भव बराबरी से जकड़ कर न रखे गये तो सम्पूर्ण सपना देखते-देखते सारी दुनिया भर की बेईमान कर जायेंगे क्योंकि सम्भव और ठोस रूप न होने पर आदर्श की प्राप्ति में और रुकावटें आती हैं जिससे सब काम उल्टा हो जाता है । इसलिये देश काल की अवस्था जांच करके कितनी बराबरी जिस समय सम्भव हो , उसे तत्कालीन लक्ष्य बनाना चाहिये । लोहिया जी के अनुसार - देश काल की स्थिति को देखते हुए ही सोशलिस्ट पार्टी ने एक और दस का फर्क सम्भव बराबरी की सीमा - निर्धारित की है । यह साफ है कि सम्पूर्ण बराबरी का सपना देखने वाले जब इस सम्भव बराबरी को हासिल कर लें तब उनका आदर्श एक और पांच का फर्क हो सकता है । उस समय एक और दस की बात पर टिके रहना , केवल यथास्थिति को कायम करना होगा । उस समय के लिये सम्भव बराबरी एक और १० का फर्क नहीं बल्कि एक और पांच का फर्क होगी ।[२]

लोहिया जी का विचार था कि एक ओर रईसी का कैलाश है और दूसरी ओर गरीबी का पाताल । इस स्थिति में एक और १० की गैर-बराबरी को ही सम्भव बराबरी माना जा सकता है । वे चाहते थे कि अमीरों की स्थिति नीचे लाई जाये और गरीबों की स्थिति को ऊंचा उठाया जाये तभी बराबरी लाने का कार्य किया जा सकता है । उन्होंने कहा - खैर अब इस मांग को साफ समझ लेना चाहिये,गरीबी को उठाने में उचित समय लगेगा पर अमीरों को नीचे लाने का काम फौरन होना चाहिये ।[३]

वर्तमान समय में गरीबी व अमीरी के बीच की खाई बहुत चौड़ी

१- डा०राममनोहर लोहिया - समाजवाद का सगुण रूप, पृष्ठ-१
२- वही पृष्ठ-२
३- वही पृष्ठ-५

होती जा रही है। कई लोगों का कहना है कि जिस तरह से हाथ की पाँच उंगलियाँ समान नहीं होती, उसी प्रकार समाज में प्रत्येक व्यक्ति से समानता सम्भव नहीं है। प्रकृति के नियमों में भी असमानता देखने को मिलती है। इसका खण्डन करते हुए लोहिया जी ने कहा कि - इस तरह से बहुत से उदाहरण लोग दे दिया करते हैं कि इतनी असमानता है और असमानता प्रकृति का नियम है, न कि समता। इस पर मैं एक बहुत छोटी सी बात कह देता हूँ कि प्रकृति का नियम जो भी हो, मनुष्य का नियम होना चाहिये समता।[1]

लोहिया जी का विचार था कि अमीरी व गरीबी के भेद के कारण गरीबों के साथ अन्याय होता आया है। गरीबों में चेतना का संचार हो रहा है, वे अपनी स्थिति को सुधारने का प्रयत्न कर रहे हैं। गरीबी व अमीरी की लड़ाई में बराबरी की भावना बहुत जोर के साथ आई है। नई सभ्यता के निर्माण का आधार बराबरी का आदर्श अवश्य ही रहेगा। लोहिया जी के अनुसार - इस आदर्श को समझने में, उसकी विभिन्न दशाओं को समझ लेना अच्छा होगा। बराबरी की तीन दशायें होती है - एक भौतिक शरीर की या माली बराबरी की, इसके दो स्वरूप हैं, पहला देश के अंदर की भौतिक बराबरी और दूसरा विभिन्न देशों के बीच की भौतिक बराबरी, दूसरी दशा है दिमागी बराबरी की और तीसरी सुख-दुख, सर्दी-गर्मी इत्यादि की और समभाव।[2]

लोहिया जी का विचार था कि आज देश के अंदर तो भौतिक गैरबराबरी है ही लेकिन देश के बाहर सम्पूर्ण दुनिया में भौतिक अवस्था में जमीन आसमान का फर्क है। उदाहरण के लिये उन्होंने कहा - आज हिंदुस्तानी बच्चे को औसतन रोज एक चम्मच दूध मुश्किल से मिलता है लेकिन अमेरिकन बच्चों को रोज आधा सेर दूध मिलता है, ऐसी हालत हर चीजों में भी है। इस गैर-बराबरी को दूर करने का प्रयत्न देश के भीतर की गैर-

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - सात क्रांतियां, पृष्ठ-२
२- डा०राममनोहर लोहिया - समाजवाद का सगुण रूप, पृष्ठ-६

बराबरी को दूर करने के प्रयत्न के साथ साथ करना पड़ेगा क्योंकि दोनों एक-दूसरे पर असर डालता है ।[1]

लोहिया जी का विश्वास था कि जिस तरह से एक देश के अंदर मजदूरों का विभाजन करके पैदावार को उठाया जाता है उसी प्रकार से संसार के पैमाने पर श्रम विभाजन करके पैदावार को बढ़ाया जा सकता है । कोई देश किसी काम को अच्छा कर सकता है और कोई देश किसी दूसरे काम को और जब दोनों में विनिमय होगा तो दोनों को फायदा होगा । अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तभी लाभदायक होगा जबकि हर देश में सम्पूर्ण रोजगारी हो । लोहिया जी ने विश्वस्तर पर ही समाजवाद की स्थापना के प्रयास करने का प्रयत्न किया । वे विश्व के सभी राष्ट्रों को भौतिक स्तर पर समान देखना चाहते थे ।

उनका विश्वास था कि यदि राष्ट्र के अन्दर सम्पत्ति की एक निश्चित सीमा निर्धारित कर दी जाय तो जो व्यक्ति सीमा से अधिक सम्पत्ति धारण किये होंगे, उनकी सम्पत्ति धनहीनों को वितरित की जा सकती है । व्यक्तियों पर फिजूल के खर्चों पर रोक लगा दी जाय तो निश्चय ही धन का संग्रह राष्ट्र के अंदर हो सकेगा । वे निजी सम्पत्ति पर आमदनी और खर्च की तर्कसंगत सीमाओं को न सिर्फ राष्ट्र बल्कि राष्ट्रों के बीच सारी दुनिया के लोगों में समानता लाने के लिये निश्चित करने के पक्ष में थे । वे सीमा से अधिक धन संग्रह करना अपराध समझते थे । उन्होंने कहा - आज की अवस्था में देश में खर्च, भत्ते और सुविधाओं के ऊपर, आमदनी के ऊपर एक रोक लगानी चाहिये, सीमा बांध देनी चाहिये । ऐसा होगा कि उस सीमा को जो लांघता है उसको हर तरह से देखो, मेरे मुंह से भी निकलने वाला था सजा देना चाहिये, सजा से मुझको मतलब नहीं है, मेरा मतलब है उसकी सम्पत्ति जब्त कर लेनी चाहिये ।[2]

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया, समाजवाद का अगुण रूप, पृष्ठ-७
२- डा० राममनोहर लोहिया, लोकसभा में लोहिया, भाग-११, पृष्ठ-४२

लोहिया जी का विचार था कि अवनतोन्मुख ग्रामों में पुनः सक्रियता लाने के लिये उच्च जाति के लोगों की अकर्मण्यता और निम्नजाति के लोगों का आलस्य दूर करने के लिये भूमि का पुनर्वितरण करना चाहिये पर यदि भूमि वितरण को एक [illegible] चमत्कार के और प्रशासकीय विनियम में परिवर्तित नहीं कराए तो उनको जिन्हें भूमि मिली है, ग्राम के प्रशासन में तो सरकार द्वारा फसलों के क्रय तथा सरकार के लगान को निर्धारित करने में नहीं और सामान्य रूप में राज्य में सम्प्रभुता शक्ति के प्रयोग में प्रभाव मिलना चाहिये। जिन देशों में कृषि श्रमिक की आय औसतन अत्यन्त कम है। ग्रामों को लगभग स्वायत्तता प्रदान करना होगा जिससे निवासियों को निरन्तर प्रेरणा मिले और विधि का शासन जारी रहे। साम्यवादियों ने संस्कृति को रोटी की विजय तक के लिये प्रतीक्षा कराकर रोटी के युद्ध में पराजय पाई है और भूमिका पुनर्वितरण एक ऐसा भूत बन गया है जिसका दफना जा चुका है। सर्वसत्तात्मक राज्य के साथ भूमि के पुनर्वितरण के प्रयास में सम्प्रभुता का प्रयोग प्रत्येक स्तर पर होता है।

लोहिया जी ने कहा - समाजवादी रोटी की आवश्यकता को वस्तुओं की आवश्यकता के साथ संयुक्त करता है और दोनों के संघर्ष में उसकी विजय की सम्भावना है। इस सम्बन्ध में पूंजीपति लाभकारी जोतों की बात करता है जिससे पुनर्वितरण का प्रयास असफल हो और वह एक ऐसा [illegible] की बात करता है जिसमें उपक्रम का पूर्णतया: अभाव हो। यही नहीं सभी स्तरों पर उद्योग, लाभ और अलाभकारी जोतों के भेद को [illegible] बना देता।[1]

लोहिया जी का विचार था कि भारत में विभिन्न वर्गों के बीच व्याप्त असमानता को लोक कल्याणकारी दाम नीति की व्यवस्था से दूर किया जा सकता है और समाजवाद की स्थापना के लिये प्रयास किये जा

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया, मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-३०७

सकते हैं । उनका विचार था कि सरकारी और निजी दोनों क्षेत्रों में मौजूदा जनविरोधी चरित्र का एक खास पहलू है,दाम की लूट एक डेढ़ प्रतिशत शासक वर्ग को छोड़कर देश के सारे नागरिक उसके शिकार होते हैं । वे मानते थे कि दामों की लूट तभी बन्द होगी जब दाम के बारे में ठोस नियम बने । कारखानों से बनी जीवनोपयोगी वस्तुओं का फुटकर दाम लागत और दुलाई ,खर्च से डयोढ़े हों और विलासिताओं तथा सिगरेटों का मुनाफा भी विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन सामान्यतः बन्द हो लेकिन अगर नहीं होता है तो उन पर भारी टैक्स लगाने की आपत्ति नहीं की जा सकती है ।

लोहिया जी की मान्यता रही है कि यदि हम सच्चे समाजवाद को लाना चाहते हैं तो हमें केन्द्र बिन्दु गांवों को बनाना होगा और गांव के लोगों को सक्षम बनाकर ही उनका आर्थिक विकास सम्भव है । वे राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के साथ-साथ आर्थिक विकेन्द्रीकरण समाजवाद की स्थापना के लिये आवश्यक मानते थे । उनका विश्वास था कि - बड़ी मशीनों से बेरोजगारी की समस्या बढ़ती है,जबकि छोटी मशीनों से एक ओर उत्पादन में वृद्धि होगी दूसरी ओर रोजगार की अवस्था में भी वृद्धि होगी । उन्होंने कहा - मेरा मतलब केवल ऐसे साधनों से है जो बिजली या तेल की ताकत से चले ताकि इतना उत्पादन कर सके कि चलाने वाले आदमी का काम चल सके।[१]

लोहिया जी भारत की मुक्ति छोटी मशीन योजना के विकास में देखते थे क्योंकि इससे बड़े पैमाने पर रोजगार प्राप्त होगा और जन-साधारण की आर्थिक स्थिति में सुधार होगा ।

लोहिया जी ने समाज में व्याप्त जाति , धर्म ,लिंग वर्ग भेद का विरोध किया । वे आर्थिक वर्गों के साथ-साथ समाज से विभिन्न सामाजिक वर्गों का अंत करना चाहते थे । जब समाज में समानता की भावना का विकास होगा तभी समाजवाद स्थापित किया जा सकता है । विनोद कुमार वीर

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - समाजवाद का सगुण रूप ,पृष्ठ-४७

सुनील मिश्र के अनुसार - सामाजिक गैर-बराबरी दूर करने के लिये दो व्यक्तियों, एक बाबा अम्बेडकर और दूसरे डा०लोहिया ने सबसे ज्यादा सोचा है ।[१]

लोहिया जी पिछड़े वर्गों को विशेष अवसर देकर उनकी स्थिति सुधारना चाहते थे । उन्होंने कहा - सभी पिछड़ा समूह और पिछड़ी जातियाँ, औरत, शूद्र, हरिजन, आदिवासी और धार्मिक अल्पसंख्यकों में पिछड़े तत्वों, जिनकी संख्या कुल आबादी का ८० प्रतिशत है किन्तु राज-काज संचालन में जिनका हिस्सा आज तक नगण्य रहा है, ६० प्रतिशत संरक्षण सरकारी और अर्थव्यवस्था के नेतृत्व में पुनर्जीवन का संचार करेगा ।[२]

लोहिया जी का विचार था जब तक देश में अंग्रेजी भाषा का बहिष्कार नहीं होगा तब तक देश में सामंतशाही को प्रोत्साहन मिलता रहेगा, और साधारण जनता नौकरियाँ प्राप्त करने से वंचित रहेगी क्योंकि प्रतियोगिता - परीक्षाओं में अधिकांशतः अंग्रेजी माध्यम रहता है। उन्होंने कहा - मेरी समझ में वे लोग बेवकूफ हैं जो अंग्रेजी के चलते हुए, समाजवाद कायम करना चाहते हैं। वे भी बेवकूफ हैं, जो समझते हैं कि अंग्रेजी रहने पर प्रजातंत्र भी आ सकता है। हम तो समझते हैं कि अंग्रेजी के होते हुए यहां ईमानदारी आनी भी असम्भव है।[३]

लोहिया जी का विश्वास था कि हमारे देश में शिक्षा के क्षेत्र में जबर्दस्त गैर-बराबरी है। कानवेन्ट शिक्षण संस्थाओं और प्राइमरी शिक्षा - संस्थाओं के पाठ्यक्रम में बहुत अन्तर है। दोनों प्रकार की शिक्षण संस्थाओं में पढ़ने वाले बच्चों में बचपन से ही गैर-बराबरी की भावना का विकास होता है। वे कहते थे कि सोशलिस्ट पार्टी का तो यह संकल्प है कि ऐसे स्कूलों को खत्म किया जायेगा और कम से कम प्राइमरी शिक्षा के लिये केवल एक ही प्रकार के स्कूल होंगे ।[४]

- -

१- विनोद प्रसाद और सुनील मिश्र-समाजवादी आन्दोलन के दस्तावेज, (१९३२-५२), पृष्ठ-२२
२- डा०राममनोहर लोहिया -' सोशलिस्ट सिविल नाफरमानी ' जन-सित०-अक्टू०-१९७० पृष्ठ-११
३- डा०राममनोहर लोहिया - समाजवाद का सगुण रूप, पृष्ठ-१२
४- वही पृष्ठ-६

लोहिया जी का विचार था कि देश में आर्थिक पैदावार बढ़ने पर उसको समस्त जनता में न्याय के आधार पर वितरित किया जाये , तभी सच्चा समाजवाद स्थापित होगा । वे मानते थे कि देश में असमानता को दूर करके ही समानता स्थापित की जा सकती है । यदि उपर्युक्त तरह से देश में समानता नहीं आती तो वे सरकार के विरुद्ध सिविल नाफरमानी करने का विचार व्यक्त करते हैं । जब कोई सरकार बिना देश का हित सोचे पुराने ढर्रे पर ही कार्य करता है और देश की जनता दुख सहकर भी जागृत होने का प्रयास नहीं करती , ऐसे समय में चुनाव के द्वारा गद्दी पलटना असम्भव है । जाति, धर्म की भावनाओं में लिप्त रहकर व्यक्ति गद्दी को पलटने में असमर्थ रहता है। अत: सिविल - नाफरमानी के द्वारा देश का शासन बदला जा सकता है । उन्होंने कहा - अगर एक या सवा लाख औरतें और इतने ही मर्द जेल जाने , यंत्रणाओं से न ऊबने वाले , बार-बार जेल जाने से न घबड़ाने वाले मिल जायें , अगर यह संख्या सारे देश में विस्तृत रूप में हो तो कांग्रेस सरकार सिविल नाफरमानी से पलटी जा सकती है और चुनाव में हराकर ही पलटा जा सकता है ।[1]

उनका विचार था कि हिन्दुस्तान को आज उस नये किस्म की जरूरत है जो उग्र और प्रचंड हो जो पूंजीवाद ,सामंतवाद और वर्तमान हुकूमतों के खिलाफ बेशक गल्तियाँ करता हुआ भी ललकारे । जिसे इस बात की परवाह न हो कि इसे कुछ क्या-क्या मुसीबतें झेलनी पड़ रही है । हड़ताल सिविल नाफरमानी और कानून तोड़ने के आन्दोलन इस तरीके से चलाये जाये कि उसे झूठ का सहारा न लेना पड़े , हत्यायें न करनी पड़े । उन्होंने कहा- सिविल नाफरमानी की मांगे हालांकि वे गहरे तौर पर क्रांतिकारी हैं , मौजूदा सरकार से स्वीकार करा ली जा सकती हैं । दाम नीति, भाषा-नीति, जाति नीति, अनाज नीति ये चार मांगे हैं। दाम नीति आर्थिक क्रांति लायेगी , भाषा नीति राजनीतिक क्रांति, जाति नीति सामाजिक क्रांति और ये जनता के बहुत बड़े तबके के लिये तत्काल इतनी जरूरी है कि अगर जनशक्ति का उद्गार नहीं होता तो सिर्फ इसलिये कि जनता में अविश्वास है , अभिरुचि है और खंड-खंड में बटी है । लोहिया जी का

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया 'न झूठ और न हत्या' जन मा०-१९७० ,पृष्ठ-६५
२- डा० राममनोहर लोहिया - सिविल नाफरमानी 'जन-अगस्त-१९७० ,पृष्ठ-६

विश्वास था कि बिना संघर्ष के कोई नई चीज पैदा नहीं होती है । वर्ग व वर्ण और क्षेत्रीय बदलावों को खत्म करके मनुष्य जाति में समानता लाने के लिये उसका संघर्ष अहिंसक और शांतिपूर्ण होना जरूरी है । उन्होंने कहा - संघर्ष के इस नये ढंग के अन्दरूनी रूपों का निरन्तर विकास और बाहरी रूपों की तीव्र जरूरी है । क्रांति का हमदर्द से मेल सिविल नाफरमानी है । समूह और व्यक्ति के लिये सिविल नाफरमानी को स्थाई दिमागी दृष्टि का बनाना होगा। राष्ट्रों के बीच और हर राष्ट्र के अंदर असमानता से संबंध रखने वाले बहुत बड़े-बड़े अन्याय हर रोज होते रहते हैं और इस कारण हिंसापूर्ण संघर्ष के मुकाबले में - सिविल नाफरमानी की सफलता की कोई सम्भावना नहीं , जब तक कि एक स्थाई दृष्टिकोण ना बन जाये ।[१]

उनका विचार था कि स्थाई सिविल नाफरमानी के सिद्धांत और व्यवहार के द्वारा सोशलिस्ट पार्टी मनुष्य में अत्याचार और शोषण के प्रतिरोध की एक नई आदत डालने की कोशिश कर रही है । ऐसी हालतों में भी जबकि वह अकेला कमजोर और निहत्था हो । यदि व्यक्ति की स्वतंत्रता खतरे में पड़ती है तो उसे उसका विरोध करना चाहिये । इसको उन्होंने सत्याग्रह की संज्ञा दी है । इस प्रकार लोहिया जी गांधी जी से प्रभावित थे । वे कहते थे कि सच्चा वर्ग संघर्ष सविनय अवज्ञा ही है । उन्हीं के शब्दों में - सत्याग्रह और वर्ग संघर्ष एक शक्ति के लिये एक ही अभ्यास के दो नाम हैं ।[२]

लोहिया जी का यह कथन सत्य प्रतीत नहीं होता है क्योंकि वर्ग संघर्ष विभिन्न वर्गों में होता है जबकि सत्याग्रह शासन के विरुद्ध होता है ।

लोहिया जी का विचार था कि सोशलिस्ट पार्टी के कुछ सदस्यों में भी संगठित सिविल नाफरमानी को एक जरूरी औपचारिकता मानने की विचित्र आदत पड़ गई है । अभी तक वे समझ नहीं सके हैं कि सच बोलने की

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया `पूर्ण कावल` जन-मई १९६४ पृष्ठ-१३
२- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स ,गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-३४५

तरह जेल जाने का तत्कालीन मूल्य नहीं है । यदि वे खास मौकों पर सिविल नाफरमानी करके सच बोलें और जेल जायें तो वे निश्चय ही जनता को प्रोत्साहित कर सकते हैं । लोहिया जी ने कहा - इसलिये उन दोनों में जहाँ सिविल नाफरमानी प्रतीकात्मक से अधिक कुछ नहीं हो सकती, वहाँ के कष्ट सहने वाले सत्याग्रही को अपने कष्ट सहन को मन में जन आन्दोलन के इलाकों के साथ या अपने ही इलाकों में भविष्य में इस आन्दोलन की सम्भावना के साथ जोड़ना कभी नहीं भूलना चाहिये ।[१]

लोहिया जी समाज में व्याप्त अन्याय को हिंसा के माध्यमसे दूर न करके सत्याग्रह से दूर करने के पक्ष में थे । उन्होंने कहा - जब तक अन्याय और दरिद्रता का वर्तमान सम्बन्ध है, सत्याग्रह की आवश्यकता है अन्यथा अत्याचार को हटाने के लिये गोली और तलवार का पंथ जारी रहेगा ।[२]

लोहिया जी का विचार था कि सत्याग्रह की सफलता सरकार पर निर्भर नहीं है । सरकार चाहे या न चाहे लेकिन यदि सत्याग्रही और जनता चाहती है कि हिन्दुस्तान की सार्वजनिक जगहों से अंग्रेजी अक्षरों को मिटाया जा सकता है, जहाँ तक दुकानदारों का सवाल है उनसे जबर्दस्ती नहीं करना चाहिये बल्कि उनको एक दोस्ताना चेतावनी दे देनी चाहिये कि या तो वे अपने पटों को बदलें नहीं तो उनकी दुकानों का बहिष्कार किया जायेगा । सत्याग्रही ही अन्याय से मुकाबला करने की शक्ति रख सकता है । उन्होंने कहा - जहाँ जहाँ सत्याग्रह होता है वहाँ के लोग जागते हैं और सचेत बनते हैं और उसका लाभ कभी न कभी हिन्दुस्तान और समाजवादी दल को अवश्य मिलेगा ।[३]

लोहिया जी ने समाज में व्याप्त समस्त अन्यायों के विरुद्ध सात क्रांतियों का विचार भी प्रस्तुत किया । वे इन क्रांतियों के माध्यम से समाजवाद की स्थापना करना चाहते थे । उन्होंने कहा - सात क्रांतियाँ और एक

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - 'सत्याग्रह असली या रस्मी' जन-सित०-अक्टू० १९७० पृष्ठ-१२

१- डा० राममनोहर लोहिया 'सिविल नाफरमानी' जन-अगस्त-१९७० पृष्ठ-७०

२- डा० राममनोहर लोहिया मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-३२६

३- डा० राममनोहर लोहिया 'सत्याग्रह असली या रस्मी' जन-सित०-अक्टू० १९७०, पृष्ठ-१२

अच्छाई, अन्याय के विरुद्ध सात विद्रोह और भलाई करने के लिये सार्वजनिक नियोजन, ये इस शताब्दी के स्वास्थ्यवर्धक लक्षण हैं उसी तरह जैसे क्रूरता और गरीबी का बढ़ना, उसके जहरीले रोग हैं। रोग के विषाणुओं पर स्वास्थ्य की जीत होगी या नहीं, यह बहुत कुछ हथियारों और अधियार को खत्म करने के संघर्ष पर निर्भर होगा। इस सन्दर्भ के परिणाम स्वयं इस पर निर्भर हैं कि अन्याय के विरुद्ध सातों विद्रोह किस हद तक और कितनी जल्दी फलीभूत हो सकते हैं, तब शायद एक क्रूरता का अभिशाप मिटे।[1]

लोहिया जी का विचार था कि वर्तमान नेताओं और राजनीतिज्ञों में संकीर्ण स्वार्थपरता की भावना में वृद्धि हो गई है। वे अपने हित की पूर्ति में जनहित की परवाह नहीं करते हैं। लोहिया जी मानते थे कि समाजवाद की स्थापना के लिये जिम्मेदार व्यक्तियों के नेतृत्व की आवश्यकता है। उन्होंने कहा कि - आप समाजवादी हैं, हिन्दुस्तानी समाजवादी हैं इसलिये हिन्दुस्तान की जनता के प्रति और समूची मानवता के प्रति जिम्मेदारी की भावना होनी चाहिये, यह भावना सहज होनी चाहिये।[2]

लोहिया जी का विश्वास था कि समाजवाद की स्थापना के लिये दल का संगठन सुदृढ़ हो। कितनी भी वाह्य बाधाओं के बाद भी दल के सदस्यों को धीरज नहीं खोना चाहिये। उन्हें अपना काम करते हुए संगठन को चुस्त बनाने का प्रयास करना चाहिये। उन्होंने कहा कि - अपने दल के अंदर अभी तक तो लोग धुरियों पर समान दृष्टिकोणों की आदत नहीं सीख पाये हैं, उससे नुकसान हो रहा है जैसे - आजकल एक धुरी है हैसियत की, दल के अलग अस्तित्व का, सिद्धांतों, कार्यक्रमों, अपनी बात की और दूसरी धुरी है क्रियाशीलता की, जायदाद की, शक्ति की, काम की सफलता की। हैसियत और क्रियाशीलता की ये दो धुरियाँ इनको अभी तक हम समदृष्टि से पकड़ नहीं पा रहे हैं।[3]

१- डा० राममनोहर लोहिया 'बिना हथियारों की दुनिया और सात क्रांतियाँ', जन-मार्च अप्रैल १९७०, पृष्ठ-१७

२- डा० राममनोहर लोहिया राग जिम्मेदारी की भावना और अनुपात की समझ पृष्ठ-१९

३- डा० राममनोहर लोहिया - समदृष्टि, पृष्ठ-३

लोहिया जी समाजवादी दल के संगठन को मजबूत करना चाहते थे। उनका विश्वास था कि जब तक समाजवादी दल खुद मजबूत नहीं होता तब तक हम कुछ नहीं कर सकते । लोहिया जी कृषक, मजदूरों , पद-दलित जातियों आदि को संगठित करके समाजवाद की स्थापना का प्रयास करने पर बल देते थे। उन्होंने कहा - जब तक एक तरफ खेत मजदूर , दूसरी तरफ भाग कृषक और तीसरी तरफ जाति के हिसाब से पसमांदा , काछू और जुलाहा वगैरह का संगठन नहीं बनता , तब तक वाहन नहीं है । मैं नहीं कहता कि जाति का संगठन करो लेकिन ये पद-दलित जातियां है इसलिये इनके मन में नया विचार और नया उत्साह पैदा करके इनको खड़ा करो , दूसरों के खिलाफ । ये तीन वाहन हैं और चौथी तरफ मजदूर और विद्यार्थी हैं जैसे आन्ध्र प्रदेश में वैसे हिन्दुस्तान में बिना वाहन के समाजवाद चल नहीं सकता , कोई भी वाद नहीं चल सकता ।[१]

लोहिया जी का विश्वास था कि संसोपा का संगठन प्रत्येक गांव में जब होगा तभी पार्टी का लक्ष्य पूर्ण होगा । समाजवाद को लाने के लिये लिये नेताओं और कार्यकर्ताओं को सस्ती नेतागीरी, शारीरिक आराम व विलासिता तथा बौद्धिक ऐयाशी व कल्पनाओं से निकल कर गांव-गांव में जाकर समाजवाद का अलख जगाना होगा ।

लोहिया जी का विश्वास था कि क्रांतियां हो रही है पर परिवर्तन नहीं हो रहे हैं । वे मानते थे कि परिवर्तन के दो मार्ग हैं - एक प्रेम का और दूसरा हिंसक क्रांति का । प्रेम द्वारा क्रांति कहीं सफल नहीं हुई है और हिंसा द्वारा क्रांति एक अत्याचार के बाद दूसरे अत्याचार में परिवर्तित हो गई । प्रेमभाव से परिवर्तन के लिये आवश्यक है कि कर्ता की आंखों में रक्तिमता तो हो पर क्रोध के साथ आंसू, इस स्थिति को एक व्यक्ति अपना सका , महात्मा गांधी । लोहिया जी स्वतः इसी मार्ग के पक्ष में थे , जिसके द्वारा वर्तमान निरंकुशता को समाप्त करने के लिये विधियों का उल्लंघन किया जायेगा , जनता यातनायें सहेगी ,जिसमें लोग पीटे जायेंगे , मारे जायेंगे हजारों की संख्या में लेकिन यही क्रांतिकारी

१-डा० राममनोहर लोहिया - समाजवादी आन्दोलन का इतिहास,पृष्ठ-५६

अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये भय और घृणा का मार्ग अपनायेंगे क्योंकि भय और घृणा से पूंजीवादी और साम्यवादी दोनोंपद्धतियों द्वारा किये जाने वाले कुकृत्यों की मात्रा बढ़ाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया जा सकता। इसलिये वे मानते थे , हमें केवल भय और घृणा के वातावरण को अपनी क्रांति से हटा देना चाहिये , हमारे शस्त्र अहिंसक विरोध के होना चाहिये ।[१]

लोहिया जी अपनी क्रांति के द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले कार्यों को विस्तार से नहीं बता पाये या ऐसी क्रांतियां कैसे होना चाहिये या फौजी , खेतों का अधिकरण कैसे किया जायेगा या जनता अपने मताधिकार द्वारा उसे करेगी ? यथास्थिति से यथाशीघ्र शोषित व पीड़ित मानवता के शीघ्रतम उद्धार के लिये लोहिया जी की व्यग्रता सर्वविदित है। साथ ही उनका कहना था कि समाजवादी क्रांति अपने वास्तविक स्वरूप में मुख्यतः जनतांत्रिक हो ही सकती है अन्यथा नहीं। जनतांत्रिक हो न केवल इस अर्थ में कि वह जनता के लिये हो और जनता की हो वरन् इस अर्थ में भी कि वह जनता द्वारा भी हो । चार क्रांतियों को इस रूप में क्रियान्वित करने के लिये समाजवादी आन्दोलन का जनता के साथ जिस स्तर का तादात्म्य सात्कार अपरिहार्य है , उसकी तुलना में सोपा उनकी दृष्टि में काम सिद्ध हो चुकी थी । इसलिये लोहिया जी समाजवादियों में एक नई आशा और प्रेरणा का संचार करना चाहते थे ।

लोहिया जी के आलोचकों के अनुसार - कि लोहिया जी का यह विचार कि समाजवाद की स्थापना एक क्रांति के द्वारा हो सकता है और नये समाज की स्थापना की जा सकती है , यह एक वहम है । श्रीकांत वर्मा के अनुसार - समाजवादी आन्दोलन समाप्त हो चुका है और आकस्मिक नहीं है क्योंकि समाजवाद उस अर्थ में एक दर्शन नहीं है जिस अर्थ में मार्क्सवाद एक दर्शन है । समाजवाद के पास इतिहास की अपनी व्याख्या नहीं है , मार्क्सवाद के पास है । यह अलग बात है कि हम उससे सहमत न

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स ,गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-१६२

हों । समाजवाद एक तरह का उदारवाद है और बहुत पहले खुद लोहिया ने लिखा था " उदारवादी होने में एक तरह का धोखा है " समाजवादी मुख्य भूमिका अदा नहीं कर सकते ।[1]

लोहिया जी समाजवाद की स्थापना के लिये सदैव प्रयत्न करते रहे लेकिन उनके निधन के बाद उनके सहयोगी समाजवादी विचारधारा के समर्थक लोहिया जी की जड़ों और नीतियों , विषम परिस्थितियों में भी अपनी बात पर डटे रहने की जरूरतों को भूल गये । वे लोहिया जी द्वारा रेखांकित सात क्रांतियों के लिये संगठित रूप से काम करना तो दूर बल्कि इन सात क्रांतियों का उल्लेख करते हुए भी कतराने लगे । उनको डर लगने लगा कि नर-नारी समता , निजी सम्पत्ति का अंत , पिछड़ी जातियों , वर्गों को विशेष सुविधायें देने की बात से कहीं अपना तत्कालिक राजनीतिक नुकसान तो नहीं हो जायेगा । कोई आश्चर्य नहीं कि जिस समाजवादी आन्दोलन को लोहिया जी ने व्यापक सिद्धांतों और ठोस नीतियों , कार्यक्रमों को सुदृढ़ आधार देने का प्रयत्न किया, वह उनके निधन के बाद उत्तरोत्तर दिशाहीन और निस्तेज होता गया । नीतियां नारों में बदल गईं , सिद्धांत बदलती राजनीतिक गठजोड़ के अनुरूप नित बदले जा सकने वाले मुखौटों में बदल गये । बहु-आयामी दृष्टि का स्थान तात्कालिक स्तर - स्वार्थ से बंधी दृष्टि ने ले लिया ।

लोहिया जी ने अपने जीवनकाल में वोट, फावड़ा, जेल के माध्यम से चुनाव , रचनात्मक कार्य और संघर्ष पर बल देने का बहु-आयामी दृष्टि सिकुड़कर वोट और जेल तक सीमित रह गई थी । लोहिया जी के बाद मजबूरी की स्थितियों को छोड़कर पूरी तरह वोट पर केन्द्रित हो गई । नेताओं के पास लोहिया जैसी सृजनात्मक प्रतिभा का अभाव था। समाजवादियों का बचाखुचा संगठन ही समाप्त हो गया ।

- -

१- श्रीकान्त शर्मा - " लोहिया के और भारत " २४-३० मार्च, १९८५ रविवार पृष्ठ-३९

-: o :-

अध्याय ४

(अन्तर्राष्ट्रवाद)

चतुर्थ अध्याय

अन्तर्राष्ट्रवाद

युद्ध के बाद शांति और शांति के बाद युद्ध यह मनुष्य के विकास का क्रम रहा है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणि होने के नाते अन्तिम रूप से शांति का आकांक्षी है और इसलिये शताब्दियों से उसकी यही कामना रही है कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में स्थायी शांति की स्थापना होनी चाहिये।

आधुनिक विचारकों का मत है कि मनुष्य के विकास के हेतु शांति आवश्यक है और संविदावादी लेखकों के अनुसार इसीलिये राज्य की उत्पत्ति हुई। जब विश्वशांति की स्थापना का प्रयास किया जाता है तो यह कार्य प्रायः ऐसी संस्था को सौंपा जाता है जो निष्पक्ष रूप से विभिन्न राष्ट्रों के विरोधी हितों के मध्य तालमेल स्थापित कर सके। जब तक विश्व युद्धों का निराकरण करके शांति एवम् सहयोगपूर्ण वातावरण नहीं बनाया जायेगा तब तक लोगों के जीवनस्तर को ऊंचा करना और पिछड़े हुए देशोंका आर्थिक विकास करना सम्भव नहीं हो सकता। यह एक तथ्य है कि गरीबी, हीनता, दमन, असमानता, संकुचित दृष्टिकोण प्रायः युद्धों के कारण बन जाया करते हैं। जब तक इन मूल कारणों को दूर नहीं किया जाय तो युद्ध की सम्भावना बनी रहती है। इस प्रकार विश्व संस्था का उद्भव क्षेत्रीय अथवा स्थानीय युद्धों से नहीं प्रत्युत विश्व युद्धों से होता है इस प्रकार विश्व युद्ध इतिहास में दो बार लड़े गये हैं - प्रथम महायुद्ध और द्वितीय महायुद्ध। इन दोनों ही व्यापक युद्धों के बाद क्रमशः पवित्र संधि राष्ट्रसंघ तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ इन दो विश्व संगठनों का जन्म हुआ।

लोहिया जी के जीवनकाल में दोनों विश्व युद्ध हुए और तदुपरांत विश्व संस्था स्थापित करने का प्रयास किया गया। लोहिया जी मानवता-वादी दृष्टिकोण रखते थे। वे समस्त मानवता के कल्याण के लिये विश्व-संस्था को सशक्त बनाना चाहते थे और सभी राष्ट्रों की प्रगति चाहते थे।

उन्होंने विश्व संस्था के माध्यम से राष्ट्रों के बीच मधुर सम्बन्धों को सुदृढ़ करने का प्रयास किया। उन्होंने राष्ट्रों के संबंधों को निर्धारित करने के लिये विश्व सरकार की स्थापना का विचार प्रस्तुत किया।-

२) आवश्यकता -

विभिन्न देशों की सरकार के मध्य उठने वाले विरोधों का हल करने के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था आवश्यक है। युद्ध की पुनरावृत्ति को रोकने के लिये और मानव सभ्यता एवम् संस्कृति को बचाने के लिये भी आवश्यक है। इस विचार को प्रस्तुत करने के लिये इमेन्युअल काण्ट का नाम प्रख्यात है।

रसैल को बीसवीं शताब्दी का महानतम अन्तर्राष्ट्रवादी चिंतक माना जाता है। उसने अपने जीवनकाल में दो विश्व युद्धों को देखा था और द्वितीय विश्व युद्ध के भयानक परिणामों के बावजूद अन्तर्राष्ट्रीय तनाव का कम न होना और तृतीय विश्व युद्ध की आशंका उसके मन में बनी रही थी। रसैल के मत से यदि कदाचित तृतीय विश्व युद्ध छिड़ गया तो सम्पूर्ण मानवता तथा मानव सभ्यता के विनाश का कारण बनेगा इसलिये यह आवश्यक है कि विश्व समाज का संगठन तथा नियमन इस रूप से किया जाना चाहिये जिससे अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध की सम्भावना को समूल नष्ट कर दिया जाये। रसैल ने लिखा है - इन परिणामों को देखतेहुए यह कहा जा सकता है कि वर्तमान काल में एक बहुत बड़ा अभियान छ बीते हुए समय के मुकाबले, युद्ध को रोकना इस समय सबसे महत्वपूर्ण कार्य है, यदि हमें मानवता को जीवित रखना है, किसी भी कीमत के बीच जगत को जीवित रखना है। यह बात सबसे महत्वपूर्ण है कि हम राजनैतिक चेतना, विचार और सिद्धांत बनायें।[१]

रसैल का सुझाव है कि मानवता की रक्षा तथा अन्तर्राष्ट्रीय

१- बर्टेण्ड रसैल - न्यू होप्स फार ए चेंजिंग वर्ल्ड, पृष्ठ-६७

युद्धों को रोकने का उपाय यही है कि विभिन्न राष्ट्रों के मध्य वैसे ही संबंधों का निरूपण किया जाना चाहिये जैसे राष्ट्र की सीमा के अन्तर्गत विभिन्न समुदायों के मध्य हुआ करते हैं। राज्य की सत्ता विभिन्न समुदायों के मध्य सामंजस्य स्थापित करती है। इसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी एक शक्तिशाली अन्तर्राष्ट्रीय संगठन होना चाहिये। रसेल का सुझाव था - सिर्फ अब एक ही रास्ता है जिससे संसार को युद्ध की विभीषिका से बचाया जा सकता है, वह रास्ता है --- कि सर्व संसार की सिर्फ सर्वमान्य एक ही आधारितशक्ति हो जिसके पास ही समस्त भयावह युद्ध हथियारों का नियंत्रण हो।[1]

रसेल की भांति लास्की ने भी माना है कि साधनों की उपेक्षा करके हम कभी साध्यों तक नहीं पहुंच सकते हैं। जो राज्य अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को ध्यान में रखकर कार्य करते हैं, उसके परिणाम प्राय अच्छे नहीं होते। लास्की ने लिखा - अनेक राज्यों की इस दुनिया में जो राज्य जीना चाहता है वह निजी सफलता को अपनालक्ष्य नहीं बना सकता, उस मारीचिका की ओर बिना सोचे-समझे बेतहाशा दौड़ना आखिर अस्तित्व के लिये घातक साबित हो सकता है। इसने लुई चतुर्दश का विनाश किया, इसने नेपोलियन का विनाश किया, इसने जर्मनी का ध्वंस किया। उनका विनाश हुआ, इसलिये कि उन्होंने व्यक्तिगत हित को सार्वजनिक कल्याण के ऊपर रखकर देखा।[2]

यदि समस्त संसार को अखण्ड मान कर, मतभेदों को दूर करने का प्रयास किया जाय तो मानवता का हित निश्चित है, क्योंकि वर्तमान समय में आवश्यक माना जाने लगा है कि राष्ट्र राज्य भौगोलिक-क्षेत्र चौहद्दियों में आदमी का हित बांध कर नहीं रखा जा सकता। सामाजिक संगठन उन संकुचित सीमाओं को पार कर गया है। लास्की के अनुसार दुनिया के मेहनतकश यह समझने लगे हैं कि सर्विया और आस्ट्रिया के शासकों का झगड़ा उनका झगड़ा नहीं, संसार के वैज्ञानिक जान गये हैं कि -

- -

१- बर्टेण्ड रसेल - न्यु होप्स फार ए चेंजिंग वर्ल्ड, पृष्ठ-८७
२- लास्की - राजनीति के मूल तत्व, पृष्ठ-५४१-४२

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से ही उनके ज्ञान का विस्तार सम्भव है , उपभोक्ता महसूस करता है कि चाहे , अनचाहे वह एक विश्व नागरिक बन गया ।[१]

विश्व को विश्व युद्ध के खतरे से बचाने के लिये आवश्यक है कि सशक्त अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की व्यवस्था हो । संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना इसी उद्देश्य से की गई - राष्ट्रीय समानता के सिद्धांतों के साथ ही -संयुक्त राष्ट्र की आधारशिला उस सिद्धांत के साथ रखी गई जिसमें महान शक्तियों पर नये विश्व युद्ध रोकने की जिम्मेदारी है ।[२]

विश्व की वर्तमान स्थिति को देखते हुए डा०लोहिया एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना के पक्ष में थे जो विभिन्न राष्ट्रों के हितों को ध्यान में रखकर कार्य करे । वे मानते थे कि प्रतियोगी सिद्धांतों के स्तर पर पहुंचने वाले दो मार्ग - संयुक्त राष्ट्र संघ और सोवियत समाजवादी गण तंत्र संघ है । इनमें से कोई सफल नहीं हो सकता । संयुक्त राष्ट्र संघ राष्ट्रीय सम्प्रभुताओं को कम नहीं कर सकता । वेराष्ट्रों को एक अन्तर्राष्ट्रीय संप्रभुता के अन्तर्गत नहीं ला सकते क्योंकि वे विभिन्न राष्ट्रों की आर्थिक और सैनिक शक्ति के अन्तर को सार रूप में परिवर्तित नहीं कर सकते । सोवियत समाजवादी गण तंत्र संघ तीव्रता से रूस के लिये एक नाम बन गया है । यदि विश्व का भाग्य एक देश के भाग्य पर निर्भर है तो वह कभी वास्तविक नहीं बन सकता । साम्यवादी विचारधारा के अन्तर्गत एक विश्व सरकार की उपलब्धि और रूस का विस्तार पर्यायवाची अर्थ रखते हैं इसलिये लोहिया जी ने लिखा है कि - विश्व सरकार की स्थापना के लिये आवश्यक है कि स्वतंत्र उत्पादकता और उपनिवेशीय उत्पादकता के मध्य की विषमताओं को हटाना पड़ेगा । मनुष्य के श्रम के मूल्यों को उचित रूप से समाप्त करना पड़ेगा, वह कहीं भी हो , केवल पूर्ण रोजगारी ही नहीं

- -

१- लास्की - राजनीति के मूल तत्व , पृष्ठ-५६२
२- वी. मोरोजोव - दि युनाइटेड नेशन्स ट्वन्टी इयर्स आफ कोन्ट्युबर्स एण्ड सक्सेस, पृष्ठ-१३

विश्व राज्य के लिये समान उपार्जन व रोजगारी भी होनी चाहिये । विश्व में पटक भागों को पहले शक्ति की समानता फिर समृद्धि में समानता प्राप्त करना होगी तभी वे विश्व सरकार के मार्ग पर चल सकेंगे ।[१]

लोहिया जी ने देश के अन्दर सफल प्रजातंत्र व्यवस्था के लिये चौखम्भा सिद्धांत का प्रतिपादन किया पर इसके साथ ही विश्व स्तर पर मानवता के कल्याण के लिये उन्होंने पचखम्भा योजना का सिद्धांत प्रस्तुत किया । उनका मत था कि ये संवैधानिक ढांचा चतुरस्तम्भ राज्य स्थापित करके सुखद परिपूर्णता का प्रजातंत्र स्थापित करेगा और अब समय परिपक्व हो गया है कि अब संसार का एक पंचांग कम से कम सिद्धांत में स्थापित हो क्योंकि एक विश्व केन्द्र तत्कालीन आवश्यकता बन गया है ।[२]

लोहिया जी संसार को युद्ध की विभीषिका से बचाने के लिये विश्व सरकार की स्थापना आवश्यक समझते थे । उन्होंने कहा - शांति विश्व सरकार के द्वारा ही स्थापित की जा सकती है और यह एक नये विश्व दृष्टिकोण से नहीं हो सकता ।[३]

लोहिया जी ने रसेल और लास्की की भांति अन्तर्राष्ट्रीय शांति की स्थापना के लिये विश्व संस्था की स्थापना पर बल दिया ।

२) अपेक्षायें -

विश्व स्तर पर एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना हो जाने पर उससे ये अपेक्षायें की जा सकती हैं कि यह संस्था दुनिया में शांति और सुरक्षा बनाये रखे । इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये शांति भंग होने पर आक्रमण को रोके और उसके विरुद्ध प्रभावपूर्ण और सम्मिलित कार्यवाही

१- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-३८६
२- वही पृष्ठ-२८८
३- वही पृष्ठ -२८७

करे । न्यायपूर्ण सिद्धांतोंएवं अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार - शांति भंग करने वाली अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं अथवा स्थितियों पर शांतियुक्त साधनों से समझौता अथवा आपसी निर्णय करे । दुनिया की आर्थिक ,सामाजिक, सांस्कृतिक या अन्य मानवीय समस्याओं को हल करने में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना चाहिये तथा कुछ वंश , लिंग, भाषा या धर्मभेद के बिना मानव मात्र के लिये मानव अधिकारों और स्वतंत्रता के कुछ अधिकारों को बढ़ाना और प्रोत्साहन देना चाहिये । लास्की ने अल्पसंख्यकों के हितों को संघ में संरक्षण देने पर जोर दिया । संघ को अल्पसंख्यकों के हितों की जांच करने का पूर्ण हक होगा । लास्की ने लिखा - इस तरह की जांच में यह बात निहित होगी कि सुनवाइयों के बाद कुछ सिफारिश की जायेगी और संघ की सदस्यता में यह दायित्व निहित होना चाहिये कि जिस किसी राज्य को इस प्रकार की सिफारिश भेजी जाये वह सिद्धांत रूप से और अमल में उनका पूरी तरह पालन करे ।[१]

लास्की ने माना कि यदि संघ की सिफारिशों को कोई राज्य मानने को तैयार नहीं होता तो संघ से यह अपेक्षा होनी चाहिये कि संघ यह आग्रह तो कर सकता है कि अगर कोई राज्य जानबूझकर उन पर अमल न करने की नीति अपनाये तो उसका आर्थिक बहिष्कार कर दिया जाये । उसे विदेशों से कर्ज पाने से रोका जा सकता है , विदेशी राष्ट्रों के विनिमय व्यापार केन्द्र में दी गई सुविधाओं में से उसकी प्रतिभूतियां खारिज की जा सकती हैं और जो मामले बहुत ही गये बीते हों उनमें उस पर अन्य राष्ट्रों से व्यापार करने पर भी प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है । संघ की सदस्यता से मुअत्तल करदेना भी ऐसा दण्ड हो सकता है जिसके अच्छे नतीजे निकलें क्योंकि वह दुनिया के सामने इस बात का ऐलान होता है कि अमुक राष्ट्र ने विश्व की जनता के मत की अवमानना की है ।[२]

१- लास्की - राजनीति के कुछ तत्व , पृष्ठ-५०२

२- वही पृष्ठ-५०२

विश्व की संस्था से यह अपेक्षा की जा सकती है कि राष्ट्रों के मध्य होने वाले सीमा सम्बन्धी या अन्य प्रकार के विवादों को दूर करे ताकि विश्व युद्ध या अन्तर्राष्ट्रीय अशांति का कारण न बन जाये । रसेल ने भी इस मत का समर्थन किया है और लिखा कि - सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि दो पक्षों में हुए युद्ध के बारे में विश्व सरकार के निर्णय को हर दोनों पक्षों द्वारा माना जाना चाहिये । किसी भी एक देश के द्वारा किसी दूसरे देश पर की गई ताकत का इस्तेमाल विश्व जनता की हानि समझना चाहिये और विश्व सरकार की सशस्त्र सेनाओं द्वारा इसका उसे दण्ड मिलना चाहिये। ये विश्व सेनायें ही सब जगह शांति कायम रखने के लिये महत्वपूर्ण है ।[1]

लोहिया जी ने रसेल से अधिक विकसित अन्तर्राष्ट्रवाद के संबंध में अपने विचारों को व्यक्त किया । वे अन्तर्राष्ट्रीय समाज की स्थापना इस आधार पर करना चाहते थे जिसमें विश्व के सभी देशों में सम्पन्नता व समानता हो । उन्होंने कहा कि - राष्ट्र में सब लोग बराबर हों यही नहीं बल्कि राष्ट्रों में सब लोग बराबरी पर हों ।[2]

वे विश्व से शोषण और युद्ध का अंत करना चाहते थे क्योंकि युद्ध के प्रसाधनों पर होने वाले व्यय के बजट का धन आर्थिक विकास में लगाकर राष्ट्रों के व्यक्तियों के जीवन स्तर में सुधार किया जा सकता है । अन्तर्राष्ट्रवाद के लिये आवश्यक है कि दुनिया के सभी देशों में एकता की भावना और भाईचारा होना चाहिये । लोहिया जी के शब्दों में - सभी रंगों तथा देशों के समाजवादियों के साथ जब तक कोई व्यक्ति मुक्त ,खुलासा तथा मित्रता से सम्बन्ध नहीं रखेगा तब तक वह समाजवादी नहीं होगा ।[3]

लोहिया जी का विचार था कि इसलिये रंग, जाति, धर्म तथा राष्ट्रीय समाजों के आधार पर चलने वाला भेदभाव समाप्त होना चाहिये। उनका लक्ष्य शोषित , पीड़ित व निर्धन मानवता का कल्याण करना था । वे विश्व के सभी लोगों का जीवन स्तर बढ़ाने का प्रयत्न करते रहे । वे

- -

१- बर्टेण्ड रसेल - न्यू होप्स फार ए चेंजिंग वर्ल्ड,पृष्ठ-६८
२- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स,गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-२५७
३- वही पृष्ठ-३४०

सम्पूर्ण विश्व में समाजवाद लाने के पक्ष में थे। उन्होंने कहा कि - नये अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद को राष्ट्र के स्थान पर सम्पूर्ण विश्व ,समाज के एक या दूसरे प्रकार के वर्ग के स्थान पर पीड़ित तथा शोषित मानवता को अपना आधार बनाना होगा।[१]

लोहिया जी मानते थे कि विश्व सरकार कुछ ऐसी आर्थिक संस्थायें बनायेगी जो देशों से क्षमतानुसार धन एकत्रित करेगी तथा आवश्यकता वाले देशों की सहायता करेगी। निर्धन देश यद्यपि योगदान कम देंगे पर सहायता अधिक ले सकेंगे। संकटकाल में या अत्यधिक आवश्यकता के समय विश्व सरकार देशों से धनी व क्षमतावान नागरिकों से अधिक धन की मांग कर सकेगी। लोहिया जी अन्तर्राष्ट्रवाद के आधार पर विश्व में समानता और सम्पन्नता लाना चाहते थे। वे विश्व सरकार की स्थापना करके उससे अपेक्षा करते थे कि वह राष्ट्रों के बीच होने वाले युद्ध , शोषण व गरीबी का अंत करने का प्रयास करे और विश्व में राष्ट्रों की प्रगति के लिये प्रयत्न करे जिससे सम्पूर्ण मानवताका कल्याण हो सके।

३) विश्व सरकार का स्वरूप -

अन्तर्राष्ट्रवाद के लिये आवश्यक है कि विश्व के विभिन्न राष्ट्रों का एक विश्व संगठन हो। इस विश्व संगठन को अपने कार्यों को सफलता-पूर्वक करने के लिये उचित व्यवस्था करना होगा। लास्की के अनुसार -राष्ट्र संघ को चार संस्थाओं की जरूरत है , एक तो विधान मण्डल या सभा की जरूरत है जो अन्तर्राष्ट्रीय नीति के आम सिद्धांत निर्धारित करे , एक कार्यांग या परिषद् की आवश्यकता है जो विधान मण्डलमें प्रवृत्तिधारा को दिशा दे और वैधानिक कार्यवाही के बीच जो अवकाश रहे उसमें हल ढूंढने का कार्य करे। एक स्थाई नागर सेवा अथवा सचिवालय आवश्यक है जो काम की तैया-रियां करे और आवश्यक जांच पड़ताल का प्रबंध करे और अंत में एक अदालत का

१- डा० राममनोहर लोहिया मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-४४९-४२

होना जरूरी है जो उसके कार्य-कलाप को कानूना उपकरण से बताये।[1]

लास्की का विचार था कि संघ राष्ट्र राज्यों का संगम है जो राजनीतिक दृष्टि से बलवान होते हुए भी बराबर होते हैं अत: उनके प्रतिनिधि अनिवार्यत: संसार के प्रतिनिधि होते हैं। हर राज्य अपने प्रतिनिधि के रूप में चाहे किसी को भी और किसी तरह से भी चुन ले, वह उसस बाफ कामनको भांति अपनी प्रबुद्धि मति के अनुसार जो कुछ उचित समझे वो नहीं कर सकते उन्हें तो उन लोगों के हुक्म के मुताबिक काम करना पड़ता है जो उनको सत्ता के स्वीत है।

रसेल का भी विचार है कि - विश्व सरकार बनाने के लिये - विधान मण्डल और न्याय मण्डल गठित करना होगा।[2]

लास्की ने अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में राष्ट्रों की सरकारों के प्रतिनिधियों को सम्मिलित करने का विचार रखा। लेकिन डा०लोहिया का सुझाव था कि क्षेत्रीय महत्व के साथ वयस्क मत या राष्ट्र के समान प्रतिनिधि विश्व संसद का चुनाव करेंगे। लोहिया जी विश्व सरकार का राष्ट्रों के नागरिकों से सीधा संबंध रखने के पक्ष में थे।वे विश्व संसद का चुनाव दो तरीकों से करना चाहते थे - पहला ऊपर वालेसदन में जनसंख्या पर बिना ध्यान दिये हुए सभी राष्ट्रों को समान प्रतिनिधित्व काअधिकार हो, दूसरे निचले सदन में जनसंख्या के महत्व पर ध्यान देकर प्रतिनिधित्व निश्चित किया जाये। इस प्रकार विश्व संसद में दो सदन होना चाहिये। इस संसद का अधिकार क्षेत्र पूर्णतया निश्चित होना चाहे वे थोड़े ही क्यों न हों। लोहिया जी के अनुसार - बालिग मताधिकार पर चुनी हुई सीमित शक्ति वाली इस विश्व पार्लियामेन्ट में राष्ट्रीय व क्षेत्रीय हितों की रक्षा के लिये उनका प्रतिनिधित्व घटाया या बढ़ाया जा सकता है, पार्लियामेंट का दूसरा सदन भी हो सकता है जिसमें दुनिया के सभी राष्ट्रों का समान

- -

१- लास्की - राजनीति के मूल तत्व, पृष्ठ-५२८-२६
२- बर्ट्रेण्ड रसेल - न्यू होप्स फार ए चेंजिंग वर्ल्ड, पृष्ठ-६८

प्रतिनिधित्व हो ।[१]

लोहिया जी का विचार था कि विश्व सरकार को अपना कार्य-कुशलता से सम्पन्न करने के लिये धन की जरुरत होगी, अतः एक अन्तर्राष्ट्रीय कोष विश्व सरकार के लिये आवश्यक है ।

उन्होंने लिखा कि - विश्व सरकार अपने आप को लूली बना लेगी अगर वह पूंजी के साधनों का एक अन्तर्राष्ट्रीय कोष नहीं बनाती जिसमें हर देश से उसकी शक्ति के अनुसार लिया जाय और हर देश को उसकी आवश्यकता के अनुसार दिया जाय । अगर यह बात साफ मालूम न पड़े तो कोई ऐसा तरीका निकाला जा सकता है जिसके अनुसार कोष में हर देश का हिस्सा उसकी आर्थिक स्थिति के अनुसार कम या ज्यादा हो । तब एक विश्व विकास संस्था सारी दुनिया के अविकसित इलाकों में पूंजीगत प्रसाधनों, मशीनों और मशीनी जानकारी का बटवारा कर सकती है ।[२]

डा०लोहिया विश्व की संसद का चुनाव सीधे मतदाताओं के द्वारा सम्पन्न कराने के पक्ष में थे । मधु लिमये के अनुसार - वह मानते थे कि अन्ततोगत्वा हम को विश्व सरकार की ओर जाना है और ऐसी विश्व सरकार का निर्माण करना है जिसमें संयुक्त राष्ट्र संघ की तरह सार्वभौम सरकारों के प्रतिनिधि नहीं बल्कि लोकसभा की तरह मानव जाति के सीधे चुने हुए प्रतिनिधि जाकर बैठेंगे ।[३]

लोहिया जी का सुझाव था कि विश्व सरकार की अपनी सेना भी होना चाहिये जिससे वह शक्तिशाली संस्था रहे वे राष्ट्रीय शक्ति के ऊपर अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति की स्थापना करना चाहते थे । डा०राजेन्द्र मोहन के अनुसार - लोहिया विश्व संघ पर जोर देते थे, उसमें मानवीय निर्णय मानव जाति के हित के लिये होंगे । उसकी सेना होगी प्रत्येक

१- डा०राममनोहर लोहिया - इतिहास चक्र, पृष्ठ ६९-७०
२- वही पृष्ठ-७२
३- मधु लिमये - 'लोकसभा में लोहिया के बिना' - जन-दिस०-१९६७ पृष्ठ-३०

राष्ट्र प्रतिरक्षा-व्यय में से कुछ भाग विश्व सेना व सरकार के लिये देगा, जिसके परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति ऊपर रहेगी और प्रत्येक राष्ट्र को उसकी पहचान रहेगी ।[१]

लोहिया जी ने अन्तर्राष्ट्रवाद की स्थापना के लिये विश्वसंसद की व्यवस्था करने का विचार प्रस्तुत किया लेकिन लोहिया जी से पहले विश्व सरकार और विश्व संसद के सम्बन्ध में बर्टेण्ड रसेल अपने विचार प्रस्तुत कर चुके थे । लोहिया जी के इस विचार में कि विश्व संसद की स्थापना प्रत्येक देश के जनप्रतिनिधियों द्वारा चुनाव करके होना चाहिये, मौलिकता देखने को मिलती है । वे एक राष्ट्र के समान ही विश्व की शासन व्यवस्था की स्थापना करना चाहते थे ।

लोहिया जी की यह परम इच्छा थी कि एक ऐसा समय आये जब दूसरे देशों को जाने के लिये कोई प्रतिबंध-अनुबंध आदि न रहे । लोग स्वतंत्रता से एक दूसरे देश में आ-जा सकें । वह चाहते थे कि जिस प्रकार एक देश में अपनी एक पार्लियामेंट होती है उसी प्रकार से एक विश्व पार्लियामेंट होनी चाहिये, जिसमें विश्व के समस्त देशों का प्रतिनिधित्व किया जाये। चौखम्भा राज्य के अपने स्वप्न में वह एक और पांचवां खम्भा भी जोड़ते थे और यही विश्व पार्लियामेंट का था । लोहिया जी के लेखों, भाषणों और विचारों के द्वारा उनके अन्तर्राष्ट्रीय मानवतावादी दृष्टिकोण की झलक मिलती है ।

४) <u>विश्व सरकार के कार्य -</u>

विश्व सरकार का महत्वपूर्ण कार्य अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवम् सुरक्षा को बनाये रखना तथा अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण ढंग से समाधान करना है । विश्व सरकार को अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण समाधान करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिये । युद्ध छिड़ जाने की स्थिति में अथवा किसी राज्य द्वारा अपने दायित्वों का उल्लंघन करके युद्ध

- -

१- डा० राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा० लोहिया, पृष्ठ-११६

जारी रखने की दशा में विश्व सरकार को यह अधिकार दिया जाना चाहिये कि वह अपराधी अथवा आक्रमणकारी या दोषी राष्ट्र के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबंधों और सैनिक कार्यवाही का प्रयोग कर सके। विभिन्न राष्ट्रों के बीच सीमा सम्बन्धी विवाद को सुलझाने का अधिकार भी विश्व सरकार को होना चाहिये। लास्की के अनुसार - व्यवस्था करने में संघ की सत्ता का हमेशा उपयोग किया जाना चाहिये। जहां सम्बद्ध राष्ट्र सीमा का ऐसा कहीं तय न पाये इस बारे में उलझा हों, वहां संघ की स्वीकृति ले लेना भर काफी होगा।[1]

विश्व सरकार को युद्ध के निवारण में शस्त्रास्त्रों को घटाने और निःशस्त्रीकरण की व्यवस्था करने से सम्बन्धित अधिकार होना चाहिये। लास्की ने लिखा है - एक बार मान लेने पर कि निःशस्त्रीकरण का मामला ऐसा है जिसे संघ को सौंपा जाना चाहिये। इन सिद्धांतों के पालन करने का तरीका महत्वपूर्ण बन जाता है, जाहिर है कि कोई भी साधारण कानून इनसे पैदा होने वाली समस्याओं से नहीं सुलझायेगा।[2]

विभिन्न राष्ट्रों के बीच होने वाले झगड़ों को विश्व सरकार शांतिपूर्ण रीति से हल कर सकता है। लास्की का विचार है - मैं समझता हूं शांति के लिए मैं संघ के विधिवेत्ताओं ने इस बात पर और ज्यादा बल दिया है कि ऐसा कोई झगड़ा नहीं हो सकता जिसे अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय या विवाचन द्वारा न निपटाया जा सके।[3]

रसेल भी विश्व सरकार को विभिन्न राष्ट्रों के बीच उत्पन्न विवाद को हल करने का अधिकार देने के पक्ष में थे। रसेल विश्व सरकार के पास उसकी शक्ति बढ़ाने के लिये सेना रखने के पक्ष में थे। वे मानते थे कि विश्व सरकार को दोषी राज्य को दण्डित करने का अधिकार होना चाहिये।

- -

१- लास्की - राजनीति के कुछ तत्व, पृष्ठ-४६८
२- वही पृष्ठ-७२
३- वही पृष्ठ-७६

रसेल के अनुसार - सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि दोनों पक्षों में हुए युद्ध के बारे में विश्व सरकार के निर्णय को ही दोनों पक्षों द्वारा माना जाना चाहिये। किसी भी एक देश द्वारा किसी दूसरे देश पर की गई ताकत का इस्तेमाल विश्व जनता की हानि समझना चाहिये और विश्व सरकार की सशस्त्र सेनाओं द्वारा इसका उसे दण्ड मिलना चाहिये। ये विश्व सेनायें ही सब जगह शांति कायम रखने के लिये महत्वपूर्ण है।[1]

विश्व संस्था की स्थापना में शांति की स्थापना का प्रयास किया जा सकता है। प्रथम विश्व युद्ध के बाद विश्व में शांति की स्थापना के प्रयास से राष्ट्रसंघ का निर्माण किया गया और द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पुन: इस संस्था को शक्तिशाली बनाने के लिये प्रयास किया गया और राष्ट्र संघ के स्थान पर संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना की गई। संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रमुख कार्य विश्व में शांति की स्थापना है। संयुक्त राष्ट्रसंघ को विश्व-शांति कायम रखने और सुरक्षा करने का अधिकार दिया गया। संघ अपने सदस्य देशों के साथ समझौते कर सकता है और उन्हें खत्म भी कर सकता है।

लोहिया जी भी विश्व सरकार को संसार में विभिन्न राष्ट्रों के मध्य होने वाले झगड़ों को रोकने और शांति स्थापित करने का कार्य सौंपना चाहते थे। विश्व सरकार को विभिन्न देशों की विदेश नीति के सम्बन्ध में हस्तक्षेप करने का अधिकार होगा। उनके अनुसार - अत: विश्व सरकार को अपने आप को विश्व और शांति, सैनिक शक्ति और विदेश-नीति से सम्बन्धित पहलुओं और दुनिया के बुनियादी स्वास्थ्य के लिये जरूरी न्यूनतम आर्थिक विषयों तक ही सीमित रखना होगा। ऐसी विश्व सरकार की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय सरकारों द्वारा मानव जाति के अत्याचार पूर्ण बटवारे का अंत हो जायेगा और लोकतंत्र को पहली बार काम करने का खुला क्षेत्र मिलेगा।[2]

- -

१- बर्टेण्ड रसेल - न्यू होप्स फार अ चेंजिंग वर्ल्ड, पृष्ठ-६८
२- डा० राममनोहर लोहिया - इतिहास चक्र, पृष्ठ-७०

लोहिया जी विश्व सरकार को विभिन्न देशों की आर्थिक सहायता देने का कार्य भी देने के पक्ष में थे । विश्व सरकार के कोष में से पिछड़े हुए राष्ट्रों को सुविधायें प्राप्त होंगी । विश्व सरकार दुनिया के सभी राष्ट्रों को अच्छा जीवनस्तर प्रदान करने का कोशिश करेगी । लोहियाजी के अनुसार - एक विश्वसंस्था ही जो अंदरूनी सामोपृय के विचार को सारी दुनिया के मंच पर ले जायेगी और राष्ट्रीय सामाओं के अंदर बढ़ते हुए जीवन स्तर के विचार को बदलकर सारी दुनिया के लिये अच्छे जीवन स्तर का रूप दें, एक ऐसा विश्व सभ्यता ला सकती है, जिसमेंगिरावट न हो ।[1]

लोहिया जी विश्व सरकार को शक्तिशाली बनाना चाहते थे। वे समस्त मानवता की प्रगति के लिये उसे शांति, सुरक्षा, प्रगति से संबंधित सभी कार्य सौंपने के पक्ष में थे । वे निश्चित थे कि यदि इस प्रकार के विश्व सरकार की स्थापना की जाये तो निश्चित है कि विश्व शांति और सुरक्षा के लिये कार्य कर सकती है । लोहिया जी विश्व शांति और उसके कल्याण के लिये सदैव प्रयत्न करते रहे ।

७) विश्वराज्य -

विश्व सरकार की स्थापना एक साधन मात्र है, जिसके द्वारा अनेक मान्य राजनीतिज्ञ एवम् विचारक संसार में अशांति, असुरक्षा एवम् विनाश को मिटा कर उसके स्थान पर शांति, न्याय, सुरक्षा एवम् व्यवस्था पूर्ण विश्व समाज की रचना करना चाहते हैं । इस समाज में प्रत्येक व्यक्ति को समानता एवम् स्वतंत्रता के अधिकार के साथ-साथ व्यक्ति के विकास के सभी सम्भव साधन एवं अवसर प्रदान किये जायेंगे । विश्व-सरकार की प्राथमिक आवश्यकता होती है अन्तर्राष्ट्रीय समाज, जिसके अभाव में विश्व सरकार से सम्बन्धित योजना सफलता से पाँच गज दूर ही रहेगी । इसमें सन्देह नहीं कि संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा ऐसे समाज के निर्माण

१- डा० राममनोहर लोहिया - इतिहास चक्र, पृष्ठ-७२

की दिशा में प्रयास किये जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त विश्व सरकार में राष्ट्रों की संप्रभुता शक्ति को पूरी तरह समाप्त करके उसे अन्तर्राष्ट्रीय सरकार के हाथोंमें सौंप दिया जायेगा। संप्रभुता का यह हस्तांतरण विश्व सरकार की स्थापना के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है। संयुक्त राष्ट्रसंघ इस बाधा को दूर करने का कार्य कर रहा है। संघ द्वारा इसके सदस्यों को कुछ उत्तरदायित्व सौंपे गये हैं, जिनको पूरा करना विश्व शांति एवम् सुरक्षा के लिये आवश्यक होता है। एक राष्ट्र द्वारा किसी विश्व संस्था द्वारा लगाये गये उन उत्तरदायित्वों का पालन कुछ सीमा तक उसकी संप्रभुता को मर्यादित करता है और इस प्रकार उसे विश्व सरकार का प्रारम्भिक - प्रशिक्षण प्रदान करता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ एक प्रशिक्षण केन्द्र है जहां विश्व के निवासियों एवम् राष्ट्रों के नेताओं को उन सब बातों की शिक्षा दी जाती है जो विश्व सरकार की स्थापना एवं संचालन के लिये अनिवार्य है।

लोहिया जी एक मानवतावादी विचारक थे और उनके मस्तिष्क में सदैव विश्व का चित्र रहता था। सन् १९३९ में अखिल भारतीय कांग्रेस के अधिवेशन में दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों को प्रोत्साहन के लिये एक प्रस्ताव रखा गया कि वहां के भारतीय अविनय अवज्ञा आन्दोलन चलायें। लोहिया जी ने उस प्रस्ताव में संशोधन के प्रस्ताव का सुझाव दिया कि उसमें भारतीयों के साथ-साथ अन्य जातियों - नीग्रो, अरब आदि भी सम्मिलित किये जायें। यहां नहीं उसमें निर्धन श्वेत भी सम्मिलित किये जायें। कुछ वर्ष बाद उन्होंने गांधीजी को सुझाव दिया कि वे विश्व - सरकार के सम्बन्ध में भी चिंतन करें और विश्व की सरकार को उस सम्बन्ध में लिखें जिससे कि ऐसी योजना प्रारम्भ हो जिसकी आधारशिला पर नया विश्व स्थापित किया जा सके। लोहिया जी ने स्वयं इसकी चार रेखायें प्रस्तुत की - पहली अन्य देशों में लगी सभी धनराशियां निरस्त कर दी जायें, दूसरा प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी देश से होकर यात्रा करने और किसी भी देश में निवास करने का अधिकार हो। तीसरा सभी राष्ट्रीयताओं और विश्व के सभी राष्ट्रों को राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त हो, चौथा किसी प्रकार की विश्व नागरिकता।[१]

१- डॉ० राममनोहर लोहिया-मार्क्स,गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-२५२-५३

भारत के स्वतंत्र हो जाने पर उन्होंने भारत सरकार को यह राय दी कि भारत में सभी ब्रिटिश पूंजी को निरस्त कर दिया जाय और भारत सरकार को जनता और सरकार साहस से यह घोषणा कर दे कि विश्व के किसी भी भाग का कोई भी व्यक्ति यहाँ आ सकता है, निवास कर सकता है और चाहे कुछ कर सकता है। उनके अनुसार - नागरिकता । सभी कालातीत, बर्बर भावनाओं को जोकि देशों को विश्व के अन्य भाग के व्यक्तियों के लिये अप्रवेश्य और अनिवास्य बनाये हैं, समाप्त कर दिये जायें ।[1]

लोहिया जी का विश्वास था कि एक दिन ऐसा आयेगा कि जब इन सिद्धांतों का पालन किया जायेगा । हम अपने द्वार प्रत्येक व्यक्ति के लिये खोल देंगे , हम आस्ट्रेलिया , साइबेरिया, या कैलीफोर्निया के द्वारों को खटखटा सकें । गांधी जी ने इस सम्बन्ध में कोई कार्यवाही नहीं की वे इसे अव्यवहारिक पग समझते थे । गांधी जी ऐसे व्यक्ति नहीं थे , जो केवल पुनर्निर्माण योजनाओं के बारे में चिंतन करते हों वरन् वे स्वयं योजनायें बनाते भी थे । उन्होंने विश्व को सरकारों के सम्बन्ध में सम्बंध इसलिये नहीं स्थापित किया कि उनका उन सरकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा । पर गांधी जी ने अपने हरिजन में इन विचारों का पूर्ण समर्थन किया लोहिया जी का मत था कि गांधी जी विश्व सरकार के समर्थक थे । पर उन्होंने उस समय विश्व सरकारों को उस दिशा में उपक्रम करने के लिये इसलिये नहीं लिखा कि उस समय सम्भव नहीं था । श्यामलाल काकानी के अनुसार - डा०लोहिया युद्ध को हेय समझते थे । वे अहिंसा और सत्याग्रह में अटल विश्वास रखते थे । वे विश्वशांति के प्रबल समर्थक थे उन्होंने निरस्त्रीकरण , विश्वसंघ , अन्तर्राष्ट्रवाद आदि में सदैव प्रगाढ़ आस्था व्यक्त की । उन्होंने समता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व के आधार पर एक विश्व-सरकार और एक विश्व विकास संस्था की कल्पना की ।[2]

१- डा०लोहिया - मार्क्स ,गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-१५३
२- श्यामलाल काकानी " प्रेरणा,प्रोत्साहन और प्रकाश - गांधी ,लोहिया और जयपाल" प्रकाशन केन्द्र,पृष्ठ-१६५

डा०लोहिया के विचारों का समर्थन समाजवादी दल ने भी किया। समाजवादी दल की इच्छा है कि - संसार भर के मनुष्य अपना एक लोकसभा बनायें और उसके मातहत जरूरी मामलों की एक विश्व सरकार और इस उद्देश्य को हासिल करने के लिये विश्व सत्याग्रह करें ।[1]

लोहिया जा देश से गरीबी हटाना चाहते थे क्योंकि उनका विश्वास था जब तक दुनिया में गरीबी , अशिक्षा तथा शोषण रहेगा तब तक शांति स्थापित नहीं की जा सकती । वे ऐसी संस्थाओं के पक्षधर थे जिनमें विश्व शक्तियों को आर्थिक साधनों के वितरण में कोई भूमिका नहीं दी जायेगी तथा जहाँ पर हर देश की मतदान शक्ति बराबर रखी जायेगी । इसके लिये वे विश्व-मैत्री के सिद्धांत के पक्षधर थे । प्रकाश वीर शास्त्री के अनुसार - डा०लोहिया विश्व को अपने चौखम्भे (फोर पिलर्स) स्टेट का पांचवां खम्भा मानते थे । उन्होंने विश्व संसद वयस्क मताधिकार से चुनी हुई सभा, तथा विश्व सरकार की स्थापना के लिये " मोबलाइजेशन " अर्थात विश्व नागरिकता का अभियान चलाया । उनकी इच्छा यही थी कि सारी दुनिया को बिना किसी पासपोर्ट की झंझटों के घूमने-फिरने की आजादी मिलनी चाहिये ।[2]

लोहिया जी के विश्व राज्य का समर्थन विनोबाजी ने विश्व राष्ट्र के रूप में किया । उनके अनुसार - नया युग विश्व राष्ट्र का युग है । आज एक ट्रिब्युनल बनेगा , जिसमें दुनिया के सर्वोत्तम विद्वान होंगे । भारत देश उसका प्रांत होगा और बिहार उसका एक जिला बनेगा, एक तहसील बनेगा , गांव परिवार बनेगा ।[3]

विनोबाजी ने लोहिया जी के चौखम्भा सिद्धांत के समान ही शासन-व्यवस्था का विभाजन किया है । डा०लोहिया विश्व सरकार की स्थापना के

- -

१- समाजवादी दल - हिमालय बचाओ और देश बचाओ , पृष्ठ-२८

२- प्रकाश वीर शास्त्री - भारत में समाजवादी आन्दोलन, पृष्ठ-१४७

३- विनोबा - तीसरी शक्ति - पृष्ठ-१६८

द्वारा विभिन्न राष्ट्रों में व्याप्त वैमनस्य को दूर करके शांति-स्थापना करना चाहते थे । वे सभी राष्ट्रों की प्रगति करना चाहते थे , जिससे मानवता का कल्याण हो ।

६) राज्यों की स्थिति -

पिछले २०० वर्षों से अन्तर्राष्ट्रीय गैर-बराबरी तेजी से बढ़ रही है । अठारहवीं शताब्दी में आज से कहीं ज्यादा गरीबी थी लेकिन असमानता निश्चित रूप से इतनी ज्यादा नहीं थी, अन्तर ज्यादा से ज्यादा दो गुने का था । उन दिनों ब्रिटेन हो सकता है भारत से अमीर रहा हो लेकिन फर्क सिर्फ १९-२० का ही था जबकि आज प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से भारत और ब्रिटेन में ३० गुने का फर्क आ गया है । अब तो स्थिति दिन पर दिन बिगड़ती जा रही है । एक औसत अमरीकी और एक औसत भारतीय आय और रहन-सहन में आज ४० गुने का अन्तर है और इस स्थिति में सबसे दुखद पहलू यह है कि प्रगति के नाम पर गरीब और पिछड़े देश उन अमीर गोरों की नकल कर रहे हैं और बड़ी आसानी से उनके फंदे में फँसते जा रहे हैं । इसके लिये आवश्यक है कि पश्चिम के मानदण्डों को त्यागकर अपनी व्यवस्था का विकास किया जाये । अन्तर्राष्ट्रवाद के सिद्धांत के आधार पर सभी राज्य चाहे वे गरीब हों या अमीर वे एक ही अन्तर्राष्ट्रीय विधान से बँधे हुए हैं । लास्की के अनुसार - यह विधान प्रभुत्व शक्ति के सिद्धांत के प्रतिकूल है । यह व्याख्या करने के लिये कि अन्तर्राष्ट्रीय विधान बंधनकारी , विध्यात्मक सिद्धांत के अनुयायी को एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय वैधानिक व्यवस्था स्वीकार करना पड़ती है जिसमें प्रत्येक राज्य को चाहे उसका कैसा भी आकार और बल हो , समान और उचित स्थान मिलता है ।[१]

सभी राज्यों को अन्तर्राष्ट्रीय विधान का पालन करना चाहिये । लास्की ने लिखा है कि - अब प्रकृति यह है कि राज्य को प्रत्युत उस अन्तर्राष्ट्रीय समाज को भूल जाना चाहिये जिसमें राज्यों की स्थिति एक प्रांत कीभांति रहे । तब अन्तर्राष्ट्रीय विधान के नियमों को म्युनिसपल विधान से ऊँचा माना जा

- -

१- लास्की - राज्य का सैद्धांतिक और व्यवहारिक स्वरूप,पृष्ठ-२३१

सकता है । इस दृष्टिकोण के अनुसार जब म्युनिस्पल विधान और अन्तर्राष्ट्रीय विधान में संघर्ष होता है तो म्युनिस्पल विधान को झुकना पड़ता है और अन्तर्राष्ट्रीय विधान को भंग करने वाले राज्य की वही दशा होती है जो राज्य के म्युनिस्पल विधान को भंग करने वाले व्यक्ति की।[१]

डा०लोहिया भी मानते हैं कि विश्व पूर्णतया विषम है । राष्ट्र के अंदर की समता एक समतावादी भाव उत्पन्न करते है । जो राष्ट्रों में विषमता पर विरोधी प्रभाव डालती है । साम्यवादी श्रम संघ प्रादेशिक, राष्ट्रीय, प्रजातंत्रीय सुरक्षा के बारे में अधिक दोषी है । वे इसके बारे में प्रयास करते हैं कि वह अपने क्षेत्र में आर्थिक मंदी, माल आयातों के विरुद्ध आरक्षित रहे, विज्ञान ने विषमताओं में वृद्धि की है और औद्योगिक - विषमता बनी रहेगी इस कारण कंचनमुक्ति इस प्रयास से नहीं आ सकती ।[२]

लोहिया जो मानते थे कि औद्योगिक और वैज्ञानिक समता एक नई सभ्यता और एक प्राविधिकता से ही आ सकता है। भौतिकवादी व्यवस्था को हम समाप्त नहीं कर सकते और कुटीर उद्योग कायाकल्प में नहीं भाषणों तक ही अधिक पाये जाते हैं इसलिये हमें एक ऐसा सिद्धांत उपस्थित करना होगा जो सत्य के सुख से संयुक्त हो जहां जहाँ सम्भव हो, वहाँ लघु इकाई मशीन और जहाँ आवश्यक हो वृहत् उत्पादन का सूत्र स्वीकार करना पड़ेगा इससे यथाशक्ति कंचनमुक्त हो सकेगा । यह व्यक्ति को ऐसी आध्यात्मिकता से मुक्त करेगा जो भौतिक वाद की चिंताओं द्वारा ग्रसित रहती है और यह उसे ऐसे भौतिकवाद से भी मुक्त करेगा । जो उसे आधुनिकता की ओर प्रेरित तो करती है पर प्राप्त नहीं होने देती । कंचन मुक्ति का महत्व उसी सीमा तक है जहाँ तक वह विचार संस्कृति की ओर अग्रसर करती है और विचार संस्कृति यांत्रिक कार्य कुशलता की वृद्धि की प्राविधिक विरोधी है क्योंकि ऐसी पद्धति में अवकाश, समय चिंतनपूर्ण निष्क्रियता के स्थान पर शारीरिक क्रियाशीलता में अधिक लगा देता है और मानसिक विषयों की भी अभिव्यक्ति मानसिक रूप में नहीं शारीरिक

- -

१- लास्की - राज्य का सैद्धांतिक और व्यवहारिक स्वरूप पृष्ठ-१८२

२- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-२०३

रूप में होता है । उत्पादन का अपेक्षाकृत बहुगुणन और साथ ही साथ आवश्यकताओं को अपेक्षाकृत ऐसा अनुशासन जो पूर्ण उचित प्राविधिकता द्वारा पूरी की जा सकता है । मनुष्य बंधनमुक्ति के इतना निकट ला सकता है, जितना सम्भव है । इसके लिये आय और सम्पत्ति का ढांचा आवश्यक है । लोहिया जी के अनुसार - सम्पत्ति के स्वामित्व और व्ययों की मात्रा में अधिक विषमता अनुशासन और प्राविधिकता दोनों को छिन्न-भिन्न कर देगा, यह समस्त विश्व से सम्बन्ध रखता है, चाहे वह औद्योगिक लाभ उठाने वाले देशों का हो या एशिया, अफ्रिका, दक्षिणी भारत के देशों का हो जहां का नवयुवक न केवल युद्ध के आकस्मिक भय वरन् अभावों, बेकारी के भय से आतंकित रहता है । इस विश्व को उत्पादन साधनों का निर्माण करना और आवश्यकताओं के समानुपाती उत्पादन के अनुशासन और पूंजी के सामूहिक एकत्रण के बिना नहीं रह सकता ।[1]

लोहिया जी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हस्तकारी व रचनात्मक कार्य करने के पक्ष में थे । एशिया के लोगों में इस कार्य के लिये जागरूकता पैदा करने की आवश्यकता है जिससे वे क्रियाशील बनकर अपनी स्थिति में सुधार कर सकें । लोहिया जी सभी राज्यों की आर्थिक स्थिति में समानता लाना चाहते थे । उनके अनुसार - बहुत मुमकिन है कि एशिया के संतुलन से जो पतित हो, पर आलस बन गया है, यूरोप के लोग काफी सोच सकते हैं जिनकी क्रिया-शीलता युद्ध में पतित हो रही है । एशिया के आलस के पीछे संतुलन है और यूरोप में युद्ध के पीछे क्रियाशीलता है और अगर विभिन्न संस्कृतियों के लोग काम और स्थान में मिलें तो बहुत मुमकिन है कि यूरोप-अमेरिका के लोग युद्ध छोड़ दें और एशिया के लोग आलस्य ।[2]

लोहिया जी अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में समृद्ध राज्यों का पिछड़े राष्ट्रों पर प्रभुत्व स्थापित नहीं होने देना चाहते थे । वे मानते थे कि सारी दुनिया में यूरोप उद्योग व कृषि उन्नति पर है । यूरोप का मशीनी तरीका यदि

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-२०५
२- डा० राममनोहर लोहिया - इतिहास चक्र, पृष्ठ-७४

सारी दुनिया में लागू किया जाय तो ये गलत होगा । इस तरह धनी देशों की दूसरे देशों को मशीनी सहायता देने और पिछड़े हुए देशों को लेने का इच्छा का फल आखिर में साम्राज्य नहीं प्रभुत्व होता है । ऐसा एकतरफा लेनदेन सिर्फ एक ही दिशा में चलता है इसलिये यह विचार गलत और हानिकारक है । लोहिया जी के अनुसार मानवता ने किसी ऐसी सभ्यता का विकास नहीं किया जो इस योग्य हो कि सारी दुनिया में फैलाई जाये । हर जगह से बहुत कुछ सीखा जा सकता है । अन्तर्राष्ट्रीय मशीनी सहायता के एकतरफा कार्यक्रम के बजाय दुनिया को ऐसे दो तरफा कार्यक्रम की जरूरत है जिसमें कोई लेने वाला या देने वाला ना हो, जिसमें दो या अधिक मानवी समूह एक साथ ही एक दूसरे से सीखें भी और सिखायें भी ।[1]

लोहिया जी सारी दुनिया की आवश्यक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये चिंतित थे उनका दृष्टिकोण सूक्ष्म था, वे मानते थे कि - राष्ट्रीय राजनीति का आधार अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरात्मा के विकास के विरुद्ध है । राष्ट्रीय आजादी और रोटी का पोषण आधुनिक मनुष्य में इस प्रकार हुआ है कि वह सारी दुनिया की आजादी और रोटी के विरुद्ध है ।[2]

लोहिया जी का विचार था कि ऐतिहासिक स्थिति के परिणाम-स्वरूप समस्याओं के गुणों में भले ही भेद कर्क रहे, शरीर की गरीबी और मन की पीड़ा पहले की भाँति ही है । आज की दुनिया के एक अरब से अधिक लोग असहाय और दबे हुए हैं । पश्चिमी यूरोप अब महाद्वीप का अगुवा नहीं रहा है, उसका स्थान अमेरिका ने ले लिया है, रूस भी उससे प्रतिद्वन्द्विता कर रहा है । एशिया की स्थिति बदल रही है । वे मानते थे कि विश्व-एकता या वर्ग विहीन समाज की स्थापना की कोई उम्मीद मनुष्य जाति को नहीं दिखाई जा सकती । ऐसा स्वर्णयुग जिसमें गरीबी और युद्ध का अंत कर दिया गया है, जिसमें मनुष्य ने जिन्दगी का अर्थ पा लिया हो और जीने का

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया-इतिहास चक्र पृष्ठ-७३
२- वही पृष्ठ-७५

ऐसा ढंग निकाल लिया हो जिसमें अन्दरूनी संतोष और बाहरी शांति हो, एक पुराना भ्रम मालूम पड़ता है।[1]

लोहिया जी का विचार था कि मानवता में हमेशा शारीरिक और सांस्कृतिक सामीप्य की एक प्रक्रिया चलती रही है। मानव जाति की एकता के प्रयास किये गये लेकिन ऐसी एकता कभी बुद्धिपूर्वक नियोजित नहीं की गई और अधिकांश में अन्य शक्तियों का अनिश्चित परिणाम रही है। उनके अनुसार - अभी तक यह एकता सारी मानवता में फैली भी नहीं क्योंकि उसका वाहक हमेशा कोई राष्ट्र या सभ्यता रही है, जिसकी शक्तियाँ अपना काम एक हद तक करने के बाद खत्म हो जाती है।[2]

लोहिया जी ने एक ओर मानव जाति की एकता का प्रयास किया और दूसरी ओर वे मानव जाति की एकता या विश्व ऐक्य का विचार स्वयं भ्रमपूर्ण बताते हैं। इस प्रकार का विरोधाभास उनके विचारों में देखने को मिलता है।

लोहिया जी मानते थे कि पराधीन देशों के साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलन सारी दुनिया के समाजवादी आन्दोलन, मानवतावादी विचार-धारायें आदि आपसी भेदभाव होने के बावजूद भी मनुष्य को एक एकतामूलक विश्व सभ्यता की ओर ले जा रहे थे। ओमप्रकाश दीपक के अनुसार - उस काल का आशावाद इतना जबर्दस्त था कि लोहिया जी का ऐसा सोचना कि सारी दुनिया में शीघ्र वर्ण शंकर, मिश्रित रक्तवाली एक ही जाति हो-जायेगी, कुछ अजीब नहीं था।[3]

वर्तमान समय में आधुनिक पश्चिमी सभ्यता ने राष्ट्रीय सीमाओं के अन्दर जितनी आर्थिक, सामाजिक समता उपलब्ध की है, उतनी इतिहास में कभी नहीं रही। लेकिन लोहिया जी न सिर्फ राष्ट्र के अन्दर समता लाना

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - 'भौगोलिक परिवर्तन' (इतिहास चक्र) जन- जके-फर० १९६६, पृष्ठ-११
२- वही पृष्ठ-१२
३- ओमप्रकाश दीपक - 'नई सभ्यता का सपना' लोहिया: बहुआयामी व्यक्तित्व पृष्ठ-२८

चाहते थे बल्कि राष्ट्रों के बाहर भी समता लाना चाहते थे जिससे सभी राष्ट्रों की स्थिति समान हो । वे मानते थे कि दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों की शक्ति और समृद्धि में थोड़ा बहुत अन्तर तो हो सकता है लेकिन किसी एक क्षेत्र का प्रभुत्व नहीं । वे आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए देशों की स्थिति छोटी मशीन योजना और हस्तकला व कुटीर उद्योग के द्वारा सुधारना चाहते थे । वे मानते थे कि सभी राज्य मिलकर एक विश्व सभ्यता का निर्माण कर सकते हैं। उनका विचार था कि आज विश्व में ऐसी परिस्थितियां मौजूद हैं जिनमें मनुष्य वर्णों की बढ़ विषमता, वर्गों की लबोली विषमता और दोनों ही स्थितियों में निहित अन्याय, शोषण, क्षेत्रीयता और हिंसा के चक्र को तोड़कर एक विश्व सभ्यता का निर्माण कर सकता है, जो सभी प्रकार के शोषण से मुक्त हो, जिसमें मनुष्य स्वतंत्र, समृद्ध और मन से सुखी हो और अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास कर सके।[1]

लेकिन लोहिया जी का विश्व सभ्यता के निर्माण का सपना अधूरा ही रह गया क्योंकि पश्चिमी देशों का प्रभुत्व बढ़ गया है, एशिया के देश उनके प्रभाव में आ गये हैं । पश्चिमी सभ्यता ने एशिया, अफ्रीका के सारे उपनिवेशों में यूरोप के रहन-सहन का नकल करने वाले वर्ग का निर्माण किया है और यही वर्ग सत्तारूढ़ हुआ । १९५४ के वर्ष के समाप्ति के बाद यह स्पष्ट हो गया कि भारतीय समाजवादी आन्दोलन को नई सभ्यता का उपकरण बनाने की लोहिया जी की चेष्टा असफल हो गई । वर्तमान समय में अभी भी दुनिया में बहुत से धनी व निर्धन राष्ट्र हैं । राष्ट्रों के बीच असमानता की खाई अभी भी बनी हुई है । अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में लोहिया जी का राष्ट्रों के बीच समता लाने का सपना अभी पूरा नहीं दिखता । उनका राष्ट्रों के बीच बराबरी और समता के विचार का सिद्धांत विचार में उत्तम है लेकिन व्यवहार में परिणित करना कठिन प्रतीत होता है क्योंकि कोई भी

- -

१- ओमप्रकाश दीपक -' एक नई सभ्यता का सपना लोहिया: अनुआयामी व्यक्तित्व, पृष्ठ-३१

सबल राष्ट्र निर्बल राष्ट्रों को बराबरी में नहीं आने देना चाहता, वह हमेशा अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने का प्रयत्न करेगा ।

७) नागरिकता -

लोहिया जी ने ऐसी विश्व सरकार की स्थापना का प्रयास किया जिसमें न केवल राष्ट्रों के चुने हुए प्रतिनिधि भाग लें वरन् स्वयं प्रत्येक देश के नागरिक इस विश्व सरकार के नागरिक हों । वे विश्व के समस्त नागरिकों को विश्व सरकार के अधिकारियों को चयन करने का अधिकार देना चाहते थे । लोहिया जी के अनुसार - बहुतेरे कामों के लिये बालिग मताधिकार ही रहेगा लेकिन जिस प्रकार आधुनिक कार्य के बढ़े क्षेत्रों में यह तेजी के साथ शहर या गांव को शक्ति सम्पन्न वोट बनता जा रहा है, उसी प्रकार समय आने पर शांति और समृद्धि के सीमित क्षेत्र में यह विश्व वोट भी बन सकता है ।[१]

लोहिया जी मानते थे कि जनता की,जनता के द्वारा और जनता के लिये सरकार दुनिया में पहली बार तभी सम्भव होगी जबकि समुदाय की के समुदाय के द्वारा , समुदाय के लिये सरकार और दूसरी मानव जाति की, मानव जाति के द्वारा और मानव जाति के लिये कायम हो । उन्होंने विश्व सरकार की स्थापना के लिये सरकार के प्रतिनिधियों को चुने जाने के लिये बल दिया - सवाल यह कि जनतंत्र और बालिग वोट को कैसे ताकतवर बनाया जाये । इसका एकमात्र उपाय है कि बालिग वोट से विश्व की एक पंचायत चुनी जाय, जो सारी दुनिया पर असर डालने वाले सवालों पर फैसला ले ।[२]

लोहिया जी मानते थे कि संयुक्त राष्ट्र संघ में दुनिया की जनता का कोई स्थान नहीं है , ये दुनिया के राष्ट्रों के प्रतिनिधियों का संगठन है। जनता के प्रतिनिधि और सरकारों के प्रतिनिधियों की बात करने में अन्तर होता है।

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - इतिहास चक्र , पृष्ठ-७०-७१
२- डा०राममनोहर लोहिया - समाजवादी का सगुण रूप, पृष्ठ-२२

क्योंकि जनता के प्रतिनिधि सम्पूर्ण मानवता के हित को ध्यान में रखकर कार्य करेंगे और राष्ट्रों के प्रतिनिधि अपने राष्ट्रों के हितों को ही ध्यान मे रखेंगे। यही कारण है कि लोहिया जी बालिग मताधिकार के आधार पर विश्व संसद का निर्माण करना चाहते थे। उन्होंने विश्व सरकार को सफल बनाने के दृष्टिकोण से ही विश्व-नागरिकता का विचार प्रस्तुत किया।

उन्होंने दोनो खेमों के ध्रुवीकरण करने की इच्छा रखने वाले इस अभियान को सन्देह की नजर से देखा और प्रतिपादन किया कि विश्व शान्ति की सही नीति अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंमें एक तीसरी ताकत का विकास करने में है। जो पूंजीवादी और साम्यवादी दोनो खेमों की विश्व संहारक नीतियों से लड़ेगी और आर्थिक , राजनीतिक विकास का एक ऐसा प्रारूप विकसित करेगी जिसमें नई विश्व सभ्यता के बीज हों। वे अपने को विश्व नागरिक मानते थे और कहते थे कि दुनिया में कहीं भी आने-जाने और काम करने का अधिकार होना चाहिये। ओमप्रकाश दीपक के अनुसार - यूरोप यात्रा से लौटने के बाद लोहिया ने भी कई जगह ' विश्व नागरिकता ' का अभियान चलाया। लखनऊ और इलाहाबाद में और एकाध अन्य स्थानों पर भी कुछ सभाओं में इस प्रकार के आशय के प्रस्ताव स्वीकार किये गये कि सभा में उपस्थित व्यक्ति विश्व - नागरिकता को स्वीकार करते हैं।[१]

लोहिया जी का विश्व नागरिकता का सिद्धांत मौलिक है। वे सम्पूर्ण विश्व के नागरिकों को समान मानते थे और उनकी प्रगति चाहते थे। इस तरह लोहिया जी को हम सच्चा मानवतावादी कह सकते हैं।

८) विश्व सरकार के मार्ग की बाधायें -

मानवता का दुर्भाग्य है कि अन्तर्राष्ट्रीय संगठन उद्दीप्त आदर्शों, महत्वाकांक्षी स्वप्नों और गौरवपूर्ण उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल नहीं हो सका है। वह मानव जाति को युद्ध की विभीषिका से नहीं बचा सका है।

१- ओमप्रकाश दीपक - लोहिया असमाप्त जीवनी ,पृष्ठ-६२

विश्व को न्यायोचित शांति और सुरक्षित प्रजातंत्र देने में भी वह असफल रहा। अपने गम्भीर प्रयत्नों के बावजूद भी यह संस्था निरस्त्रीकरण के अपने स्वप्न को साकार न कर सकी और शस्त्र नियंत्रण में भी सफल न हो सकी प्रत्युत शस्त्रीकरण की दौड़ भी तीव्र हो गई। ये संस्था विश्व के महत्वपूर्ण विवादों को समाप्त करने में असफल रही।

विश्व एकता और अन्तर्राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में लास्की का विचार महत्वपूर्ण है। वह मानवता की रक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य मानता है। जब मानव के नये मुल्यों की प्राण-प्रतिष्ठा होगी, उसी दिन विश्व - सरकार स्थापित हो सकेगी। लास्की का विश्वास था - लीग आफ नेशन्स की असफलता का मुख्य कारण तो राज्य की प्रभुत्व शक्ति थी। यदि लीग को सफल होना है तो यह आवश्यक है कि वह युद्धों को राज्यों नीति का साधन न माने इसलिये प्रभुत्व शक्ति के विचार का विनाश आवश्यक है। जब तक इसका नाश नहीं होता, अन्तर्राष्ट्रीय शांति की स्थापनाअसम्भव है।[1]

लास्की का विचार है कि जब तक राज्यों के पास प्रभुत्व शक्ति है, लीग द्वारा उठाया हुआ प्रत्येक कदमनिष्फल हो जाता है। लीग प्रक्रियागत प्रश्नों को छोड़कर अन्य समस्त विषयों पर तभी कार्यवाही कर सकती है जबकि उनके सभी सदस्य राष्ट्र एकमत हो। लास्की का तर्क बिल्कुल सरल है और वह यह है कि पूंजीवादी विकास के साम्राज्यवादी चरण का आवश्यक परिणाम युद्ध है और एक प्रभावशाली विश्व तंत्र का उसके साथ कोई मेल नहीं है। विश्व तंत्रकी स्थापना के लिये एकात्मक आर्थिक संसार की आवश्यकता है लेकिन राष्ट्रों की प्रभुत्व शक्ति के कारण ऐसा नहीं हो पा रहा है। लास्की ने लिखा है - कि व्यवहारिक परिस्थितियां ये है कि ऐसा कोई अन्तर्राष्ट्रीय समझौता सम्भव नहीं है जोकि किसी बड़े राज्य से अपनी प्रभुत्व शक्ति को त्यागने के लिये कहता है।[2]

१- लास्की - राज्य का सैद्धांतिक और व्यवहारिक स्वरूप, पृष्ठ-१५५

२- वही पृष्ठ-१७०

रसेल भी राष्ट्रीयता को अन्तर्राष्ट्रीयता के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा मानता है । उसके अनुसार - राष्ट्रीयता हमारे काल में एकराष्ट्र की सीमाओं को छोड़कर दूसरे राष्ट्रों के साथ सामाजिक रिश्ते जोड़ने की क्रिया में सबसे प्रमुख बाधा है । इसलिये यह समूचे इंसानों की एक जाति बनाने में सबसे प्रमुख बाधा बन गई है । हर एक व्यक्ति इस बात पर सहमत है कि दूसरे राष्ट्रों की राष्ट्रीयता बेकार है लेकिन स्वयं की राष्ट्रीयता महान एवं सम्मानीय है और जो व्यक्ति ऐसा विचार नहीं करता उसका जीवन निरर्थक है ।[1]

लोहिया जी मानते हैं कि अटलांटिक गुट, सोवियत गुट, पूंजीवादी और साम्यवादी सभ्यता के चालक अपने राष्ट्र की सीमाओं के अन्दर पैदावार बढ़ाने , रहन-सहन का स्तर ऊंचा करने और कारखानों को बड़े पैमाने पर लाने के लिये विज्ञान का प्रयोग करने और यूरोपीय सभ्यता को हमेशा के लिये कायम करने का प्रयत्न कर रहे हैं । सारे इतिहास में मनुष्य की नियति के कुछ दुखद पहलुओं में से यह भी एक है । बाहरी दुनिया समझने लगी है कि ये सार्वभौमिक मानवीय सिद्धांतों का झगड़ा है जिनका अलग-अलग ढंग से एक या दूसरा पक्ष प्रतिनिधित्व करता है । लोहिया जी का सुझाव था - इसकी एक हल्की सी सम्भावना है कि इस बार पिछड़े हुए इलाके इस ढंग से साम्यवादियों और पूंजीवादियों के झगड़े से अलग रहे कि प्रभु राष्ट्रों का एक बड़ा हिस्सा भी यह समझ जाये कि नई मानवीय सभ्यता बनाने में उनका झगड़ा बिल्कुल निरर्थक है ।[2]

विश्व सरकार के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा यह है कि आधुनिक विश्व दो विरोधी शक्ति गुटों में बटा हुआ है और पूंजीवादी तथा साम्यवादी दो प्रमुख विचारधाराओं में निरन्तर संघर्ष चला आ रहा है । वर्तमान समय में संयुक्त राष्ट्र संघभी रूस तथा उसके सहयोगी राष्ट्र तथा अमेरिका और उसके सहयोगी राष्ट्रों की खिंचतान का रंगमंच बना हुआ है । रूस और अमेरिका

१- बर्टेण्ड रसेल - न्यू होप्स फोर ए चैंजिंग वर्ल्ड, पृष्ठ-६६

२- डा०राममनोहर लोहिया -' पूर्ण कोरम ' (इतिहास चक्र) जन-मई १९६४ पृष्ठ-१२

के दोनों विरोधी गुट परस्पर एक दूसरे को अविश्वास की दृष्टि से देखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों की पूर्ति के विषय में ईमानदार नहीं है। विश्व के ये दोनों गुट संघ में और उसके बाहर भी प्राय: प्रत्येक प्रश्न पर एक दूसरे के विरोधी विचार व्यक्त करते हैं। लोहिया जी के अनुसार - यूरोपीय सभ्यता का अटलांटिक और सोवियत खेमों में बटना, अधिकतम कौशल से पूर्ण कौशल में बदलाव की दृष्टि से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। इस बटवारे की भाषा सार्वभौमिक है और दोनों पक्ष पूंजीवाद और कम्युनिज्म जैसे सारी दुनिया पर लागू होने वाले सिद्धांतों की बात करते हैं। ऐसा प्रकट होता है जैसे मानव-जाति के भविष्य का फैसला होना हो और झगड़ा सामाजिक और विश्व व्यवस्था के सिद्धांतों के बारे में हो।[1]

लोहिया जी का विचार है कि कम्युनिज्म ने शोषण के अंत के द्वारा राष्ट्रों की समानता और मानवी व्यक्तित्व के पूर्ण विकास पर आधारित विश्व व्यवस्था की बात कही। लेकिन ये साधारण आदर्श वैसे ही निरर्थक और भ्रामक हैं जैसे उसके पूर्व पूंजीवाद के जितने दोष रहित स्पर्धा से बनने वाली विश्व व्यवस्था की बात की थी। दोनों ही सिद्धांतों ने इन साधारण इच्छाओं को ठोस आदर्शों में बदलने की कोशिश नहीं की। सारी दुनिया में पूंजी के निर्माण या पूर्ण मनुष्य की अभिव्यक्ति के बारे में उन्हें कोई तर्कसंगत बात नहीं कहनी। पूंजीवादी और साम्यवादी दोनों ही देश अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपना अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहते हैं। ये किसी ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के अधीन नहीं होना चाहते जिससे उनके अधिकार सीमित हों इसलिये विश्व सरकार का निर्माण असम्भव प्रतीत होता है।

वर्तमान समय में संयुक्त राष्ट्रसंघ के वाद-विवाद पक्षपातपूर्ण होते हैं। अधिकांश देशों द्वारा एक प्रस्ताव को केवल इसी कारण सहमति प्रदान की जाती है क्योंकि वह उसके गुटवाले किसी देश की ओर से उठाया

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - पूर्ण कौशल "(इतिहास चक्र) जन-मई १९५५ पृष्ठ-१२

गया है । विरोधी गुट वालों का महत्वपूर्ण प्रस्ताव भी ठुकरा दिया जाता है । जब तक संसार के देश गुटों में विभाजित रहेंगे विश्व सरकार की स्थापना नहीं की जा सकती । धर्म भी विश्व सरकार के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है।

संयुक्त राष्ट्र संघ विशेषाधिकार के दुरुपयोग का रंगमंच बना हुआ है। सुरक्षा परिषद् में पांच महाशक्तियों - ब्रिटेन , अमेरिका, फ्रांस, रूस और साम्यवादी चीन को निषेधाधिकार प्राप्त हैं । इनमें से कोई भी शक्ति किसी भी उचित किन्तु अपने विरोधी दावों को निषेधाधिकार के प्रयोग से अमान्य ठहरा देती है । इस तरह कि निषेध शक्ति विश्व में शांति एवं सुरक्षा को स्थिर करने की दिशा में प्रभावकारी कार्यवाहियों में अवरोध उत्पन्न करदेती है। धनी राष्ट्र यह कभी नहीं चाहेंगे कि उनकी शक्ति को सीमित करके विश्व-सरकार की स्थापना की जाये । वर्तमान समय में विश्व के सभी देशों में आर्थिक असमानता व्याप्त है , जब तक यह असमानता दूर नहीं होगी तब तक विश्व-सरकार की स्थापना नहीं की जा सकती । लोहिया जी के अनुसार - आज संसार का जो रोग है उसके दो रूप हैं । उसका अफ्री एशियाई रूप है अफ्रीका और एशिया में और दक्षिणी अमरीका में भी गरीबी , दरिद्रता और दूसरा यूरोपी और अमरीकी रूप है अस्त्र । रोग एक ही है मेरा समझ में किन्तु सब लोग मानतेनहीं । इसको यूरोपी तो मानेगा ही नहीं , अमरीकी कहेगा कि अस्त्र से गरीबी का क्या मतलब ।[1]

विश्व सरकार की स्थापना में बाधा डालने वाले कारणों में लोहिया जी ने लास्की और रसेल का ही समर्थन किया है । उन्होंने अपने मौलिक विचारों को प्रस्तुत नहीं किया है ।

६) विश्व सरकार की स्थापना के साधन -

वर्तमान समय में अणु-शक्ति के विकास एवं अन्य वैज्ञानिक अविष्कारों ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को बहुत बदल दिया है । इसके अतिरिक्त विश्व-

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - राग जिम्मेवारी की भावना और अनुपात की समझ पृष्ठ-३५

शांति का महत्व दिन प्रति दिन बढ़ता ही जा रहा है । निःशस्त्रीकरण की योजनाओं को प्रभावशाली बनाने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय संघ की स्थापना आवश्यक है । लास्की के अनुसार - इसलिये मेरे विचार से अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना का सर्वश्रेष्ठ उपाय आधुनिक समाज के वर्ग सम्बन्धों को पुनर्गठन करना है जितने शक्तिशाली ढंग से इस उद्देश्य के अनुसार कार्य किया जायगा राज्यों की साम्राज्यवादी नीति उतनी ही कम हो जायेगी ।[१]

यदि समाज की उत्पादन क्षमता का इस प्रकार विकास किया जावे कि सभी व्यक्तियों को समान भाग मिल सके तो थोड़े से व्यक्तियों के हित में राजनैतिक शक्ति का संचालन रुक जायेगा और राज्य शक्ति किसी एक वर्ग - विशेष के स्वार्थ का साधन नहीं रहेगा । उस समय देश के दूसरे देशों का शोषण करने के लिये पूंजी नहीं लगायेंगे । समाजवादी राज्य का समाज अपनी आर्थिक समस्याओं को पारस्परिक प्रेम एवं सद्भाव से सुलझायेगा जो सिद्धांत मानव के द्वारा मानव का शोषण सिखाते हैं उनसे सहकारी समाज की स्थापना नहीं की जा सकती है ।

लास्की ने माना युद्ध विजित व विजेताओं दोनों के लिये समान रूप से घातक है । यदि हम युद्ध के परिणाम प्रकट कर दें तो लोगों को यह विश्वास दिला सकते हैं कि राष्ट्रीय नीति के उपकरण बिल्कुल व्यर्थ हैं लेकिन हमें अपनी सीमाओं के भीतर रहते हुए बढ़ना चाहिये । उसके अनुसार - हमारी दुनिया ऐसी है, जिसमें समाज के अन्दर तो वर्गों का युद्ध चलता रहता है और बाहर की दुनिया में राज्यों का । हम राज्यों के युद्ध को तभी समाप्त कर सकते हैं जबकि हम उन सम्बन्धों को समाप्त कर दें जोकि समाज के अन्दर वर्ग युद्ध को जन्म देते हैं । अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सम्बन्ध में हमारे समस्त विचार उन सम्बन्धों द्वारा उत्पन्न परिस्थितियों के फल होते हैं । आज हम विश्व तंत्र की ओर धीरे-धीरे पग बढ़ा रहे हैं, उसका यही महत्व है ।[२]

- -

१- लास्की- राज्य का सैद्धांतिक और व्यवहारिक स्वरूप,पृष्ठ-१६२

२- वही पृष्ठ-१७२-७३

लोहिया जी भी मानते थे कि शक्तिशाली राष्ट्र विश्व सरकार की स्थापना का कार्य पसंद नहीं करेंगे क्योंकि विश्व सरकार स्थापित हो जाने से उनकी प्रभुत्व शक्ति सीमित हो जायेगी । ये राष्ट्रीय सरकारें अपने अधिकार कम करने के लिये बड़ी मुश्किल से तैयार होंगी , इसके लिये उन्होंने लड़ाई करने का विचार रखा । लोहिया जी का सुझाव था कि - इन दो तरीकों से लड़ाई लड़ी जा सकती है । पहला तरीका हथियार बंद क्रांति का है ,इस तरीके के प्रयोग अपने देश की सरकार को बदलने के लिये किया जा सकता है , पर दूसरे देश की ताकत को कम करने के लिये नहीं किया जा सकता । इसलिये दूसरा रास्ता सिविल नाफरमानी का रह जाता है । दुनिया के सभी देशों में ऐसी पार्टियां बनें जो अपनी-अपनी सरकारों के खिलाफ सिविल नाफरमानी करें और मांग करें कि विश्व पंचायत बनाने के लिये कदम उठायें ।[१]

लोहिया जी विश्व सरकार की स्थापना के लिये यह आवश्यक मानते थे कि विश्व के सभी देशों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ और लगभग समान हो।इसलिये वे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन को आवश्यक मानते थे । उन्होंने कहा - जिस प्रकार आधुनिक मशीनों वाले बड़े कारखानों में प्रयुक्त श्रम विभाजन से राष्ट्र को लाभ होता है उसी प्रकार सिद्धांत में यह समझा जाता है कि श्रम विभाजन से सारी मनुष्य जाति को लाभ होता है ।[२]

लोहिया जी ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को महत्व दिया वे मानते थे ऐसे इलाकों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से कोई लाभ नहीं हो सकता ,जहां लोग आधुनिक ढंग से कार्य नहीं करते । इसलिये अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन द्वारा ही लाभदायक सिद्ध होगा । उन आर्थिक दृष्टि से पिछड़े देशों में १०-१५ घंटे की कड़ी मेहनत के बाद जो चीज बनती है, वह विकसित देशों में १ घंटे की मेहनत से बन जाती है । इसलिये लोहिया जी का सुझाव था - कि सारी दुनिया पर लागू हो सकने वाला विश्व-व्यापार का सिद्धांत बनाने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन सबको काम

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया- समाजवाद का सगुण रूप, पृष्ठ-२१

२- डा०राममनोहर लोहिया - " पूर्ण शासन " जन मई १९६५ पृष्ठ-१०

और आधुनिक ढंग से उत्पादन , यानी विचारों को शामिल करना होगा । न केवल सबको काम करने की जरूरत है बल्कि ऐसा काम देने की जिसमें दुनिया के सभी इलाकों में करीब-करीब धन पैदा हो ।[1]

उनका विचार था उसी अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं के अन्दर रहन-सहन के बढ़ते हुए स्तर , मौजूदा जमाना ढंग की वैज्ञानिकता और राष्ट्रीय राज्य आदि के सभी विचार खत्म हो जायेंगे इसके लिये हमें ऐसे सिद्धांत पर चलना होगा और ऐसी मशीनी ढंग को जन्म देना होगा जिसका आधार मनुष्य जाति के लिये अच्छा रहन-सहन हो । दुनिया में सभी जगह एक घंटे की मेहनत समान हो । वे सभी देशों में समान पैदावार चाहते थे । जब सभी देशों में आर्थिक समानता होगी तो विश्व सरकार की स्थापना आसानी से की जा सकती है ।क्योंकि ऐसी स्थिति में न शक्तिशाली राष्ट्र होंगे और न निर्बल ।

विश्व सरकार की स्थापना के लिये यह आवश्यक है कि विश्व के सभी देशों के बीच भाई चारे की भावना का विकास हो । लोहिया जी के अनुसार - अगर आप यह समझते हो कि भाई हो सारा संसार , एक दूसरे का भाई है , तब फिर दूसरे ढंग से मदद करो तब मदद करने के मायने होंगे कि अपने पड़ोसी देश को भी आप अपने जैसा बनाओ , उतना ही समृद्ध , उतना ही शक्तिशाली और "वर्तमान" टुटपुंजिया मदद सिर्फ इसलिये है कि जिसमें कोई देश गिरे नहीं , टूटे नहीं , झुके नहीं और प्रतिद्वन्दता के कब्जे में न चला जाये ।[2]

समान भाईचारे की भावना विकसित होने पर विश्व के सभी नागरिक एक विश्व सरकार के अधीन संगठित रहकर मानवता के कल्याण के लिये कार्य कर सकते हैं । श्रीमन्नारायण ने भी माना कि हर देश के नागरिकों को विश्व नागरिकता का विकास करना चाहिये और अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के अनुशासन में रहने के लिये तैयार होना चाहिये । उन्होंने लिखा - हम आशा करते हैं कि भविष्य में दुनिया के प्रमुख राष्ट्र ऐसी विश्व सरकार की रूपरेखा

१- डा० राममनोहर लोहिया - "पूर्ण रोजगार" जन मई १९६६,पृष्ठ-११
२- डा० राममनोहर लोहिया - बात झाँकिया, पृष्ठ-१५

बनायेंगी जो स्थाई शांति का मार्ग प्रशस्त करेंगी और मानवता को नये युद्ध के भय से मुक्ति प्रदान करेंगी ।[१]

लोहिया जी मानते थे कि विश्व सरकार की स्थापना का कार्य विभिन्न राष्ट्रों के बीच आर्थिक समानता , भाईचारे की भावना आदि के प्रयास से सम्भव बनाया जा सकता है । विश्व के राष्ट्रों के साथ ही साथ राष्ट्रों की जनता में भी जागरूकता होनी चाहिये जिससे वे मानव कल्याण के लिये विश्व सरकार की स्थापना का प्रयास करें । राष्ट्रों के नागरिक अपनी सरकार के विरुद्ध सिविल नाफरमानी करके विश्व सरकार की स्थापना के लिये कदम बढ़ायें ।

१०) विश्व सरकार की सम्भावनायें -

वर्तमान समय में अपनी दुर्बलता व विफलताओं के बावजूद संयुक्त राष्ट्र संघ मानवीय बुद्धि द्वारा परिकल्पित अब तक का श्रेष्ठतम् अन्तर्राष्ट्रीय संगठन है । किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि सभी क्षेत्रों में संघ की क्षमता और उसके साधनों का उपयोग बुद्धिमत्ता तथा विवेक से किया जाये और संघ के सदस्य विशेषकर महाराष्ट्र चार्टर के प्रति निष्ठावान रहकर उन पर क्रियात्मक आचरण करें । संयुक्त राष्ट्रसंघ जैसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था तभी जीवित रह सकती है व सफलीभूत हो सकती है जबकि इसके सभी सदस्य राष्ट्र सह-अस्तित्व के सिद्धांत पर चलें और संगठन में विश्व के सभी राष्ट्रों को उचित प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिये उद्यत हों । जी०मोरोजोव के के अनुसार - संयुक्त राष्ट्रसंघ का उलझाव युक्त अतीत है और वर्तमान में जटिलतायें कम नहीं है , इसका भविष्य निर्भर करता है इसकी सभी जनतांत्रिक शक्तियों की एकता पर । आधुनिक विश्व के कानून और रुचि के आधार ही प्रदर्शित करता है कि भविष्य में मानवता इसके प्रति स्वतंत्रता पूर्वक और प्रसन्नता पूर्वक अपने विश्वास की मोहर लगाये ।[२]

१- श्रीमन्नारायण-भारतीय संयोजन में समाजवाद, पृष्ठ-१०८

२- जी०मोरोजोव- दि युनाइटेड नेशन्स ट्वेन्टी इयर्स ऑफ फोल्युशं एण्ड सक्सेस, पृष्ठ-५८

सदस्य राष्ट्रों ने जिस तरह संघ को विश्व में वैज्ञानिक प्रचार करने में विश्व की सामाजिक, शैक्षणिक समस्याओं का वैज्ञानिक अध्ययन करने में , विश्व क्षेत्र में सामाजिक बुराइयों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करने में एक स्वतंत्र , स्वस्थ और सुखद जीवन किस प्रकार विश्व में जन-जन को प्राप्त हो , इसका रास्ता ढूंढने के प्रयत्नों में प्रशंसनीय सहयोग दिया है और दे रहे हैं ,उसी प्रकार वे राजनैतिक क्षेत्र में मानव मन में विश्वास जगाने में संघ के उद्देश्यों में सहयोग दें । इस सम्बन्ध में अन्त में यही कहा जा सकता है कि यदि मानव चाहे तो यह संयुक्त राष्ट्र संघ एक विश्व राज्य बन सकता है,बशर्ते कि मनुष्य अपनी इस चेतना के प्रति पूरी तरह जाग उठे कि संकुचित एक देशीय भावना से ऊपर उठे बिना , समस्त मानव कल्याण की दृष्टि से सोचे बिना , उसका त्राण नहीं। रसेल के अनुसार - विश्व को अभी जनसाधारण की आर्थिक दशा समझना है , विभिन्न जातियों के लोगों के एक दूसरे को अपने बराबर का समझना होगा और विभिन्न वर्णों का अन्तर होते हुए एक दूसरे का आदर करना होगा । अगर युद्ध नहीं होता तो स्वाभाविक प्रक्रियायें अपने आप शुरु हो जायेंगी और अन्त में एक मजबूत विश्व सरकार बन जाती है तो मानव सम्पन्नता के दौर में पहुंच जायेगा और सुख भोग सकेगा ।[१]

लोहिया जी विभिन्न राष्ट्रों की प्रगति व कल्याण के लिये विश्व सरकार की स्थापना करना आवश्यक समझते थे । वे विश्व संसद के निर्माण में राष्ट्रों की गैर-बराबरी को सबसे बड़ी रुकावट समझते थे । इस कारण वे राष्ट्रों के मध्य समता लाने के पक्ष में थे और उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद का समर्थन किया । उनके अनुसार - राष्ट्रों के अन्दर गैर-बराबरी होते हुए भी राष्ट्रीय संसद औरराष्ट्रीय सरकार अगर चल सकती हैं तो विश्व गैर-बराबरी के होते हुए विश्व संसद और विश्व बराबरी क्यों नहीं चल सकते । यह तर्क इसलिये कट जाता है कि संसद प्रभुसत्ता सम्पन्न है , गैर-बराबरी को चाहे जितना और जैसे मिटाने के लिये तथा समता के विकास लाने के लिये । विश्व

१- बर्ट्रेण्ड रसेल - न्यू होप्स फौर ए चेंजिंग वर्ल्ड , पृष्ठ-१३०

संसद में भी इस तरह की शंका होनी चाहिये या कम से कम उस तरह की शुरूआत ।[१]

लोहिया जी विश्व सरकार की सत्ता को आवश्यक मानते थे क्योंकि विश्व सरकार ही न्याय और दुनिया को देखकर कार्य कर सकता है । दुनिया के विभिन्न विवादों का निर्णय विश्व सरकार के द्वारा आसानी से किया जा सकता है और इन निर्णयों को राष्ट्रों द्वारा मान्यता प्रदान की जायेगी । वे मानते थे कि - ऐसी सरकार कब बनेगी , यह इस बात पर निर्भर है कि दुनिया में ऐसे नेता कितनी जल्दी पैदा करती है , जो अन्तर्राष्ट्रीय जिम्मेदारी उठायें और कब वह राष्ट्रीय या संकुचित हितों को छोड़कर विश्व कानून को मान्यता देती है ।[२]

लोहिया जी का विचार था कि - यदि विश्व के समस्त राष्ट्रों के नेता राष्ट्रीय हित से हटकर विश्व हित की सोचें और मानवता का कल्याण अपनी राजनीति का उद्देश्य मानें तो भविष्य में वह दिन दूर नहीं होगा जबकि सभी राष्ट्र विश्व सरकार की स्थापना के लिये इच्छुक होंगे ।

बीसवीं शताब्दी में साम्राज्यवाद ने शोषण का अत्यन्त रूप ग्रहण कर लिया है । साम्राज्यवादी देशों ने एशिया, अफ्रिका के नये देशों को लालच देकर खरीद लिया है । शक्तिशाली राष्ट्रों के प्रभुत्व के कारण संगठित विश्व राजनीति चलना असम्भव जैसा हो गया है । वर्तमान समय में राष्ट्रों ने ऐसे विनाशकारी उपकरण बना लिये हैं कि इनके प्रयोग से पूरी - दुनिया का विनाश निश्चित है । ओमप्रकाश दीपक के अनुसार - मनुष्य के सामने अब दो ही विकल्प हैं और लोहिया का विश्वास था कि बीसवीं सदी समाप्त होने के पहले ही मनुष्य को इन विकल्पों का सामना करना पड़ेगा या तो संहार के लिये इन उपकरणों का इस्तेमाल और मनुष्य जाति का विनाश हो या फिर नये मानव समाज का निर्माण हो जिसमें विश्व शांति हो।[२]

१- डा०राममनोहर लोहिया -"हिन्दुस्तान और पाकिस्तान" जन,अगस्त १९६६ पृष्ठ-८

२- ओमप्रकाश दीपक -" नई सभ्यता का सपना" लोहिया:बहुआयामी व्यक्तित्व पृष्ठ-३२-३३

यदि मनुष्य विश्व शांति का मार्ग चुनता है तो उसे लोहिया जी के बताये हुए मार्ग का अनुसरण करना चाहिये । इसमें कोई शक नहीं है कि मनुष्य ने अगर आत्मघात का मार्ग न चुनकर शांति और समृद्धि का मार्ग चुना होता तो उसे मोटे तौर पर उसी तरह की सभ्यता का निर्माण करना होगा जिसकी - कल्पना लोहिया जी ने प्रस्तुत की थी, जिसमें राष्ट्रों के अन्दर ही नहीं, राष्ट्रों के बीच समानता हो और यह समानता केवल कानूनी ही नहीं बल्कि आर्थिक, राजनैतिक , सामाजिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में हो ।

लोहिया जी के विश्व सरकार की स्थापना मुझे निकट भविष्य में सम्भव नहीं दिखता है क्योंकि वर्तमान समय में शक्तिशाली राष्ट्र कभी नहीं चाहेंगे कि उनकी शक्ति सीमित हो । विश्व के राष्ट्रों के मध्य बहुत अधिक असमानता और गैर-बराबरी है । इन राष्ट्रों में समानता का भाव पैदा करना कठिन कार्य है । लोहिया जी के विश्व सरकार का विचार आदर्श में उत्तम है लेकिन इसका व्यवहारिक प्रयोग असम्भव प्रतीत होता है ।

यह हो सकता है कि जिस प्रकार प्रथम विश्वयुद्ध के बाद राष्ट्र-संघ का जन्म हुआ और द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई , उसी प्रकार तृतीय विश्व युद्ध के बाद विश्व सरकार की स्थापना की सम्भावना हो सकती है क्योंकि तृतीय विश्व युद्ध के बाद सबल राष्ट्र दुर्बल हो जायेंगे और बचे हुए समस्त राष्ट्रों के द्वारा एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ बनाया जा सकता है । नेहरू जी ने भी कहा - शायद एक वर्ष तक लड़ाई चलेगी जिसमें दोनों पक्ष बुरी तरह थक जायेंगे और दोनों को भारी नुकसान बैठेगा। इंग्लैण्ड और यूरोप का आर्थिक ढांचा बिखर जायेगा और उसका एक ही मुमकिन नतीजा यह होगा कि एक मुत्तलिक आर्थिक प्रणाली की बुनियाद पर राष्ट्रों का संघ या विश्व संघ कायम होगा और उत्पत्ति , निर्यात और वितरण पर संसार[1] का बड़ा नियंत्रण रहेगा , आज की पूंजीवादी प्रणाली मिट जायेगी ।

- -

१- नेहरूजी - लड़खड़ाती दुनिया, पृष्ठ-११३

तृतीय विश्व युद्ध के बाद विश्व सरकार स्थापित हो जायेगी ये निश्चित सिद्धांत नहीं है , सिर्फ एक दृष्टिकोण है । यह निश्चित है कि विश्व सरकार की स्थापना निकट भविष्य में सम्भव प्रतीत नहीं होता है क्योंकि सभी राष्ट्रों में मतैक्य का अभाव है और उनकी आर्थिक स्थितियों में भी गम्भीर असमानता विद्यमान है ।

-: o :-

अध्याय ५

प्रजातंत्र

-: पंचम अध्याय :-

प्रजातंत्र

लोहिया जी का जन्म परतंत्र भारत में हुवा था, उसी वातावरण में उन्होंने अपना होश सम्भाला था । लेकिन उनकी शिक्षा जर्मनी में हुई थी, जहाँ पर उन्होंने प्रजातंत्र को क्रियात्मक रूप में देखा था और उसके महत्व को समझा था । उस समय जर्मन न केवल स्वतंत्र ही था वरन् प्रजातंत्री आधार पर शासित था । प्रजातंत्र की कुछ झलक उन्हें भारत शासन अधिनियम १९१९ के अन्तर्गत मिली थी । उन्होंने परतंत्र भारत में तानाशाही शासन की बुराइयों को नजदीक से देखा और गरीब असहाय जनता के दुःख-दर्द व समस्याओं का अनुभव किया । अंत में उन्होंने यही निष्कर्ष निकाला कि जनता की भलाई प्रजातंत्र में ही सम्भव है। देश के स्वतंत्र होने के बाद वे देश में सफल प्रजातंत्र की स्थापना के लिये प्रयास करते रहे । वे देश में आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक समानता लाना चाहते थे । उनका विश्वास था कि प्रजातंत्र को सफल बनाने के लिये शासन की शक्तियों का विकेन्द्रीकरण करना आवश्यक है क्योंकि इस व्यवस्था के माध्यम से ही जनता को शासन के कार्यों में भाग लेने का अवसर प्राप्त हो सकता है । उन्होंने अनुभव किया कि जनता का हित प्रजातंत्र में ही सम्भव है ।

१) प्रजातंत्र का अर्थ और स्वरूप -

स्वतंत्रता , समानता, भ्रातृत्व तथा न्याय लोकतंत्र के चार स्तम्भ हैं। जिस राजनीतिक समाज के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को इनका समुचित लाभ कराया जाता हो, उसे एक लोकतंत्र कहा जा सकता है ।

लास्की की धारणा लिंकन के लोकतंत्र की जनता का, जनता द्वारा , तथा जनता के लिये शासन के संकुचित विचार तक सीमित नहीं थी । वह लोकतंत्र को समाजवाद की भाँति व्यापक अर्थ में लेता है। वह सामाजिक न्याय को लोकतंत्र की आधारभूत धारणा मानता है । सामाजिक न्याय की धारणा के अन्तर्गत लोकतंत्र का स्वरूप केवल राजनीतिक ही नहीं रहता अपितु वह आर्थिक व सामाजिक

माना जाता है। सच्चा लोकतंत्र वह है जिसमें व्यक्ति आर्थिक निर्भरता, आर्थिक शोषण आदि से मुक्त होकर अपनी आजीविका के लिये दूसरों के आश्रय पर न रहकर अपने परिश्रम पर आश्वस्त बना रहे। उसे अपने विचारों की अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो। समाज में कृत्रिम भेदभाव करने की व्यवस्था न रहे। लास्की के अनुसार - आजकल के राज्य विशेषकर वह लोकतंत्र राज्य है, कानून के शासन पर निर्भर रहता है। इस उद्देश्य से कि कानून का यह शासन न केवल साधारण नागरिक को ही प्रत्युत राज्य शक्ति का संचालन करने वाले राज्य को भी बांध सके, प्रत्युत राज्य शक्ति का संचालन करने वाली सरकार को भी बांध सके, न्यायपालिका को कार्यपालिका से स्वतंत्र और पृथक रखा जाता है।[१]

जनतांत्रिक व्यवस्था में व्यक्ति सम्प्र सत्ता का एक बुनियादी अवयव है। जहाँ तक सम्प्रता का प्रश्न है, आधुनिक हित की सीमाओं में व्यक्ति के हित और अहित ही सत्ता या शासन के हित और अहित हैं। सच तो यह है कि पारस्परिक सम्पर्क की इस व्यवस्था से यह अपेक्षा की जाती है कि वह न केवल व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करे बल्कि उसे अपने अधिकारों के प्रति सचेष्ट भी बनाये। समाज या शासन और व्यक्ति के बीच का यही सन्तुलन जनतांत्रिक व्यवस्था का आधार और आदर्श है। प्रजातंत्र का सार ही यह है कि उसमें हर व्यक्ति ऐसे सारे विविध स्वार्थों का प्रतिनिधित्व करता है, जिनसे राष्ट्र बनता है। गांधी जी के अनुसार - प्रजातंत्र का अर्थ अमल में देखा जाये तो समस्त प्रजा के कल्याण के लिये प्रजा के भिन्न भिन्न वर्गों की शारीरिक, आर्थिक और आत्मिक शक्तियों को एकत्र करके उपयोग में लाने की कला व विज्ञान है।[२]

सत्ता व व्यक्ति में निकट का रिश्ता है। यदि एक प्रजातांत्रिक व्यवस्था में सत्ता और व्यक्ति में निकटता नहीं है, तो उसे सच्चे अर्थ में -

- -

१- लास्की - राज्य का सैद्धांतिक और व्यवहारिक स्वरूप, पृष्ठ-१९०
२- गांधी जी - संग्राहक आर०के०प्रभु - सच्चा व झूठा प्रजातंत्र, पृष्ठ-५

जनतांत्रिक व्यवस्था नहीं कहा जा सकता । मात्र वोट देने तक का रिश्ता इस व्यवस्था का सबसे बड़ा शत्रु है क्योंकि इससे शासक निरंकुश बन जाता है । प्रजातंत्र में व्यक्ति की उपेक्षा नहीं होनी चाहिये , व्यक्ति को विरोध का अधिकार मिलना चाहिये । लोहिया जी ने लिखा है - यह याद रखना है कि जनतंत्र का मतलब है कि विरोध की गुंजाइश रहे , कोई न करे वह बात अलग है लेकिन विरोध की सम्पूर्ण सम्भावना रहे कि लोग अपनी बात कह पायें जहां लोग अपनी बात को कह पायेंगे , वहां यह मानकर चलना होगा कि लोग उस बात को सुनेंगे भी ।[१]

लोहिया जी प्रजातंत्र में कान व जीभ दोनों की ही स्वतंत्रता चाहते थे । उनका विचार था कि जनतंत्र का अर्थ है लोकसभा , लोकसभा का अर्थ है बहस व तर्क । बहस का अर्थ है सच्चाई यानि जिस तरह तौलते समय तराजू बटखरों का वजन बदलना अपराध है , उसी तरह तर्क के अर्थों को अपनी सुविधा के अनुसार बदलना , स्वीकारना , झुठलाना अपराध मानना चाहिये । जहां सच नहीं है , वहां बहस नहीं हो सकती , जहां बहस नहीं है वहां लोकसभा नहीं हो सकती , जहां लोकसभा नहीं हो सकती वहां जनतंत्र नहीं हो सकता । वे चाहते थे कि विधान सभा और लोकसभा के सदस्यों को जनता की तकलीफों और समस्याओं की पूर्ण जानकारी होना चाहिये तभी वे जनता का हित कर सकते हैं । उन्होंने कहा - लोकसभा या विधानसभा अक्सर मैं कह चुका हूं, एक शीशा है , एक आइना है कि जिसमें जनता अपने चेहरे को देख सके । चेहरे पर किस वक्त कैसी झुर्रियां है , कैसी चाहतें हैं, कैसी तकलीफ है ,कैसे अरमान हैं, क्या सपने हैं ये सब शीशे में देख सकते हैं ।[२]

लोहिया जी लोकसभा व विधानसभा में जनता का सही प्रतिनिधित्व चाहते थे । वे चाहते थे कि इनके सदस्यों में संकुचित स्वार्थों का त्यागकर लोकहित के कार्यों के प्रति अपना ध्यान आकर्षित करना चाहिये जिससे वे

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - समाजवाद की राजनीति, पृष्ठ-१३

२- डा०राममनोहर लोहिया - लोकसभा-विधानसभा एक आइना है सोप्ताहिक राष्ट्रवादी लोहिया स्मृति अंक,पृष्ठ-२८

सरकार को जनता की समस्याओं के प्रति आकृष्ट कर सके। लोहिया जी लोकतंत्र के लिये दलीय प्रणाली को आवश्यक समझते थे, वे दलहीन लोकतंत्र के विरुद्ध थे। वे कहते थे कि जहाँ पक्ष विपक्ष रहती हैं वहाँ तर्क होगा, आपस में बहस होगी। पक्ष विपक्ष को खत्म करने का मतलब होगा कि तर्क खत्म, विचार खत्म, दिमाग खत्म, बहस खत्म।

मधु लिमये ने प्रजातंत्र का अर्थ बताते हुए लिखा है - प्रजातंत्र का सीधा, सादा अर्थ है सत्ता का विकेन्द्रीकरण। विभिन्न प्रातिनिधिक संस्थाओं का निर्वाचन समय पर स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव एक माने में लोकतंत्र के प्राण हैं।[१]

लोहिया जी भी राज्य की सत्ता का विकेन्द्रीकरण करके लोकतंत्रात्मक व्यवस्था की स्थापना पर बल देते थे। वे चाहते थे कि सरकार को जनता के प्रति उत्तरदायी होना चाहिये। उन्होंने लिखा है कि - हमारा देश समाज सरकार अभिमुख है और सरकार अफसर अभिमुख है, यानि - जनता सरकार की नौकर है और सरकार अफसरों की नौकर है, किसी हद तक मैं यह बात सही कह रहा हूं।[२]

लोहिया जी मानव मूल्यों की कद्र करते थे। वे गरीब व असहाय व्यक्तियों के लिये सतत् संघर्षशील और चिंतित रहते थे। इस कारण वे प्रजातंत्र का मुख्य उद्देश्य समानता को स्थापित करना मानते थे। वे सभी व्यक्तियों को बिना भेदभाव के राजनीति में भाग लेने का अवसर देना चाहते थे। वे चाहते थे कि मतदाता और प्रतिनिधि दोनों का प्रशिक्षण करके उन्हें अपने अधिकारों व कर्तव्यों के प्रति सजग बनाना चाहिये तभी वे अपने देश के प्रति उत्तरदायित्वों को पूरा कर सकेंगे।

२) <u>प्रजातंत्र की आवश्यक दशायें -</u>

प्रजातंत्र की सफलता के लिये आवश्यक है कि उसमें मतदाता व

- -

१- मधु लिमये - लोहिया और जयप्रकाश रविवार लोहिया के और भारत मई - १९८५ पृष्ठ-२८

२- डा० राममनोहर लोहिया - जर्म पर चोमा, पृष्ठ-६

प्रतिनिधि दोनों ही शिक्षित है जिससे वे अपनी जिम्मेदारी समझ सकें और अपने कर्तव्यों को पूरा कर सकें । लोकतंत्र तभी सफल होगा जब उस तंत्र को चलाने वाले लोग प्रबुद्ध हों, सुशिक्षित हों और आज के युगानुकूल ज्ञानसम्पन्न हों । ओमप्रकाश त्रिखा के अनुसार - हम विधानसभाओं और लोकसभाओं में ऐसे प्रतिनिधि भेजें जो सत्ताकांक्षी न हों , जो त्याग की भावना में ही सेवा की सत्ता बढ़ाने में पूर्ण विश्वास रखते हों जो सार्वजनिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा नैतिक मूल्यों के ऊँचे आदर्शों से काम करने वाले हों । जाति-पाति,धर्म आदि उन्हें मतदान के समय प्रभावित न कर सकें , किसी प्रकार का भय अथवा लालच उन्हें पथभ्रष्ट न कर सके ।[१]

लोहिया जी मानते थे कि प्रतिनिधियों को परिस्थितियों के अनुरूप तुरन्त कार्य करने के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये । जब तक वे किसी कार्य को स्वयं समझेंगे नहीं तो दूसरों का क्या समझायेंगे । लोहिया जी के अनुसार - अफसोस है कि सोशलिस्ट पार्टी के बड़े-बड़े नेताओं को भी अखबार के अलावा और कोई चीज पढ़ना अच्छा नहीं लगता , यह मारक दोष है । जानकारी और सिद्धांत दोनों की पुस्तकें विशेषकर अपने दल से छपी हुई पुस्तकें पढ़ना चाहिये । जो न पढ़ सके उन्हें किसी और से पढ़ा लेना चाहिये ।[२]

यह तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि लोहिया जी प्रतिनिधियों के लिये शिक्षा के औचित्य को स्वीकार करते हैं और इसे एक बड़ा बात मानते हैं । जहाँ वे नेताओं के लिये त्यागी स्वम् निष्ठावान होने के साथ-साथ अपनी समस्याओं के प्रति जागरुक होने की आवश्यकता पर बल देते हैं , वहीं वे शिक्षा के औचित्य पर भी बल देते हैं । वे तो साफ-साफ बतलाते हैं कि उनके प्रतिनिधि जो हों वे केवल अखबारी ज्ञान तक ही सीमित न हों अपितु उनके ज्ञान का क्षेत्र विस्तृत हो । वे दुनिया में होने वाली प्रगति एवं उन्नति से भी पूर्ण रूप से अपने प्रतिनिधियों को अवगत कराना चाहते थे । लोहिया जी की इस बात को

- -

१- ओमप्रकाश त्रिखा - लोकतंत्र एक आध्यात्मिक संस्था , पृष्ठ-११-१२
२- डा०राममनोहर लोहिया -" लोकसभा" पत्र अगस्त १९६८, पृष्ठ-४६

लेकर परेशान थे कि भारत की विधानसभायें और विशेषकर संसद लोकतंत्र की गरिमा को बढ़ाने की बजाय सत्ताधारी दल उसके बड़े नेता की पिछलग्गू बन गई है । वे चाहते थे कि संसद में विपक्ष को सरकार के खिलाफ अनुचित कार्यों के लिये अविश्वास के प्रस्ताव का प्रयोग करना चाहिये । मधु लिमये के अनुसार-अपने संसदीय कौशल की गरिमा बहुत सारे नेता गाते रहे हैं लेकिन यह बात अपने आप में महत्वपूर्ण है कि लोकसभा में लोहिया के पदार्पण के बाद ही सीधी टक्कर लेने, सरकार से सीधी लड़ाई लड़ने का हौसला संसद और विपक्ष दोनों को मिला । संसद को जनता के दुख और दर्द का आइना बनना चाहिये, अपनी इस उक्ति को उन्होंने अपने आचरण से सार्थक बनाया ।[१]

लोहिया जी का विचार था कि प्रजातंत्र के लिये आवश्यक है कि प्रतिनिधि जनता के प्रति उत्तरदायी रहे । जनता प्रतिनिधि चुना ही इसलिये करते हैं जिससे नागरिकों की बात को सही जगह पर, सही समय पर पहुंचा जाये जिससे कि उचित निर्णय के बाद सुचारु रूप से कार्य हो सके । लोहिया जी की मान्यता रही है कि जनता के प्रतिनिधियों को पढ़ा-लिखा होना चाहिये जिससे वे नागरिकों का सही प्रतिनिधित्व कर सकें । इसके अलावा वे जनता के प्रतिनिधियों त्याग व बलिदान की भावना को भी परम आवश्यक चीज मानते थे। वे तकलीफ उठाने वाले प्रतिनिधियों की कद्र करते थे । अपनी एक महत्वपूर्ण चिट्ठी में उन्होंने इस सत्य का उद्घाटन किया है :-

हारनाथ
२५-१-६७

संसद सदस्य, लोकसभा

प्रिय कुलमणि सिंह,

तुम्हारी चिट्ठी मिली । मेरी कुछ तबियत है कि मैं तुम्हारे यहाँ जाकर तुम्हारी जीत के लिये बोल सकता लेकिन अभी यह असम्भव मालूम पड़ता है।

- -

१- मधु लिमये -' लोहिया और जय प्रकाश रविवार -मार्च १९८५ पृष्ठ-२८

एक-एक दिन फंस चुका है । मैं चाहता हूं कि तुम जाओ और मेरी इस बात को अपने मतदाताओं तक पहुंचा देना । मैं जनता से तुम्हारे लिये वोट इसलिये मांग रहा हूं कि तुम्हारे जैसा एक लम्बी तकलीफ उठाने वाला आदमी अन्य उम्मीदवारों की तुलना में इस अकाल , भूख और राष्ट्रीय बेइज्जती की कांग्रेस सरकार के खिलाफ ज्यादा टिकाऊ और कारगर साबित होगा ।

तुम्हारा,
राममनोहर लोहिया ।[1]

लोहिया जी का सुझाव था कि सदन की शोभा के लिये आवश्यक है कि सदन के सदस्य कानून की मर्यादा के अन्दर रहकर कार्य करें । यदि कोई सदस्य कानून का उल्लंघन करता है और मनमानी करता है तो उसको सदन की सदस्यता से वंचित कर देना चाहिये । जनतंत्र की प्रगति के लिये आवश्यक है कि सदन के सदस्यों का आचरण अच्छा हो । लोहिया जी ने सदन की शोभा के लिये कहा कि - देश में पुलिस के राज्य को खत्म करवाइये । अराजकता , मनमानी और स्वेच्छाचारिता को खत्म करवाइये , तब जाकर यहां पर शोभा और जनतंत्र चल पायेंगे । अगर इस काम को करना है , तब न सिर्फ हमारी तरफ के लोगों को निकाला जाय बल्कि उन मंत्रियों को भी निकाला जाय जो हमेशा कायदे-कानून के खिलाफ कार्यवाही किया करते हैं ।[2]

लोहिया जी मानते थे कि देश में यदि कोई अन्याय हो रहा है तो उसको समाप्त करने के लिये तुरन्त प्रयास करना चाहिये , इसके लिये चुनाव का इन्तजार नहीं करना चाहिये । उन्होंने कहा - जब कोई अन्याय होता है , तो उस अन्याय का मुकाबला उसी वक्त करना पड़ता है, यह जनतंत्र की पहली शर्त है ।[3]

वे मानते थे कि अन्यायपूर्ण कार्यों के लिये विरोध करना चाहिये।

१- डा०राममनोहर लोहिया - डा०लोहिया की चिट्ठी कुलमणिसिंह के नाम- २५-१-६७ राष्ट्रवाणी लोहिया स्मृति अंक मई-१९७१ पृष्ठ-८३

२- डा०राममनोहर लोहिया -लोकसभा में लोहिया,भाग-१० पृष्ठ-६०

३- वही पृष्ठ-२१६

लोहिया जी का विचार था कि प्रजातंत्र में राजनीतिक दलों का होना आवश्यक है। जिस दल का बहुमत होता है, उसकी सरकार बनती है। प्राय: राजनीतिक दल अपने कार्यों की प्रशंसा करते हैं और दूसरे दलों के कार्यों की निंदा। झूठे प्रचार के द्वारा राजनीतिक दल जनता में भ्रम पैदा करते हैं, इस कारण जनता उचित प्रतिनिधि का चुनाव करने में असमर्थ हो जाती है। इसलिये राजनीतिक दलों को सच का सहारा लेकर कार्य करना चाहिये। उन्होंने लिखा - कुछ हद तक आधुनिक मानस पर राजनैतिक दल का बहुत निर्णायक असर पड़ता है। अगर राजनीतिक दल क्रांति के साथ-साथ चरित्र निर्माण का काम भी अपना लें तो राजनीति पवित्रता प्राप्त करेगी जो अभी उसको नहीं मिलती है।[1]

लोहिया जी मानते थे कि राजनीतिक दल सत्ता में आते ही अत्याचारी व निरंकुश हो जाता है। ऐसे कार्यों का विरोध करने के लिये सदैव तत्पर रहना चाहिये। सत्ता का मतलब होता है न्याय पर चलना और अत्याचार का विरोध करके अधिकांश का भला करना। वे चाहते थे कि - प्रजातंत्र के लिये ईमानदारी से राजनीतिक दल कार्य करें। गद्दी और सिंहासन धरती पर लुभावनी चीज है। गद्दी या सिंहासन न्याय और भला करने के माध्यम हैं और इसे हासिल करने वालों को इज्जत और आराम मिलता है। इनसे गरीबी और अत्याचार भी हो सकते हैं और शासक बेहिसाब ऐयाश भी हो सकते हैं। आदमी की बुद्धि गद्दी के इन दो पहलुओं से पूरी तरह छुटकारा नहीं पा सकती। बहुजन का हित और भलाई करने वालों को हमेशा इज्जत व रुतबा मिलेगा।[2]

लोहिया जी चाहते थे कि राजनीतिक दल सक्रिय होकर कार्य करें। उन्होंने लिखा है कि - राजनीतिक दल आलसी हो गये हैं और कुछ ऐसा ढर्रा पड़ गया है कि लोगों के घरों में जाकर लोगों को छोटी-छोटी सभाओं में लाकर कमेटियों में इकट्ठा करके समय देने की प्रवृत्ति छूट गई है। धरातल की राजनीति

१- डा० राममनोहर लोहिया - गुस्सा, कर्म, प्रतिकार और चरित्र निर्माण आवाहन, पृष्ठ-१३

२- वही पृष्ठ-१४

सभी दलों में कम हो गयी है और शिखर वाली राजनीतिक नेता-नेता वापस में बैठकर किसी तरह एका करें, दल इकट्ठा हो और शक्ति बढ़ जाये, थोड़ी बहुत बढ़ती भी है, जब कोई दल इकट्ठा होते हैं, उसी तरफ ध्यान लग जाता है।[१]

वे मानते थे कि बहुत सुधारवादी लोगों का शिखर की राजनीति से मन मुड़ जाता है और वे धरातल की पिटी-पिटाई लकीरों पर चले जाते हैं। इसलिये लोहिया जी शिखर की राजनीति और धरातल की राजनीति दोनों धुरी को समान रूप से पकड़ कर चलने पर जोर देते थे। वे कहते थे कि जो समाजवादी लोग हैं, मेहरबानी करके दोनों धुरियों पर सम्दृष्टि रखें। उन्होंने लिखा है कि - जो धरातल की राजनीति पर चलते हैं लेकिन शिखर की राजनीति के करने से अगर कुछ मिल जाता है तो उसको लेने से हिचकते नहीं है, जो संगठन की चुस्ती लाने की कोशिश करते हैं लेकिन साथ-साथ याद रखते हैं आखिर को यह आन्दोलन की आंधी ही हिन्दुस्तान की गरीबी और शोषण को मिटायेगी।[२]

लोहिया जी प्रजातंत्र में दलों के संयुक्त मोर्चे बनाना आवश्यक मानते थे। यदि किन्हीं कारणों वश दलों का संयुक्त मोर्चा नहीं बन पाता तो कार्यक्रमों का संयुक्त मोर्चा देश के विकास के लिये आवश्यक है। उन्होंने लिखा है कि - एक कार्यक्रम है बढ़ते हुए दामों का चाहे चावल, गेहूं, मिट्टी के तेल के दाम हों, जो कोई इसी प्रोग्राम पर आ जाये बिना देखे हुए कि कौनसा दल निर्दलीय है, उसको लाने की कोशिश करो। उसी तरह दूसरा कार्यक्रम मातृ भाषा चलाओ। उसी से एक तीसरा कार्यक्रम चीन विरोध या विदेश नीति का हो सकता है और चौथा कार्यक्रम गरीबी को मिटाने और प्रशासकीय और पूंजीवादी शोषण का नाश करने का हो सकता है।[३]

१- डा० राममनोहर लोहिया - सम्दृष्टि, पृष्ठ-१५
२- वही पृष्ठ-१६
३- वही पृष्ठ-६

लोहिया जी का विचार था कि ये सभी कार्यक्रम अलग-अलग हैं। इसलिये इनके संयुक्त मोर्चे अलग-अलग होंगे। एक संयुक्त मोर्चा नहीं होगा, कई संयुक्त मोर्चे होंगे। डा० लोहिया सभी दलों की एकता के पक्षधर थे। वे नहीं चाहते थे कि विपक्षी एकता को कम्युनिस्ट के विरोधी रंग दिया जाये इससे विपक्षी एकता खण्डित हो सकती है, ऐसी उनकी मान्यता थी। मधु - लिमये के अनुसार - वे जिस विकास्य एकता की परिकल्पना करते थे, वह कम्युनिस्ट के वामपंथी लोकतांत्रिक मोर्चे के नारे से भिन्न थी। डा०लोहिया के लिये गैर-कांग्रेसी मोर्चे की कल्पना करना एक अल्पकालीन राजनीति थी। उनकी आंतरिक इच्छा रही थी कि कालांतर में राष्ट्रीयता, लोकतंत्र और सामाजिक परिवर्तन के मुल्यों से प्रतिबद्ध दल संयुक्त कृति, संगठन तथा समानशील गुटों के एकीकरण से सुदृढ़ बनेगा।[१]

लोहिया जी मानते थे कि चुनाव में अत्यधिक खर्च करने से देश को आर्थिक क्षति पहुंचा है। वे चुनाव में सीमित खर्च करने के पक्ष में थे। उन्होंने स्वयं चुनाव में सीमित खर्च करने का प्रयत्न किया। मधु लिमये के अनुसार - अगर मैं यह कहूं कि डा०राममनोहर लोहिया ने फूलपुर में प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू के खिलाफ जो चुनाव लड़े और एक तिहाई से अधिक वोट प्राप्त किये, उसमें मुश्किल से दो जीपों का इस्तेमाल किया गया था, तो लोग विश्वास नहीं करेंगे।[२]

लोहिया जी ने देश की प्रतिनिधि व मतदाताओं दोनों में राजनीतिक जागृति की भावना पैदा की। मधु लिमये ने लिखा है कि - लोकसभा के बारे में जागृति और आस्था[३] डा०राममनोहर लोहिया के लोकसभा प्रवेश के बाद ही पैदा होने लगी थी।

लोहिया जी प्रजातंत्र के लिये ईमानदार, दूरदर्शी, योग्य प्रति-निधियों का संगठन आवश्यक मानते थे क्योंकि ऐसे व्यक्ति ही अपनी जिम्मेदारी

- -

१- मधु लिमये - समस्यायें और विकल्प, पृष्ठ-१२२
२- वही पृष्ठ-२९
३- वही पृष्ठ-३०

की अच्छी तरह निभा सकते हैं। इनमें स्वार्थ सिद्धि के अपेक्षा कर्तव्यपरायणता की भावना रहती है। उन्होंने प्रजातंत्र के लिये संगठन को आवश्यक मानते हुए लिखा है कि - आपकी सफलता करीब-करीब पूरी संगठन पर निर्भर है। संगठन का मतलब तरह-तरह के हुनर वालों को एक जगह इकट्ठा करना है जो सचाई व लगन से सौंपी गई जिम्मेदारी निभायें और जो रपट देने के साथ-साथ अपना भूल चूक सुधारें और रुटीन के काम से अकार्य-, कुशलता और फिजूलखर्ची दूर करने में सजग रहें।[1]

लोहिया जी राजनीतिक दलों का सबसे बड़ा दोष यह मानते हैं कि ये दल अपनी प्रशंसा व दूसरे दलों की निंदा करने में ही अपना समय बिताते हैं। ये देश की समस्याओं से अनभिज्ञ रहते हैं अथवा समस्याओं की जानकारी होने के बावजूद भी उनके निराकरण का प्रयास नहीं करते हैं। इसलिये वे मिलजुल कर कार्य करने के लिये जोर देते थे। उनके अनुसार - संगठन तभी चल सकता है जब सब सचमुच मिलजुल कर काम करने का ठान लें और उसकी गुंजाइश भी बढ़ाते रहें, साथ ही क्या कमी है और कैसे दूर की जा सकती है, इस पर विचार करने से, न कि दूसरों के दोषों के बारे में किस्से कहानियाँ गढ़ने और सुनने से।[2]

लोहिया जी का विचार था कि प्रजातंत्र के लिये आवश्यक है कि देश से गरीबी व अभावों का अन्त हो। जब तक देश से गरीबी दूर नहीं होती, उसकी प्रगति नहीं हो सकती। उनके अनुसार - जब तक देश में अभाव, कमी, तंगी दूर नहीं होगी तब तक हम किस मुंह से जनता से कहेंगे कि तकलीफ उठाकर इस देश को बनाओ। जो लोग इस देश का निर्माण करने वाले, कानून बनाने वाले, सरकार को चलाने वाले हैं यदि वे विलासिता में रहते हैं, तो वे जनता से कह नहीं सकते कि तुम मन लगाकर और पेट काटकर देश का निर्माण करो।[3]

लोहिया जी का यह विचार उचित प्रतीत होता है कि देश में जब

१- डा० राममनोहर लोहिया - सच, कर्म, प्रतिकार और चरित्र निर्माण आवाहन, पृष्ठ-५

२- वही पृष्ठ-७

३- डा० राममनोहर लोहिया-धर्म पर सीमा पृष्ठ-६

तक एक ओर भुखमरी और दूसरी ओर शान शौकत है तब तक सच्चा प्रजातंत्र स्थापित हो ही नहीं सकता । जो सदियों से पिछड़े, प्रताड़ित एवं गिरे हुए थे , उनके उत्थान के लिये लोहिया जी आगे आये और उन्होंने उनकी उन्नति के लिये प्रयास भी किये । वे मानते थे कि प्रजातंत्र में पिछड़े व अविकसित वर्गों के व्यक्तियों को शासन में आने का मौका मिलना चाहिये जिससे वे अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व कर सकें । इसलिये वे पिछड़े वर्ग के लोगों को विशेष अवसर देने के पक्ष में थे । विशेष अवसर की बात लोहिया जी किस ढंग से करते थे ,यह इस संस्मरण से प्रकट हो सकता है । बिहार के समाजवादी नेता श्री रामानंद तिवारी एक बार लोहिया जी के साथ पटना से आरा आ रहे थे तो वे बात-चीत के दौरान तिवारी जी से बोले - तिवारी तुम अपने बारे में पहले सोचो । तुम एक बहुत ही मामूली शिक्षा प्राप्त व्यक्ति हो । तुम्हें विधानसभा में भेजना, फिर तुम्हें मंत्री नियुक्त करना , क्या यह विशेष अवसर की बात नहीं ? अगर तुम्हें यह पद नहीं मिले होते तो तुममें सभी अच्छाइयों के रहते हुए भी उनसे किसी को फायदा नहीं होता । अतः सैकड़े ६० योग्य एवम् ईमानदार के लिये तो है ही किन्तु जब तक तुम्हें अवसर नहीं दिया जाता , उनकी योग्यता और ईमानदारी की जाँच करना मुश्किल है ।[१]

लोहिया जी अंग्रेजी के सख्त विरोधी थे । उन्होंने अंग्रेजी को देश में भ्रष्टाचार की एक बड़ी भाषा माना है । उनका विश्वास था कि जिस देश में बहुसंख्यक जनता जिस भाषा को नहीं समझती है , उसका प्रयोग शासन में होता है तो देश में भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलेगा इसलिये वे देश में अपनी लोकभाषा का प्रयोग हर क्षेत्र में चाहते थे । वे अंग्रेजी को सार्वजनिक दायरे से खत्म करना चाहते थे क्योंकि सभी बाकियों को ऊँची जगह नहीं मिल पाती है । उन्होंने लिखा है कि - ऊँची जाति के जो गरीब हैं वे अंग्रेजी खत्म होने के बाद ४० सैकड़ा जगह के लिये कम से कम बराबरी का

- -

१- कृष्णनन्दन 'लोहिया मानवतावादी राजनीतिज्ञ',कादम्बिनी,मार्च १९७२, पृष्ठ-१०५

२

मुकाबला कर सकेंगे । उन ब्राह्मण, बनिया, शेख, सैयद से जो हिन्दुस्तान की बागडोर को अपने हाथ में थामे हुए हैं फिर यह ४० सैकड़ा जगह के बारे में बड़ी तबदीली होगी ।[1]

कन्हैयालाल डुंगरवाल ने लोहिया जी के इस विचार का समर्थन करते हुए लिखा है - लोहिया ने अन्य सार्वजनिक स्थानों से अंग्रेजी को खत्म कराने के साथ-साथ न्यायालयों में लोकभाषा को स्थापित करवाने के लिये जबर्दस्त प्रयास किया क्योंकि उनकी यह दृढ़ मान्यता थी कि विदेशी भाषा के कारण जनता का शोषण होता है और सही न्याय भी नहीं मिल सकता तथा जनता को न्यायालयों की कार्यवाही और निर्णय से अनभिज्ञ रहना पड़ता है ।[2]

लोहिया जी चाहते थे कि अंग्रेजी को हटाकर के शासन अपनी भाषा में करने पर प्रजातंत्र को सफल बनाया जा सकता है क्योंकि इससे साधारण जनता शासन के कार्यों को समझने का प्रयास करेगी और शासन में भाग लेने का भी प्रयत्न करेगी । वे कार्यपालिका की निरंकुशता पर नियंत्रण लगाना चाहते थे कन्हैयालाल डुंगरवाल ने लिखा है - लोहिया जी ने जाब्ता फौजदारी की धारा १०७ व १४४ को प्रजातंत्र की भावना के प्रतिकूल बताया था और कार्यपालिका को जन-अधिकारियों पर मनमाने ढंग से अतिक्रमण करने के इन साधनों को जनतंत्र के लिये कलंक निरूपित किया ।[3]

लोहिया जी प्रजातंत्र के लिये सबसे आवश्यक दशा सत्ता के विकेन्द्रीकरण को बताते हैं । सत्ता के केन्द्रीकरण होने पर प्रजातंत्र स्थापित नहीं हो सकता । इसी कारण उन्होंने अपने चौखम्भा सिद्धांत के द्वारा सच्चा प्रजातंत्र स्थापित करने का प्रयास किया । लोहिया जी ने चौखम्भा राज्य की परिकल्पना रखी जिसमें सत्ता को गांव, जिला, राज्य और केन्द्र में विकेन्द्रित किये जाने की व्यवस्था है । इस व्यवस्था के द्वारा जनता शासन कार्यों में

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - नरम और गरम पंथ ,पृष्ठ-२८
२- कन्हैयालाल डुंगरवाल ' गांधी और लोहिया कानून की भूमिका में' जन गांधी शताब्दी अंक सित०-अक्टू० १९६९,पृष्ठ-३०
३- कन्हैयालाल डुंगरवाल 'जिनसे जन भी प्रभावित होते थे' जन सित०-अक्टू० १९६९, पृष्ठ-४

आसानी से भाग ले सकती है। यदि किसी देश में प्रजातंत्र सरकार है लेकिन सत्ता का केन्द्रीकरण है तो यह नहीं कहा जा सकता कि वह सफल जनतंत्र सरकार सिद्ध होगी ।

इस प्रकार लोहिया जी ने देश की प्रजातंत्र की आवश्यक दशायें विकेन्द्रीकरण , अच्छे राजनीतिक दल , योग्य प्रतिनिधियों का संगठन,अपनी मातृभाषा का प्रयोग, आर्थिक समानता व सम्पन्नता को बताया है । वे भारत में सच्चा प्रजातंत्र स्थापित करने का प्रयास करते रहे । वे देश से अन्यायों तथा गरीबी को दूर करना चाहते थे । उनका विश्वास था कि देश में सच्चे प्रजातंत्रकी स्थापना होने पर ही प्रगति सम्भव है । वे सभी जाति , धर्म और समुदाय के लोगों को उन्नति के समान अवसर देना चाहते थे ।

३) <u>आर्थिक समता -</u>

हमारे देश में जाति,लिंग, भाषा,वर्ग,धर्मपर आधारित विषमतायें बहुत समय से चली आ रही हैं इसमें आर्थिक विषमता सबसे अधिक उग्र रूप धारण किये हुए है । समाज में असमानताओं को दूर करने के लिये अनेक प्रयास किये गये लेकिन ये अभी भी विद्यमान है । प्रजातंत्र का आधार समता है , समता की स्थापना के बाद ही देश का विकास सम्भव है । लास्की ने समानता की व्याख्या स्पष्ट रूप से की और कहा - समानता का तात्पर्य है कि एक ही प्रकार का व्यवहार सबको मिले ।[१]

लास्की मानते थे कि - समाज में सभी व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति लगभग सामान्य हो । इसका अर्थ मुख्यत: एक खास समतलीकरण है। राज्य के कार्यों में अभी तक सभी आदमियों को बराबर नहीं समझा गया है। ऐसी व्यवस्था देश में होना चाहिये जिसमें सभी व्यक्तियों की सुनवाई के उचित अवसर प्राप्त हों । लास्की ने लिखा है कि - सामाजिक शक्तियों में इस तरह तालमेल हो कि जिससे मेहनत के भाग में और उसके द्वारा प्राप्त लाभ के भाग में सन्तुलन रहे । यानि उस लाभ में मेरा भाग इतना हो कि वह मेरी नागरिकता के प्रयोजन के लिये पर्याप्त हो ।[२]

१- लास्की-राजनीति के मूल तत्व, पृष्ठ-२२१
२- वही पृष्ठ-२२१

प्रजातंत्र में ही व्यक्तियों को प्रत्येक क्षेत्र में समानता का अवसर प्राप्त हो सकता है। इन्द्र चन्द्र शास्त्री के अनुसार - लोकतंत्र अधिकार और अवसर की समता पर बल देता है। उसकी दृष्टि में प्रत्येक नागरिक के समान अधिकार हैं और सभी को उन्नति के समान अवसर मिलना चाहिये किन्तु वह परिणाम की समता का दावा नहीं कर सकता।[१]

लोहिया जी ने कहा कि विषमता को मानव प्रवृत्ति का अंग माना जाता है और यह समझा जाता है कि उसकी गतिशीलता और विकास के लिये विषमता आवश्यक है। समता के समर्थन में व्यापक रूप से नहीं कहा गया, दूसरे शब्दों में - समता का पूर्ण अर्थ पर्याप्त रूप से नहीं खोजा गया है। सत्यम् के समान ही समता भी जीवन का उच्च लक्षण है।[२]

उनका विचार था कि इस लक्ष्य की जांच शांति पूर्वक नहीं की गई है, उसके प्रत्यक्ष और तत्कालीन प्रभाव दैनिक जीवन, सम्पत्ति और आय तथा समाज की सामान्य व्यवस्था पर गम्भीर और अनेक हैं। समता मानव प्रवृत्ति के अनुरूप है या नहीं यह द्वितीय महत्व का प्रश्न है क्योंकि प्राथमिक प्रश्न तो यह है कि जीवन का लक्ष्य क्या है और उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है? उनके अनुसार - किसी न किसी प्रकार जीवन के सभी उच्च लक्ष्य मृत्यु उपरान्त की काल्पनिक स्थिति से सम्बन्धित होते हैं। व्यक्ति के लघु जीवन की दुःख और कठिनाइयां इतनी कष्टदायक होती हैं कि मृत्यु उपरान्त दशा आराम और आशा तथा उद्देश्य देती है। विश्व के सर्वाधिक प्रभावपूर्ण शब्द स्वर्ग के सुख और नरक के कष्टों से जुड़े हैं और जीवन के उच्च लक्ष्य किसी न किसी प्रकार से ऐसे ही भाव उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं।[३]

लोहिया जी मानते थे कि अब तक आत्मा की अमरता के अतिरिक्त

१- इन्द्रचन्द्र शास्त्री, लोकतंत्र के लक्ष्य, पृष्ठ-२१
२- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-२२२
३- वही पृष्ठ-२२३

अन्य कोई वस्तु कविता में नहीं गाई गई है । इसी प्रकार से कुछ महान पंक्तियां सृष्टि की एकता , अविनाशता के विषय में लिखी गई हैं पर ऐसी पंक्तियाँ और दर्शन के साथ मृत्यु उपरान्त की प्रसन्नता की स्थिति की सम्भावना चाहे वह स्वर्ग में हो या वैयक्तिक मुक्ति के परिणाम स्वरूप हो , मिली रही है । व्यक्तिगत स्वार्थ की उपलब्धि की अपेक्षा व्यक्तिगत मुक्ति अधिक संतोषजनक रही है पर तब प्रश्न यह उठता है कि जीवन के ऐसे सर्वोच्च लक्ष्यों सत्य और कल्याण की आवश्यकता क्या है ? लोहिया जी इन्हीं प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहते हैं - जीवन के उपरान्त मुक्ति जीवन में मुक्ति के अनुपूरक विचार को जन्म देता है । मृत्यु के बाद वही बचेगा जो जीवन में पहले ही बच चुका है ।[1]

लोहिया जी का विचार था इस पर प्रत्येक व्यक्ति चाहे वो हो जो यह कहते हैं कि मृत्यु के बाद जीवन है और चाहे वो कहते हैं कि मृत्यु के बाद जीवन नहीं है , सबका है कि मृत्यु आने पर उसका स्वागत हो । मृत्यु की तैयारी के लिये यह आवश्यक है कि हम जीवन में एकअविच्छिन्न प्रकार से रहें जिसमें निम्नतम योजनायें हों , भेद न हो और सर्वोच्च रूप में आनंद और सुख हो । क्या जीवन समता के सर्वोच्च सिद्धांत के बिना रहा जा सकता है । जब सृष्टि की अविनाशी एकता के गीत गाये गये तो गायकों ने दो चीजों में प्रसन्नता का अनुभव किया । लोहिया जी ने लिखा है कि पहला यह कि समस्त सृष्टि एक है इसलिये उसका प्रत्येक भाग दूसरे के समान है , दूसरा कि सृष्टि के समस्त भाग उसके पूर्ण के साथ सह-अस्तित्व का आनंद ले सकते हैं । सृष्टि की अविनाशी एकता का अनुभव करने की समानुभूति सम्भवतः ऐसी महानतम प्रसन्नता है जिसे मनुष्य जान सकता है और इस सम्बन्ध में समता मनुष्य की आवश्यक मानसिक दशा है । जैसे परिवार में सभी व्यक्ति भोजन,वस्त्र इत्यादि में समान होते हैं, उनके द्वारा अर्जन किये गये अर्जन में कितना भी अन्तर रहे । परिवार की एकता का चिन्ह है उसी प्रकार समता में रहना भी सृष्टि की एकता का चिन्ह है ।[2]

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स,गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-२२३

२- वही पृष्ठ-२२४

लोहिया जी मानते थे कि आध्यात्मिक और भौतिक समान सत्तायें और उन पर आधारित प्रबन्धता मानव प्रकृति का अंग है । ऐसी परिवार की एकता का भाव केवल परिवार के स्तर पर ही सम्भव हुआ है , उसके बाहर नहीं। पूरी मानव जाति में इस प्रकार का विचार स्थापित करना अभी तक सम्भव नहीं हुआ है । ईश्वर का पैतृत्व और मनुष्य का भ्रातृत्व तक केवल उपदेश रहे हैं , मानव प्रकृति के अंग नहीं । यह नैतिकप्रेरणाओं के लिये सर्वोत्तम है लेकिन उनको आधारशिला मनुष्य की भावनाओं पर आधारित नहीं है और मनुष्य की वर्तमान स्थिति में हो भी नहीं सकते । लोहिया जी के अनुसार - राष्ट्रों के मध्य और राष्ट्र के मध्य भौतिक विषमता इतनी अधिक है कि व्यक्ति की क्षमता के बाहर हो जाये तो उसकी आत्मा इतनी परिवर्तनशील हो जाती है कि वह उसके अनुरूप बन जाये । इसी प्रकार श्वेत और अश्वेतों में विषमता इतनी अधिक है कि उनके मध्य मानव भ्रातृत्व की बात करना उपहास पूर्ण होगा ।[1]

लोहिया जी ने माना कि मानव भ्रातृत्व का अभाव अभी तक नीति-शास्त्र और नैतिकता की अदृढ़ आधारशिलाओं पर आधारित है और मानव भ्रातृत्व की नैतिक संकल्पना सृष्टि की मानव जाति तक ही सीमित है वह अन्य प्राणियों के प्रति नहीं पाई जाती । यह मानव से प्रारम्भ होती है और राष्ट्रीय परिवार व्यक्तियों तक पहुंचता है, निकटतम परिवार ,प्रजाति, वर्ग या जाति तक जाते हैं । सीमित संवेग मानव जाति की एकता में निहित सूत्र के विरोधी हैं , दूसरी ओर खटमल ,मच्छर, सर्प और अन्य जीव ऐसे ही स्वरूपों के प्रति पारिवारिक एकता के भाव नहीं रखते हैं । केवल हिन्दू और जैन ही कुछ दिखावटी कार्य करते हैं, जिसमें वे कीटाणुओं के प्रति दया दिखाने के उद्देश्य से पानी साफ करके पीते हैं या मुंह के सामने कपड़ा लगा लेते हैं पर शोषण के अनफिल्टर्ड खून को पीते हैं। इसी प्रकार एक शाकाहारी जब विवादात्मक या दैनिक चर्चा की वस्तु हो जाती है , अत्यन्त निर्दयी हो जाता है। इसलिये लोहिया जी ने कहा - जो व्यक्ति एक सृष्टि की एकता और समता में

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया-मार्क्स,गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-२२५

विश्वास करते हैं , उनके मार्ग में भी कुछ दिनचर्याओं और आक्रमण निर्यंताओं के अनेक गर्त हैं पर वे पृथ्वी पर मानव के लिये सम्भव,अति उत्तम सुख को प्राप्त कर सकते हैं और विश्व के महानतम क्रान्तिकारी हो सकते हैं । यह विवेक आध्यात्मिक समानता और परिवार भाव तथा जीवनस्तर की भौतिक समान-ताओं के मध्य समानान्तरता स्थापित करते हैं ।[1]

लोहिया जी मानते हैं कि यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि पूर्व युगों में भी सृष्टि की अविनाशी एकता की बात सोचते समय मानव जाति में भौतिक समानता का प्रयास क्यों नहीं किया गया । एकता का आनंद पारिवा-रिकता के बिना सम्भव नहीं है और भौतिक समानता के बिना पूर्ण अंशों में पारिवारिक एकता की भावना सम्भव नहीं है । पूर्व समय में जब लोगों ने सृष्टि की एकता की बात कही, उस समय संपदा की विषमता इतनी व्यापक नहीं थी और वर्तमान के समान गरीबी इतनी नहीं होगी । सम्भवत: इस कारण की जनसंख्या कम थी और भूमि विस्तृत थी । जो भी हो साथ के लोगों से सैवैगिक पारिवारिकता तब तक सम्भव नहीं होती जब तक कि कुछ भौतिक समानता में नहीं होती । उन्होंने कहा कि एक वस्तु संकल्पना और साधारीकरण के रूप में समानता का अर्थ एक वातावरण का संवेग और संभवत: एक इच्छा है कि सभी व्यवस्थायें राजनैतिक ,सामाजिक ,आर्थिक व्यक्ति और बकिा में समान होंगी ।[2]

उन्होंने कहा कि व्यवस्था की समानता का क्या अर्थ होगा ? यह संबंधित व्यक्तियों की इच्छा और स्वप्न पर छूटा है । समानता जब तक कि पूर्ण शब्दों में अभिव्यक्त नहीं होती एक वातावरण , एक संवेग , एक इच्छा या एक स्वप्न ही है ।

लोहिया जी ने सभी प्रकार की समानताओं का अर्थ बताते हुए लिखा है - कि वैधानिक समानता का अर्थ विधि के समक्ष समानता है ,

---

१- डा० राममनोहर लोहिया,मार्क्स,गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-२२७
२- वही पृष्ठ-२२७

इसके अन्तर्गत सभी व्यक्तियों पर उनको सामाजिक परिस्थिति का ध्यान न किये हुए एक विधि लागू की जाती है। राजनैतिक समानता का अर्थ वयस्क मत की समानता है। आर्थिक समता का अर्थ जीवन का आधारभूत अनिवार्य वस्तुओं अर्थात न्यूनतम भोजन, न्यूनतम वस्त्र, न्यूनतम भवन होना चाहिये।[१]

लोहिया जी ने माना कि समता मूर्त विचार वे हैं जो लोक-कल्याणकारी राज्य में प्रयोग होते हैं जैसे कानून के सामने समानता, भोजन सहायता का समानता, मुल्य का एक समान होना, बच्चों के लिये भत्ता, बेकारी भत्ता, वृद्धावस्था पेंशन इत्यादि। भारत में जो लोग लोक कल्याण कारी राज्य की बात करते हैं वे जानते तक नहीं कि उसका अर्थ क्या होता है। एक स्वप्न के रूप में अमूर्त समानता और मूर्त समानता में अंतर करते हैं। वे कहते हैं कि मूर्त समानता में अंतर आर्थिक अंतर, अधिक व्यापक नहीं होना चाहिये और वे इनके लिये निम्नतम और अधिकतम आयों का अनुपात १-१० बतलाते हैं।[२]

लास्की ने आर्थिक समानता का अर्थ बताते हुए लिखा है कि - आर्थिक समानता का अर्थ है उद्योग में लोकतंत्र का समावेश। उसका मतलब ये दो बाते हैं, इसका अर्थ है कि औद्योगिक प्रबन्ध अधिकारों की उस प्रणाली के मातहत है जो आदमियों को नागरिक के रूप में प्राप्त है और इसका यह अर्थ है कि औद्योगिक निदेश ऐसा होना चाहिये कि वह अपने नियम, कानून सहयोग से बनाये न कि जोर-जबर्दस्ती से।[३]

लोहिया जी का विचार था कि सभी मनुष्यों की समताओं को विशेष कर उनकी जो पीड़ित है, विकसित किया जाना चाहिये इतना कि वे विषमता के स्थापित करने वालों के विरुद्ध समता के लिये संघर्ष कर सकें। विषमता के समर्थकों में कुछ गुण हैं, विशेषकर कुशलता और व्यवहार पटुता के

१- डा० राममनोहर लोहिया, मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-२२८
२- वही पृष्ठ-२३०
३- लास्की - राजनीति के मूल तत्व, पृष्ठ-१४७

और समता के लिये संघर्ष करने वालों को इन गुणों को अपने वर्ग के लोगों में उत्पन्न करना चाहिये। हमें इसके लिये सावधान रहना चाहिये कि विभिन्न राष्ट्रों में समता का उपलब्धि कैसे हो। उन्होंने कहा भौतिक समानता के प्रत्येक पक्ष में उसकी प्रवृत्ति के अनुसार उपलब्धि की एक पद्धति ढूंढना चाहिये अन्यथा अपेक्षित और विरोधी परिणाम प्राप्त होंगे। विवश करना, समझाना और आदर्श प्रस्तुत करना यह परिवर्तन की समग्र सम्भावित की पद्धतियां रहा है।[१]

उनका विचार था कि अन्य पद्धति सिद्धांत इसमें संभव नहीं है और कम से कम इतिहास में अब तक नहीं हुई है पर परिवर्तन की इन पद्धतियों की अब तक उचित सीमायें निर्धारित नहीं की गई हैं। उदाहरणार्थ - समझाने और विवश करने दोनों की अपनी सीमायें हैं, इन सीमाओं के उचित अध्ययन के अभाव में असमानता या उग्रता लक्षित परिणामों के विरोधी परिणाम होंगे।

लोहिया जी का विचार था कि वर्तमान समय में अधिकतम कौशल प्राप्त करने के बाद भी समानता हासिल नहीं हुई है। जहाँ तक समानता के लिये प्रयास भी किये गये, उन दोनों में पूरी समानता नहीं आई है। उन्होंने कहा - बढ़ते हुए कौशल और उसके साथ बढ़ता हुई शक्ति और समृद्धि से विकासशील समता, बेहतर जिंदगी और अधिक समानता की बढ़ना कोशिशों को एक सीमा तक संतुष्ट कर पाती है।[२]

लोहिया जी ने समानता के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा कि समानता से वर्ग फिर टूट, जिससे न्याय से वर्ण और सड़न विपरीत क्रम पैदा होता है और फिर दुबारा समानता हर सभ्यता में इन्सान की जिंदगी का यही क्रम है। इन्सान का भाग्य समानता और न्याय, शक्ति और स्थायित्व के बीच झूलता है और एक की हिंसा व दूसरे की सड़न से अभिशप्त

१- डा० राममनोहर लोहिया, मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-२३७

२- डा० राममनोहर लोहिया, इतिहास चक्र, पृष्ठ-७

रहता है ।[१]

लोहिया जी मानते थे कि हमारे समाज में छोटे व बड़े आदमी का बहुत फर्क है । हमारे यहाँ न्याय, सच्चाई और सिद्धांत कोई चीज नहीं है, असल चीज है बड़ा आदमी और छोटा आदमी। बड़े आदमियों और छोटे आदमियों के रास्ते अलग-अलग है । हिन्दुस्तान में न्याय, कायदा , कानून, सलूक करने का तरीका , लोगों के सोचने का तरीका , लोगों की दृष्टि छोटे और बड़ों के फर्क में बंटी हुई है । यह फर्क सबसे अधिक हिन्दुस्तान में ही है । उन्होंने कहा - खास तौर से जायदाद और ऊँची या बड़े लोग और छोटे लोग का फर्क हमें अपने ध्यान में रखना होगा क्योंकि दुनिया में छोटे और बड़े का फर्क जितना हिन्दुस्तान में है उतना कहीं नहीं है ।[२]

लोहिया जी मानते थे कि भारत में व्यक्ति की आमदनी में बहुत अंतर है , इस कारण यहाँ समाज में अमीर व गरीब वर्ग बंटे हुए है । हमारे देश में गरीबों व अमीरों के बीच की गैर-बराबरी दिन-प्रति-दिन बढ़ती चली जा रही है । उनके अनुसार - हमारे देश में खेत-मजदूर १२ आने रोज कमाता है, क, ख, ग, या अलिफ बे पढ़ाने वाला अध्यापक २ रुपये रोज कमाता है जो हिन्दुस्तान का व्यापारी खानदान है , वह तीन लाख रुपये रोज कमाता है ।[३]

वे मानते थे कि आमदनी के फर्क के अलावा हिन्दुस्तान में राजकीय कर्मचारियों पर खर्चे की सीमा अधिक है । हमारे यहाँ एक ओर पूंजीपतियों और नेताओं का रहन-सहन का स्तर बहुत ऊंचा उठा हुआ है और दूसरी ओर अन्य लोगों के जीवनस्तर निम्न है । उन्होंने लिखा है - अपने देश में मामूली आदमी और बड़े आदमी के बीच इतना जबर्दस्त खाई है कि बड़े और छोटे के बीच कोई मर्यादा ही नहीं रह जाता । एक तरफ बिड़ला सरीखे परिवार लाख, पचास हजार रोज की आमदनी करने वाले है

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया, इतिहास चक्र ,पृष्ठ-५१-५२
२- डा०राममनोहर लोहिया,नरम और गरम पंथ,पृष्ठ-६
३- डा०राममनोहर लोहिया ; अविश्वास क्यों ? लोहिया-बहुआयामी व्यक्तित्व,पृष्ठ-२६७

तो दूसरी ओर अठन्नी रुपया रोज कमाने वाला मजदूर, यह है आकाश और पाताल वाला फर्क जो हमारे देश को खा रहा है।[1]

लोहिया जी देश में व्याप्त असमानता को दूर करने के लिये प्रयत्नशील रहे। वे चाहते थे कि अमीरों से अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिये गरीबों को जागरूक बनाना होगा। समानता की माँग अन्य वर्ग से करनी होगी। लोहिया जी का सुझाव था कि जब कौशल में ह्रास या गतिरोध होने से समाज के अन्दर विभिन्न वर्गों की प्रतिष्ठा और उनकी कुछ जानकारी में बढ़ोत्तरी सम्भव नहीं होती हमें समानता की माँग उच्च वर्गों से छोड़कर निचले वर्गों को देने से ही पूरी हो सकती है। यह भी एक सीमा तक हो सकता है।[2]

लोहिया जी असमानता को दूर करने का उपाय क्रांति नहीं बतलाते हैं। हिन्दुस्तान के लोगों ने इतिहास में समानता को स्थापित करने के लिये कभी विद्रोह नहीं किया बल्कि वे चुपचाप अत्याचारों को सहते रहे। उन्होंने लिखा - हिन्दुस्तान में बड़ा आदमी इतना बड़ा और छोटा आदमी इतना छोटा है कि बयालीस करोड़ लोग न रोते हैं और न किसी प्रकार का उन्माद रखते हैं बल्कि सिर्फ अपने चारों ओर की घटनाओं को चुपचाप देखते रहते हैं।[3]

लोहिया जी का विचार था कि देश में योग्यता और अवसर कुछ लोगों तक ही सिकुड़कर रह गये हैं। अतः वे देश में समानता लाने के लिये पिछड़े हुए समूहों व वर्गों को विशेष अवसर देना चाहते थे जिससे देश में समानता की स्थापना हो सके। उन्होंने कहा - हिन्दुस्तान की औरतें, हरिजन, आदिवासी, पिछड़ी जातियाँ, धार्मिक अल्पसंख्यकों और शूद्र - यह जो पाँच बड़े वर्ग हैं जिनकी कि आबादी कुल मिलाकर ६० सैकड़ा होती है, जब तक इन्हें विशेष अवसर नहीं देंगे, तब तक देश का गन्दा पानी साफ नहीं हो सकता।[4]

१- डा० राममनोहर लोहिया 'दाम और जाति की नाकेबन्दी' जन मा०-१९७० पृष्ठ-१०
२- डा० राममनोहर लोहिया इतिहास चक्र, पृष्ठ-५२
३- डा० राममनोहर लोहिया 'दाम और जाति की नाकेबन्दी' जन मा० १९७० पृष्ठ-८
४- डा० राममनोहर लोहिया 'अविश्वास क्यों ? लोहिया : बहुआयामी व्यक्तित्व, पृष्ठ-२७५

लोहिया जी का सुझाव था कि सरकारी विधियोंका विरोध सविनय अवज्ञा से होना चाहिये। समता स्थापित करने के लिये अन्य कोई मार्ग नहीं अपनाना चाहिये क्यों कि रक्तपात से समता उत्पन्न नहीं होती, परिवर्तन का महत्व क्रमिक होना चाहिये और इसमें जन जागृति तथा सुझावों का विशेष प्रयोग होना चाहिये। अभिमान, अहंकार, लालच, विद्वेष अहं भाव, भय, प्रभुत्वाकांक्षा, स्वेच्छा, कपट, झूठ और हत्या उसके मार्ग का अवरोध करेंगे और ऐसे वातावरण में ना तो भौतिक समानता होगी और न सर्वैगिक पारिवारिकता। उन्होंने कहा - समानता का आंतरिक अर्थ है जिन्हें आधुनिक मस्तिष्क भूल गये हैं, मनुष्य को विरोधी दशायें जैसे सुख-दुःख, ऊष्ण और शीत, जय और पराजय में समान आंतरिक समता का अनुभव होना चाहिये। .... ये आध्यात्मिक प्रशिक्षण से ही सम्भव है... निरन्तर प्रशिक्षण से मनुष्य इस स्थिति में पहुँच जाये कि वह जय-पराजय या सुख-दुःख का अनुभव स्वयं करने लगे।[1]

लोहिया जी का विचार था कि इस प्रकार समानता के आंतरिक व बाह्य तथा आध्यात्मिक और भौतिक पक्ष पाये जाते हैं। समता के सभी पक्षों के समझना चाहिये। लोहिया जी ने कहा - भौतिक समता का अर्थराष्ट्रों के अन्दर बाह्य और आंतरिक समानता होनी चाहिये। आध्यात्मिक समानता बाह्य पारिवारिकता तथा आंतरिक समत्व का भाव होना चाहिये। समत्व का भाव, पारिवारिकता, राष्ट्रभ्यान्तर तथा अन्तर्राष्ट्रीय भौतिक समानता जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य और उद्देश्य हैं।[2]

लोहिया जी पहले आध्यात्मिक समानता और बाद में भौतिक समानता लाने की बात कहते हैं। लेकिन इनको यह आध्यात्मिक समानता पहले सम्भव नहीं दिखती है क्योंकि मनुष्य भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करके को आध्यात्मिक चिंतन की ओर पहुंच सकता है। मनुष्य को भौतिक आवश्यकताओं के कारण चिंतन करना पड़ता है, ये चिंतायें समाप्त होने पर ही मनुष्य आध्यात्मिक चिंतन कर सकता है।

१- डा० राममनोहर लोहिया, मार्क्स गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-२४०
२- वही पृष्ठ-२४१

लोहिया जी असमानता को दूर करने के लिये चाहते थे कि सभी प्रकार की आमदनियों को निश्चित कर दिया जाय, कि देश में कम से कम व्यक्ति की आमदनी कितनी होगी और अधिक से अधिक कितनी । उन्होंने कहा - मैं समझता हूं कि हिन्दुस्तान में एक और दस के रिश्ते का फैसला किया जा सकता है । कम से कम आमदनी एक है तो ज्यादा से ज्यादा आमदनी दस हो, चाहे वह जिस किसी किस्म की हो ।[1]

वे मानते थे कि हिन्दुस्तान की अधिकांश पार्टियां सबको समान अवसर देने के सिद्धांत में विश्वास रखती हैं जबकि सोशलिस्ट पार्टी एक ऐसी पार्टी है जो कि हमारे यहां कुछ जातियां और औरतें पिछड़ी हुई हैं, एक दो वर्ष नहीं, हजारों वर्ष से है इसलिये उनकी बुद्धि में पिछड़ापन आ जाता है इसलिये उनको ज्यादा मौका दो तब वे योग्य बनेंगे, ऐसे सिद्धांत को मानने वाली तो केवल समाजवादी पार्टी है ।[2]

वे मानते थे कि हिन्दुस्तान की सब पार्टियां सोशलिस्ट पार्टी को छोड़कर सेठों और नौकरशाहों की पार्टियां हैं इसलिये सोशलिस्ट पार्टी जोखिम उठाने के लिये तैयार है कि पहले अवसर फिर योग्यता क्योंकि अवसर से ही योग्यता निखरेगी । उनका सुझाव था कि - समान अवसर के सिद्धांत को छोड़कर विशेष अवसर के सिद्धांत को अपनाना पड़ेगा कि जो संस्कार से दबे हुए हैं यानि बुद्धि वाला संस्कार, व्यापार का संस्कार, पढ़ाई-लिखाई का संस्कार, गद्दावाला संस्कार, उनको विशेष अवसर दो ।[3]

लोहिया जी सत्य और सौन्दर्य की भांति समता को भी प्रतिष्ठित करने की आकांक्षा रखते थे । गणेश मंत्री के अनुसार - इस आकांक्षा से प्रेरित होकर लोहिया जी ने निर्गुण और सगुण, समता और पूर्ण बराबरी में तालमेल बिठाने और समता के अतिरिक्त और पास के साथ-साथ भौतिक

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - सगुण और निर्गुण, पृष्ठ-३
२- डा० राममनोहर लोहिया - समाजवादी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ-३
३- वही पृष्ठ-११५

और आध्यात्मिक अर्थों को समझने-समझाने की कोशिश की ।[1]

इसी प्रकार लोहिया जी ने आर्थिक व राजनैतिक परिवर्तन लाने के लिये चौखम्भा राज्य और छोटी मशीन योजना के कार्यक्रम बनाये ।- लोहिया जी ने अपने इन कार्यक्रमों के माध्यम से देश में राजनैतिक और आर्थिक समानता लाने का प्रयास किया ।

लोहिया जी को देश में बढ़ती हुई असमानता और अन्यायों का बोध हो चुका था । वे निम्नवर्ग की मुसीबत को समझते थे इसलिये तेजी से पनप रही शोषण की व्यवस्था में घटाटोप कर्मानुभूति के इस वातावरण में भी सत्ता प्रतिष्ठान को चुनौती देने का बीड़ा उठाया था । वे अपनी फौलादी संकल्प के साथ मुट्ठीभर कार्यकर्ताओं की छोटी सी पार्टी के बूते पर सभी प्रकार के अन्यायों और गैर-बराबरीयों के विरुद्ध संघर्ष में जुट गये थे ।

लोहिया जी ने पीड़ित, शोषित जनता में आत्मविश्वास पैदा किया । वे राष्ट्र में व राष्ट्र के बाहर समानता की स्थापना करना चाहते थे । वर्तमान समय में हमारे युवक नेता राजीव गांधी लोहिया के सपने को साकार करने का प्रयत्न कर रहे हैं । रमेश दीक्षित ने लिखा है - दरअसल समता और स्वतंत्रता पर आधरित जिस नई सभ्यता की सम्भावना लोहिया ने हिन्दुस्तान में देखी थी , उस नई सभ्यता के इक्कीसवीं सदी के भारत में जन्म लेने का भरोसा राजीव गांधी की अब तक की कार्यशैली से देश के नौजवानों को अगर हो चला है तो निश्चय ही यह शुभ संकेत है ।[2]

लोहिया जी को समाज में व्याप्त असमानता से घृणा थी । उन्हें अत्याचार , उत्पीड़न के प्रति क्षोभ था । तथा पीड़ितों के प्रति करुणा थी । रामानन्द मिश्र ने लिखा है - राममनोहर के जीवन को देखकर ऐसा लगता था जैसे अन्याय और पाखण्ड के विरुद्ध क्षोभ केवल उनके अंतर को

१- गणेश मंत्री - मार्क्स, गांधी और सामयिक सन्दर्भ, पृष्ठ-१३६-३७

२- रमेश दीक्षित' लोहिया के सच्चे उत्तराधिकारी राजीव गांधी' रविवार लोहिया के और भारत, मार्च, १९८५, पृष्ठ-४६

भावना न रखकर , उनके रक्त, मांस तथा स्नायु तन्तुओं को झंकृत कर दिया था ।[१]

लोहिया जी समता लाने का प्रयास जीवन पर्यन्त करते रहे । दुनिया के उपेक्षितों , वंचितों , शोषितों तथा दलितों के विशेषकर काली दुनिया के पिछड़ों के जीवन में उन्होंने आत्म विश्वास का जोश और तेज पैदा करने की कोशिश की । उनका विचार था कि इतिहास का चक्का घूमता रहता है , पीड़ित मानवता के चमकने के दिन आ रहे हैं । वे समता की बुनियाद पर विश्व सरकार का सपना देखते थे । उनका विश्वास था कि समता की सारी बातें निरर्थक होंगी जब तक पेट के सवालों के साथ-साथ मन के सवाल भी हल नहीं किये जाते । समता को लाने के लिये आमदनी पर खर्च पर सीमा लगाना, दाम बांधना, जमीन में मुफ्त पानी देना, अंग्रेजी हटाना आदि कार्यक्रम की जरूरत है ।

लोहिया जी के पहले लास्की ने भी समता से सम्बन्धित विचारों को व्यक्त किया है । लेकिन लोहिया जी के विचार समता के सम्बन्ध में लास्की से आगे हैं क्योंकि आपने आध्यात्मिक दर्शन की व्याख्या करके समता के अर्थ को सही रूप में स्पष्ट किया । लोहिया जी के विचारों के आधार पर यदि देश में समता लाने का प्रयास किया जाये तो निश्चय ही देश से विषमता दूर हो सकेगी । यह सही है कि समता की आज जो भूख है , वह लोहिया जी की देन है । आज लोग जो समानता, सम्पत्ति बराबरी और आर्थिक एवम् राजनीतिक क्षेत्र में बराबरी खोजते नजर आते हैं , इसका सबसे पहला मार्ग प्रशस्त करने का श्रेय लोहिया जी को ही है ।

४) **स्वतंत्रता -**

प्रजातंत्र में समानता के साथ-साथ स्वतंत्रता भी बहुत आवश्यक है । स्वतंत्रता प्राप्त होने पर ही व्यक्ति के आन्तरिक गुणों का विकास हो सकता है।

१- रामानन्द मिश्र - " डा०लोहिया का बलिदान " लोहिया:बहु आयामी व्यक्तित्व,पृष्ठ-१

देश में समानता आ जाने पर ही स्वतंत्रता की कल्पना की जा सकती है क्योंकि यदि समानता नहीं होगी तो शक्तिशाली निर्बल को अपने अधीन रखने का प्रयास करेंगे , ऐसी स्थिति में निर्बल की स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है । अत: यह आवश्यक है कि व्यक्ति को समानता और स्वतंत्रता दोनों उपलब्ध हों ।

हीगल मानता है कि व्यक्ति राज्य में ही स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं । राज्य व्यक्ति को पूर्ण बनाने में सहायता प्रदान करता है । सी०एल० वेपर ने लिखा है कि - हीगल कहता है कि आत्मा स्वतंत्र होती है क्योंकि इसका केन्द्र बिन्दु स्वतंत्रता ही है । अत: आत्मा का स्वतंत्रता से विकास होता है और मानव इतिहास इस प्रकार स्वतंत्रता का इतिहास बन जाता है। अत: पूर्ण राज्य वास्तविक रूप से स्वतंत्र राज्य ही है तथा जो नागरिक पूर्ण राज्य हो , पूर्ण कानूनों के आज्ञा पालन की पूर्ण इच्छा रखते हैं , वे स्वतंत्रता का उपभोग करते हैं ।[१]

हीगल राज्य पालन की आज्ञा पालन में ही व्यक्ति की स्वतंत्रता मानता है ।

बेन्थम मानता है कि अच्छा कानून वही है जो व्यक्ति की प्रसन्नता बढ़ाता है । बेन्थम स्वतंत्रता की अपेक्षा सुरक्षा को अधिक महत्वपूर्ण समझता है । सी०एल०वेपर के अनुसार - बेन्थम की प्राकृतिक स्वतंत्रता तथा नागरिक स्वतंत्रता में अन्तर स्थापित करता है । प्राकृति स्वतंत्रता मेरी वह है जिसके अनुसार मैं इच्छानुसार कुछ भी कर सकता हूं , नागरिक स्वतंत्रता के अनुसार - मैं वही कर सकता हूं जो मेरे समुदाय के विरुद्ध न हो । यदि कानून उचित प्रकार के अर्थात् उपयोगी हैं तो वे नागरिक स्वतंत्रता को बढ़ायेंगे जबकि प्राकृतिक स्वतंत्रता को कम करेंगे ।

मिल ने स्वतंत्रता को तीन भागों में विभाजित किया है प्रथम विचार और भावनाओं को रखने की स्वतंत्रता तथा उनकी अभिव्यक्ति करने की

- -

१- सी०एल०वेपर - राज्य दर्शन का स्वाध्ययन, पृष्ठ-१८७

२- वही पृष्ठ-१२२

स्वतंत्रता , दूसरे अपनी रुचि तथा कार्यों को स्वतंत्रता अथवा अपनी रुचि के अनुसार जीवन-यापन की स्वतंत्रता और तीसरे ऐच्छिक आधार पर ऐसे संगठन बनाने की स्वतंत्रता जो दूसरों को हानिप्रद न हो । मिल के अनुसार - अपने कार्यों अथवा व्यवहार में उसी भाग के लिये वह समाज के प्रति उत्तरदायी या समाज के नियंत्रण में है जिसका सम्बन्ध दूसरों से हो । जिस भाग का सम्बन्ध केवल उसी से है , उस पर उसको स्वतंत्रता का पूर्ण अधिकार है । अपने आप पर , अपने शरीर और मस्तिष्क पर व्यक्ति स्वयं शासक और सर्वोच्च स्वामी है ।[1]

मिल का अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता को महत्व देता है क्योंकि विचार स्वातंत्र्य से ही सर्वसाधारण के मानसिक स्तर की उन्नति हो सकती है । मिल दूसरों के हितों के हस्तक्षेप किये बिना व्यक्ति को कार्य करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है । मिल के अनुसार - संक्षेप में जिन बातों से दूसरों से सम्बन्ध नहीं है, उन्हें अपने ढंग से करने की व्यक्तिगत स्वतंत्रता होनी चाहिये । जहां व्यक्ति को इस प्रकार की स्वतंत्रता नहीं मिली है और जहां उसे समाज में प्रचलित परम्पराओं और रीतियों के अनुसार आचरण करना पड़ता है वहां व्यक्ति के सुख और कल्याण के एक मुख्य साधन का अभाव रहता है और यह व्यक्ति और समाज की प्रगति का भी एक बहुत ही प्रमुख बाधक है ।[2]

स्वाधीनता को क्या अर्थ दिया गया है इसके विषय में हमें यह अवश्य स्वीकार करना चाहिये - ग्रीन के अनुसार - एक मनुष्य के साथ सामाजिक तथा राजनीतिक सम्बन्धों के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु को व्यक्त करने के लिये उस शब्द के प्रत्येक प्रयोग में एक रूपक होता है , कुछ प्रयोग में इसका अर्थ स्पष्ट नहीं है । दूसरों की बाध्यता से वास्तव में कोई न कोई अवश्य अभिप्रेत होती है , वस्तु इस विमुक्ति का विस्तार तथा उसके प्रतिबन्ध ,जबकि

- -

१- जान स्टुअर्ट मिल - स्वतंत्रता और प्रतिनिधि शासन,पृष्ठ-१५
२- वही पृष्ठ-७२-७३

समाज की विभिन्न अवस्थाओं में स्वाधीन पुरुष इसका उपभोग करता है, बहुत ही विभिन्न होते हैं।[१]

ग्रीन ने स्वतंत्रता के सम्बन्ध में लाक के विचारों को व्यक्त किया है- लाक 'नागरिक शासन' अध्याय ७ धारा ८७, क्योंकि मनुष्य का जन्म पूर्ण-स्वाधीनता के प्रति अधिकार के साथ हुआ है तथा प्रकृति की विधि के अनुसार समस्त अधिकारों तथा विशेष अधिकारों के अनियंत्रित उपभोग के अधिकार के साथ हुआ है, जिसमें संसार के किसी मनुष्य का या समस्त मनुष्यों का समान भाग है, उसे प्रकृति द्वारा यह शक्ति मिली है कि वह दूसरे मनुष्यों के विरुद्ध न केवल अपने जीवन, स्वाधीनता और सम्पत्ति की रक्षा करे तथा दूसरे व्यक्तियों की ओर से उसके भंग का निर्णय करे और उसके लिये दण्ड दे।[२]

ग्रीन का कहना है कि रूसो सामान्य इच्छा के आज्ञा पालन में व्यक्ति का हित बताता है और इसमें व्यक्ति की स्वाधीनता मानता है। व्यक्ति सबके साथ संयुक्त होकर केवल अपनी आज्ञा का पालन करता है और पहले की तरह स्वाधीन रहता है। ग्रीन व्यक्ति को स्वाधीनता का अधिकार प्रदान करने के पक्ष में है। वह लिखता है - उस प्राणी के जीवन का कोई अधिकार नहीं हो सकता जिसे यह अधिकार नहीं है कि वह अपनी इच्छा की गति के अनुसार अपने जीवन का उपयोग कर सके।[३]

स्वतंत्रता से रसेल का अभिप्राय व्यक्ति में ऐसी क्षमताओं को उत्पन्न करने की सुविधायें प्रदान करना है जो उसकी सृजनात्मक शक्तियों को विकसित कर सके। इन दोनों में व्यक्ति को पूर्णतया स्वतंत्र विकास का अवसर दिया जाना चाहिये। स्वतंत्रता को रसेल एक महत्वपूर्ण राजनैतिक आदर्श मानता है। उसने कहा - मैं यह नहीं कहता कि स्वतंत्रता सब चीजों में से श्रेष्ठतम चीज है, श्रेष्ठतम चीजें अन्तःकरण से आती हैं, वे हैं सृजनात्मक

- -

१- टाम हिल ग्रीन - राजनीतिक दायित्व के सिद्धांत, पृष्ठ-२
२- वही पृष्ठ-६५
३- वही पृष्ठ-१४६

कला , प्रेम तथा चिंतन । उन्हें राजनीतिक स्थितियों से सहायता मिल सकती है या अवरुद्ध किया जा सकता है परन्तु इनसे वास्तव में उन्हें उत्पन्न नहीं किया जा सकता और स्वतंत्रता स्वयं अपने में तथा अन्य वस्तुओं के सम्बन्ध में सर्वोत्तम वस्तु है जिसे कि राजनैतिक तथा आर्थिक स्थितियां सुरक्षा प्रदान कर सकती हैं ।[१]

रसेल व्यक्ति को स्वतंत्र चिंतन करने तथा विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता देने का समर्थक है ।

लास्की ने भी तीन प्रकार की स्वतंत्रतायें बतलाई है - निजी - स्वतंत्रता , राजनैतिक स्वतंत्रता और आर्थिक स्वतंत्रता । लास्की ने लिखा है- बिना अधिकारों के स्वतंत्रता नहीं हो सकती क्योंकि बिना अधिकारों के मनुष्य व्यक्तित्व की आवश्यकताओं से असम्बद्ध होकर कानून के अधीन रह जायेंगे ।[२]

मनुष्य की सुविधा के लिये जो नियम बनाये जाते हैं, उनका पालन करना परतंत्र होना नहीं माना जायेगा । लास्की ने स्वतंत्रता के बारे में कहा कि - स्वतंत्रतायें वे अवसर हैं , जिन्हें इतिहास ने व्यक्तित्व के विकास के लिये मूल आवश्यकता के रूप में बतलाया है और स्वतंत्रतायें अधिकारों से अविच्छिन्न है क्योंकि अन्यथा उनकी सिद्धि एक ऐसी अनिश्चितता से रुक जाती है , जिसके कारण उनका गुण नष्ट हो जाता है ।[३]

गांधी जी भी व्यक्ति की स्वतंत्रता के पक्ष में थे । उनका विचार था कि प्रजातंत्र की सच्ची से सच्ची परीक्षा इस बात में है कि वह प्रत्येक नागरिक को मनचाहा काम करने की क्षमता प्रदान करता है , जब तक वह नागरिक दूसरों के जीवन या सम्पत्ति को नुकसान नहीं पहुंचाती

- -

१- बर्टेण्ड रसेल - रोड्स टू फ्रीडम ,पृष्ठ-१२१
२- लास्की - राजनीति के मूल तत्व , पृष्ठ-११३
३- वही पृष्ठ-११४
४- गांधी जी - सं०आर०के०प्रभु प्रजातंत्र सच्चा और झूठा, पृष्ठ-३३

लोहिया जी भी व्यक्ति की स्वतंत्रता को महत्व देते हैं और वे राज्य के ऊपर व्यक्ति को मानते हैं। लोहिया जी चाहते थे कि यदि राज्य व्यक्ति के अधिकारों का हनन करता है तो व्यक्ति को उसका विरोध करने का अधिकार होना चाहिये। वे संगठन और व्यक्ति की चर्चा करते हुए कहते हैं - संगठन लगातार व्यक्ति की स्वतंत्रता का अपहरण करता है, इसका मतलब यह नहीं कि व्यक्ति के महत्वों और कल्याण में जरूरी तौर पर कमी आई है, व्यक्ति की स्वतंत्रता की क्रान्ति पर विचार करते हुए हमें भलाई के लिये आयोजन सम्बन्धी अपने युग की वास्तविकता को ध्यान में रखना चाहिये।[1]

लोहिया जी मानते थे कि असमानता सम्पन्न भारत देश में स्वतंत्रता की बात करना न केवल हास्यास्पद है बल्कि अत्यन्त क्रूरता भी है क्योंकि स्वतंत्रता का तब तक कोई मतलब नहीं होता जब तक हम सब को सामान्य सुविधाओं से सम्पन्न नहीं कर देते। लोहिया जी असमानता को दूर करने का प्रयास करते रहे। वे स्वतंत्रता को शाब्दिक नहीं, सही रूप देना चाहते थे। उन्होंने कहा - जाहिर है कि सभी लोगों के निजी खर्च - राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और करोड़पति के भी, एक सीमा के नीचे रहेंगे तो चीजों के दाम अपने आप कम होंगे और कम आमदनी वाले लोग भी अपनी मेहनत का फायदा उठा सकेंगे, इसके अलावा जीवन और विचार के नये स्तर पैदा करने हैं।[2]

लोहिया जी मानते थे इस प्रकार देश में स्वतंत्रता का वातावरण तैयार किया जा सकता है। वे व्यक्ति को वाणिज्य की स्वतंत्रता देना चाहते थे, उसपर किसी प्रकार का अंकुश स्वीकार नहीं करते थे। उन्होंने कहा - हमलोगों का यह कहना कि वाणी की स्वतंत्रता होनी चाहिये और दल का जो निर्णय है, उसके अनुसार काम हो लेकिन दल के प्रत्येक सदस्य को स्वतंत्रता होना चाहिये कि वह निर्णय के खिलाफ बोल सके, लिख सके,

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-३८

२- डा०राममनोहर लोहिया - 'धन का वैभव या उसका सुधार' जन फिल० १६६८, पृष्ठ-३६

प्रचार कर सके , खुद विचार कर सके , दूसरों से विचार करा सके लेकिन उसका कर्म निर्णय के अनुसार हो , यह एक जबर्दस्त बात है कि भाषण की स्वतंत्रता रहे ।[१]

१९५४ में जब प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं को अंग्रेजों के जमाने के स्पेशल पावर्स एक्ट के अन्तर्गत बढ़ाई हुई सिंचाई की दरों को न छिपाने के आरोप में गिरफ्तार किया गया । इस गिरफ्तारी को लोहिया जी ने इलाहाबाद न्यायालय को चुनौती दी और ये मुकदमा बहुत मशहूर हुआ इस निर्णय में उच्च न्यायालय ने उत्तर प्रदेश स्पेशल पावर्स एक्ट १९३२ की धारा ३ भारतीय संविधान के अन्तर्गत अनुच्छेद १९(१) से असंगत बताया और उसे व्यर्थ घोषित किया । कन्हैयालाल डूंगरवाल ने लिखा कि - इस निर्णय से डा० लोहिया ने न सिर्फ २७०० साथी सत्याग्रहियों को मुक्त करवाया बल्कि उत्तर प्रदेश सरकार से याचिका खर्च भी वसूल किया और संविधान शास्त्रियों को एक नई सोचने की प्रेरणा दी । भाषण स्वतंत्रता के दायरे को इस निर्णय के द्वारा अधिक बढ़ाने में उन्हें सफलता मिली । यह निर्धारित किया गया कि जनता को टैक्स नहीं देने को उकसाना भाषण की स्वतंत्रता है और कोई भी कानून जो लोक व्यवस्था के नाम पर स्वतंत्रता को खत्म करने वाला होगा, वह व्यर्थ होगा ।[२]

लोहिया जी सरकार के किसी भी कानून का जो अनुचित है , जिससे जनता को असुविधा होती है , उसका विरोध करने की स्वतंत्रता प्रदान करते हैं । वे मानते थे कि समानता की स्थापना के बाद भी स्वतंत्रता सम्भव है । वे स्त्री स्वतंत्रता के भी समर्थक थे ।

लोहिया जी से पहले स्वतंत्रता के सम्बन्ध में कई राजनीतिक विचारक जैसे - हाब्स , बेन्थम , मिल , ग्रीन , बर्टेण्ड रसेल और लास्की अपने विचार व्यक्त कर चुके हैं इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि लोहिया जी के स्वतंत्रता सम्बन्धी विचार मौलिक हैं ।

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - समाजवादी आन्दोलन का इतिहास,पृष्ठ-१३६

२- कन्हैयालाल डूंगरवाल " डा०लोहिया जिनसे जज भी प्रभावित होते थे । दैनिक भास्कर,झांसी मंगलवार,१५ अगस्त,१९८५ पृष्ठ-४

५) **जागृत जनमत -**

जनतंत्र चूंकि जनता का शासन होता है , जनता स्वयं शासक होता है इसलिये जनता को जनतंत्र में यह ध्यान रखना चाहिये कि यदि कोई उम्मीदवार अधिकारों का दुरुपयोग करता है तो उसका विरोध करना चाहिये । चुने हुए प्रतिनिधि जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं । लास्की का मत है कि लोकतंत्रात्मक राज्य में व्यवस्था बहुमत के द्वारा जब चाहे शासन के सिद्धांतों को और इसलिये उन उद्देश्यों को जिनकी राज्य अथवा पूर्ति करते हैं , बदल सकते हैं ।[1]

प्रजातंत्र में अवांछनीय कानूनों को बहुमत के द्वारा बदलने का अधिकार जनता को प्राप्त है । लास्की ने लिखा है - ज्यों ज्यों लोकमत अधिक प्रबुद्ध होता जायेगा , हम यह आशा करते हैं कि राज्य को सामाजिक कल्याण की चिंता बढ़ती जायेगी तथा राज्य का कार्यतंत्र समाज के विशिष्ट हितों की सेवा के पक्षपात से मुक्त होता जायेगा ।[2]

मिल भी मानता है कि प्रजातंत्र में शासक जनता के मस्तिष्क से दूर नहीं रह सकता । प्रतिनिधि जनता पर अवलम्बित रहते हैं । वह मानता है कि जनता को जागरूक होना चाहिये । सी०एल०वेपर ने लिखा है - किसी भी राजनीतिक चुनाव में मतदाता एक पूर्ण नैतिक बंधन में होता है ताकि वह अपने हितों को त्याग कर जनता के हितों को ध्यान में ला सके और अपने निर्णय में जो सर्वश्रेष्ठ उम्मीदवार हो , उसी को मत दे । उसे ऐसा सोचते रहना चाहिये मानो सम्पूर्ण निर्वाचन एक पर अवलम्बित है और वही अकेला मतदाता है ।[3]

मिल व लास्की के समान डा० लोहिया जी प्रजातंत्र के लिये जागृत जनमत की आवश्यकता पर जोर देते थे । लोहिया जी जनता को सर्वोपरि मानते थे और जनता को सर्वशक्ति सम्पन्न करना चाहते थे । वे जानते थे

- -

१- लास्की राज्य का सैद्धांतिक और व्यावहारिक स्वरूप, पृष्ठ-८७

२- वही पृष्ठ-१०६

३- सी०एल०वेपर - राज्य दर्शन का स्वाध्ययन, पृष्ठ-१४४

कि जनता को शक्ति सम्पन्न होने के लिये उसे लायक बनाना होगा, नहीं तो भारी अनर्थ होने की सम्भावना रहती है इसलिये वे प्रतिनिधियों के प्रशिक्षण के साथ-साथ जनता को शिक्षित करना चाहते थे। इसके लिये लोहिया जी एक ऐसे विद्यालय की स्थापना करना चाहते थे, जहां समाजवादी शिक्षा की व्यवस्था हो। उन्होंने साफ कहा - समाजवाद का एक स्कूल होना चाहिये, वह नहीं हो पाया एक ही स्कूल क्यों? इतना बड़ा हमारा देश है, इसको देखते हुए तो ५, १०, १५ होने चाहिये या एक शिविर जैसा कि आज आप यहां कर रहे हो, बहुत कम हो पाये है।[1]

दुनिया के व्यापक क्षेत्र में लोहिया जी जोखिम उठाने की बात कहते हैं वे मानते हैं कि बिना जोखिम के कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। लोहिया जी मतदाताओं के भ्रष्ट आचरण से परिचित थे। वे मानते थे कि यदि मतदाता अपना मतदान प्रतिनिधि की योग्यता को ध्यान में रखकर नहीं करते बल्कि अपने विशेष हित के कारण करते हैं तो अयोग्य व्यक्तियों को चुनकर वे देश का भविष्य अन्धकार मय बनाते हैं। उन्होंने कहा - १५ से २० सैकड़ा जरूर होते हैं, जो वोट डालते है इस आधार पर उनके लड़के को वजीफा किसने दिलाया, उनकी खेती को तकावी किसने दिलाई, उनके भतीजे की नौकरी किसने दिलाई, ये होते हैं वोट के ठेकेदार और उनको सरकारी पार्टी अपने साथ कर लेती है।[2]

लोहिया जी के समाजवादी स्कूल की धारणा कल्पनामूलक प्रतीत होती है क्योंकि इस प्रकार के स्कूल की न तो अभी तक स्थापना हुई है और न ही स्थापित होने की आशा है। इनके समाजवादी स्कूल के विचार को व्यवहारिक रूप प्रदान करना भी कठिन कार्य है। हाँ यह बात उचित प्रतीत होता है कि जनता को प्रतिनिधि का चुनाव उसकी योग्यता को ध्यान में रखकर करना चाहिये लोहिया जी के कहे अनुसार मतदाता अपने प्रतिनिधि का चुनाव अपने हित को ध्यान में न रखकर उसकी योग्यता के आधार

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - देश-विदेश नीति के कुछ पहलू, पृष्ठ-४
२- डा०राममनोहर लोहिया - सुधरो अथवा टूटो, पृष्ठ-३०

पर करेंगे तो देश को सही नेतृत्व प्राप्त होगा । ये प्रतिनिधि देश की प्रगति की ओर ले जाने में समर्थ हो सकते हैं । प्रजातंत्र सरकार जागृत जनता पर ही निर्भर है ।

६) धर्म , जाति , वर्ग व लिंग निरपेक्षता -

लोहिया जी चाहते थे कि प्रत्येक धर्म के व्यक्तियों को राजनीति में भाग लेने का अवसर मिलना चाहिये । उन्होंने देश की प्रगति के लिये समाज में व्याप्त धार्मिक संकीर्णता को दूर करने पर जोर दिया । उन्होंने माना हिन्दू धर्म में कट्टर पंथी जोश बढ़ने पर हमारा देश हमेशा सामाजिक और राजनीतिक दृष्टियों से टूटा है और राष्ट्र में राज्य और समुदाय के रूप में बिखराव आया है । देश में धार्मिक एकता उदारवादियों के प्रभाव से हो आ सकती है । लोहिया जी के अनुसार - मैं भारतीय इतिहास का एक भी काल नहीं जानता जिसमें कट्टरपंथी हिन्दू धर्म भारत में एकता या खुशहाली ला सका हो । जब भी भारत में एकता या खुशहाली आई , तो हमेशा वर्ण , स्त्री ,सम्पत्ति आदि सहिष्णुता के सम्बन्ध में हिन्दू धर्म में उदारवादियों का प्रभाव अधिक था ।[१]

लोहिया जी का विचार था कि कट्टर हिन्दू धर्म औरउदार हिन्दू धर्म की लड़ाई का अन्त नजदीक आ गया है । अगर कट्टरपंथी को सफलता मिलती है तो देश के निश्चित ही टुकड़े होंगे और भारत का विभाजन न केवल हिन्दू-मुसलमान से होगा बल्कि वर्गों व प्रांतों की दृष्टि से भी होगा। इसलिये वे उदारपंथी हिन्दू धर्म के समर्थक थे । उन्होंने कहा कि - केवल उदार हिन्दू धर्म ही राज्य को कायम कर सकता है । अत: पांच हजार वर्षों से अधिक की लड़ाई अब इस स्थिति में आ गई है कि एक राजनीतिक समुदाय और राज्य के रूप में हिन्दुस्तान के लोगों की हस्ती ही इस बात पर निर्भर है कि

१- डा०राममनोहर लोहिया - हिन्दू बनाम हिन्दू २४-३० मार्च,१९८५ रविवार , पृष्ठ-३०-३१

हिन्दू धर्म में उदारता की कट्टरता पर जीत हो ।[1]

लोहिया जी मानते थे कि जब भारत में धार्मिक विभेदों का अन्त हो जायेगा तभी एकता स्थापित हो सकती है, यह एकता प्रजातंत्र के लिये आवश्यक है । उन्होंने कहा - भारत के दिमाग की नई कोशिश तब शुरू होगी जब बौद्धिक का रागात्मक से मेल होगा, जो विविधता में एकता को निष्क्रिय नहीं बल्कि सशक्त सिद्धांत बनायेगी और स्वच्छ लौकिक खुशियों को स्वीकार करके भी सभी जीवों और वस्तुओं की एकता को नजर से ओझल न होने देगा । वे धार्मिक कर्मकाण्ड के विरोधी थे । उन्होंने धार्मिक ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया और धर्म के गम्भीर विषयों पर जानकारी प्राप्त की । उन्होंने १९५० में आर्यसमाज की एक सभा में बोलते हुए अपने धार्मिक विचारों को स्पष्ट करते हुए कहा - मैं धर्म पर बोलूं तो मेरी दृष्टि वह नहीं है जो साधारण तौर से धर्म वाले रखते हैं ।[2]

लोहिया जी ने नदियों की पवित्रता पर बल दिया उन्होंने नदियों की सफाई के सम्बन्ध में विचार धार्मिक भावना से प्रेरित होकर व्यक्त नहीं किया । उनका कहना था कि - इतिहास में अधिकतर राजधानियां नदियों के किनारे रही हैं जैसे राम की अयोध्या, सरयू नदी के किनारे, कुरु पांचाल मौर्य तथा गुप्त गंगा के किनारे और शौरसेनी नगर और राजधानियाँ यमुना के किनारे रही हैं । आजकल बड़े-बड़े शहरों में बड़ी-बड़ी नदी जैसे गंगा-यमुना में कारखानों का गंदा पानी और मैला मिलाया जाता है, इससे नदियों का पानी दूषित हो रहा है । उन्होंने कहा कि - आज हिन्दुस्तान में ५०करोड़ लोग बसते हैं, एक-दो करोड़ के बीच रोजाना किसी न किसी नदी में नहाते हैं और ५०-६०लाख पानी पीते हैं । उनके मन और आत्मायें इन नदियों से बंधे हैं। नदिया है कैसी ? शहरों का गंदा पानी इनमें गिराया जाता है । बनारस के पहले जो शहर हैं - इलाहाबाद, मिर्जापुर, कानपुर इनका मैला

१- डा०राममनोहर लोहिया - " हिन्दू बनाम हिन्दू " २४-३० मार्च, १९८५ रविवार, पृष्ठ-३३

२- डा०राममनोहर लोहिया - धर्म पर एक दृष्टि, पृष्ठ-२

कितना मिलाया जाता है इन नदियों में और कारखाने के गंदे पानी के मिल जाने से इनकी हालत क्या बनती है।[1]

इन नदियों में नहाने से और इनका गंदा पानी पीने से देश में बीमारियां फैलती हैं और व्यक्तियों का स्वास्थ्य निरंतर गिरता जाता है। इस कारण लोहिया जी नदियों की सफाई के अभियान पर जोर देते थे उन्होंने नदियों की सफाई से सम्बन्धित जो विचार प्रस्तुत किये उनको वर्तमान सरकार व्यवहारिक रूप प्रदान कर रही है। वर्तमान समय में सरकार का गंगा की सफाई का अभियान शुरू हो गया है। इसके लिये सरकार ने बड़ी योजनायें बनाई हैं, निकट भविष्य में शीघ्र ही गंगा का पानी पूर्ण स्वच्छ होने की आशा है।

लोहिया जी मानते थे कि जो व्यक्ति गैरों को अपना समझे वही सच्चा ज्ञानी है। वे मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म सम्पूर्ण मानवता से प्रेम करना मानते थे। वे व्यक्ति में हठ और झुकाव का समन्वय चाहते थे। उन्होंने कहा कि - अगर किसी राष्ट्र में या व्यक्ति में अड़ने की ज्यादा वृत्ति हो जावे कि वह हठ का रूप ले ले तो वह खराब होता है लेकिन यदि झुकने की वृत्ति हो जावे कि वह हमेशा आत्म समर्पण का रूप ले ले तो वह व्यक्ति सदा के लिये जहर बन जावेगा, दोनों का मर्यादा होना चाहिये।[2]

लोहिया जी अनीश्वरवादी थे। वे मंदिर व मूर्तिपूजा की निंदा करते थे। उन्होंने भारत को नई दिशा दी इसलिये उनको नई सभ्यता का पैगम्बर कहा जा सकता है। धर्म और राजनीति का सम्बन्ध बताते हुए उन्होंने कहा कि धर्म दीर्घकालीन राजनीति है और राजनीति अल्पकालीन धर्म है .... धर्म है अच्छाई को करना और अच्छाई की तारीफ करना और राजनीति है बुराई से लड़ना और बुराई से निंदा करना। एक ही चीज के दो पहलू हैं।[3]

१- डा० राममनोहर लोहिया - ' नदियां साफ करो ' मर्यादित उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व और रामायण मेला, पृष्ठ-२०

२- डा० राममनोहर लोहिया - धर्म पर एक दृष्टि, पृष्ठ-१२

३- डा० राममनोहर लोहिया - भारत में समाजवाद, पृष्ठ-५-६

लोहिया जी को इस बात का अहसास हो चुका था कि धर्म के प्रभाव के कारण राजनीति में साम्प्रदायिकता की भावना बढ़ गई । धर्म न केवल सामाजिक संरचना की कमर तोड़ देता है बल्कि अर्थव्यवस्था को भी कमजोर देता है । धर्म के आधार पर खून-खराबा हो जाता है । इस कारण लोहिया जी को धर्म से नफरत हो गई थी । वहधर्म को कुछ न तथा व्यापक अर्थ में स्वीकार करते थे । डा०राजेन्द्र मोहन भटनागर ने लिखा है कि - वे धर्म को राजनीति से जुड़ता हुआ नहीं देखना चाहते थे और ना ही धर्म के कारण समाज में उथल पुथल को वे पसंद करते थे ।[१]

लोहिया जी मानते थे कि - प्रजातंत्र के लिये आवश्यक है कि धार्मिक संकीर्णता को दूर किया जाये क्योंकि इससे देश कई भागों में बट जाता है । उन्होंने सदैव इस बात पर जोर दिया कि समाज को उन्मुक्त बनाये बिना हमारी प्रगति का लाभ लाभ सामने नहीं आ सकता । समाज को धर्मनिरपेक्षता में जब तक प्रकाश नहीं फैलेगा , तब तक भौगोलिक आजादी पंगु हो बनी रहेगी और हमारी आजादी नाटक बनी रहेगी । वे धर्म को राजनीति से अलग रखना चाहते थे क्योंकि इससे साम्प्रदायिक कट्टरता बनता है । धर्म और राजनीति को अलग रखने का जो आधुनिक सिद्धांत है , उसका सबसे बड़ा मतलब यही है कि साम्प्रदायिक कट्टरता उपजने न पाये । एक मात्र यही है कि राजनीति के दण्ड देने के अधिकार और धर्म की व्यवस्थाओं को अलग रखना चाहिये अन्यथा दकियानूसी और भ्रष्टाचार बढ़ता है।इसलिये यह ध्यान रखना जरूरी है कि धर्म औरराजनीति एक दूसरे से सम्पर्क न तोड़े और मर्यादा - निभाते रहें ।

लोहिया जी ने धार्मिक कुरीतियों और झूठे पाखण्ड की निंदा की है । उन्होंने हिन्दू व मुस्लिम दोनों धर्म के पाखण्ड पर तीखे प्रहार किये। मुख्तार अनीस के अनुसार - स्वतंत्रोत्तर काल में राममनोहर लोहिया ने धर्म-

- -

१- डा०राजेन्द्र मोहन भटनागर - समग्र लोहिया, पृष्ठ-१९२-९३

निरपेक्षता की अपनी अलग व्याख्या की । उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को समीप लाने के लिये कुप्रथाओं पर और प्रतिक्रियावादी विचारों पर तीखे प्रहार किये । मुझे स्मरण है कि जब वे सार्वजनिक सभाओं में जनेऊ पहनने, टीका लगाने, चोटी रखने पर हिन्दुओं को दाढ़ी रखने और पर्दा प्रथा के विरुद्ध मुसलमानों की तीखी आलोचना करते थे तो हंगामा खड़ा हो जाता था।[1]

लोहिया जी हिन्दुस्तान में धर्म के आधार पर विभेद नहीं देखना चाहते थे । वे चाहते थे कि सार्वजनिक जीवन में सभी हिन्दुस्तानी एक दिखाई दें । वे अपने सिद्धांतों के प्रति समर्पित थे , उनका स्वभाव समझौतावादी नहीं था । उनका विश्वास था कि - धर्म निरपेक्ष भारत में शिक्षा संस्थाओं से धर्मसूचक एवम् जाति सूचक शब्दों को हटाना चाहिये । केन्द्रीय सरकार के काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से 'हिन्दू' शब्द हटाने के प्रस्ताव का लोहिया जी ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति से समर्थन किया ।

लोहिया जी ने साम्प्रदायिकता से लड़ने की अद्भुत क्षमता थी । उनके विचार हमारे हिन्दू तथा मुस्लिम वर्ग के लोगों का कट्टर साम्प्रदायिक भावना और गलतफहमियों को निश्चित रूप से साफ कर सकते हैं । इन्दौर में हुई हिंसात्मक घटनाओं से गरीबों का नुकसान हुआ था । आज भी राजनीतिक दल हिन्दू राष्ट्र और धर्म की रक्षा के नाम पर लोगों में बदले की भावना उभाड़ रहा है और सत्तारूढ़ दल नेतृत्व विहीन जान पड़ता है । कैलाश जैन ने लिखा है कि - ऐसी नाजुक स्थिति में इन्दौर के प्रमुख संघोपा नेताओं को चाहिये कि वे लोहिया के पुस्तकों में व्यक्त किये गये महत्वपूर्ण विचारों को एक छोटी पुस्तक में प्रकाशित करवाकर इन्दौर की जनता में वितरित करें ताकि यहाँ के चन्द कट्टरवादी हिंसक तत्वों के फिरकापरस्ती का पर्दाफाश हो सके तथा फिर से नगर में शांति का वातावरण पैदा हो सके ।[2]

- -

१- मुख्तार अनीस - 'लोहिया का धर्म निरपेक्षता' २४-३० मार्च, रविवार १९८५, पृष्ठ-४४

२- कैलाश जैन 'हिन्दू बनाम हिन्दू' जन अगस्त १९६९, पृष्ठ-६५

लोहिया जी के धर्म निरपेक्षता से सम्बन्धित विचारों के आधार पर भारत में व्याप्त धार्मिक कुरीतियों और पाखण्डों को दूर किया जा सकता है। उन्होंने धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन से कुछ ऐसे निष्कर्ष निकाले जिनका सार्वभौमिक रूप से राजनीति जीवन में प्रयोग किया जा सकता है। धर्म के प्रति उनकी रुझान सदैव एक अन्वेषक के रूप में रही है। उन्होंने आध्यात्मिकता को नैतिकता से जोड़ने का प्रयास किया। वे चाहते थे कि देश में ऐसी प्रजातंत्र सरकार स्थापित हो जिसमें बिना भेदभाव के सभी धर्म के लोगों को समान अवसर प्राप्त हो। वे हिन्दू और मुस्लिम एकता देश में लाना चाहते थे। उनके अनुसार - हिन्दुस्तान का भविष्य चाहे जैसा भी हो, हिन्दू को अपने आप को पूरी तरह बदल कर मुसलमान के साथ ऐसी रागात्मक एकता हासिल करनी होगी, सारे जीवों और वस्तुओं की रागात्मक एकता में हिन्दू का विश्वास भारतीय राजनीति की राजनीतिक जरूरत भी है कि हिन्दू मुसलमान के साथ एकता महसूस करे।[१]

लोहिया जी चाहते थे कि धर्म के आधार पर जो संघर्ष होते रहे हैं या विवाद होते रहे हैं, उनको देश की एकता की स्थापना के लिये समाप्त करना होगा। समाज में धार्मिक संकीर्णता के कारण बिखराव न आये और आपसी फूट पैदा न हो क्योंकि इससे देश की एकता खतरे में पड़ सकती है। राज्य में धर्म का कोई स्थान नहीं होना चाहिये, उसके लिये सभी धर्म बराबर हैं।

देश में जातीयता की समस्या का हल ढूंढने के पहले जाति की परिभाषा को स्पष्ट करना आवश्यक है। इरावती कर्वे ने जाति की परिभाषा इस प्रकार की है - जाति एक ऐसा समूह है जो अन्तर्विवाही होता है, एक निश्चित क्षेत्र के (सामान्यतः) एक भाषा , क्षेत्र के अन्तर्गत) में जिसका आपातीय फैलाव होता है , जो एक या अधिक पारम्परिक व्यवस्थाओं

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - हिन्दू बनाम हिन्दू , पृष्ठ-१९

में संलग्न पाया जाता है , जिसकी जातीय संस्तरण में कमो-वेश सुस्थिर अथवा ऊँची स्थिति होती है और अन्य जातियों के प्रति जिसका व्यवहार पारम्परिक आचार-विचारों द्वारा निर्दिष्ट होता है ।[१]

भारतीय शास्त्रकारों ने भी जातियों की बाहुल्यता और सीमाबंदी वैधता प्रदान करने में योग दिया और यह भी तय किया कि जाति अपनी सीमा में रहे । व्यक्तियों को अपनी जाति की परम्पराओं के अनुसार ही चलना पड़ता है । इरावती कर्वे ने लिखा है - इस समाज व्यवस्था में व्यक्तिगत व्यवहार - स्वातंत्र्य की छूट नहीं थी । व्यक्ति के व्यवहार -प्रतिमानों को उसकी जाति द्वारा निर्धारित किया जाता है । सभी जातियों का एक संस्तरण का पदानुक्रम बना । इस पदानुक्रम में ब्राम्हणों की सर्वोच्च तथा अछूत जातियों की निम्न स्थिति थी । ब्राम्हण जातियां काफी पवित्रता-उपमा और अछूत जातियां काफी अपवित्रता का कारक मानी जाती है ।[२]

भारत में जाति व्यवस्था के कारण व्यक्तियों को अपनी जाति की सीमाओं में रहना पड़ता है इससे उसमें संकीर्ण भावनाओं का विकास होता है। व्यक्ति देश हित के स्थान पर जाति के हितका अधिक ध्यान रखते हैं ।जातीय विषमता ने भारतीय समाज में मानव और मानव के बीच भयंकर खाई पैदा कर दी है , सारे समाज को छिन्न -भिन्न कर दिया और देश को निर्बल बना दिया है । जातीय विषमता का सम्बन्ध न सिर्फ सामाजिक विषमता से ही है बल्कि आर्थिक , राजनैतिक, धार्मिक एवं भावाई विषमता से भी बहुत ज्यादा है । सभी क्षेत्रों में द्विजों के अमीरों को ही वर्चस्व प्राप्त है । यह जाति विषमता न केवल हिन्दू जातियों के बीच है बल्कि मुसलमानों के बीच भी है । इस जातीय विषमता के कारण ही भारत इतिहास में कई बार परतंत्र हुआ । देश की प्रगति के लिये आवश्यक है कि यहाँ पर ऐसी शासन व्यवस्था हो जो जातिगत भेदभाव पर आधारित न हो ।

- -

१- इरावती कर्वे हिन्दू समाज और जाति व्यवस्था ,पृष्ठ-६

२- वही पृष्ठ-८०

लोहिया जी मानते थे कि प्रजातंत्र में सभी जातियों को समान रूप से उन्नति के अवसर प्राप्त हो सकते हैं। वे जाति प्रथा की समस्या के प्रति विशेष रूप से चिंतित थे। उन्होंने जाति की परिभाषा देते हुए लिखा है- जाति एक ऐसा चौखटा है जिसे बदला नहीं जा सकता। उसमें रहने के लिये बड़ी जबर्दस्त कटुता, तौर-तरीके या अनेक तरीकों से सोचना और काम करना नितान्त आवश्यक है।[1]

लोहिया जी मानते थे कि सभी जातियों को उन्नति के समान अवसर प्राप्त हों। वे द्विजों से आशा करते थे कि वे निम्न जातियों की स्थिति सुधारें। शूद्र समानता तभी हासिल कर सकेगा जब द्विज अपना निजी संरक्षण उसे देकर योग्य बनाये और बराबरी हासिल करने की कोशिश करे। जाति देश की प्रगति के लिये खतरनाक साबित हुई है। प्रजातंत्र में चुनाव योग्यता के आधार पर होना चाहिये जबकि हमारे देश में उम्मीदवार का चयन योग्यता नहीं बल्कि जाति के आधार पर किया जाता है। लोहिया जी के अनुसार- अगर जाति की जाति एक साथ वोट नहीं करती तो यह हैरानी की बात है। मतदाता जाति से हटकर २०प्रतिशत के ऊपर मुश्किल से अगर कभी हो तो होता है और वह भी तब जबकि जाति के एवज में कोई मुश्किल और सुरक्षा उपलब्ध हो।[2] लोहिया जी का विचार था कि - भारत में व्यक्ति देश की अपेक्षा जाति के हित को अधिक महत्व देता है। वह न्याय व राष्ट्रीय-कल्याण की अपेक्षा अपनी जाति व रिश्तेदारों के कल्याण की चिंता करता है और इन्हीं का हित करना उसका कर्म हो जाता है। वे मानते थे कि जब जाति की आवश्यकतायें राष्ट्र की आवश्यकताओं से भिड़ जाती हैं, इस भिड़न्त में जाति की जीत होती है क्योंकि विपत्ति में अथवा रोजमर्रा की तकलीफों में व्यक्ति की यही एक मात्र विश्वसनीय सुरक्षा है।[3]

वे मानते थे कि राष्ट्र का नेतृत्व करने का अवसर सभी जातियों को

१- डा० राममनोहर लोहिया- जाति प्रथा, पृष्ठ-७८
२- वही पृष्ठ-७९
३- वही पृष्ठ-८१

प्राप्त होना चाहिये , तभी क्रांति होगी और जातियां जाति के हित की अपेक्षा राष्ट्र के हित का ध्यान रखेंगी । प्रजातंत्र में सभी जातियों को समान रूप से उन्नति का अवसर मिलना चाहिये । लोहिया जी मानते थे कि - जाति पर हमले का मतलब होना चाहिये सब की उन्नति न कि किसी एक तबके की उन्नति । एक ही तबके की उन्नति से जाति प्रथा के अन्दर कुछ रिश्ते परिवर्तित होते हैं किन्तु जातियों के आधार पर कोई बदलाव नहीं आता ।[1] लोहिया जी चाहते थे कि - सभी जातियों की आर्थिक उन्नति पर ध्यान देना चाहिये क्योंकि आर्थिक उन्नति होने पर ही सभी जातियां जागरूक और लायक बन सकती हैं । उनके अनुसार - जाति का नाश करके ही उन्हें स्वाभिमानी बनाया जा सकता है और यह निःसंदेह आर्थिक उन्नति के साथ होना चाहिये ।[2]

लोहिया जी का विचार था कि हमारे देश में करीब २० या २५ करोड़ पिछड़ी हुई जाति के लोग हैं , जिन्हें कि अभी तक उन्नति के अवसर प्राप्त नहीं हुए हैं । अतः इन जातियों को प्रजातंत्र में अवसर देकर योग्य बनाना चाहिये । उन्होंने कहा कि - दबे हुए लोग हैं , इनके पुराने संस्कार , परम्परा , परिपाटियों को बदलकर , आदतों को बदल कर नई आदतें और नये संस्कार इनमें आयें , इनको नया मौका मिले ।[3]

लोहिया जी का सुझाव था कि निम्न जातियों के लोगों को शासन में भाग लेने का विशेष अवसर मिलना चाहिये । ये अवसर प्राप्त करने के बाद कार्य करेंगे इससे स्वतः इनकी योग्यता निखर आयेगा । उन्होंने कहा - मैं दुहरा देता हूं कि सब परिपाटियां कहती हैं पहले योग्यता फिर अवसर। मैं चाहता हूं कि योग्यता आती रहेगी , जितना आना है लेकिन पहले विशेष अवसर दो ।[4]

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - जाति प्रथा, पृष्ठ-९८

२- वही पृष्ठ-९९

३- वही पृष्ठ-११२

४- वही पृष्ठ-११६

लोहिया जी का विचार था कि राजनीतिक दलों को चाहिये कि निम्न वर्ग में से नेतृत्व का सृजन करें । निम्न वर्ग को बिना उनकी वर्तमान योग्यता का ख्याल किये अधिक नेतृत्व के स्थानों पर लाना है । लोहिया जी ने कहा कि सच्चे समाजवाद की स्थापना के लिये राष्ट्र के राजनीतिक नेतृत्व में परिवर्तन के द्वारा शुरुआत की जा सकती है । बड़ी जाति के लोगों से लोहिया जी का आग्रह था कि - जाति को मिटाओ , लोगों को बराबरी का मौका दो जो योग्य हैं , उनको ऊँची जगहों पर बिठाओ ।[1]

लोहिया जी का विचार था कि जाति प्रथा के विरुद्ध और पिछड़ी जातियों को विशेष अवसर देने के पक्ष में लड़ने के लिये पर्याप्त संख्या में उच्च जातियों के मन से लड़ने वाली फौज अब तक वह नहीं बना पाई है । काम और संघर्ष के एक लगातार कार्यक्रम में जुटने के लिये वह पिछड़ी जातियों के बहुलांश को भी प्रेरित नहीं कर पाई । समाजवादी दल भी उच्च जातियों के समान निम्न जातियों की स्थिति करने में सफल नहीं हो पाया । लोहिया जी का यह विचार था कि देश में जातिवाद की भावना के कारण ही फूट होती रही है जिसका फायदा सदैव विदेशियों ने उठाया और हमारा देश कई बार गुलाम हुआ । जातिवाद की भावना के समाप्त होने पर ही देश को सशक्त बनाया जा सकता है । उन्होंने कहा - किसी और चीज से अधिक देश के बार-बार गुलामी का कारण जाति ही रही है क्योंकि ऊँची जाति के नेताओं में फूट के कारण नहीं बल्कि नीची जाति के लोगों की उदासीनता के कारण हिन्दुस्तान ने एक के बाद एक विदेशी हमले के सामने घुटने टेके हैं।[2]

लोहिया जी का सुझाव था कि - जाति प्रथा को समाप्त करने के लिये अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन देना चाहिये और सह-भोजों की व्यवस्था करनी चाहिये जिससे कि जाति विशेष का महत्व कम हो । अन्तर्जाति विवाह से ही अन्ततोगत्वा जातियों का लोप होगा और वैवाहिक अध्यायी

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - जाति प्रथा, पृष्ठ-१६

२- वही पृष्ठ-१३४

और विधायक कलावों के जरिये इस बात का प्रचार करते हुए तत्काल हासिल किये जा सकने वाले सहयोग के रूप पर जोर देना होगा ।

प्रजातंत्र का अर्थ होता है जनता का राज्य लेकिन हमारे देश में अधिकांश नीची जाति के लोग ही शासन में भाग लेते हैं और निम्न जातियों के प्रतिनिधित्व का अभाव रहता है। इसलिये जब तक ऊँची जगहों के लिये योग्यता कसौटी होगी तब तक निम्नजातियों को अवसर देने की बात निरर्थक होगी और संरक्षण कागज पर ही रहेगा । लोहिया जी के अनुसार देश में जनता के पिछड़े समूहों को उनकी योग्यता का लिहाज किये बिना सभी अवसर आशा में देने ही होंगे कि ज्यादा अवसर देने की इस उल्टी प्रक्रिया से जाति प्रथा का नाश होगा और जनता की योग्यता पुनर्जीवित होगी ।[१]

लोहिया जी संरक्षण के माध्यम से निम्न जाति की स्थिति सुधारना चाहते थे । वे पिछड़ी जातियों को सार्वजनिक जीवन में कम से कम ६०प्रतिशत नेतृत्व देने के पक्ष में थे । भारत में जाति प्रथा को समाप्त करने के लिये अनेक सुधारवादी आन्दोलन हुए लेकिन यह प्रथा समाप्त नहीं हो सकी है । जातिवाद की भावना अभी भी समाज में व्याप्त है । उनके अनुसार - जातिवाद का भयानक दलदल अभी भी बना हुआ है । यह दलदल इतना गहरा है कि बड़े से बड़े पत्थर गर्भ में कहाँ चला जाता है , कुछ पता नहीं चलता । जब तक यह दलदल सुखा नहीं दिया जाता , भारत में जातिवाद नाश नहीं हो सकता ।[२]

उनका विचार था कि - जब तक छोटी जाति वाले लोगों को उठने व बढ़ने का मौका नहीं दिया जाता , देश आगे नहीं बढ़ सकता ।ऊँची जाति की योग्यता को देश ने बहुत देख लिया है , अब छोटी जाति को अपनी योग्यता दिखाने का अवसर मिलना चाहिये । उन्होंने कहा - कि दिमागदार

१- डा० राममनोहर लोहिया - जाति प्रथा , पृष्ठ-१४०
२- वही पृष्ठ-३३

राजकाज के मामले में उन्हें बिल्कुल अलग रखा गया । जिस तरह घर के कमजोर आदमी को सहारा देकर चलाते हैं और उसी तरह देश भी छोटा और पिछड़ी जातियों को संरक्षण देना होगा ।[1]

लोहिया जी करीब ६० प्रतिशत जगहें छोटी जाति के लोगों के लिये सुरक्षित रखने के पक्ष में थे । वे हिन्दू, मुसलमान और ईसाइयों में दबी हुई जातियों को संरक्षण देना चाहते थे क्योंकि सभी समुदायों में छोटी जातियां स्थित हैं । उनके अनुसार - जिस तरह से हिन्दुओं में ऊंची जाति के बनिया, ब्राह्मण वगैरह हैं, वैसे ही मुसलमानों में शेख सैयद हैं । उन्हें अलग कर देना चाहिये । क्रिस्तानों में भी जहाँ एक तरफ सीरियन क्रिस्तान और ब्राह्मण क्रिस्तान हैं वहाँ दूसरी तरफ ऐजवा क्रिस्तान, लैटिन क्रिस्तान, छोटी जाति के क्रिस्तान हैं । मेरा मतलब अल्पसंख्यकों में छोटी जाति वालों से है ।[2]

वे चाहते थे कि जाति प्रथा को खत्म करने के लिये कोई गरम प्रोग्राम बनाना चाहिये । वे अन्तर्जातीय विवाहों के पक्ष में थे । वे ऊंची जाति और नीची जाति के बीच विवाह सम्बन्ध जोड़ने के पक्ष में थे । उन्होंने कहा - यह मैं भी पसंद करता हूं कि आज ऊंची और छोटी जाति के लोगों के आपस में विवाह हो, उतना अच्छा ।[3]

लोहिया जी मानते थे कि आरक्षण ही ऐसा साधन है कि जो शोषितों को उसका हक दिला सकता है । शोषितों को अपने अधिकार पाने के लिये संघर्ष करना चाहिये, उन्हें अन्याय व विषमता के विरुद्ध लड़ाई लड़नी चाहिये तभी वे अपनी स्थिति सुधार सकते हैं । लोहियाजी जाति प्रथा को समाप्त करने के लिये जीवन पर्यन्त प्रयास करते रहे । इस दिशा में सर्वथा उनके मौलिक प्रयास हैं । उन्होंने न केवल विशेष संरक्षण की बात की अपितु इसके लिये अन्तर्जातीय विवाह की भी कल्पना की ।

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया " छोटी जाति के नेता" जन-नवम्बर, १९७ पृष्ठ-१४

२- डा० राममनोहर लोहिया - नरम और गरम पंथ, पृष्ठ-२५

३- वही पृष्ठ-४

लोहिया जी जाति प्रथा को भारत के लिये अभिशाप मानते थे। वर्तमान समय में भारत में प्रजातंत्र की स्थापना हो जाने के बावजूद भी निम्न-जातियों की स्थिति में सुधार नहीं हुआ है। हमारे संविधान में जातियों -(निम्न) को विशेष संरक्षण प्रदान किया गया है। लेकिन फिर भी निम्न जातियां उच्च जातियों के बराबर सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक स्थिति प्राप्त नहीं कर सके हैं।

यह सत्य है कि लोहिया जी के विचारों के आधार पर यदि उच्च जातियों और नीची जातियों के मध्य विवाह सम्बन्ध स्थापित करने दिये जाये और सहभोजों को आयोजन कर दिया जाय तो इस प्रथा का अन्त हो सकता है। इसके साथ ही उन्हें बिना योग्यता को देखे ही उन्नति के अवसर प्रदान किये जायें तो निश्चय ही उनका भविष्य अच्छा होगा। चूंकि भारत में अधिकांश लोग निम्न व पिछड़ी जाति के हैं, जब तक इन जातियों सम्पूर्ण विकास नहीं होगा तब तक हमारा देश प्रगति की ओर अग्रसर नहीं हो सकता। देश में प्रजातंत्र की सफलता के लिये आवश्यक है कि बिना जाति-पांति का भेद किये हुए सभी को उन्नति के समान अवसर प्राप्त होना चाहिये और हमारे देश के शासकों को जाति निरपेक्षता की नीति अपनाना चाहिये।

वर्गविहीन देश में ही प्रजातंत्र सफल हो सकता है। लोहिया जी ने वर्ग व्यवस्था का विरोध किया। वर्ग से तात्पर्य आर्थिक वर्गों से है उदाहरणार्थ - सम्पन्न, विपन्न, पूंजीपति, शासक, व्यापारी, कृषक और मजदूर वर्ग आदि। बुद्धि, सम्पत्ति और स्थान के हिसाब से समाज में समूह बनते हैं, जिन्हें वर्ग कहते हैं। एक ही समाज में सभी व्यक्ति एक तरीके के नहीं होते, उनमें सम्पत्ति और बुद्धि आदि के कारण अन्तर रहता है। कार्ल मार्क्स भी पीढ़ा वालों को शासक वर्ग और सताये हुए लोगों को शोषित वर्ग मानता था। भारत में भी कई तरह के वर्ग देखे जा सकते हैं जैसे पूंजीपति वर्ग, शासक वर्ग, मजदूर और किसान वर्ग।

लोहिया जी का भी विचार है कि इतिहास से लेकर अभी तक वर्ग-संघर्ष समाज में सदैव हुआ है । शक्तिशाली वर्ग निर्बल को अपने अधीन रखना चाहते हैं और निर्बल वर्ग उनकी अधीनता से मुक्त होना चाहता है , यह वर्ग संघर्ष का कारण है । उनके अनुसार - यह संघर्ष मनुष्य के सारे इतिहास में चलता रहा है और इसकी अलग-अलग शाखायें रही हैं । सामंत वर्ग युग का वर्ग संघर्ष पूंजीवादी युग के वर्ग संघर्ष से भिन्न है लेकिन इन अलग-अलग युगमें विभिन्न वर्ग होते हैं , यह निश्चित है और इनमें संघर्ष होता इसके लिये भी कोई शक नहीं है ।[१]

वे मानते थे कि वर्गों के बीच संघर्ष पैदावार के शक्तियों और साधनों को मुक्त कराने के लिये होता है । लोहिया जी मानते थे कि वर्ग संघर्ष न सिर्फ एक राष्ट्र के अन्दर होता है बल्कि ये संघर्ष राष्ट्र के बाहर भी होता है । उन्होंने कहा कि - सभी युगों में आन्तरिक असमानता रही है और यह उनवर्गों के द्वारा प्रकट होती रही है जो आपस में संघर्ष करते रहे हैं , इसमें कोई शक नहीं है । वस्तुतः वर्गों का आन्तरिक संघर्ष राष्ट्रों के बाहरी संघर्षों के साथ-साथ चलता रहा है ।[२]

लोहिया जी का विचार था कि वर्ग संघर्ष को समाप्त करने के लिये आवश्यक है कि इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था हो जिसमें हर आदमी की आमदनी और सामाजिक स्थिति निश्चित हो । उन्होंने कहा कि - वर्ग संघर्ष असहनीय या व्यर्थ होता जा रहा है । शक्तित समानता के बाद जो टूट आ गई है उसका खतरा उठाने के बजाय लोग न्याय के औचित्य की इच्छा करते हैं ।[३]

लोहिया जी मानते थे कि शिक्षा , सम्पत्ति,ऊँची जाति ये तीनों शासक वर्ग के लक्षण हैं । लोहिया जी ने भारत में वर्ग व्यवस्था का अच्छा - विश्लेषण किया है । उन्होंने भारतीय समाज में वर्गों के निर्माण का एक

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया-इतिहास चक्र ,पृष्ठ-२४
२- वही पृष्ठ-३०
३- वही पृष्ठ-४३

अलग विश्लेषण किया । उनकी दृष्टि में भारत में वर्ग निर्माण का आधार सिर्फ सम्पत्ति पर स्वामित्व ही नहीं है । निश्चय ही सम्पत्ति सामाजिक शोषण का एक बड़ा और शक्तिशाली साधन है लेकिन भारत में इस आर्थिक साधन के साथ-साथ शोषण के सामाजिक और सांस्कृतिक साधन भी मौजूद है ।[१]

लोहिया जी बिना वर्ग व जाति के भेदभाव के सभी व्यक्तियों को शासन में भाग लेने का अवसर देना चाहते थे।इसी कारण वे प्रजातंत्र शासन में वर्ग व्यवस्था के विरोधी थे क्योंकि यदि देश में वर्ग विद्यमान है तो उच्च वर्ग चाहेगा कि वह निम्न वर्ग को सदैव अपने अधीन रखे । इस प्रकार निम्न वर्ग का शोषण होता रहेगा । लोहिया जी चूंकि समानता के सिद्धांत में विश्वास रखते थे । इस कारण वे वर्ग व्यवस्था को समूल समाप्त करना चाहते थे क्यों कि वर्ग व्यवस्था के कारण ही समाज दो भागों में विभाजित हो जाता है ।

कानून ने नर व नारी को समान घोषित किया है लेकिन समाज में अधिकतर इस तथ्य को स्वीकार नहीं किया है। हर प्रकार के कानूनी संरक्षण के बावजूद भी इस देश की नारी पुरुष की तुलना में द्वितीय श्रेणी की नागरिक ही है । भारती समाज पुरुष प्रधान है , यहाँ पति को परमेश्वर माना जाता है । शहरी इलाकों में भले ही पत्नि को पति के समान स्तर का साथी माना जाता हो लेकिन अभी भी उसकी स्थिति पुरुष के समान नहीं है।

लोहिया जी नारी की स्थिति को देखकर बहुत चिंतित थे । वे मानते थे कि नारी को बाल-विवाह, दहेज-प्रथा ने बहुत हीन बना दिया है। वे चाहते थे कि दहेज लेने व देने वाले दोनों को सजा मिलनी चाहिये। वे लड़कियों को देखने की प्रथा का भी विरोध करते थे । उन्होंने कहा - दहेज लेने और देने पर सजा तो अवश्य ही मिलनी चाहिये लेकिन लोगों के दिमाग और ऊँची मान्यताओं को बदलना होगा । तस्वीर दिखाकर या सिमटी हुई काया के साथ लाये गये चाय के प्याले के वातावरण में शादी तय करने की -

---

१- गणेश मंत्री मानसी, गांधी और सामयिक सन्दर्भ, पृष्ठ-१३५

तरीका नाई या ब्राम्हण के जरिये शादी तय करने के पुराने तरीके से भी ज्यादा वाहियात है ।[१]

वे मानते थे कि घर के अन्दर स्त्री को बुरी तरह धुआं निकलने वाले चूल्हे की गुलामी बुरी है । उन्होंने कहा - प्रधानमंत्री इतना तो बतायें कि धुआं निकलने वाले चिमनी का इन्तजाम किया जाय जिससे औरतों का आँख बचे ।[२]

लोकसभा में लोहिया जी के इस कथन की आलोचना हुई और कहा गया कि घरों में धुआं निकालने के लिये चिमनियां बना दी जायें, ताकि उनकी आँखे खराब न हो, वास्तव घरों में चिमनियां तो हम ही बनायेंगे लेकिन इस प्रकार की बात कहकर श्री लोहिया चौबीस करोड़ महिलाओं के वोट प्राप्त करना चाहते हैं ।[३]

लोहिया जी के प्रति इस प्रकार की आलोचना व्यर्थ है क्योंकि उन्हें सत्ता में आने का मोह कदापि न था । वे अन्याय को सहन नहीं कर पाते थे, इसी कारण उन्होंने औरतों के प्रति होने वाले अन्यायों का विरोध किया ।

उनका सुझाव था कि - औरतों की स्थिति सुधारने के लिये आवश्यक है कि वे आर्थिक रूप से स्वतंत्र हों । इसलिये उन्होंने औरतों और मर्दों के समान वेतन व मजदूरी का समर्थन किया । उन्होंने कहा - बराबरी की तनख्वाह होनी चाहिये, बराबरी की मजदूरी होनी चाहिये, बराबर-बराबर के कानून होने चाहिये, ये सब तो मान लिये गये हैं लेकिन मैं एक चीज कह रहा हूं वह इनसे बढ़कर आगे जाता है और वह है दिमाग के पुनर्गठन की बात ।[४]

वे स्त्रियों को आर्थिक दृष्टि से पुरुषों के अधीन नहीं रखना चाहते थे । उन्होंने कहा - जिसमें एक दूसरे के अधीन न हो और समान कुर्सी वाले

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - वर्ग और योनि के दो कटघरे, जन गांधी शताब्दी अंक सित० अक्टू० १९६९ पृष्ठ-१४
२- डा० राममनोहर लोहिया - लोकसभा में लोहिया, भाग-१० , पृष्ठ-४०
३- रामकृष्ण पाण्डेय - लोकसभा में लोहिया भाग-१० , पृष्ठ-१४०
४- डा० राममनोहर लोहिया - जातिप्रथा पृष्ठ-१४८

दो क्रमों के रूप में दोनों बराबरी की जगह पर हों । वैज्ञानिक भावना वर्ण के खिलाफ और स्त्रियों के हक में सम्पत्ति के खिलाफ और सहिष्णुता के हक में काम करेगी और धन पैदा करने के ऐसे तरीके निकालेगी जिससे गरीबी दूर होगी ।[१]

लोहिया जी का विचार था कि औरतें चूँकि मर्दों से शारीरिक दृष्टि से कमजोर होती है अतः उन्हें पुरुषों की अपेक्षा अधिक मौका प्राप्त होना चाहिये । उन्होंने कहा - जब तक दृष्टि रहेगी तब तक थोड़ा बहुत देना पड़ेगा क्योंकि शरीर संगठन के मामले में मर्द के मुकाबले में औरत कमजोर है और मालूम होता है कि कुदरती तौर पर कमजोर है । इसलिये उसे कुछ स्वाभाविक तौर पर ज्यादा स्थान देना ही पड़ेगा ।[२] वे चाहते थे कि स्त्रियों को उन्नति के लिये न सिर्फ मौका ही प्राप्त हो बल्कि उन्हें विशेष अवसर देना चाहिये । वे मानते थे कि यह गैर-बराबरी तभी खतम होगी जब कि नारी को शायद हमेशा के लिये संगठन के मामले में ज्यादा मौका, विशेष अवसर दिया जाय ।

लोहिया जी स्त्रियों को समानता के साथ-साथ स्वतंत्रता भी प्रदान करना चाहते थे । वे मानते थे कि अभिभावकों को चाहिये कि वे अपनी पुत्रियों के मानसिक विकास पर ध्यान दें । उन्होंने कहा कि - लड़की की शादी तय करना माँ-बाप की जिम्मेदारी नहीं है, अच्छा स्वास्थ्य और अच्छी शिक्षा देने पर ही उनकी जिम्मेदारी समाप्त होगी ।[३]

दुनिया को खराब करने वाले सभी अन्यायों की जड़ में शायद वे अन्याय हैं जो स्त्रियों और पुरुषों के बीच असमानता करते हैं । मनुष्य एक ओर चाहता है कि उसकी स्त्री सुन्दर और बुद्धिमान हो और दूसरी ओर उसको वह अपने अधीन रखना चाहता है । लोहिया जी ने कहा कि - मर्द के

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - हिन्दू बनाम हिन्दू, पृष्ठ-२६
२- डा०राममनोहर लोहिया - सात क्रांतियाँ , पृष्ठ-१६
३- डा०राममनोहर लोहिया - जाति प्रथा , पृष्ठ-७

दिमाग में हमेशा यह द्वन्द्व चलता रहता है कि एक ओर वह उसे पूरी तरह हमेशा अपना बनाये रखना चाहता है और दूसरी ओर वह चाहता है कि वह जीवित और सुन्दर भी हो यानि स्वतंत्र हो और अधीन भी । जब तक कम से कम पक्की तौर पर और व्यवहार में यह द्वन्द्व दूर नहीं होता, तब तक स्त्री को समानता का दर्जा नहीं मिल सकता ।[1]

लोहिया जी मानते थे कि समान अवसर देने से ही स्त्रियों और पुरुषों के बीच असमानता की समस्या का हल नहीं होगा । उनका विचार था कि - जब कोई समूह शारीरिक या सांस्कृतिक दुर्बलता के कारण दबा रहता है तो उसे दूसरों के बराबर लाने का एक ही तरीका है कि उसे विशेष अवसर प्रदान किये जायें ।[2]

उनका विचार था कि नर व नारी बिल्कुल समानान्तर है, इनमें एक दूसरे से बड़ा व छोटा होने का कोई प्रश्न नहीं है । समाज में नर व नारी का समान स्थान होने पर ही सच्चा प्रजातंत्र स्थापित हो सकेगा । पुरुष के समान नारी को सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक अधिकार देना ही होगा । स्वराज्य कुमारी के अनुसार - आज भी समाजवादी पार्टी के नेता डा०राममनोहर लोहिया की दृष्टि से देश के सभी पिछड़े वर्गों में नारी को लेकर ६० फीसदी उच्च राजनैतिक अधिकार देने की बात नहीं कर रहे हैं बल्कि आन्दोलन भी करा रहे हैं और समय-समय पर उन्होंने पुरुषों को भी संकेत दिया है कि वह नारी को कभी भी अपमानित करने की धृष्टता न करें ।[3]

लोहिया जी समाजवाद की कल्पना बिना नारी के सक्रिय सहयोग के अधूरा व निष्प्राण से करते थे । उनकी धारणा थी कि नारी के लिये विवाह, यौन सम्बन्ध, प्रेम आदि विषयों में पूरी तरह की समता

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी और सप्त क्रांति, पृष्ठ-५०-५१
२- डा०राममनोहर लोहिया - " बिना हथियारों की दुनिया, और बाद, क्रांतियाँ जन मार्च-अप्रैल, १९७० पृष्ठ-१३
३- स्वराज्य कुमारी " नर और नारी एक राजनीतिक और सामाजिक समीक्षा चाचम्भा दीपावली विशेषांक, १९६२, पृष्ठ-५२

और स्वतंत्रता अपरिहार्य है । उसके लिये शिक्षा को वे जरूरी मानते थे क्योंकि नारी बिना शिक्षा ग्रहण किये समता व स्वतंत्रता का समुचित लाभ नहीं उठा सकती । लोहिया जी ने नारी समानता व स्वतंत्रता के बारे में गहराई से सोचा और उसे कार्य रूप में परिणित करने का प्रयत्न किया । उन्होंने जिन सात क्रान्तियों/कार्यक्रमों पर जोर दिया था, उसमें स्त्री और पुरुष की समानता की स्वीकृति को प्रमुख स्थान दिया और व्यक्तिगत अधिकारों के अतिक्रमण के विरोध को छठा स्थान दिया था । इससे उनकी नारी जागरूकता का स्पष्ट पता चलता है । राम कमाल ने लिखा है - बाद में लोहिया ने सीता से द्रौपदी को श्रेष्ठ मानकर और बताकर साबित कर दिया कि नारी मन की मनकी नहीं बल्कि पांच-पांच पर काबू रखने वाली साहसी वीरांगना भी है । घोड़े पर सवार झाँसीबाई की पीठ पर वस्त्र से बंधी हुई उनकी बच्ची लोहिया जी को बहुत खलती है । वह तो मर्द से बड़ी होगी और मर्द से भी बहादुर होगी किन्तु पीठ पर बच्चे को दिखाकर नारी जाति की कमजोरी को दिखलाया गया है ।[1]

लोहिया जी नर व नारी दोनों में समता का पहलू जरूरी समझते थे । वे नारी को राजनीति में पुरुष के समान स्थिति में देखना चाहते थे । वे नहीं चाहते थे कि नारी पर्दे में रहकर पुरुष समाज की यातनाओं का शिकार होती रहे । उसमें पुरुष की तरह स्वतंत्र चेतना का विकास हो, यह उनकी हार्दिक इच्छा थी ।

७) **शिक्षा -**

स्वाभावत: शिक्षा का लक्ष्य समाज में समता की स्थापना होना चाहिये किन्तु मौजूदा यथार्थ में वह विषमता का पोषण करती है । वह विषमता को एक सैद्धांतिक जामा पहनाती है, उसका वह दुरुपयोग समाज

१- राम कमाल - " नर, नारी, समानता और सिविल नाफरमानी " जन० अगस्त, १९७० पृष्ठ-१५

वे ताकतवर तत्व करते हैं जिनके जीवन का लक्ष्य सत्ता को अक्षुण्ण बनाये रखना है। हमारी शिक्षा सम्बन्धी धारणायें शासन सम्बन्धी मान्यताओं से जुड़ी हैं। एक समाजवादी समाज के शासन का पहला काम होना चाहिये कि शिक्षा को अपने अधिकार से मुक्त करके समाज के अधिकार क्षेत्र में दे दे।

लोहिया जी मानते थे कि व्यक्ति की शिक्षा पहले परिवार में शुरू होती है तत्पश्चात स्कूल में प्रारम्भ होती है। मनुष्य के जो संस्कार बचपन में पड़ जाते हैं, वो स्थायी होते है। मनुष्य की शिक्षा को विशेष करते स्कूल, परिवार और राजनीतिक दल हैं। परिवार का उसकी शिक्षा में विशेष महत्व है। उनके अनुसार - जो गुण अपने माता पिता और परिवार के दूसरे लोगों से बच्चा सीखता है, उन्हें मिटाना मुश्किल होता है, ये थोड़े बहुत बदले जा सकते हैं। गुणों में परिवर्तन ज्यादा से ज्यादा स्कूल में सम्भव है और पंडित बहस कर सकते हैं कि बच्चे के गुण उभारने में स्कूल का अधिक महत्व है या परिवार का। जो कुछ भी हो परिवार और स्कूल तटस्थ हैं और उन्हें भी समाज के विस्तृत चौखटे में चलना पड़ता है।[1]

लोहिया जी का विचार था कि व्यक्ति को परिवार, समाज व स्कूल में जितनी अच्छी शिक्षा दी जायेगी, व्यक्ति उतना ही महान बनेगा। वे मानते थे कि अच्छे गुण और शील को उपजाने के लिये स्कूल वाकई एक शक्तिशाली माध्यम है, लेकिन तभी जब समाज उसको स्पष्ट उद्देश्य दे। वर्तमान समय में दो प्रकार के स्कूल चल रहे हैं - बड़े लोगों के स्कूल और साधारण स्कूल। साधारण स्कूल में बच्चे की अंग्रेजी शिक्षा कक्षा 6 से शुरू होती है जबकि बड़े लोगों के स्कूलों में बच्चों की शिक्षा का माध्यम प्रारम्भ से अंग्रेजी होता है, यही बच्चे आगे चलकर अफसर बनते हैं। इसलिये लोहिया जी चाहते थे कि-समाजवादी पार्टी का सिद्धांत है कि प्राथमिक स्कूल सारे एक किस्म के हों, अलग-अलग स्कूल न हों। मास्टरों की एक ही तरह की तनख्वाहें हों और बच्चे को पढ़ाने की एक तरह की किताबें। सब बच्चे

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - धन, धर्म अतिकार और चरित्र निर्माण आवाहन, पृष्ठ-३०

एक ही तरह के स्कूल में जायें , चाहे वह राष्ट्रपति का बच्चा हो , चाहे भंगी का बच्चा हो , चाहे प्रधानमंत्री का हो , चाहे कोई हो ।[1]

लोहिया जी महंगी शिक्षा प्रणाली के विरुद्ध थे । वे चाहते थे कि व्यक्तिगत शिक्षा संस्थाओं और सरकारी शिक्षा संस्थाओं की फीस समान होनी चाहिये । लोहिया जी के अनुसार - अधिक व्यय वाले विद्यालय समाप्त कर देना चाहिये और प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा को स्थानीय परिषदों के अधीन कर देना चाहिये , अगर व्यक्तिगत दानों या धार्मिक संस्थाओं द्वारा प्राथमिक और आध्यात्मिक शिक्षा चलाये जाने की इच्छा हो तो उनका स्तर , फीस और कार्यक्रम नगरपालिका या विद्यालय परिषदों द्वारा संचालित विद्यालयों के समान होना चाहिये ।[2]

वे चाहते थे कि प्राथमिक शिक्षा का अधिकांश भाग किसी प्रकार के कृषि या औद्योगिक कार्य से सम्बन्धित होना चाहिये । पुस्तकें बार-बार नहीं बदलनी चाहिये , लेखिका और प्रकाशन का संगठन समाप्त होना चाहिये । नये कला विद्यालय सरकार द्वारा खोलना चाहिये । वे शिक्षा में कृषि व व्यवसाय से सम्बन्धित पाठ्यक्रम की व्यवस्था करना चाहते थे । उनके अनुसार- स्नातक उपाधि के लिये एक साल का कृषि क्षेत्र या कारखाने में राष्ट्रीय सेवा का पाठ्यक्रम अनिवार्य होना चाहिये । व्यय का नया भाग और बहु-उद्देशीय संस्थाओं पर लगाना चाहिये । माध्यमिक शिक्षा के उपरान्त विद्यार्थियों को उन संस्थाओं में जाना चाहिये । जन-महाविद्यालय और विश्व विद्यालयों को भी स्थापित करना चाहिये जिनमें व्यस्त व्यक्ति जोकि किसी व्यवसाय का कुछ अनुभव प्राप्त कर लिया हो , जब चाहे शिक्षा प्राप्त कर सके ।[3]

उपरोक्त प्रकार की शिक्षा के लिये आवश्यक है कि अर्थ व्यवस्था में कुछ संरचनात्मक परिवर्तन किये जायें । आय में वर्तमान अन्तर उचित नहीं है

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - समाजवादी आन्दोलन का इतिहास,पृष्ठ-६०
२- डा०राममनोहर लोहिया, मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-३८३
३- वही पृष्ठ-३८३

और कृषि या यांत्रिक रूप में व्यक्ति को वकील या जिला प्रशासक या अध्यापक समान जीविकार्जन करने में समर्थ होना चाहिये ।

लोहिया जी न केवल अंग्रेजी को विद्यालयों से हटाने के पक्ष में थे बल्कि वे सार्वजनिक स्थानों से भी हटाने के पक्ष में थे । उन्होंने कहा - कोई भी हो, यह बताओ कि कौनसा ऐसा मुल्क है जिसके सार्वजनिक काम किसी सामंती भाषा में चलते हैं, कोई मुल्क नहीं ।[१]

वे मानते थे कि अंग्रेजी के ज्ञान से सामान्य जनता अनभिज्ञ रहती है। साधारण जनता कानूनों से अनभिज्ञ रहती है, वह अपने अहित के कानूनों का विरोध नहीं कर पाती । इसलिये लोहिया जी अंग्रेजी भाषा को तत्काल हटाने के पक्ष में थे । उन्होंने कहा - अंग्रेजी को हटाये बिना समाजवाद, जनतंत्र और ईमानदारी के पहले कदम भी असम्भव है । ४०करोड़ हिन्दुस्तानियों के लिये तीन लाख लोगों की अंग्रेजी एक गुप्त विद्या है जैसे - जादू, टोना या भूत छोड़ने के मंत्र इत्यादि । गुप्त विद्याओं से किसी भी देश का नाश हुआ करता है ।[२]

लोहिया जी मानते थे कि विदेशी लोग अपने ज्ञान की अभिव्यक्ति अपनी भाषा के माध्यम से ही करते हैं, जबकि हमारे यहां उल्टा है ।भारत में व्यक्ति अपने ज्ञान का प्रयोग अंग्रेजी भाषा के माध्यम सेकरता है । अंग्रेजी के समर्थकों का मत है कि - भारत में हिन्दी की किताबों की कमी है, इस कारण अंग्रेजी भाषा का ज्ञान अनिवार्य हो जाता है । इसका उत्तर देते हुए लोहिया जी ने कहा कि - जब लोग अंग्रेजी हटाने के सम्बन्ध में हिन्दी पुस्तकों की कमी कोचखाँ करते हैं, तब हंसी और गुस्सा दोनों आता है क्योंकि यह मूर्खता है या बदमाशी । अगर विश्वविद्यालयों के अध्यापकों के लिये गर्मियों की छुट्टियों में अनुवाद करना अनिवार्य बना दिया जाये तो

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - अंग्रेजी हटाओ ,पृष्ठ-१०
२- वही पृष्ठ-१५

मनचाही किताबें तीन महीने में तैयार हो जायें ।[1]

उनका विचार था कि - हिन्दी भाषा का प्रयोग तत्काल प्रारम्भ कर दिया जाय तो इसके शब्दकोषों में भी वृद्धि होगी । अपनी भाषा में शासन कार्य करने पर जनता की रुचि शासन के कार्यों की ओर बढ़ती है । अंग्रेजी में काम होने पर जनता शासन की अच्छाइयों व बुराइयों को समझ नहीं सकती । देश में पहले से ही अमीरों-गरीबों, जाति-पाँति, धनी और पढ़े-बेपढ़े के आधार पर जबर्दस्त खाई है । उस खाई को विदेशी भाषा और चौड़ा कर रही है ।

लोहिया जी प्रजातंत्र की सफलता और देश की प्रगति के लिये अंग्रेजी भाषा की शिक्षा का विरोध करते थे । उन्हें स्वयं अंग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञान था लेकिन वे अपने हिन्दी के भाषणों में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग नहीं करते थे । दिनकरजी ने लिखा है - दिल्ली में हिन्दी के विरोधी तरह तरह के हैं । मगर लोहिया साहब के भाषणों से उन सभी विरोधियों का वह भ्रम दूर हो गया था कि हिन्दी केवल कठिन हो सकती है और अंग्रेजी का सहारा लिये बिना हिन्दी में पेचीदा बातों का बखान नहीं किया जा सकता । मेरा ख्याल है, हम सब ही हिन्दी प्रेमियों ने संसद में हिन्दी की इतनी सेवा १२ वर्षों में की थी, उतनी सेवा लोहिया साहब ने अपनी सदस्यता के कुछ ही वर्षों में कर दी ।[2]

लोहिया जी प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर विश्व विद्यालय तक की शिक्षा के लिये अंग्रेजी माध्यम का विरोध करते थे । वे चाहते थे कि प्रत्येक प्रकार की शिक्षा अपनी भाषा में ही होना चाहिये । लोहिया जी का विचार था कि - औद्योगीकरण करने के लिये हिन्दुस्तान को १० लाख इंजी-नियरों और वैज्ञानिकों और १ करोड़ मिस्त्रियों और कारीगरों की फौज की

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - अंग्रेजी हटाओ, पृष्ठ-१५
२- डा० रामधारी सिंह दिनकर' स्व० लोहिया साहब' लोहिया : बहुआयामी व्यक्तित्व, पृष्ठ-

जरूरत है , जो यह सोचता है कि यह फौज अंग्रेजी के माध्यम से बनाई जा सकती है वह या तो धूर्त है या मूर्ख क्योंकि उद्योगीकरण के क्षेत्र में जापानने प्रगति अपनी जन भाषा के माध्यम से की है ।

लोहिया जी के शिक्षा से सम्बन्धित विचार समता पर आधारित हैं । वे अपने देश के सभी नागरिकों का समान रूप से बौद्धिक विकास करना चाहते थे । उन्होंने अंग्रेजी का विरोध देश को शक्तिशाली राष्ट्र बनाने के लिये किया । उन्होंने एक ओर अंग्रेजी का इतना विरोध किया और दूसरी ओर स्वयं अपने विचारों की अधिकांश अभिव्यक्ति उन्होंने अंग्रेजी भाषा में भी की है । उनकी प्रसिद्ध पुस्तक -" मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म " अंग्रेजी भाषा में ही है जिसका अभी तक हिन्दी रूपान्तर अभी तक उपलब्ध नहीं है।

फिर भी वे भारत से तत्काल अंग्रेजी हटाने के पक्ष में थे । वे मानते थे कि शिक्षा में अंग्रेजी को अधिक महत्व देने से अन्य विषय जैसे- भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि विषयों की उपेक्षा हो जाती है क्योंकि व्यक्ति का मस्तिष्क अंग्रेजी को ही समझने में लगा रहता है । इस कारण आवश्यक है कि प्रारम्भ से ही शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो जिससे प्रत्येक विषय का व्यक्ति ज्ञान प्राप्त कर सके । प्रकाश वीर शास्त्री ने कहा कि - डा०लोहिया के ऊपर सबसे बड़ा आरोप कहाँ-कहाँ से यह लगाया जाने लगा था कि डा०लोहिया जो अंग्रेजी को हिन्दुस्तान से हटाने के इतने पक्षपाती थे , वह शायद उतने ही हिन्दी को भारत में लाने के कट्टर पक्षपाती थे । वस्तुत: लोहिया साहब केवल हिन्दी के नहीं बल्कि समस्त भारतीय भाषाओं के समर्थक थे[1]

लोहिया जी मातृभाषा के माध्यम से भारतीयों का सर्वांगीण बौद्धिक विकास करना चाहते थे , जिससे देश की प्रगति हो सके ।

१- प्रकाश वीर शास्त्री -"लोक सभा लोहिया के बिना "जन० दि०, इन्दौर पृष्ठ-३३

लोहिया जी ने प्रजातंत्र को सफल बनाने के लिये उसकी आवश्यक दशाओं से हमें सूचित किया है और विभिन्न धर्म , जाति , वर्ग व लिंग निरपेक्षता के आधार पर उन्होंने शासन कार्य चलाने पर बल किया । वे भारत में समता और स्वतंत्रता लाने का अनथक प्रयास करते रहे । यदि उनके समता सम्बन्धी विचारों के आधार पर भारत में समता लाने का प्रयास किया गया तो निश्चित रूप से सफलता प्राप्त हो सकती है । वे जागृत जनता के आधार पर प्रशासन पर नियंत्रण रखना चाहते थे । वे जनता को सरकार के अनुचित कार्यों का विरोध करने का अधिकार देने के पक्ष में थे । लोहिया जी के विचारों , नीतियों और सुझावों के आधार पर देश में प्रजातंत्र सरकार को सफल बनाया जा सकता है ।

-: o :-

अध्याय ६

विकेन्द्रीकरण

-: षष्टम अध्याय :-

विकेन्द्रीकरण

केन्द्रीकरण व्यवस्था में जनता को प्रशासन में भाग लेने का मौका नहीं मिलता है, वह अपने चुने हुए प्रतिनिधियों पर ही आश्रित रहती है। इसमें प्रतिनिधि जनता के प्रति उत्तरदायी न होकर सरकार के प्रति उत्तरदायी होते हैं क्योंकि उनको सरकार के प्रति उत्तरदायी रहने पर ही अगले चुनाव में टिकिट मिलने की आशा रहती है और इसके साथ ही उन्हें जनता से अपना स्थान सुरक्षित रखने के लिये मयभीत नहीं होना पड़ता है। चुनाव के वक्त प्रतिनिधि जनता को झूठे प्रलोभन देकर पुनः विजयी हो जाते हैं। अतः जनतंत्र की सफलता के लिये आवश्यक है कि शासनतंत्र में जनता को भाग लेने का अवसर मिले, विकेन्द्रीकरण व्यवस्था में ही जनता को यह अवसर सुलभ हो सकता है। इससे जनता में जागरूकता आती है। विकेन्द्रीकरण राजनीतिक, आर्थिक व प्रशासकीय सभी प्रकार का हो सकता है।

१) विकेन्द्रीकरण का अर्थ -

लेवमल दक तथा गोपीनाथ गुप्ता ने विकेन्द्रीकरण का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है - केन्द्रीकरण के अन्तर्गत प्रशासन के समस्त अधिकारों को धारण करने वाला केन्द्र ही होता है लेकिन विकेन्द्रीकरण में केन्द्र के पास केवल देशव्यापी समस्याओं एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों से सम्बन्धित अधिकार रहते हैं। शेष समस्त अधिकार नीचे की संस्थाओं एवं व्यक्तियों में बंटे हुए रहते हैं और उन अधिकारों के प्रयोग का उन्हें पूरा-पूरा अधिकार रहता है।[१]

इस प्रकार विकेन्द्रीकरण के द्वारा सत्ता आम जनता के हाथ में आ जाती है और वह राज्य के कार्यों को अपने निजी कार्य समझकर उनमें रुचि लेने लगती है। इस प्रकार राज्य के कार्यों में अधिकांश लोगों को भाग

- -

१- लेवमल दक तथा गोपीनाथ गुप्ता - भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण पृष्ठ-१३

लेने का अवसर उपलब्ध हो जाता है । स्थानीय क्षेत्रों के लिये योजनायें बनाना और उन्हें क्रियान्वित करने का अधिकार जनता के हाथ में आ जाता है । विकेन्द्रीकरण में अपने क्षेत्र के विभिन्न कार्यों को सम्पन्न करने के लिये जनता को केन्द्र की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती है । ओमप्रकाश त्रिवा के अनुसार - विकेन्द्रीकरण का अर्थ ऊपर का शासन विभाजित होकर नीचे की इकाइयों में आ जाय । प्रत्येक इकाई की अपनी योजना हो , साधन जुटाने की क्षमता हो , अपना निर्णय और अपनी नीति हो । प्रत्येक मनुष्य का अपनी इकाई से सजीव सम्बन्ध हो ।[१]

लोहिया जी ने भी विकेन्द्रीकरण का मतलब स्पष्ट करते हुए लिखा है - नम्बर एक कलेक्टर को खत्म करो और जिला, शहर और गांव का इन्तजाम चुनी हुई पंचायत के मार्फत हो । नम्बर दो - पुलिस के मातहती राज्य से हट कर जिला , शहर और गांव पंचायतों की मातहती में हो । नम्बर तीन -जो कुछ सरकारी आमदनी होती है, उसका कम से कम एक चौथाई जिला , गांव और शहर पंचायतों को दिया जाय।[२]

लोहिया जी ने विकेन्द्रीकरण के ठोस तीन मतलब बतलाये हैं । वे स्थानीय क्षेत्रों को राजनैतिक, आर्थिक और प्रशासकीय सभी प्रकार की शक्तियां देने के पक्ष में थे । वे स्थानीय संस्थाओं पर केन्द्र के नियंत्रण का विरोध करते थे । उनका विश्वास था कि जनतंत्र की सफलता विकेन्द्रीकरण पर निर्भर है । वे भारत के जनतांत्रिक व्यवस्था को विकेन्द्रित नहीं मानते थे क्योंकि उनका विचार था कि प्रत्येक निर्णय के लिये स्थानीय संस्थाओं को केन्द्र के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है । विकेन्द्रीकृत व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये जिसमें जिला, राज्य और गांव को अपने क्षेत्र से सम्बन्धित कार्य में स्वतंत्रता रहे । वे केन्द्रीय नियंत्रण से मुक्त हों । वे केन्द्र पर स्थानीय - संस्थाओं का नियंत्रण स्वीकार करते थे ।

- -

१- ओमप्रकाश त्रिवा - लोकतंत्र एक आध्यात्मिक संस्था, पृष्ठ-२७

२- डा०राममनोहर लोहिया - सगुण और निर्गुण, पृष्ठ-१६

२) **विकेन्द्रीकरण के विदेशी प्रतिपादक -**

विकेन्द्रीकरण के विचारों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। पहला - वे विचारक जो स्थानीय स्वशासन के समर्थक है जैसे- मिल, लार्ड रिपन आदि। दूसरा - वे विचारक जो संघात्मक शासन के समर्थक है, इनमें मुख्य रूप से अमेरिका के संविधान के पिता हैमिल्टन हैरीसन, लास्की आदि। तीसरा आर्थिक विकेन्द्रीकरण इसमें कोल और रसेल का नाम आता है। महात्मा गांधी को प्रथम श्रेणी में रखा जा सकता है क्योंकि उन्होंने स्थानीय गणतंत्र की बात कही।- विकेन्द्रीकरण के मुख्य विदेशी प्रतिपादक निम्न है-

(क) कोल के विचार -

कोल प्रजातंत्र के लिये आवश्यक मानता है कि प्रतिनिधियों का सम्पर्क सीधा निर्वाचकों से रहे। इसके अभाव में सच्चा लोकतंत्र कभी स्थापित नहीं हो सकता। अत: कोल इसे सफल बनाने के लिये छोटे-छोटे समूहों और संस्थाओं पर बल देता है। वह प्रादेशिक प्रतिनिधित्व के स्थानपर व्यवसायिक प्रतिनिधित्व की सिफारिश करता है। उसका विचार है कि समाज में जितने व्यवसाय और कार्य हैं उनके लिये उतनी ही संख्या में पृथक रूप से निर्वाचित प्रतिनिधियों की श्रेणियां होनी चाहिये। कोल राज्य का आधार शक्ति नहीं अपितु प्रजाजनों की इच्छा मानता है। वह राज्य को सर्वशक्तिमान नहीं मानता है। वह सभी समुदायों को अपने कार्य के सम्बन्ध में प्रभुसत्ता सम्पन्न मानता है। सब संगठन समानता का दर्जा और प्रभुसत्ता रखते हैं। इनमें केवल राज्य को अन्य संगठनों पर प्रभुसत्ता प्रयोग करने का अधिकार देना नितान्त अनुचित है। लास्की कोल से इस सम्बन्ध में प्रभावित हैं - मैं भी कोल से सहमत हूं कि सामाजिक विकास के मौजूदा अवस्था में दबाव डालने की शक्ति का केन्द्रण निश्चय ही राज्य के रूपान्तर में बाधा का काम करेगा।[1]

कोल का विचार है कि राज्य में विभिन्न समुदायों के समन्वय का

१- लास्की - राजनीति के मूल तत्व, पृष्ठ-३०६

कार्य नहीं करना चाहिये । वह समुदायों के आपसी विवादों के निपटाने के लिये कम्यून की व्यवस्था करता है । कोल का कम्यून वर्तमान राज्य की अपेक्षा कम प्रभुसत्ता सम्पन्न है । इसके कार्य और अधिकार कम है । वर्तमान राज्य में केन्द्रसत्ता को कोल ने विभिन्न श्रेणियों में तथा सहकारी समितियों में बांटकर विकेन्द्रित करने का प्रयत्न किया है ताकि भावी समाज को सत्ता के केन्द्रीकरण से उत्पन्न होने वाले स्वच्छन्द और अत्याचारी शासन के दुष्परिणामों से बचा रहे ।

कोल ने राज्य को सर्वोच्च संस्था न मानने का भूल की है यदि विभिन्न समुदायों की स्वतंत्रता पर राज्य का अंकुश न लगाया गया तो वे अपनी स्वार्थ सिद्धि में लग जायेंगे , इससे समाज में अराजकता फैल जावेगी । इसलिये राज्य को विभिन्न समुदायों पर नियंत्रण का अधिकार होना चाहिये ।

कोल का स्वाभाविक झुकाव श्रेणी समाजवाद की ओर था क्योंकि इसी से राजनैतिक और आर्थिक लोकतंत्र स्थापित किया जा सकता है तथा सत्ता का विकेन्द्रीकरण करके इसे अधिक से अधिक समूहों तथा व्यक्तियों में बांटकर केन्द्रीकरण के दुष्परिणामों को रोका जा सकता है ।

(ख) लास्की के विचार -

लास्की व्यक्तियों के लाभ के लिये राज्य की शक्ति के विकेन्द्रीकरण को अधिक से अधिक अनुकूल समझता है । लास्की का आग्रह है कि सत्ता संघात्मक होना चाहिये , केन्द्र को क्षेत्रीय मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये क्योंकि क्षेत्रीय संस्थायें अपनी समस्याओं को सुलझाने में स्वयं समर्थ होती है। लास्की ने लिखा है - हम यह मान नहीं सकते कि समस्त समस्यायें केन्द्रीय समस्यायें होती हैं । हमें यह मानना पड़ेगा कि जो समस्यायें केन्द्रीय नहीं होती हैं , उनका निर्णय उसी स्थान पर होना चाहिये , जहाँ पर इनका प्रभाव पड़ता हो ।[१]

- -

१- लास्की - राजनीति के कुछ तत्व पृष्ठ-३४३

लास्की का विचार है कि केन्द्रीय प्रशासन स्थानीय क्षेत्रों की समस्याओं से अनभिज्ञ रहता है । यदि केन्द्र इनसमस्याओं का हल भी निकालता है तो स्थानीय शासन अथवा वहाँ की जनता उनसे सहमत नहीं होती है । उसने लिखा है कि - केन्द्रीय प्रशासन स्थानीय समस्याओं का हल कितनी भी कुशलता से करे , इससे नागरिकों का रचनात्मक समर्थन प्राप्त नहीं हो सकता ।[१]

केन्द्रीय सरकार को चूंकि स्थानीय मामलों में जानकारी कम रहती है, इस कारण उसके निर्णय निराधार सिद्ध हो सकते हैं । लास्की का विचार है कि संसार की कोई भी विधानसभा चाहे वह कितनी ही सत्तालोलुप क्यों न हो स्थानीय समस्याओं की मोटी रूपरेखा के आधार पर निर्णय के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकती । उसने कहा - स्थानीय क्षेत्रों को शक्तियाँ देने में काफी खतरा है क्योंकि स्थानीय सत्ता में केन्द्रीय सत्ता की अपेक्षा ज्ञान और सामर्थ्य कम होता है । इन्हें शक्तियाँ देने में इस ज्ञान और सामर्थ्य की कुर्बानी करनी पड़ेगी ।[२]

लास्की का विचार है कि स्थानीय शासन को मजबूत करने के लिये साधारण जनता को जागरूक बनना होगा । स्थानीय अधिकारियों द्वारा क्षेत्रीय कार्य अच्छी तरह किये जा सकते हैं । वे अपने क्षेत्र के विकास के लिये कार्य करने में गर्व का अनुभव करेंगे । लास्की ने केन्द्र औरराज्य की शक्तियों के विभाजन के सम्बन्ध में मत दिया है कि - स्थानीय शासन और केन्द्रीय शासन के बीच परस्पर सम्बन्ध उसी नमूने के आधार पर होना चाहिये जैसे कि अमरीका के संघ में केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार के बीच है । वहाँ सुरक्षित विषय संघीय अधिकारियों के हाथ में है और अवशेष शक्तियाँ राज्यों के नियंत्रण के अधीन है , तो इसी प्रकार उन शक्तियों का प्रयोग स्थानीय सत्ता द्वारा होना चाहिये , जिनके प्रयोग की मनाही स्पष्ट रूप से न की गई हो ।[३]

- -

१- लास्की - राजनीति के मूल तत्व, पृष्ठ-३४३
२- वही पृष्ठ-३४४-४५
३- वही पृष्ठ-३५०

लास्की के विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था को जनता के लिये उपयोगी माना है । उनका मत है कि - इस व्यवस्था के कारण केन्द्रीय विधानसभा का कार्य बोझ कम होता है और साथ ही स्थानीय संस्थायें अपने कार्य को करने में दिलचस्पी लेने लगती हैं और कार्य करने में गर्व का अनुभव करती हैं । स्थानीयलोक प्रशासन के काम में रचनात्मक ढंगसे भाग ले सकते हैं ।[१]

लास्की का वाक्य है कि - ' सारी शक्ति संघात्मक है ' इसका यही अर्थ है कि व्यक्ति अपनी आर्थिक,राजनैतिक , धार्मिक तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अनेक संस्थाओं मे भाग लेता है और प्रत्येक संस्था उसके व्यक्तित्व के विकास में अपना योग देती है । चूंकि राज्य हमारे जीवन में केवल आंशिक योगदान देता है , अत: राज्य के प्रति आज्ञा पालन भी आंशिक होना चाहिये । लास्की का सुझाव है कि - राज्य की शासन व्यवस्था विकेन्द्रीकरण के सिद्धांत पर निर्मित होनी चाहिये । केन्द्रीय सत्ता को स्थानीय संस्थाओं के कार्यों का अवलोकन व निरीक्षण करना चाहिये , उन्हें आदेश नहीं देना चाहिये । उसने कहा कि - स्वशासन के पक्ष में यह सबसे बड़ा तर्क है तो शासन में सहमति प्राप्त करना , उन लोगों की सहमति प्राप्त करना आवश्यक है जो अपने हितों को अच्छी तरह समझते हैं । इसलिये जिन लोगों के हितों का प्रभाव पड़ता है, स्वशासन मे उन पर ध्यान देने की समुचित व्यवस्था है । बाहर से थोपी गई सत्ता एक लम्बे समय तक सफलता प्राप्त नहीं कर सकती । इसलिये यह आवश्यक है कि यदि निर्णय करने वाले प्रशासन को रचनात्मक बनाना है तो उसे विकेन्द्रित करना होगा ।[२]

लास्की का मत है कि - उत्तरदायित्व की भावना तभी आ सकती है जबकि प्रशासन में व्यक्तियों को भाग लेने का अवसर प्राप्त हो । प्रशासन में जनता को जितना अवसर प्राप्त होगा , उतना ही अधिक उन्हें संरक्षण प्राप्त होगा अन्यथा केन्द्रीय सत्ता अधिकारों को दुरुपयोग करने लगेगी । शासन के

- -

१- लास्की - राजनीति के मूल तत्व, पृष्ठ-३५२
२- वही - पृष्ठ-१६६

विभिन्न विभागों के साथ परामर्शदात्री समितियों को संयुक्त किया जाना चाहिये । लास्की ने लिखा है कि - स्थानीय परिषदों के क्रियाकलाप के सम्बन्ध में सलाह देने वाली समितियां होंगी । इन समितियों में विभिन्न सम्बद्ध हितों के प्रतिनिधि होंगे , बिल्कुल उसी प्रकार जैसे कि राष्ट्रीय निकाय के होते हैं । उदाहरण के लिये इस प्रकार की शिक्षा समिति में अध्यापकों, पढ़ने वाले बच्चों, माता-पिता और स्कूल के पुराने छात्रों के प्रतिनिधि होना स्वाभाविक है ।[1]

लास्की का विचार है कि ये सलाहकार समितियां शासन द्वारा मनोनीत नहीं होना चाहिये बल्कि सम्बद्ध विभाग के निकायों का प्रतिनिधित्व करने वाले होना चाहिये यथा शिक्षा विभाग कि ऐसी समितियों के सदस्य शिक्षा संस्थाओं के अध्यापकों , छात्रों और प्रबन्धकारी संस्थाओं द्वारा चुने जाने चाहिये । राज्य को विभिन्न समुदायों के आन्तरिक जीवन में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये । लास्की ने माना कि विकेन्द्रीकरण का सर्वप्रधान गुण यह है कि यह न सिर्फ विविध वस्तुओं पर एक ही समाधान को लागू करने से रोकता है परन्तु प्रशासन कार्य के केन्द्रों की संख्या बढ़ाकर सरकारी उत्तरदायित्व कार्यों में अधिकाधिक हिस्सा लिया जाना सम्भव बनाता है । राज्य में एक स्थान पर सत्ता केन्द्रित होने के कारण सत्ता का दुरुपयोग करना शुरू हो जाता है । राज्य की शक्तियों को विकेन्द्रित करके सत्ता के दुरुपयोग को रोका जा सकता है ।

(ग) बर्टेण्ड रसेल के विचार -

रसेल ने राज्य को एक आवश्यक संस्था माना है । मानवों की संग्रहात्मक प्रवृत्ति जो समाज में अव्यवस्था तथा अशांति उत्पन्न करती है , उसे नियंत्रित करने, शांति तथा युद्ध की व्यवस्था , शिक्षा , स्वास्थ्य ,

- -

1- लास्की - राजनीति के मूल तत्व , पृष्ठ-३४३

स्वच्छता , न्याय, अर्थव्यवस्था का नियमन आदि ऐसे कार्य में जिनके सम्पादन के लिये के न्द्रीय सरकार की आवश्यकता है । रसैल व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बहुत महत्व देता है । वह व्यक्ति की स्वतंत्रता को सीमित करने वाले राज्य के कार्यों का विरोध करता है । राज्य का मूलभूत तत्व वह शक्ति मानता है । राज्य शक्ति का प्रयोग आन्तरिक व बाह्य दोनों क्षेत्रों में करता है। आधुनिक राज्यों का आकार बहुत विशाल है और उनके कार्य का क्षेत्र विस्तृत हो रहा है । परिणाम स्वरूप उनके विधि के शासन के स्थान पर एक निकृष्टतम रूप की नौकरशाही का विस्तार हो रहा है जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बनाये रखने के मार्ग की एक बड़ी बाधा है । इसे दूर करने के लिये राज्य की केन्द्रीभूत सत्ता को मर्यादित करने की आवश्यकता है । रसैल ने इसके लिये बहुलवादी तथा श्रेणी समाजवादी व्यवस्था को उचित बताया है । क्योंकि वे समाजवाद , लोकतंत्र तथा संघवाद केसम्मिश्रण हैं । उसके अनुसार - इसका एकमात्र उपाय समूह की व्यवस्था है जो अपने विशेषाधिकारों तथा स्वायत्तता को बनाये रखने के आकांक्षी हैं , भले ही ऐसा करने में उनको राज्य के कानूनों का प्रतिरोध करना पड़ जाये जोकि सार्वजनिक हितों के अहित में उनके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति रखते हैं ।[१]

व्यक्तिऔर समाज की सुविधाओं के सुनिश्चित करने के लिये राज्य आवश्यक है । रसैल का विचार है कि स्वस्थ समाज के निर्माण के लिये राजनीतिक सत्ता का सर्वोच्च उद्देश्य व्यक्ति की सृजनात्मक प्रवृत्तियों को स्वतंत्र विकास का अवसर देना और उसकी समाज विरोधी संग्रहात्मक प्रवृत्तियों का नियंत्रण करना होना चाहिये । राज्य की शक्तियों का अनावश्यक विस्तार रोका जाना चाहिये क्योंकि वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता को कुचलने का साधन सिद्ध होगा । रसैल श्रेणी समाजवादियों की भांति राज्य का क्षेत्र सीमित व संकुचित करना चाहता है । जहाँ तक व्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा की आवश्यकता होती है वहा वह राज्य की संस्था की आवश्यकता को मानता है।

- -

१- बेर्ट्रेण्ड रसैल - रोड टू फ्रीडम , पृष्ठ-१४४

रसैल का विचार है कि - शांति और युद्ध , आयात-कर , स्वास्थ्यजनक परिस्थितियों का निर्माण , नशोली मादक वस्तुओं की बिक्री का नियंत्रण ,वितरण की न्यायपूर्ण पद्धति स्थापित करना ऐसे कार्य हैं जिन्हें समाज में केन्द्रीय सरकार की सहायता के बिना पूरा नहीं किया जा सकता । इन कार्यों के लिये राज्य को संस्था बनी रहनी चाहिये किन्तु रसैल इस बात पर बल देता है - राज्य का कार्य इन्हीं कार्यों तक सीमित रहना चाहिये ताकि उसकी शक्ति पर नियंत्रण बना रहे । यह केवल इसी प्रकार बना रह सकता है कि राज्य सभी अपने विशेषाधिकारों को सुरक्षित बनाये रखने के लिये सदैव प्रयत्नशील एवं विभिन्न स्वरूप रखने वाले संघ इन कार्यों को करें । राज्य यद्यपि इस समय अनेक बुराइयों का जड़ है , फिर भी यह कुछ अच्छे कार्य करता है । इसकी तब तक आवश्यकता बनी रहेगी , जब तक समाज में हिंसा और विध्वंसकारी मनोभावनायें विद्यमान हैं ।[१]

वर्तमान राज्यों को केन्द्रीकरण के कारण असीमित अधिकार प्राप्त हैं , इससे नौकरशाही की प्रवृत्ति बढ़ रही है और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन हो रहा है । इस बुराई को दूर करने के लिये रसैल विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता पर बल देता है । उसका विचार है कि राज्य के अधिकांश कार्य सहयोगी समितियों और उत्पादन संघों द्वारा किये जाने चाहिये । लोकतंत्र की आधारभूत मान्यतायें स्वतंत्रता , समानता , सामाजिक न्याय तथा जनता द्वारा शासन व्यवस्था में अधिकाधिक भाग लेना रसैल के राजनैतिक विचारों का केन्द्र है । रसैल विकेन्द्रीकरण के द्वारा जनता को शासनकार्य में भाग लेने का अवसर देने के पक्ष में है । इसके निमित्त उसने श्रेणी समाजवाद को श्रेणी व्यवस्था को विविध व्यवसायिक स्वायत्तशासी संस्थाओं के रूप में उचित ठहराया है और राष्ट्रीय कांग्रेस में गिल्ड कांग्रेस को व्यवसायिक प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था के रूप में निर्मित किये जाने की धारणा पर बल दिया है । उसने स्वेच्छा से निर्मित समुदायों की रचना को लोकतंत्र की

- -

१- बर्टेण्ड रसैल - रोड टू फ्रीडम , पृष्ठ-१४४-४५

वास्तविक अभिव्यक्ति माना है। रसेल वर्तमान लोकतंत्र में जनप्रतिनिधियों के निर्वाचन के लिये वृहत् आकार के निर्वाचन क्षेत्र पद्धति का विरोध करता है। वह आम जनता द्वारा लोकतंत्र में भाग लेने की बात को भ्रामक मानता है। इसलिये रसेल ने निर्वाचन क्षेत्रों का छोटा किया जाना तथा व्यवसायिक आधार पर प्रतिनिधियों को चुना जाना आवश्यक समझा है।

(घ) जान स्टुअर्ट मिल के विचार -

मिल का विचार है कि यूरोपियन देशों के अधिकांश शासनों के द्वारा जो कार्य किये जाते हैं, यदि उनमें से हम उन कार्यों को घटा दें जिनको शासन या सार्वजनिक अधिकारियों को कदाई नहीं करना चाहिये तो फिर जो समस्त कार्य शेष बचते हैं उनका यदि और कोई नहीं तो कम से कम कार्य विभाजन के सिद्धांत के आधार पर तो केन्द्रीय शासन और स्थानीय शासन में वितरण होना अपरिहार्य है। मिल मानते हैं कि स्थानीय संस्थाओं के अधिकारियों के रूप में नागरिकों को सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने का अवसर मिलता है। स्थानीय प्रशासन में सम्पूर्ण राज्य के प्रशासन की अपेक्षा मानसिक अनुशासन के प्रशिक्षण का महत्व है।

मिल ने लिखा है - राज्य के शासन का अधिक महत्वपूर्ण और मूलभूत हितों से सम्बन्ध होता है, अतः इस क्षेत्र में बहुत कुछ प्रशासन की अच्छाई पर निर्भर करता है और प्रशासन का गुण प्राथमिक महत्व का होता है। स्थानीय शासन का सम्बन्ध चूंकि इतने महत्वपूर्ण हितों से नहीं होता, अतः वहां अधिकांश प्रशासन की अच्छाई की अपेक्षा मानसिक अनुशासन पर जोर दिया जा सकता है। सम्पूर्ण देश के लिये विधि निर्माण के कार्य में तथा सम्पूर्ण साम्राज्य के प्रशासन के कार्य में मानसिक अनुशासन के प्रशिक्षण के लिये प्रशासकीय गुणों की अवहेलना नहीं की जा सकती अथवा प्रशासनीय दक्षता की बात को स्थगित नहीं किया जा सकता।[१]

मिल का विचार है कि जिन कारणों के आधार पर राष्ट्रीय

- -

१- जान स्टुअर्ट मिल - स्वतंत्रता और प्रतिनिधि शासन, पृष्ठ-२९६

शासन की संस्थाओं का संगठन निर्वाचन के द्वारा होने आवश्यक है , उन्हीं कारणों के आधार पर स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं का संगठन निर्वाचन के द्वारा होना चाहिये । स्थानीय क्षेत्र में निर्वाचन में मतदान देने का अधिकार उन्हें होना चाहिये जो किसी न किसी प्रकार का कर देते हैं और जो किसी प्रकार का कर नहीं देते , उन्हें मतदान का अधिकार नहीं होना चाहिये । सदस्यों के निर्वाचन के लिये निर्वाचन क्षेत्र के निर्माण का आधारभूत सिद्धांत स्थानीय हितों की एकता और समानता होना चाहिये । मिल के अनुसार - स्थानीय स्वशासन का उद्देश्य यही है कि स्थान या क्षेत्र या प्रदेश में रहने वालों के कुछ अपने ऐसे स्थानीय हित होते हैं जिनमें और सम्पूर्ण देश के हितों में समानता नहीं होती और इसलिये इन स्थानीय सामुहिक हितों की व्यवस्था और प्रबंध में करने का अधिकार स्थानीय जनता को ही होना चाहिये । यदि स्थानीय निर्वाचन क्षेत्रों का निर्माण स्थानीय सामुहिक हितों के आधार पर न होकर अन्य किसी आधार पर होता है तो स्थानीय प्रशासन का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है ।[१]

मिल का मत है कि स्थानीय स्वशासन की दृष्टि से उत्तम यही होगा कि अनेक ग्रामों या ऐसे ही छोटे-छोटे स्थानों को मिलाकर एक बड़ा प्रदेश बना दिया जाये । ग्रामीण जिलों का स्थानीय प्रतिनिधित्व स्वभावत: भौगोलिक आधार पर निर्धारित होगा । प्रतिनिधित्व निर्धारित करने में भावनाओं और सहानुभूतियों की समानता और एकता ध्यान में रखी जायेगी जिससे कि सामुहिक रूप से कार्य करने में सहायता मिलती है । यह भावनाओं या सहानुभूतियों की समानता या एकता आंशिक रूप से ऐतिहासिक आधार पर ही होती है इसकी सीमायें देश या प्रान्त के रूप में होती हैं । मिल का मत है कि - वे सब कार्य विशुद्ध रूप से स्थानीय हैं अर्थात वे समस्त कार्य जिनका सम्बन्ध केवल उस स्थान, प्रदेश या क्षेत्र से है , स्थानीय स्वशासन के अधिकार में होना चाहिये । किसी नगर की सड़कों का निर्माण और मरम्मत, प्रकाश की व्यवस्था , सड़कों की सफाई और साधारण परिस्थितियों में नालियों के प्रबन्ध से , उसी नगर में रहने वालों से सम्बन्ध होता है और ये बातें अन्य व्यक्तियों के लिये कोई महत्व

- -

१- जान स्टुअर्ट मिल - स्वतंत्रता और प्रतिनिधि शासन , पृष्ठ-४२२

नहीं रखता ।[१]

मिल का विचार है कि शक्ति और कार्यों का विकेन्द्रीकरण हो सकता है किन्तु ज्ञान का केन्द्रीकरण होना चाहिये । केन्द्रीय शासन का मुख्य कार्य आदेशों को देना होना चाहिये और स्थानीय शासन का मुख्य कार्य इन आदेशों को लागू करना होना चाहिये । केन्द्रीय प्राधिकारी स्थानीय कार्यों की सूचना प्राप्त करके उन्हें उचित निर्देश दे सकते हैं । संसद या केन्द्रीय विधानसभा ने स्थानीयस्वशासन के सम्बन्ध में जिन सामान्य विधियों का निर्माण किया है, उनको मानने के लिये बाध्य कर सके । स्थानीय क्षेत्र से सम्बन्धित त्रुटियों या भूलों को तो सहन किया जा सकता है लेकिन देश के सामान्य हितों से सम्बन्धित प्रशासन के दोषों और त्रुटियों को सहन नहीं किया जा सकता है । इन सिद्धांतों के अतिक्रमण करने की आज्ञा नहीं दी जा सकती है जो एक और दूसरे व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों के आधार स्वरूप में है। जिनका पूरा-पूरा पालन करवाना राज्य का परम कर्तव्य है । स्थानीय शासन के मुख्य दो उद्देश्य होते हैं - प्रथम स्थानीय विषयों का प्रशासन और द्वितीय जनता की सार्वजनिकता की भावना का पोषण और बुद्धि का विकास । उसके अनुसार - स्थानीय स्वशासन के क्षेत्र में आने वाले विषयों को दो भागों में बांटा जा सकता है । एक प्रकार के विषय तो वे जिनका केवल स्थानीय महत्व है । नगर की सड़कों का निर्माण और मरम्मत , प्रकाश की व्यवस्था तथा सड़कों और नालियों की सफाई केवल स्थानीय महत्व के विषय हैं और इनके सम्बन्ध में स्थानीय स्वशासन को पूर्ण स्वतंत्र होना चाहिये किन्तु पुलिस, कारागृह, न्याय का स्थानीय प्रशासन आदि ऐसे विषय हैं जो यद्यपि स्थानीय स्वशासन के क्षेत्र में आते हैं किन्तु अप्रत्यक्ष रूप में इनका प्रभाव और महत्व राष्ट्रव्यापी होता है । इनके प्रशासन के सम्बन्ध में सम्पूर्ण राष्ट्र में एक नीति और एक प्रणाली होना चाहिये । ऐसे विषयों के सम्बन्ध में राष्ट्रीय शासन को नीति निर्धारित करने , आदेश देने और निर्धारित करने का पूर्ण अधिकार होना चाहिये।[२]

१- जान स्टुअर्ट मिल - स्वतंत्रता और प्रतिनिधि शासन,पृष्ठ-२२६
२- वही पृष्ठ-४३६

मिल का विचार है कि जिस बात में संसद कोई हस्तक्षेप नहीं करती उस बात में केन्द्रीय कार्यपालिका के किसी विभाग को भी हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होना चाहिये । किन्तु यह मानना होगा कि स्थानीय स्वशासन के सम्बन्ध में राष्ट्रीय कार्यपालिका का एक परामर्शदाता के रूप में, एक आलोचक के रूप में - विधियों के प्रवर्तक के रूप में तथा उसके निन्दनीय - कार्यों का संसद में और स्थानीय निर्वाचन क्षेत्र में भर्त्सना करने के रूप में बड़ा महत्व है ।

(३) <u>प्रमुख विकेन्द्रीकरण के समर्थक -</u>

भारत में विकेन्द्रीकरण का समर्थन प्रमुख रूप से महात्मा गांधी और डा० राममनोहर लोहिया दोनों ने किया । लोहिया जी ने विकेन्द्रीकरण के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण विचारों को हमारे सामने रखा है । इन दोनों के अलावा विकेन्द्रीकरण का समर्थन भारत के अन्य राजनीतिज्ञों ने भी किया है । जैसे - एनी बेसेन्ट, गोविन्द रानाडे, श्री गोपाल कृष्ण गोखले, लाला लाजपतराय, टैगोर और जयप्रकाश नारायण आदि ।

गांधी जी राजनीतिक और आर्थिक दोनों में शक्ति और धन के केन्द्रीकरण को सब बुराइयों की जड़ समझते थे, अत: उन्होंने विकेन्द्रीकरण पर बहुत बल दिया । गांधी जी का विचार था कि किसी राज्य को अत्यधिक शक्ति प्राप्त होने के कारण वह हिंसक बन जाता है । इसलिये राज्य की शक्ति जितनी क्षीण होगी, उतना ही उसका प्रभुत्व कम होगा । गांधीजी के राजनीतिक विकेन्द्रीकरण का अभिप्राय यह है कि गांव पंचायतों को अपने गांव का प्रबन्ध और प्रशासन करने के सब अधिकार दे दिये जायें । उनके मामले में राष्ट्रीय नियंत्रण कम हो । वे मानते थे कि - सच्चे लोकतंत्र का संचालन केन्द्र में बैठे हुए २० आदमियों से नहीं हो सकता । उसका संचालन नीचे से प्रत्येक गांव के लोगों द्वारा करना होगा ।[१]

१- महात्मा गांधी - सम्पादक भारतन कुमारप्पा- [illegible], पृष्ठ-[illegible]

गांधी जी गांवों में पूर्ण स्वराज्य चाहते थे। सच्चे स्वराज्य के लिये उन्होंने ग्राम स्वावलंबन पर जोर दिया और इसके लिये सत्ता का विकेन्द्रीकरण आवश्यक माना है। गांव आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूप से तभी स्वावलंबी हो सकेगा जबकि उसे प्रशासनिक रूप से स्वावलम्बी बना दिया जाये। ग्राम स्वावलंबन के लिये गांधी जी ने सत्ता के विकेन्द्रीकरण को अत्यधिक महत्व दिया। अमर बहादुर सिंह अमरेश के अनुसार - उनका कहना था कि लोकतंत्र की जड़ें निचले स्तर पर होनी चाहिये, ऐसा करने से ही ऊपर हरा-भरा रहेगा। भारतवर्ष की जड़े गांव हैं, यदि गांव विकेन्द्रित हैं तो जनतंत्र पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होता रहेगा।[१]

गांधी जी गांवों को पूर्ण आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे। तैलमठ दक्षाधा गोपीनाथ के अनुसार - गांधी जी ने इस बात पर बल दिया कि प्रत्येक गांव भोजन, वस्त्र की सामग्री वहीं पर उत्पन्न करे, प्रौढ़ों व बच्चों के लिये शिक्षा, मनोरंजन सुविधा वहीं प्राप्त हो। गांव का प्रशासन उसके प्रतिनिधियों, पंचायत के पंचों के हाथ में होना चाहिये।[२]

चूंकि भारत एक कृषिप्रधान देश है, अत: गांव का विकास अति-आवश्यक है। महात्मा गांधी का विचार था अगर गांव नष्ट हो जायेंगे तो हिन्दुस्तान नष्ट हो जायेगा। गांव को नष्ट होने से बचाने के लिये गांधीजी गांवों को स्वावलंबी बनाने के लिये लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को आवश्यक समझते थे। डा०लक्ष्मणसिंह ने लिखा है - गांधी जी के राजनीतिक विकेन्द्रीकरण का अर्थ यह है कि ग्रामों को अपने कार्य की व्यवस्था करने में अधिक से अधिक स्वतंत्र और अपनी ओर से कार्य करने की सुविधा होना चाहिये। उसके ऊपर राष्ट्रीय व राजकीय सरकार का नियंत्रण न्यूनतम होना चाहिये। वे राज्य सत्ता को सीमित, मर्यादित और नियंत्रित रखना चाहते थे।[३]

गांधी जी ने भारत के लिये ग्राम स्वराज्य की कल्पना की थी।

- -

१- अमर बहादुर सिंह अमरेश - हमारा समाजवाद, पृष्ठ-३८
२- तैलमठ दक्षाधा गोपीनाथ - भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण, पृष्ठ-६१
३- डा०लक्ष्मणसिंह - आधुनिक भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक विचारधारा, पृष्ठ-४८१

ग्राम स्वराज्य अर्थात राजनैतिक तथा आर्थिक विकेन्द्रीकरण गांव में कोई भूखा न रहे , कोई नंगा न रहे, कोई आवास के बिना न रहे । प्रत्येक ग्रामवासी को जीविका मिले । गांधी जी ने आर्थिक विकेन्द्रीकरण को महत्व दिया । उनका विचार था कि - खादी-मनोवृत्ति का अर्थ है , जीवन की आवश्यकताओं के उत्पादन और वितरण का विकेन्द्रीकरण इसलिये अब तक जो सिद्धांत बना है , वह यह है कि प्रत्येक गांव अपना जरूरत की सब चीज पैदा कर ले और शहरों की आवश्यकताओं के लिये कुछ प्रतिशत और पैदा कर ले ।[1]

गांधी जी आर्थिक विकेन्द्रीकरण देश में लाना चाहते थे । उनका विचार था कि बड़े उद्योगों को समाप्त करके लघु ग्रामोद्योग को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये । वे बड़े पैमाने पर मशीनों द्वारा कारखानों में किये जाने वाले उत्पादन के स्थान पर खादी , गुड़, तेल आदि के लघु कुटीर उद्योग स्थापित करना चाहते थे । उनका विचार था उद्योगवाद से उपनिवेशवाद और साम्राज्य-वाद को प्रोत्साहन मिलता है । उन्होंने लिखा है कि - यह सोचकर मेरा दिल भर आता है कि मशीन की झपट लगने से हिन्दुस्तान बर्बाद हो गया है । मैनचेस्टर ने हमें जो नुकसान पहुंचाया है , उसकी तो कोई हद हा नहीं है । हिन्दुस्तान से कारीगरी उठा करने का काम मैनचेस्टर का है ।[2]

गांधी जी ने भारत में आर्थिक स्थिति के सुधार के लिये खद्दर को महत्व दिया है । उनका विचार था कि खद्दर से बेकारी का समस्या समाप्त होगी और जनसाधारण का रहन-सहन अच्छा होगा । गांधी जी ने कहा - मिल मालिक एकाएक अपनी मिलों को नहीं छोड़ सकते , हमें उनसे उत्पादन न बढ़ाने के लिये विनती करना चाहिये । वे देश का प्रगति के लिये स्वयं अपना काम कम कर सकते हैं । वे देश में हजारों घरों में खद्दर लगा सकते हैं और लोगों का बना हुआ कपड़ा लेकर उसे बेच सकते हैं ।[3]

- -

१- गांधी जी -, आर०के०कुमारप्पा - अहिंसक समाजवाद की ओर,पृष्ठ-३४
२- गांधी जी , हिन्द स्वराज्य, पृष्ठ-८२
३- वही पृष्ठ-८४

गांधी जी का विचार था - कि मशीनों को समाप्त करने में बहुत कम समय लग जायेगा । उन्होंने लिखा है - यह न भूलियेगा कि यंत्र खराब चीज है उसको हम धीरे-धीरे समाप्त करेंगे । इसको समाप्त करने का रास्ता आगे मिल ही जायेगा । यंत्र के ऊपर मीठी नजर के बजाये जहरीली नजर पड़ेगी तो वह नष्ट हो जायेगा ।[१]

गांधी जी के आर्थिक विकेन्द्रीकरण के सम्बन्ध में डा० कृष्णा सिंह ने लिखा है - गांधी जी के आर्थिक विकेन्द्रीकरण का अभिप्राय है , विशाल पैमाने पर कार्य करने वाले उद्योगों के स्थान पर कुटीर उद्योग स्थापित करना । गांधी जी का दृढ़ विश्वास था कि संसार में हिंसा केन्द्रीकृत औद्योगिक व्यवस्था का ही परिणाम है । साम्राज्यवाद, अन्तर्राष्ट्रीयता , प्रतिद्वन्द्विता, संघर्ष इसकी उत्पत्ति है । कुटीर उद्योग व्यवस्था में सम्पत्ति के वितरण में अधिक विषमता नहीं रहती है ।[२]

गांधी जी चाहते थे बड़े उद्योग कुटीर उद्योगों के प्रतिद्वन्द्वी न बनकर सहायक बनें । यह कहना उचित होगा कि गांधीवादी अर्थव्यवस्था और औद्योगिक व्यवस्था के दुर्गुणों के विरुद्ध चेतावनी देकर ऐसी विकेन्द्रित व्यवस्था चाहते हैं जिससे कुटीर एवं ग्राम उद्योग पनपें तथा पूंजीपति लोग नैतिकता का पालन करते हुए अपने को पूंजी का ट्रस्टी मात्र समझें , स्वामी नहीं ।[३]

गांधी जी का राजनैतिक विकेन्द्रीकरण का विचार उचित है लेकिन कुटीर उद्योग का पुनरुत्थान करने का उनका प्रयास एक प्रतिगामी कदम है, घड़ी की सुइयों को पीछे की ओर घुमाता है। इतना होते हुये भी हम देखते हैं कि गांधी जी ने सम्पूर्ण जनता के हितों को ध्यान में रखकर अपने आर्थिक विचारों का प्रतिपादन किया । देश में आर्थिक विषमता को समाप्त करने के लिये गांधी जी ने कुटीर उद्योग व्यवस्था का विचार रखा । उन्होंने कहा - देहातों का

- -

१- महात्मा गांधी - हिन्द स्वराज्य , पृष्ठ-८५

२- डा० कृष्णा सिंह - आधुनिक भारतीय राजनैतिक एवं सामाजिक विचारधारा पृष्ठ-४८१

३- वही पृष्ठ-४८२

निष्क्रिय अथवा सक्रिय शोषण होगा क्योंकि इससे होड़ और बाजार तलाश करने की समस्यायें बीच में खड़ी होंगी । इसलिये हमें इस बात पर सारी शक्ति केन्द्रित करनी होगी कि गांव स्वाश्रयी बनें और माल मुख्यत: अपने उपयोग के लिये ही तैयार करें ।[1]

वे सभी प्रकार के विकेन्द्रीकरण के पक्ष में थे । विनोबा जी ने उनके लिये कहा - गांधी जी ने आदि, मध्य और अंत तीनों कालों के लिये सत्ता के विकेन्द्रीकरण की योजना की कल्पना की है ।[2]

भारत के उदारवादी , उग्रवादी, समन्वयवादी सभी विचारकोंने केन्द्रीकरण को अनुचित ठहराया है । जैसे - एनीबीसेन्ट ने भारत में ग्राम-पंचायत की स्थापना पर बल दिया और सत्ता के केन्द्रीकरण को अस्वीकार किया । श्री गोविंद रानाडे ने केन्द्रीकरण व्यवस्था का विरोध किया । उन्होंने इस व्यवस्था में सबसे बड़ा दोष यह बतलाया कि इस व्यवस्था के अन्तर्गत एक संहिता , एक विधि , एक नीति , एक कर-व्यवस्था और एक ही कार्यपद्धति होती है । जबकि देश की विभिन्न आन्तरिक परिस्थितियों के अनुसार कानून की व्यवस्था होनी चाहिये ।

श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने सत्ता के केन्द्रीकरण का जबर्दस्त विरोध किया । उन्होंने यह विश्वास प्रकट किया कि भारतीयों को उनके अधिकार तभी प्राप्त हो सकते हैं जबकि सत्ता के विकेन्द्रीकरण की नीति अपनाई जाये । श्री गोखले ने कहा कि - प्रशासकीय स्वेच्छाचारिता को नियंत्रित रखने के लिये सत्ता का विकेन्द्रीकरण जरूरी है ।

लाला लाजपतराय ने भी सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर बल दिया । उन्होंने ब्रिटेन के अनियंत्रित और अस्वाभाविक केन्द्रीकृत शासन पर प्रहार करते हुए मांग की कि भारत में लोकतांत्रिक प्रतिनिधि संस्थायें विकसित हों जिनके पास

- -

१- महात्मा गांधी - सम्पादक, भारतन कुमारप्पा, सर्वोदय, पृष्ठ-५७

२- विनोबा - तीसरी शक्ति, पृष्ठ-१६

अपने क्षेत्र में समुचित शक्ति हो। ग्राम स्तर पर स्वायत्त शासन का लालाजी ने समर्थन किया। श्री विपिन चन्द्रपाल ने एकात्मक शासन का इस आधार पर विरोध किया कि उसमें अनान्यतः शासन अत्यधिक केन्द्रीकृत हो जाता है अर्थात सत्ता के विकेन्द्रीकरण की प्रायः गुंजाइश नहीं रहती। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकृत शासन स्थापित करने का सर्वोत्तम उपाय स्थापित करने का उपाय यह माना कि प्रशासन की इकाई एक ग्राम अथवा समुदाय हो। उन्होंने संघ व्यवस्था में सत्ता के विकेन्द्रीकरण के पर्याप्त अवसर देखे और कहा कि ग्राम प्रशासनों का संघ बनाकर जिला प्रशासन और जिला प्रशासनों के संगठन से प्रान्तीय प्रशासन तथा प्रान्तीय प्रशासनों को मिलाकर अखिल भारतीय संघ बनाना चाहिये।

श्री टैगोर ने भी केन्द्रीकृत शासन प्रणाली को अनुपयुक्त ठहराते हुए सत्ता के विकेन्द्रीकरण का पक्ष लिया। उन्होंने ऐसी व्यवस्था की कामना की जिसमें प्रत्येक गांव में एक ग्राम सभा हो उस ग्राम सभा में ग्राम की सम्पूर्ण जनता शामिल हो तथा ग्राम सभा सब लोगों के लिये कानूनों का निर्माण करे एवं सबके हित में उन कानूनों को लागू करे।

लोकतंत्र के बाह्य स्वरूप को पश्चिमी प्रतिमान के अनुरूप गढ़कर लोकतंत्र को सिद्ध पर जयप्रकाश विश्वास नहीं करते थे। उनका विचार था हमें पश्चिम के अनुभव से लाभ उठाकर अधिक उपयुक्त ढंग से लोकतंत्र की ओर अग्रसर होना चाहिये। जन स्वीकृति से शासने के बाद अगला कदम सरकार चलाने में जनता का प्रत्यक्ष योगदान मूलक लोकतंत्र पार्टी सिपेटिंग डेमोक्रेसी है। जनता को शासन में प्रत्यक्ष योगदान का अवसर प्रदान करने के लिये शासन को जनता के निकट जितना सम्भव हो, उतना ही निकट लाना होगा। इसके लिये राजनीतिक और आर्थिक विकेन्द्रीकरण सुचारु व्यवस्था आवश्यक होगी। डा० सोमनाथ शुक्ल के अनुसार - जय प्रकाश ने समस्त राजनैतिक ढांचे को जन गणतंत्रों के आधार पर स्थिर होना स्वीकार किया है उनके प्रजातंत्र का आधार पर स्थिर होना स्वीकार किया है, उनके प्रजातंत्र का आधार एक लघु सम्प्रदाय बन सकता है। इसी निमित्त लघु समुदाय की पुनर्रचना करनी है। भारतीय

राजनीतिक जीवन इन समुदायों के आधार पर निर्मित होगा । इसी देश में एक मुक्त लोकतंत्र विकसित होगा । इस लोकतंत्र को ग्रामीण लोकतंत्र की संज्ञा दी जा सकती है ।[1]

जयप्रकाश के सामुदायिक लोकतंत्र में अधिकाधिक सत्ता विभाजन, अधिकाधिक स्वावलंबन और अधिकाधिक सम्पन्नता तथा अधिकतम शक्ति संचय की सम्भावना है । इस प्रकार सामुदायिक लोकतंत्र की भूमिका में निर्मित ग्राम समुदाय अधिकाधिक सत्ता विभाजन की स्थिति का उपयोग कर सकेगा । इन समुदायों में सत्ता के स्थान पर सेवा प्रधान और प्रतियोगी के स्थान पर सहयोगी पालक शक्ति का सृजन होगा । यह गांधी के स्वाराज्य की रचना थी । डा० सोमनाथ शुक्ल के अनुसार - राजनीतिक संगठन के जिला स्तर तक तीन संस्थाओं का अंकन जयप्रकाश ने किया है - प्रारम्भिक समुदाय , क्षेत्रीय समुदाय और जिला समुदाय । देश में इन तीनों स्तरों के अनुरूप संस्थायें हैं । विकास खण्ड, क्षेत्रीय समुदाय के समकक्ष हैं किन्तु आज की ग्रामसभा , विकास खण्ड और जिला परिषद् में सत्ता विभाजन से अधिक शक्ति विभाजन प्रतीत होता है ।[2]

जयप्रकाश नारायण प्रारम्भिक इकाई के तीन लक्षण मानते थे - प्रत्यक्ष चुनाव, सर्वानुभूति तथा रचनात्मक कार्य । स्थानीय समुदाय की सर्वोच्च राजनीतिक संस्था ग्रामसभा होगी और सभी व्यस्क निवासी इसके सदस्य समझे जायेंगे । कार्यपालिका अर्थात ग्राम पंचायत का चयन ग्राम सभा की सम्मति से होगा ।

जयप्रकाश नारायण ने सत्ता हस्तांतरण का विचार किया है , जिसका ऐतिहासिक महत्व माना जा सकता है । यह सत्ता हस्तांतरण वैज्ञानिक है । सत्ता के हस्तांतरण से केन्द्र के पास उतने ही अधिकार होंगे जितने कि केन्द्रीय कार्यों को पूरा करने के लिये जरूरी हैं और शेष अधिकार नीचे की

- -

१- डा० सोमनाथ शुक्ल - जयप्रकाश नारायण" व्यक्ति और विचार" पृष्ठ-१५२

२- वही पृष्ठ-१५५

इकाइयों को सौंप दिये जायें । इसका अर्थ यह नहीं कि - केन्द्र निर्बल हो जायेगा। जयप्रकाश नारायण के ग्रामीण औद्योगीकरण का अर्थ है विकेन्द्रित रूप से जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं का यथा सम्भव पूर्ति स्थानीय रूप में हो । इसप्रकार कृषि उद्योग का सामंजस्य हो ।

इस प्रकार देश में केन्द्रीकरण व्यवस्था का अधिकतर सभी राजनीतिक विचारकों ने विरोध किया । भारत जैसे विशाल देश के लिये विकेन्द्रीकृत व्यवस्था आवश्यक है । विकेन्द्रीकरण का अर्थ यह नहीं है कि स्थानीय संस्थाओं को केन्द्र से पृथक कर दिया जाये । विकेन्द्रीकरण से अभिप्राय है कि केन्द्र को अपने दायित्वों से मुक्त होकर उन्हें स्थानीय प्रशासन को सौंपना है । स्थानीय संस्थायें केन्द्र के नियंत्रण के अधीन रहकर अपना कार्य करेंगी ।

४) विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता -

लोहिया जी का विचार था कि देश के सर्वांगीण विकास के लिये देश में विकेन्द्रीकृत व्यवस्था अति-आवश्यक है । चूंकि हमारा देश गांव का देश है और अगर हमें देश का सर्वांगीण विकास करना है तो निश्चित रूप से ऐसी व्यवस्था को प्राश्रय देना होगा जिससे गांवों का विकास हो । इसी बात को पूरा करने के लिये लोहिया जी ने अपने विकेन्द्रीकरण के विचारों को हमारे सामने रखा । उन्होंने लिखा है कि - प्रशासन में सीमाओं का निर्धारण करके शासकों की शक्ति को सीमित कर सकते हैं और उनको धन संग्रह से अलग रख सकते हैं । राज्य की शक्तियों को विभाजित करके और स्थानीय संस्थाओं को मजबूत करके देश का सर्वांगीण विकास सम्भव किया जा सकता है ।[१]

लोहिया जी मानते थे कि देश में विकेन्द्रीकृत व्यवस्था के द्वारा अत्याचारी और भ्रष्ट शासकों पर अंकुश लगाया जा सकता है । विकेन्द्रीकरण में जनता को शासन में भाग लेने का अवसर मिलता है , इससे वह अपनी सुविधाओं को ध्यान में रखकर शासन का कार्य करवा सकती है । चूंकि शासकों की शक्तियां

१- डा०राममनोहर लोहिया - फ्रेगमेन्ट्स औफ द वर्ल्ड माइन्ड, पृष्ठ-६३

बंट जाती है इस कारण वह निरंकुश होकर कार्य नहीं कर सकते , उन्हें जनता के हितों को ध्यान में रखना पड़ता है । लोहिया जी ने लिखा है कि - आज तो सरकार कोई पाप करती है तो छिप जाता है लेकिन एक हो गांव और जिले में ऐसा पाप छिप नहीं पायेगा । इसके अलावा गांव में गुण्डा, जमींदारी और पुलिस का मिला-जुला त्रिकोण षड्यंत्र जो हमारे गांव का शासक है मिट जायेगा। गांव व जिले में प्रशासन की शक्ति आने से लोगों को प्रशासन के मामले में दिलचस्पी लेने और उन्हें समझने की इच्छा होगी । उन्हें अपने ऊपर होने वाले जुल्मों का अहसास होगा । आम जनता में गर्वीलापना पैदा की जा सकती है । अधिकारों के साथ-साथ लोगों की कर्तव्य भावना भी बढ़ेगी ।[१] लोहिया जी का विचार था कि विकेन्द्रीकरण व्यवस्था के अन्तर्गत जनता को गतिशील होना पड़ेगा और वहाँ प्रशासक जनता के प्रति उत्तरदायी होंगे क्योंकि ऐसा करने से जहाँ प्रशासकों को एक छोटे हिस्से पर अपना प्रभुत्व रखना पड़ेगा , वहाँ जनता प्रशासक के साथ अधिक अपनत्व अनुभव करेगी क्योंकि ऐसी परिस्थिति में उसका भी लोग प्रतिनिधि से सीधा सम्पर्क हो सकता है ।

वे राज्य शक्ति को चौखम्भा राज्य के सिद्धांतानुसार दो पायों की जगह चार पायों में वितरित करना चाहते थे । आज राज्य दोपायों पर टिका है - एक केन्द्र , दूसरा राज्य । लोहिया जी इसे संवैधानिक ढंग से जिला और गांव तक ले जाना चाहते थे । वह सीधे जनतंत्र के पुजारी थे । उनका विचार था कि गांव के सम्पूर्ण मतदाता सभी समस्याओं पर सीधे निर्णय ले सकते हैं । प्रतिनिधि किसी व्यक्ति विशेष का प्रतिनिधित्व कर सकता है , स्वयं वह व्यक्ति विशेष नहीं हो सकता ।

लोहिया जी चाहते थे कि देश में प्रशासन की व्यवस्था ऐसी हो जिसमें केन्द्रीय सत्ता स्थानीय संस्थाओं द्वारा नियंत्रित रहे । वे केन्द्र की शक्तियों को विकेन्द्रित कर स्थानीय संस्थाओं को अधिकार प्रदान करना चाहते थे जिससे जनता स्वतंत्रता का अनुभव कर सके । उन्होंने राजनीति स्तर पर समाजों के शासन तंत्र की नई संरचना प्रस्तुत की । उन्होंने समझ लिया कि जब तक शासन तंत्र ऊपर

१- डा०राममनोहर लोहिया- समाजवाद का सगुण रूप, पृष्ठ-२८

से आरोपित होगा , समाज स्वतंत्र अनुभव नहीं कर सकता और उसका प्रभाव शासन तंत्र पर ही सकता है । समाज में शोषक बने रहेंगे इसलिये लोहिया जी शासन तंत्र की संरचना नीचे से ऊपर की ओर स्वीकार करते हैं ।

लोहिया जी ने लोगों के सर्वांगीण विकास के लिये विकेन्द्रीकरण पर जोर दिया । चौखम्भा राज्य की कल्पना लोहिया जी ने इसी कर्म और निष्ठा के आधार पर की और दिखलाया कि ऐसा कर हम अपने लोगों को अधिक से अधिक सुख की उपलब्धि करा सकते हैं । विकेन्द्रीकरण आज भी युग की मौलिक आवश्यकता है और इसके अभाव में लोगों के जीवन का सर्वांगीण विकास या उत्थान सम्भव नहीं है ।

वर्तमान प्रशासन व्यवस्था में विकेन्द्रीकरण आवश्यक है । यदि प्रशासन की सारी शक्ति केन्द्रीय सत्ता में निहित रहती है तो सामान्य जनों के हाथ में शासन की कुछ भी सत्ता नहीं रहती । इसलिये वे देश में शासन की शक्ति को राज्य , जिला और गांव में बांट देने के पक्ष में थे । इन्हें अपने क्षेत्र के निर्णय में स्वतंत्र होना चाहिये तभी सच्चा विकेन्द्रीकरण होगा और देश में परिवर्तन आयेगा । लोहिया जी ने लिखा है कि - चौखम्भा राज्य का यही आधार है कि जितने गांव हैं उतने में अधिकारों एवं शक्तियों का विभाजन कर गांव संगठन में विश्वास पैदा करें । राज्य की शक्ति तो होनी ही चाहिये किन्तु उसका छोटी इकाइयों में विभाजन भी उतना ही जरूरी एवं महत्वपूर्ण है । मैं और किसी अन्य तरीके से भारतीय जीवन में बदलाव नहीं जानता हूं ।[१]

लोहिया जी का विचार था कि - शक्ति के पीछे ही संघर्ष रहता है । विकेन्द्रीकरण व्यवस्था में जब शक्ति बांटकर सीमित कर दी जायेगी तो संघर्ष स्वत: ही समाप्त हो जायेगा । स्थानीय समस्याओं का हल स्थानीय लोग ही निकालेंगे , केन्द्र को सिर्फ सारे देश की उन समस्याओं का जो केन्द्रीय

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - फ्रैगमेन्ट्स आफ ए वर्ल्ड माइन्ड,पृष्ठ-९१

स्तर की है, निपटाने का अधिकार होगा।

लोहिया जी की समाजवादी राजनीति लघुतम मनुष्य के हित की राजनीति है इसलिये लोहिया जी ने अपने सम्पूर्ण विचारों में लघुतम मनुष्यों के विशाल समूह को अपने शोध तथा कार्यकलापों का केन्द्र बनाया। लघु मनुष्य को केन्द्र बनाकर उन्होंने उसकी लघुता मिटाने का कार्यक्रम रखा। चौखम्भा व्यवस्था वही कार्यक्रम है जिसके अन्तर्गत मनुष्य अपनी लघुता की सीमा लांघकर राज्य की विशाल मशीनरी में हिस्सेदार बनता है और प्रशासन के माध्यम से सम्पूर्ण के साथ एकाकार हो जाता है।

लोहिया जी सभी मनुष्यों को समान रूप से प्रशासन में अवसर देना चाहते थे। उन्होंने केन्द्रीकरण व्यवस्था में दोष देखे क्योंकि केन्द्रीकरण - व्यवस्था में जनता को कोई स्थान प्राप्त नहीं होता। केन्द्र के निर्णय के आगे व्यक्ति को झुकना पड़ता है। इतने विशाल देश की समस्याओं को जितना बारीकी से वहाँ के लोग समझ सकते हैं, दूसरे उनका समझ ही नहीं सकते। इसलिये लोहिया जी स्थानीय समस्याओं को हल करने का अधिकार स्थानीय संस्थाओं को देना चाहते थे। वे स्थानीय संस्थाओंपर केन्द्र का नियंत्रण नहीं चाहते थे। वे मानते थे कि विकेन्द्रीकरण व्यवस्था में जनता को शासन में भाग लेने से जागरूकता आयेगी और वह अपनी समस्याओं का हल समझ कर उनका निर्णय करेगी। विकेन्द्रीकरण के बिना प्रजातंत्र सम्भव नहीं है क्योंकि प्रजातंत्र में जनता का शासन होता है। जनता को शासन में भाग लेने का अवसर विकेन्द्रीकरण व्यवस्था में ही मिल सकता है।

५) विकेन्द्रीकरण का स्वरूप -

लोहिया जी ने प्रजातंत्र की सफलता के लिये विकेन्द्रित व्यवस्था को आवश्यक माना है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि देश मेंविकेन्द्रित व्यवस्था का स्वरूप किस प्रकार का होना चाहिये। वे देश के हित के साथ-साथ जनता के हित का भी ध्यान रखते थे। उन्होंने देश व जनता दोनों के हितों

को ध्यान में रखते हुए शासन की सत्ता को चार भागों में विभाजित किया - केन्द्र , राज्य, जिला, व गांव । उन्होंने अपनी इस व्यवस्था को चौखम्भा राज्य का नाम दिया । उनका विचार था कि देश की सत्ता केन्द्र , राज्य, जिला व गांव चारखम्भों पर टिकी है , इसमें यदि एक भी खम्भा कमजोर रहता है तो सम्पूर्ण शासन सत्ता को गिरने का भय रहता है । इसलिये वे सभी को अपने क्षेत्र में कार्य करने की पूरी स्वतंत्रता देने के पक्ष में थे । राष्ट्रीय हित के साथ-साथ उन्हें सम्पूर्ण मानवता के हित की चिंता थी । इस कारण वे एक शक्तिशाली विश्व संगठन भी चाहते थे जो मानवता का कल्याण कर सके । लोहिया जी ने लिखा है कि - चौखम्भा राज्य वास्तव में अभी तक केवल देश के के अन्दर राज्य शक्ति के बटवारे का विचार है । राज्य की पूरी शक्ति चार जगहों पर देश, सूबा , जिला और गांव या शहर में बांटी जाये और अलग से इसमें पांचवां खम्भा भी जोड़ना आवश्यक हो गया,वह है सम्पूर्ण विश्व की सरकार और पंचायत ।[१]

गांधी जी ग्राम स्वराज्य चाहते थे । लोहिया जी ने गांधी जी के सपने को पूरा करने के लिये चौखम्भा व्यवस्था का विचार रखा । लोहिया जी ने गांधी जी के अधूरे सिद्धांत को चौखम्भा व्यवस्था के रूप में विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत करके गांधी जी के अधूरे कार्य को पूरा किया । स्वयं लोहिया जी ने कहा है कि - सामान्य आदमी के युग में जनतंत्र तभी गर्व ला सकता है जब वह ग्राम, जिला , प्रांत और केन्द्र इन चार अंगों की स्थिति में काम करने का 'संवैधानिक सिद्धांत अमल में लाये ।[२]

लोहिया जी ने अपने चौखम्भा सिद्धांत के द्वारा गांधी जी के ग्राम स्वराज्य के सिद्धांत को महत्व दिया । समाजवादी नेता मधुलिमये के अनुसार- महात्मा गांधी तथा डा०राममनोहर लोहिया संवैधानिक, प्रशासकीय ,आर्थिक

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - समाजवाद का सगुण रूप , पृष्ठ-२१
२- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-२८८

तथा तकनीकी विकेन्द्रीकरण के सिद्धांत के निर्माता रहे ।[१]

लोहिया जी चौखम्भा व्यवस्था के आधार पर ही हिन्दुस्तान का सर्वांगीण विकास करना चाहते थे । उन्होंने लिखा है कि - चौखम्भा राज्य की स्थापना के लिये लड़े बिना नया हिन्दुस्तान बनना असम्भव है ।[२]

लोहिया जी ने चौखम्भा व्यवस्था सिर्फ शासन व्यवस्था तक ही सीमित नहीं रखी । वे राजनैतिक , आर्थिक , प्रशासकीय सभी प्रकार की शक्तियों के विकेन्द्रीकरण के पक्ष में थे। उन्होंने अपने चौखम्भा व्यवस्था की रूपरेखा १९४८ के पटना में हुए समाजवादी सम्मेलन में प्रस्तुत की । उन्होंने कहा - राज शाही , हुकुमशाही या लोकशाही इन सभी शासन व्यवस्था के प्रकारों में मुट्ठी भर ऊपर वालों के हाथ में सत्ता केन्द्रित होती है , सामान्य जनों के हाथों में शासन की कुछ सत्ता नहीं होती । इस प्रकार की व्यवस्था में बदलने की दृष्टि से मुल्क के कार्यभार के छोटे-छोटे भाग करने चाहिये । गांव , जिला, सूबा और मध्यवर्ती केन्द्र जैसे चार खम्भों पर यह व्यवस्था खड़ी करना होगी । केवल शासन व्यवस्था की दृष्टि से यह व्यवस्था सीमित करना ठीक नहीं होगी बल्कि नियोजन, उत्पादन व्यवस्था , माल की व्यवस्था , शिक्षा इत्यादि दोनों में भी यह व्यवस्था प्रकट होनी चाहिये ।[३]

लोहिया जी राज्य को निरंकुश , सर्वग्राही और तानाशाही होने से रोकना चाहते थे । इसके लिये वे आवश्यक समझते थे कि सत्ता को सीमित करके बांट दिया जाये जिससे कोई भी शक्ति निरंकुश न होने पाये । ओमप्रकाश दीपक के अनुसार - लोहिया ने विकेन्द्रित राज्य की कल्पना प्रस्तुत की - चौखम्भा । राज्य की शक्ति को तोड़कर केन्द्र और प्रांत के अलावा जिला व गांव में बांट दी जाये । केन्द्र व प्रांत में उतनी ही शक्ति रहे जितनी आवश्यक हो जैसे पल्टन केन्द्र में और हथियार बंद पुलिस प्रांत में और जहां तक सम्भव हो अधिक से अधिक

- -

१- मधु लिमये - चौखम्भा राज्य एक रूपरेखा ' ,पृष्ठ-१(दो खण्ड)

२- डा०राममनोहर लोहिया - समाजवाद का सगुण रूप, पृष्ठ-३०

३- इन्दुमति केलकर - लोहिया : सिद्धांत और कर्म , पृष्ठ-१९८

शांति जिला और गांव में रहे जैसे सामान्य पुलिस जिले में और सारे विकास कार्य गांव में हों। राष्ट्रों के बीच सहकार के लिये पांचवां खम्भा वालिग मताधिकार पर चुनी गई विश्व संसद हो।[1]

लोहिया जी अपने चौखम्भा सिद्धांत के आधार पर जनता में अधिकारों के प्रति सजगता और उत्तरदायित्व की भावना पैदा करना चाहते थे। इसका मुख्य उद्देश्य जनता में शासन के प्रति दिलचस्पी पैदा करना है। लोहिया जी ने विकेन्द्रीकरण व्यवस्था का जो स्वरूप हमारे सामने रखा, यदि उसको व्यवहारिक रूप दे दिया जाये तो निश्चय ही भारत में एक जनतंत्र की स्थापना की जा सकती है। भारत गांवों का देश है, जब गांवों के लोगों में प्रशासन में भाग लेने की भावना का विकास होगा तभी देश की उन्नति सम्भव है। लोहिया जी का चौखम्भा व्यवस्था का सिद्धांत मौलिक और उपयुक्त प्रतीत होता है। उन्होंने बहुत कुशलता के साथ यह विचार प्रस्तुत किया। यदि हमारा देश उनके सिद्धांतों पर अमल करने का प्रयत्न करे तो उसका कल्याण अवश्यम्भावी है।

जहां तक लोहिया जी का पांचवां खम्भा का विचार है, वह विचार की दृष्टि से और मानवता के हित की दृष्टि से अति-उत्तम है लेकिन व्यवहारिक दृष्टि से उसको लागू करना अति दुष्कर कार्य है। सिद्धांत वही अच्छे होते हैं, जिनका व्यवहार में उपयोग हो सके। उनका पांचवां खम्भा यानि वालिग मताधिकार के आधार पर विश्व के संगठन का विचार एक स्वप्न के समान प्रतीत होता है।

लोहिया जी के विकेन्द्रीकरण के स्वरूप को समझने के लिये हमें उनके राजनैतिक, आर्थिक व प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण से सम्बन्धित विचारों को समझना आवश्यक है :-

(क) राजनीतिक विकेन्द्रीकरण -

लोहिया जी चाहते थे कि देश की राजनीतिक संस्था एक जगह केन्द्र में

- -

१- ओमप्रकाश दीपक "एक नई सभ्यता का सपना" लोहिया: बहुआयामी व्यक्तित्व पृष्ठ-३०

केन्द्रित न हो बल्कि संवैधानिक तौर से राजनैतिक सत्ता को केन्द्र , राज्य , जिला व गांव के मध्य बांट देना चाहिये जिससे जनता को भी या प्रशासन में भाग लेने का मौका मिले । उनका विश्वास था कि जनता को राज्य के अनुचित कार्यों का विरोध करने का अधिकार मिलना चाहिये । वे राज्य को जनता के अधिकारों का रक्षक मानते थे। राज्य असीमित शक्तियों को प्राप्त करके निरंकुश न बन जाये , इसके लिये उन्होंने उसकी सत्ता को विकेन्द्रित करने की व्यवस्था की जिससे राज्य को एक निश्चित सीमा तक कार्य करने का अधिकार प्राप्त हो और राज्य अपने कार्य के लिये जनता के प्रति उत्तरदायी हो । उनके अनुसार - प्रभुसत्ता केवल एक केन्द्र या संघीय इकाइयों में नहीं रहना चाहिये , इसे तोड़कर बिखेर देना चाहिये । जिससे यह छोटे-छोटे क्षेत्रों में बट जाये ,जहां स्त्रियां और पुरुष रहते हैं ।[१]

लोहिया जी जनतंत्र में असीम विश्वास रखते थे । वे राज्य की शक्ति को विकेन्द्रित कर जन साधारण को शासन में भाग लेने का मौका देना चाहते थे। उनका विचार था कि राज्य एक ऐसी संस्था है जिसमें सभी को आवश्यक रूप से शामिल होना चाहिये । केन्द्रीकरण के कारण जनता की हर इकाई सरकार तक अपना इच्छाओं को नहीं पहुंचा सकती है । विकेन्द्रीकरण में प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचारों का पूर्ण स्वतंत्रता रहती है , कि वह शासन तंत्र में अपनी सुविधा के अनुसार कार्य कर सके । प्रजातंत्र को सफल बनाने के लिये लोहिया जी राजनैतिक सत्ता को विभिन्न इकाइयों में बांट देने के पक्ष में थे । जिससे व्यक्तियों की सुविधानुसार कानून की व्यवस्था हो । लोहिया जी ने लिखा है कि - राज्य की सर्वोच्च सत्ता इस प्रकार बिखरी रहेगी जिसके अन्दर रहने वाले प्रत्येक समुदाय इस तरह अपना जीवन चला सके , जिस तरह व चाहे ।[२]

लोहिया जी का विचार था कि विकेन्द्रीकरण व्यवस्था सिर्फ कार्यपालिका शक्ति तक ही सीमित नहीं रहना चाहिये बल्कि स्थानीय इकाइयों को-

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - फ्रेगमेन्ट्स आफ ए वर्ल्ड माइन्ड,पृष्ठ-७७

२- डा०राममनोहर लोहिया - विवाह समस्या और चौखम्भा राज्य,पृष्ठ-२७

व्यवस्थापिका की शक्तियाँ भी मिलना चाहिये जिससे वे अपने क्षेत्र में व्यवस्था स्थापित करने के लिये कानून बना सकें । लोहिया जी के अनुसार - चौखम्भा व्यवस्था में कार्यपालिका तथा विधायिका दोनों ही प्रकार की व्यवस्था है ।[१]

लोहिया जी स्थानीय संस्थाओं को सभी प्रकार की शक्तियां देना चाहते थे । वे संघात्मक व्यवस्था को अपूर्ण मानते थे क्योंकि संघात्मक व्यवस्था में केन्द्र से सम्बन्धित मामलों में केन्द्र का अधिकार होता है और राज्य के मामलों में राज्य का अधिकार होता है लेकिन राज्य अपने क्षेत्र में केन्द्र की इच्छा के विपरीत कार्य नहीं कर सकता है । इससे स्पष्ट हो गया कि संघात्मक व्यवस्था में केन्द्र ही शक्तिशाली होता है । लोहिया जी एक ऐसी राजनैतिक व्यवस्था चाहते थे जिसमें ग्राम , मण्डल, राज्य और केन्द्र सभी इकाइयों को अपने क्षेत्र में कार्य करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो और ये सभी इकाइयां आपस में सहयोग की भावना से मिलकर कार्य करें न कि एक दूसरे पर अपना प्रभाव दिखायें । राजनैतिक विकेन्द्रीकरण के लिये उन्होंने चौखम्भा योजना प्रस्तुत की । भारत में विद्यमान संघात्मक व्यवस्था को वे देश की अपूर्ण व्यवस्था मानते थे । वे चाहते थे कि सर्वोच्च शक्ति केन्द्र व राज्य में निहित न होकर अन्य इकाइयों में विकेन्द्रित होना चाहिये ।

(ख) आर्थिक विकेन्द्रीकरण -

भारत एक कृषिप्रधान देश है । भारत की अधिकतर जनसंख्या गांवों रहती है , गांव में व्यक्ति कृषि पर निर्भर रहता है । लोहिया जी का विचार था कि भारत में आर्थिक विकेन्द्रीकरण भी आवश्यक है । बड़ी-बड़ी मशीनों के स्थान पर छोटी मशीन योजना भी आवश्यक है । गांवों में छोटे-छोटे उद्योगों को खोला जाय जिससे वहां बेकारी की समस्या हल हो और आर्थिक सम्पन्नता आ सके । वे सभी व्यक्तियों को आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न व समान देखना चाहते थे । वे सभी को रोजगार देने के पक्ष में थे । उन्होंने कहा - मनुष्य पागलपन मैकाबी करने लगेगा यदि उसकी समानता की भूख शांत न हुई । (इसलिये) उद्योगों का

१- डा० राममनोहर लोहिया - फ्रेगमेन्ट्स ऑफ ए वर्ल्ड माइन्ड, पृष्ठ-७०

राष्ट्रीयकरण तथा अर्थ व्यवस्था का नियोजन होना चाहिये । सामाजिक स्वामित्व व नियंत्रण का समुचित मात्रा में विकेन्द्रीकरण हो जाना चाहिये।[१]

लोहिया जी का विचार था कि चौखम्भा व्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक विकेन्द्रीकरण के विचारों को भी स्थान दिया जाना चाहिये । उन्होंने विभिन्न इकाइयों के मध्य आर्थिक शक्तियों के विभाजन पर बल दिया । उनका कहना था कि रेल , लोहा , इस्पात उद्योग केन्द्र सत्ता के अधीन होना चाहिये। छोटे कारखाने जिला व गांव के अधीन होना चाहिये । सभी को आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होना चाहिये । प्रो० एम०एन०दुबारी ने कहा है - भारत में गांधी के बाद राममनोहर लोहिया ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने राजकोष , आर्थिक , तकनीकी व औद्योगिक सत्ता के रूपों को मनुष्य की आजादी के सन्दर्भ में देखने की कोशिश की । आज की भयंकर गिरावट से यह स्पष्ट हो गया है कि भारत के आर्थिक विकास के लिये भी विकेन्द्रीकरण एक मात्र रास्ता है ।[२]

लोहिया जी देश की आर्थिक प्रगति के लिये सारे देश में छोटी मशीन योजना की व्यवस्था चाहते थे क्योंकि बड़े उद्योग धन्धों से समाज के कुछ ही लोगों के पास पूंजी एकत्र हो जाती है और अधिकांश व्यक्तियों के पास पूंजी का अभाव हो जाता है,इससे देश में आर्थिक असमानता बढ़ती है।इसलिये लोहिया जी देश में आर्थिक सम्पन्नता और समानता लाने के लिये छोटी मशीन योजना की व्यवस्था लागू करना चाहते थे । वे आर्थिक क्षेत्र में केन्द्रीकरण के विरुद्ध थे । उनकी मान्यता थी कि आर्थिक विकेन्द्रीकरण के बिना प्रशासनिक, विधायकी और न्यायिक विकेन्द्रीकरण बेकार है । वे चाहते थे कि बड़े उद्योगपति खत्म हों। लघु उद्योगों का देश में जाल सा बिछ जाये क्योंकि बड़े पैमाने पर चल रहे उद्योग नैतिक पतन , मानसिक दौर्बल्य और शारीरिक क्षीणता के निधान होते हैं।

लोहिया जी छोटी मशीन योजना के द्वारा देश में आर्थिक क्रान्ति

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-२८६

२- प्रो०एम०एन०दुबारी - प्रतिपक्ष दिल्ली २७-१-७४, पृष्ठ-८

लाना चाहते थे। इससे देश में सभी को रोजगार प्राप्त होगा और देश की आर्थिक सम्पन्नता बढ़ेगी। चौखम्भा राज्य के अन्तर्गत हम महान उपलब्धियाँ को प्राप्त कर सकते हैं। विकेन्द्रीकरण के मार्ग में लोगों को एक अच्छी जिंदगी हासिल कराने के लिये लोहिया जी का चौखम्भा एक उत्तर सिद्धांत सिद्ध होगा।

लोहिया जी का विचार था कि केन्द्रीकरण में अधिक आर्थिक समस्यायें होती है, जिन समस्याओं पर ध्यान नहीं दिया जाता है। यदि उद्योगों को विकेन्द्रित कर दिया जाये तो हर क्षेत्र में उद्योगों की प्रगति सम्भव हो सकेगी और मजदूरों की स्थिति में सुधार होगा। उत्पादित वस्तुओं के मूल्यांकन निर्धारण केन्द्र करेगा और कर के रूप में जमा धनराशि केन्द्र के विकास की योजनाओं पर खर्च करेगा। डा० राजेन्द्र मोहन भटनागर ने लोहिया जी के आर्थिक विकेन्द्रीकरण के विचारों को इस प्रकार स्पष्ट किया है - देश के बड़े उद्योग केन्द्र के तथा छोटी मशीनों वाले उद्योग मण्डल व ग्रामों के अधीन होंगे। मूल्यों पर केन्द्र का नियंत्रण होगा, मण्डल तथा ग्राम कृषि, पूंजी तथा श्रम का अनुपात निर्धारण करेंगे। सहकारिता, कृषि सुधार, सिंचाई, राजस्व की वसूली राज्य द्वारा नियंत्रित होगी। केन्द्र कर को एकत्र कर देश के विकास के लिये समान अनुपात से लगायेगा।[१]

वर्तमान समय में गांव की बचत को गांव में न लगाकर बड़े शहरों में बड़े उद्योगों को विकसित करने के लिये लगाया जा रहा है। कुटीर उद्योग समाप्त होने से बेरोजगारी बढ़ रही है। इस तरह से एक ओर सत्ता और सम्पत्ति का केन्द्रीकरण हो रहा है, तो दूसरी ओर बेरोजगारी को बढ़ाने का काम चल रहा है। ऐसी व्यवस्था में विकेन्द्रीकरण के कार्यक्रमों को छोड़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है। भारत की वर्तमान आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिये देश में छोटी मशीन योजना के सिद्धांत को लागू करना होगा। विनोद प्रसाद सिंह व नाउ मिश्र ने लिखा है - विकेन्द्रीकरण छोटे यंत्र और आवश्यकता के अनुरूप तकनीक के सिद्धांत को अगर हमने नहीं अपनाया तो देश की हालत बहुत

- -

१- डा० राजेन्द्र मोहन भटनागर - डा० लोहिया, पृष्ठ-६०

बिगड़ जायेगी । आज सामाजिक तनाव भी दिखाई पड़ रहा है इससे कहीं न कहीं देश की एकता को खतरा पैदा हो सकता है । हमें इसे बदलना होगा । हम कहते हैं, गांव की बचत को गांव के विकास में लगाया जाये । इसे आर्थिक विकेन्द्रीकरण के मूल सवाल से जोड़कर स्थापित करने का प्रयास करना होगा ।[१]

लोहिया जी आर्थिक विकेन्द्रीकरण के द्वारा गांवों को स्वावलंबी बनाना चाहते थे और छोटी मशीन योजना के द्वारा देश में बेरोजगारी की समस्या हल करना चाहते थे जिससे देश की आर्थिक प्रगति हो और लोग सुखी व समृद्ध हों ।

(ग) <u>प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण -</u>

लोहिया जी के चौखम्भा राज्य द्वारा शासकों के अत्याचारी स्वरूप पर नियंत्रण लगाया जा सकेगा । एक ओर चौखम्भा राज्य जहाँ सुंदर विकेन्द्रित शासन व्यवस्था की ओर उन्मुख होगा, वहां दूसरी ओर निरंकुश एवं अत्याचारी शासन से मुक्ति दिलायेगा । लोहिया जी गांव व जिले को अधिक से अधिक अधिकार दिलाना चाहते थे जिससे वे स्वयं आत्मनिर्भर बनकर अपना विकास करने में समर्थ हो सकें । उन्होंने लिखा है कि - यह अधिकार राज्य की सार्वभौमिक सत्ता के हिस्से नहीं है जैसे पल्टन, पुलिस, टकसाल, खेती और कारखाने की नीति आदि । इनका ऐसा बटवारा होना चाहिये जिससे कुछ अधिकार गांव, जिले की सभाओं को भी मिलें । यह सही है कि फौज और टकसाल केन्द्र के अधीन और हथियार बंद पुलिस सूबे के अधीन होना चाहिये । बाकी पुलिस गांव व जिला पंचायतों को दी जानी चाहिये ।[२]

लोहिया जी प्रशासनिक शक्तियों का बटवारा भी चाहते थे । सारे भ्रष्टाचार का स्रोत वहीं से प्रारम्भ होता है, जहां से सर्व करने की शक्ति मिलती है । जिस प्रकार केन्द्र व राज्य सरकारों की स्थापना की गई है,

---

१- विनोद प्रसाद सिंह व सुनील मिश्र, समाजवादी आन्दोलन के दस्तावेज, (१९३४-५२) पृष्ठ-१९

२- डा० राममनोहर लोहिया, समाजवाद का सगुण रूप, पृष्ठ-२७

उसी प्रकार दो स्तरों पर सरकारों की स्थापना और की जानी चाहिये - एक जिला और दूसरी ग्रामीण संस्थायें । सत्ता का बटवारा चार स्थानों में कर दिया जाये और राष्ट्र की सारी आमदनी को चार हिस्सों में बांट दिया जाये। इस प्रकार केन्द्र , राज्य , जिला व गांव की सरकारें खर्च करने की पूर्ण अधिकारी हों और अर्थशक्तिमान हों तभी अफसरशाही पर अंकुश लगेगा और लोकतंत्र की मर्यादा की रक्षा होगी । इस तरह यह विकेन्द्रीकरण लोककल्याण का मार्ग प्रशस्त करेगा । लोहिया जी प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण के पक्ष में थे । वे चाहते थे कि जिलाधीश का पद समाप्त कर दिया जाये और उसके सारे अधिकार मण्डल को दे दिये जायें । वे मण्डल को प्रशासकीय शक्ति के साथ-साथ विधायकी शक्ति भी देना चाहते थे । डा०राजेन्द्र मोहन भटनागर ने लिखा है कि - डा० लोहिया की धारणा थी कि राज्यों से राज्यपाल का पद समाप्त कर दिया जाये । न्याय व्यवस्था में भी परिवर्तन आवश्यक है ताकि जनता को सस्ता व शीघ्र न्याय मिल सके । वे चाहते थे कि दो-चार राज्यों के मध्य एक न्यायालय खर्चों को कम करने के लिये होना चाहिये , साथ ही एक ही लोकसेवा आयोग से काम चलाया जा सकता है , इससे समानता रहेगी और न्याय भी हो सकेगा ।[१]

लोहिया जी जनतंत्र की सफलता के लिये प्रशासनिक अधिकारियों पर नियंत्रण रखने के पक्ष में थे जिससे जनता के हित में काम हो । उनका यह विकेन्द्रित ढांचा समाज की चहुमुखी उन्नति के द्वार खोल देता है । उन्होंने प्रशासनिक अधिकारियों को जनता के नियंत्रण में रखकर सच्चे जनतंत्र के निर्माण की कल्पना की है । इसमें नौकरशाही पर तो अवश्य ही अंकुश लग जाता है , लेकिन भेदभाव , भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलने की सम्भावनायें दिखाई देती हैं।

वे मानते थे सत्ता को विकेन्द्रित करने के पहले आवश्यक है कि जनता को प्रशासनिक शिक्षा दी जाये जिससे वह प्रशासन के कार्यों में जानकारी हासिल करके कार्यों को सफलतापूर्वक कर सके । हम इस तथ्य को नहीं नकार सकते कि लोहिया जी ने सत्ता को राजनैतिक, आर्थिक और प्रशासकीय सभी

- -

१- डा०राजेन्द्र मोहन भटनागर - डा० लोहिया , पृष्ठ-[illegible]

क्षेत्र में विकेन्द्रित कर देश में सफल प्रजातंत्र की स्थापना करना चाहते थे। उन्होंने स्थानीय संस्थाओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया। गणेश मंत्री ने लिखा है - चौखम्भा राज्य की लोहिया की परिकल्पना में जिला या क्षेत्र और नगर या ग्राम के खम्भों को भी महत्व केन्द्र और प्रदेश जितना ही है।[1]

लोहिया जी के पहले कुछ पाश्चात्य एवं भारतीय राजनीतिज्ञों ने सत्ता के विकेन्द्रीकरण के सिद्धांत का समर्थन किया लेकिन लोहिया जी का चौखम्भा राज्य व्यवस्था का नाम अपने आप में मौलिक है। वे चौखम्भा व्यवस्था के द्वारा सत्ता को विकेन्द्रित करना चाहते थे, जिससे साधारण नागरिकों को भी प्रशासन में भाग लेने का मौका मिले। आर्थिक विकेन्द्रीकरण द्वारा वे देश में सम्पन्नता व समानता बढ़ाना चाहते थे और प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण के द्वारा वे देश में अफसरशाही पर नियंत्रण व अंकुश रखना चाहते थे जिससे जनता की स्वतंत्रता पर आँच न आये।

लोहिया जी ने विकेन्द्रित व्यवस्था का बड़ा सुंदर निरूपण किया है उनका यह कहना उचित प्रतीत होता है कि निम्न इकाइयों के नियंत्रण में उच्च इकाइयों को रहना चाहिये जिससे केन्द्रीय सत्ता जनता के नियंत्रण में रहकर जनहित में कार्य करे। वर्तमान समय में हमारे देश में विकेन्द्रित व्यवस्था लागू है लेकिन उन्हें अपने सभी निर्णयों के लिये केन्द्र पर निर्भर रहना पड़ता है। राज्य, जिला, सभी इकाइयाँ केन्द्र के अधीन ही रह कर कार्य करती हैं और वे केन्द्र के निर्णय के विरुद्ध नहीं जा सकती। वर्तमान समय में यदि डा० लोहिया जी के द्वारा प्रतिपादित चौखम्भा व्यवस्था के आधार पर सत्ता को विकेन्द्रित किया जाये तो निश्चय ही हमारे देश में सफल जनतंत्र स्थापित होगा।

- -

१- गणेश मंत्री, मार्क्स, गांधी और सामयिक सन्दर्भ, पृष्ठ-२५

-

-: o :-

अध्याय ७

भारतीय राजनीति

-: सप्तम अध्याय :-

भारतीय राजनीति

लोहिया जी के जन्म के समय ब्रिटिश शासन सम्पूर्ण भारत में फैल चुका था। अँग्रेज भारतीयों का प्रत्येक प्रकार से शोषण कर रहे थे। देश का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विकास अवरुद्ध था। जनता अँग्रेजों के अत्याचारों से भयभीत थी। भारतीय राजनीतिज्ञ देश को स्वतंत्र कराने के लिये बेचैन थे। व्यक्ति के विचारों पर परिवार, समाज व देश की तत्कालीन स्थिति का बहुत प्रभाव पड़ता है। चूंकि लोहिया जी का जन्म व विकास परतंत्र भारत में हुआ था, उस समय देश की आन्तरिक व बाह्य स्थिति शोचनीय थी। लोहिया जी ने अपने देश की राजनीतिक स्थिति को समझा और उसकी प्रगति के लिये प्रयास किये।

१) लोहिया और भारतीय राजनीति -

लोहिया जी के जन्म के समय भारत में अँग्रेजी राज्य होने के कारण प्राय: शासन में अँग्रेज अधिकारियों को कार्य करने का अवसर मिलता था। १९१९ के एक्ट के द्वैध शासन के अन्तर्गत यद्यपि भारतीयों को उचित स्थान देने का प्रयास किया गया, लेकिन यह व्यवस्था जो भिन्न रूप में लागू रही, वो खोखली थी। अँग्रेज शासकों का ध्येय भारतीयों का शोषण करके ब्रिटेन को लाभ पहुंचाना था। इस समय देश को स्वतंत्र कराने के लिये राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहे थे।

चूंकि लोहिया जी के पिता हीरालाल जी राजनीति में भाग लिये थे, इस कारण लोहिया जी भी बचपन से ही राजनीति की ओर झुक गये। विद्यार्थी जीवन से ही उन्होंने राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय हिस्सा लेना शुरू कर दिया था। १ अगस्त १९२० को लोकमान्य तिलक की मृत्यु पर १० वर्षीय लोहिया ने स्कूल के छात्रों की हड़ताल का नेतृत्व किया था। संघर्ष-मय जीवन का यह पहला कदम था। कुछ ही पहले भारत के राजनीतिक क्षितिज गांधी जी का उदय हुआ था। लोहिया जी ने गांधी जी के आह्वान पर

असहयोग आन्दोलन में भाग लेते हुए एक वर्ष के लिये अध्ययन त्याग किया था। लोहिया जी के शब्दों में " गांधि जी के १९१९-२० के असहयोग आन्दोलन के आवाहन पर मेरी उम्र के विद्यार्थियों ने विद्यालय का परित्याग कर दिया था। मेरे पिताजी मुझे गांधी जी के पास ले गये एवं जहां तक मुझे याद है, मैंने उनके चरण स्पर्श किये और उन्होंने मेरी पीठ थपथपाकर आशिर्वाद दिया।"[1]

लोहिया जी को नेहरू जी से प्रथम भेंट १९२० में हुई थी। बहुत दिनों तक वे उन्हें प्रेरणा के स्रोत के रूप में देखते रहे। वे नेहरूजी के गुणों के अधिक प्रशंसक थे, जिसके द्वारा वे वार्तालाप में सामने वाले पर प्रभाव डाल कर अपनी बात से सहमत कर लेते थे। लोहिया जी ने लिखा है कि - मेरी पीढ़ी के लोगों के लिये गांधी जी कल्पना थे, जवाहरलाल कामना और सुभाष कर्म। कल्पना सर्वदा दृष्टा रहेगी यद्यपि विस्तार में उसके कुछ अपने दोष थे परन्तु उसकी कीर्ति, मैं आशा करता हूं कि समय के साथ बढ़ेगी, कामना कलुषी हो गई और कर्म अपूर्ण रहा।[2]

१९२४ में वे अपने पिता के साथ गया कांग्रेस अधिवेशन गये। १९२६ में वे गोहाटी कांग्रेस में भी सम्मिलित हुए। १९२८ में उन्होंने कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में भाग लिया। इसी वर्ष वे अखिल भारतीय कांग्रेस युवा संगठन के प्रमुख कार्यकर्ता भी बने। १९२८ में भारत के विधान में परिवर्तन की सम्भावना की जांच करने के लिये इंग्लैण्ड से " साइमन कमीशन आया था "। देश की जनता ने " साइमन कमीशन " का बहिष्कार किया। लोहिया जी ने इस बहिष्कार में सक्रिय रूप से भाग लिया। " साइमन वापस जाओ " के नारे को कलकत्ते में लोहिया जी ने संगठित एवं जोर-शोर से चलाया जिसका परिणाम यह हुआ कि जनता संगठित होकर साइमन कमीशन का बहिष्कार करने को उठ खड़ी हुई। १९२८ में युवक सम्मेलन जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में हुआ और लोहिया जी विषय निर्धारण जैसे महत्वपूर्ण विभाग के सदस्य बने।

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-१३०

२- डा० राममनोहर लोहिया - भारत विभाजन के अपराधी, पृष्ठ-८१

लोहिया जी १९२९ में इंग्लैण्ड गये , जहां उन्हें आभास हुआ कि वहां भारतीयों के साथ गंदा व्यवहार हो रहा है इस कारण वे वहां से जर्मनी चले गये । जर्मनी की शिक्षाकाल में भी वे राजनीति में भाग लेते से पीछे नहीं रहे । उन दिनों जर्मनी में हिटलर और नाजीवाद का अभ्युदय हो रहा था । प्रजाति की श्रेष्ठता की भावना का वहां बोलबाला था । जर्मनी समाजवादी नाजीवाद के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने में असफल था । इसका लोहिया ने निकट से अध्ययन किया क्योंकि उनके विचार में यह जाति, कौम, देश और वैभव की नींव पर खड़ा था ।[1]

बर्लिन में छात्रों को आमतौर से राजनीति में गहरी दिलचस्पी थी। लोहिया जी ने भी वहां राजनीति में भाग लेना शुरू कर दिया । वहां " मध्य यूरोप हिन्दुस्तानी संघ " नाम की एक संस्था थी जिसके अधिकांश सदस्य छात्र ही थे । लोहिया जी इस संस्था के मंत्री बने । यह संगठन हिन्दुस्तान का शान और राष्ट्रीय ध्येय को आगे बढ़ाने वाली संस्था के रूप में कार्य करता था । बर्लिन में यह संगठन राष्ट्रवादी हिन्दुस्तानियों का संगठन बन गया ।

जर्मनी में लोहिया जी का भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रति रुझान स्पष्ट,मुखरित था । १९३०-३२ में भारत एक उफान के दौर से गुजर रहा था । ६ अप्रैल १९३० को गांधी जी ने सौराष्ट्र "(गुजरात) में नमक कानून तोड़कर सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया था । सरोजनी नायडू के नेतृत्व में धारासना सत्याग्रह के दौरान सत्याग्रहियों पर निर्मम और अमानवीय अत्याचारों का लोहिया जी पर गहरा प्रभाव पड़ा । लोहिया जी और उनके साथी डा०जुत्शी ने लीग आफ नेशन्स " की बैठक में भारत का ब्रिटिश सरकार का विरोध किया । उन्हीं दिनों गांधी इरविन समझौता हुआ । लोहिया जी ने इस समझौते का जबर्दस्त विरोध किया एवं गांधी जी की बातों का समर्थन किया ।

जर्मनी से लौटने के बाद लोहिया जी के विचार परिपक्व हो चुके थे।

- -

१- भगवान सिंह - डा०राममनोहर लोहिया, पृष्ठ-२५

जर्मनी से वापिस आने के बाद उन्होंने अंधभक्त होकर किसी के सिद्धांतों को स्वीकार नहीं किया । उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन आया और राजनीतिक जीवन के प्रति उनका दृष्टि गम्भीर हो गई था । उनका दृष्टिकोण पहले की अपेक्षा बुद्धिनिष्ठ हो रहा था ।

२१ अक्टूबर १९३४ को बम्बई में सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना सम्मेलन में सारे देश के १५० प्रतिनिधियों ने भाग लिया । लोहिया जी कार्यकारिणी के सदस्य चुने गये । कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का एक साप्ताहिक पत्र कलकत्ता से प्रकाशित होने का फैसला हुआ । लोहिया सम्पादक चुने गये । उन्होंने पत्र के स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास किया , इससे उनकी सभी जगह प्रशंसा हुई। लोहिया जी का कार्य व विचार पूर्ण रूप से राष्ट्रीय एवं समाजवादी झलकता था। उनकी यह मान्यता रही कि , किसी भी तरह भारत के लिये आजादी कम छोटी-मोटी बातों जैसे ग्रामीण उद्योग समिति द्वारा तो नहीं प्राप्त की जा सकती, यही मेरे लेख की बात है ।[1]

उन्होंने गांधी जी के रचनात्मक कार्यों को ठुकराया था लेकिन बाद में उन्हें अपनी गलती का अहसास हुआ और उन्होंने रचनात्मक कार्यों का समर्थन किया।

अगस्त १९३६ में उन्हें नेहरू जी ने कांग्रेस पार्टी के विदेश विभाग का मंत्री नियुक्त किया , जहाँ लोहिया जी ने अत्यन्त सराहनीय कार्य किये । १९३८ में उन्होंने तीसरे खेमे का सिद्धांत प्रतिपादित किया । अगस्त १९३८ में विदेश विभाग के सचिव के पद से त्यागपत्र दे दिया ।

त्रिपुरी कांग्रेस में सुभाष और पट्टाभि सीतारामैया के अध्यक्ष पद के संघर्ष में १९३९ में लोहिया जी ने तटस्थता की नीति बरती । हालांकि वे सुभाष को पसंद करते थे । दक्षिण कलकत्ता कांग्रेस कमेटी ने मई १९४० में एक सभा का आयोजन किया , लोहिया ने यहाँ " कांग्रेस एण्ड अवर प्रेजेन्ट ड्यूटी "

१- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-१४३-४४

विषय पर भाषण दिया और वे वहीं गिरफ्तार कर लिये गये । वे २४ मई १६३६ को पहली बार गिरफ्तार हुए । उनकी गिरफ्तारी से युवकों में प्रतिरोध की भावना जगी । दूसरे दिन एक बड़ा प्रदर्शन हुआ और कलकत्ते की सड़कों पर जुलूस निकाला गया । ब्रिटिश सरकार अपनी आन्तरिक स्थिति को अधिक बिगड़ने नहीं देना चाहती थी इसलिये दूसरे दिन लोहिया जी को जमानत पर रिहा कर दिया गया ।

लोहिया जी अपने मुकदमे के सिलसिले में बम्बई में थे , वहां अखिल-भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक थी । इन्हीं दिनों जवाहरलाल नेहरू ,डा० राजेन्द्र प्रसाद तत्कालिक कांग्रेसाध्यक्ष के साथ एक तार विश्व सम्मेलन को भेजा गया जिसमें इस बात का उल्लेख किया गया कि अगर भारत को स्वतंत्रता मिल जाती है तो वह युद्ध में इंग्लैण्ड की मदद करेगा । लोहिया जी इस कार्यवाही के सर्वथा विरुद्ध थे । वे नेहरू के आचरण पर क्रुद्ध हुए एवं लिखा - मैंने सोचा कि कांग्रेसाध्यक्ष एक गलत एवं खतरनाक गलती कर रहे हैं एवं पैरिस में एक तार भेजा कि भारत ने एक गलती की है एवं तटस्थता की नीति का परित्याग किया है ऐसी स्थिति का उचित एवं सही मूल्यांकन नहीं करने के परिणाम स्वरूप हुआ। मैंने अध्यक्ष को बाध्य किया कि वे स्पष्टीकरण दें एवं उसके पहले मैंने पत्र लिखा था जो तार की भावनाओं के विरुद्ध था ।[१]

जापान के विरुद्ध प्रतिरक्षा में भारतीयों का समर्थन प्राप्त करने के लिये सर स्ट्रैफोर्ड क्रिप्स को एक समझौते की योजना के साथ भारत भेजा गया। सर स्ट्रैफोर्ड जिस योजना को लेकर आये थे उसमें युद्धकाल में भारतीय जनता और उसके प्रतिनिधियों को कोई अधिकार देने की व्यवस्था नहीं थी । युद्ध के बाद औपनिवेशिक स्वतंत्रता का आश्वासन दिया गया था , इस शर्त के साथ कि अगर कोई प्रांत अलग होना चाहेगा तो अलग हो सकेगा । कांग्रेस में असंतोष व्याप्त था । कांग्रेस का एक वर्ग क्रिप्स प्रस्ताव को स्वीकार करने के पक्ष में था लेकिन लोहिया जी ने चेतावनी दी कि वे किसी हालत में क्रिप्स प्रस्ताव को स्वीकार

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-१४५-४६

नहीं किया जाना चाहिये क्योंकि इससे हमारे स्वतंत्रता आन्दोलन को जबर्दस्त धक्का लगेगा । अनेक प्रयत्नों के बावजूद क्रिप्स मिशन असफल रहा । लोहिया जी ने मिशन का तीव्र विरोध किया और एक आलोचनात्मक पुस्तक लिखी " दि मिस्ट्री आफ सर स्ट्रैफोर्ड क्रिप्स " इस पुस्तक में उन्होंने घोषणा की कि अंग्रेज स्वेच्छा से भारत को स्वतंत्रता नहीं देंगे । उनके अनुसार - एक घटना सर स्ट्रैफोर्ड क्रिप्स से सम्बन्धित है , जो आये और गये । यह १९४२ में हुआ और मैंने मिस्ट्री आफ स्ट्रैफोर्ड क्रिप्स लिखा जोकि उन लोगों के लिये उतनी आनन्ददायक वस्तु नहीं थी ।[1]

गांधी जी ने क्रिप्स प्रस्ताव को पोस्ट डेटेड चैक का संज्ञा दी। ८ अगस्त १९४२ को कांग्रेस महासमिति ने बम्बई के अपने ऐतिहासिक अधिवेशन में प्रसिद्ध " भारत छोड़ो " प्रस्ताव स्वीकार किया । ९ अगस्त को सूर्योदय से पूर्व ही गांधी जी और अन्य नेता गिरफ्तार कर लिये गये । लोहिया जी पुलिस को चकमा देकर भाग गये और भूमिगत हो गये । उन्होंने भूमिगत संघर्ष को संगठित करने पर बल दिया लेकिन जब वे भूमिगत कार्यों में संलग्न थे तब भी उनकी यह मान्यता रही कि निर्दोष व्यक्तियों की जाने न जायें । उनके ये विचार कि - ब्रिटिश शासन काल में भी मैंने एक फर्क किया था कि संचार - व्यवस्था को भंग करना एवं अन्य वस्तुओं एवं सामानों को नष्ट करने के कार्य-कलाप को एक तरफ रखा था एवं दूसरी तरफ मनुष्योंकी बर्बादी । १९४२-४३ में उन दिनों में भी जबकि हमलोग ब्रिटिश सरकार उलटने के लिये संघर्षरत थे , मैं यह सोचता था कि क्या हम कोई मालगाड़ी उलट रहे हैं या बच्चों से भरी गाड़ी उलट रहे हैं । क्या हम बच्चों का मण्डल नष्ट कर रहे हैं या हम ट्रेनों को नष्ट कर रहे हैं जिन पर सेना ले जाई जा रही है, चाहे क्यों न वह ब्रिटिश सेना ही हो ।[2]

इसके अलावा लोहिया जी बम्बई व कलकत्ता से भूमिगत स्टेशन भी

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स , गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-१५४
२- वही ,पृष्ठ-१७०

संचालित कर रहे थे । लोहिया जी और पटवर्धन ने जो बंदिशें पेश की थीं उसके मुताबिक तार तोड़ना , हथियारों की रेलगाड़ियों को बारूद लगाकर उड़ाना , यातायात की व्यवस्था को तोड़ना इत्यादि । लोहिया जी के भूमिगत जीवन की कहानी बहुत रोमांचक और प्रेरणादायक थी । सारे देश के तीन प्रमुख क्रांतिकारियों की सूची में लोहिया जी का नाम था , अन्य दो थे जयप्रकाश नारायण और अच्युत पटवर्धन । लगभग २ वर्ष के भूमिगत संघर्ष के बाद वे २० मई १९४४ को गिरफ्तार कर लिये गये । २२ जून को लाहौर के किले में उन्हें कैद कर लिया गया । उन्हें जेल में जबर्दस्त यातनायें दी गईं । उनकी यातना जबर्दस्ती सोने न देने से शुरू हुई ।

१९४५ में मित्र राष्ट्रों की विजय के साथ यूरोप में युद्ध समाप्त हो गया । इंग्लैंड में चुनाव हुए और चर्चिल की कंजरवेटिव पार्टी को पराजित कर लेबर पार्टी सत्ता में आई । ११ अप्रैल १९४६ को लोहिया और जयप्रकाश नारायण को रिहा कर दिया गया । गांधी जी और अन्य राष्ट्रीय नेता पूर्व में ही १९४४-४५ में रिहा हो चुके थे । इन्हीं दिनों कैबिनेट मिशन भारत आया और भारत को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करने के विषय में गम्भीर चर्चायें आरम्भ हुईं । लोहिया जी ने देशवासियों को और भी तीव्र आन्दोलन करने के लिये प्रोत्साहित किया ।

लम्बी कैद के कारण लोहिया जी का स्वास्थ्य बुरी तरह बिगड़ गया था । वे अपने गोआवासी मित्र जुलियस मैनेजेस के आग्रह पर विश्राम के लिये १० जून १९४६ को गोआ पहुंचे । वहां उन्होंने देखा कि पुर्तगाली शासन ब्रिटिश शासन से ज्यादा अत्याचारी था । नागरिक स्वतंत्रता और अधिकारों से पूर्णत: वंचित थे । वहां के लोग भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के ढंग का कोई भी संघर्ष गोवा में छेड़ देने के पक्ष में थे । लोहिया जी ने लिखा है कि - मैं वहां अपने मित्र जुलियस मैनेजेस से मिलने गया था एवं मेरे वहां ठहरने के तीसरे

- -

एवं चौथे दिन सभी तरह के लोग विद्यार्थी , सिपाही, शिक्षक, व्यापारी , कर्मचारी एवं सभी तबके के लोग उनसे मिलने आये एवं उनसे अपनी स्थिति बतलाई कि उन्हें किसी भी तरह की नागरिक आजादी नहीं है , यहां तक कि वे विवाह का निमंत्रण पत्र भी बिना सरकारी आदेश प्राप्त किये नहीं छपा सकते एवं और भी इसी तरह की कई बातें होती रहती थी।[१]

लोहिया जी ने २०० व्यक्तियों की एक बैठक बुलाई । बैठक में नागरिक अधिकारों की योजना बनाई । उसी समय पुरुषोत्तम काकोडकर लोहिया जी से मिले एवं गोवा में स्वतंत्रता आंदोलन प्रारम्भ करने के बारे में बातचीत की । १५ जून १९४६ मडगांव में पंजिम में लोहिया ने भाषण दिया और १७ जून १९४६ को दूसरी सार्वजनिक सभा मारगाओ में हुई , इस सभा में लोहिया जी का भाषण सुनने के लिये १५-२० हजार लोग एकत्रित थे । सभा में स्थल को चारो ओर से मशीन गनों से लैस पुलिस ने घेर रखा था किन्तु लोग बिना किसी भय से लोहिया जी का भाषण सुनने आये थे । लोहिया जी ने उनके मन में स्वतंत्रता की तीव्र इच्छा और चेतना पैदा कर दी थी और उन्हें मेंजीस के साथ गिरफ्तार कर लिया गया । दो दिन के बाद १९ जून को उन्हें रिहा कर दिया गया । उन्होंने वहां के लोगों को आश्वासन दिया कि अगर उन्हें स्वतंत्रता नहीं मिली तो वे तीन माह बाद पुन: आयेंगे । अपने वायदे के मुताबिक वे २९ सितम्बर १९४६ को गोवा पुन: लोगों की मदद के लिये पहुंचे । उन्हें कोलेम में गिरफ्तार कर लिया गया । गांधी जी के पत्र के बाद उन्हें रिहा कर दिया गया । केवल गांधी जी ने ही गोवा के स्वतंत्रता आन्दोलन का समर्थन किया जिसका श्रीगणेश लोहिया जी ने किया था । लोहिया जी के शब्दों में - उस वक्त गोवा में जो हुआ था और मैंने जो कुछ किया था । तब गांधी जी ने बिना मुझसे पूछे हुए या जाने कि वहां क्या हो रहा है और कैसे हो रहा है , एक वक्तव्य हमारे कामों के समर्थन में दे दिया जो बड़ा बड़ा और उदार कार्य था क्योंकि वे इसके बारे में कुछ ठीक से नहीं जानते थे ।

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-१९८

उन्होंने मुझसे कहा कि वे मेरी गिरफ्तारी के बारे में दिन के दस बजे सुबह जान पाये एवं बारह बजे ही हमारी गिरफ्तारी की आलोचना एवं गोवा के स्वतंत्रता आन्दोलन के समर्थन में एक वक्तव्य दिया ।[१]

लोहिया जी की गिरफ्तारी ने गोवा केआन्दोलन का कर्मभूमि बना दिया । गिरफ्तारी के विरोध में गोवावासियों ने प्रदर्शन किये और हड़तालें की । गोवा में नागरिकों के लिये व्यापक जन-आन्दोलन प्रारम्भ हो गया , जिसे बलपूर्वक दबाने में सभी प्रयत्न असफल रहे । अंत में २१ जून को गोवा में पहली बार जनता को भाषण की स्वतंत्रता मिल गई । यह पूर्ण स्वतंत्रता के मार्ग में एक छोटा सा प्रारम्भिक कदम था । उन्हें ८ अक्टूबर १९४६ को गोवा की सीमा के बाहर छोड़ दिया गया । बाद में वे गांधी जी की सलाह मानकर गोवा नहीं गये ।

कैबिनेट मिशन द्वारा हल खोजने में असफलता, मुस्लिम लीग के सहयोग के बगैर अंतरिम सरकार का गठन मुस्लिम लीग द्वारा संविधान सभा का बहिष्कार , प्रत्यक्ष कार्यवाही के आवाहन के कारण भारत की स्थिति बिगड़ गई थी । बिहार, बंगाल तथा अन्य प्रदेशों में साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे । गोवा से लौटने बाद गांधी जी के साथ लोहिया ने भी कलकत्ता और नोवाखाली में अपनी जान को जोखिम में डालकर साम्प्रदायिक तनाव को दूर करने के लिये जुट गये । लोहिया जी के अनुसार - कुछ उकसाया लिये जाने पर और कुछ अवश होकर मुझे दिल्ली के दंगे के इलाके में रहना पड़ा । इसी तरह कलकत्ता और नोवाखाली में भी रहना पड़ा था । गांधीजी ने ऐसा क्यों किया, मैं कह नहीं सकता ।[२]

राजनीतिक स्थिति दिन पर दिन बिगड़ती गई । ३ जून १९४७ को भारत के विभाजन पर विचार करने के लिये कांग्रेस कार्य समिति की बैठक बुलाई गई । बैठक में लोहिया और जयप्रकाश नारायण विशेष रूप से आमंत्रित थे ।

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया- मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-१३
२- डा० राममनोहर लोहिया-भारत विभाजन के अपराधी , पृष्ठ-२४

इस बैठक में गांधी जी , लोहिया , जयप्रकाश नारायण और खान अब्दुल गफ्फार के अलावा किसी भी व्यक्ति ने विभाजन की योजना के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहा । विभाजन के प्रस्ताव को नेहरु व पटेल ने गांधी जी को बताये बगैर स्वीकार कर लिया था । लोहिया जी के अनुसार - जिन्हें इस बैठक में गांधी जी ने उठाया था । शिकायत-सी करते हुए उन्होंने श्री नेहरु और सरदार पटेल से कहा कि विभाजन को मान देने के पहले उन लोगों ने उसकी खबर उन्हें नहीं दी । गांधी जी के अपनी बात पूरी कर सकने के पहले , श्री नेहरु ने कुछ आवेश में आकर उन्हें टोका और कहा कि उनको वे पूरी तौर पर जानकारी देते रहे हैं।[१]

लोहिया जी ने देश के विभाजन का विरोध किया लेकिन नेहरूजी ने ने उनकी बात को महत्व प्रदान नहीं किया । लोहिया जी के अनुसार - अविभाजित हिन्दुस्तान की कामना की बात मामूली-सी बहस के बाद मान ली गई। और कोई बात नहीं मानी गई । ये लोग विभाजन की कीमत पर आजादी खरीदने की नियत बनाकर आये थे और मेरे जैसे आदमियों ने अस्पष्ट संकल्प से उनका प्रतिरोध करने की कोशिश की । श्री नेहरु ने मुझे भाषण और आचार दोनों में कूटनीति सिखाने की कोशिश जरूर की और मेरी कुछ बातों को इस आधार पर ठुकरा दिया कि वे अराजनयिक थीं ।[२]

विभाजन की योजना स्वीकार हो जाने के बाद भी पंजाब और बंगाल में दंगे होते रहे । गांधी जी और लोहिया जी ने दिल्ली और कलकत्ता में साम्प्रदायिक दंगों के बीच सद्भाव पूर्वक कार्य किया । १४-१५ अगस्त अर्धरात्रि को जब दिल्ली में आजादी का उत्सव मनाया जा रहा था , कलकत्ता में लोहिया जी उस समय एक जुलूस का नेतृत्व करते हुए हिन्दू मुस्लिम एकता और सद्भाव का कार्य कर रहे थे । उन्होंने दोनों की एकता के प्रयत्नों में गांधी जी के आवाहन पर भारत के विभाजन के समय जान की बाजी लगाकर कार्य किया था ।

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया- भारत विभाजन के अपराधी,पृष्ठ-१२
२- वही ,पृष्ठ-३५-३६

राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में लोहिया जी की भूमिका का सिंहावलोकन करने पर एक राष्ट्रवादी क्रांतिकारी के रूप में उनकी छवि उभरती है।

स्वतंत्रोत्तर युग की भारतीय राजनीति में लोहिया जी ने धारा के विरुद्ध तैरना ही स्वीकार किया था। ३० जनवरी १९४८ को उन्हें गांधी जी की हत्या से व्यक्तिगत रूप में गहरा आघात लगा था क्योंकि राष्ट्रीय-आंदोलन के अंतिम दौर में और देश विभाजन की दुखद घटनाओं के दौरान न सिर्फ राजनीतिक दृष्टि से बल्कि मानवीय दृष्टि से वे गांधी जी के अधिक निकट आ गये थे। इस समय लोहिया जी के स्वतंत्र व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो चुका था।

मार्च १९४८ के नासिक अधिवेशन में समाजवादियों ने कांग्रेस से पूर्णत: अलग होने का निर्णय लिया। नासिक में ही देशी रियासतों में जन-आंदोलन तीव्र करने का निश्चय भी किया गया। लोहिया जी ने रियासतों में जन-आंदोलन का समर्थन और जनता के साथ सहयोग का प्रस्ताव रखा। लोहिया जी की प्रेरणा से ही समाजवादियों के नेतृत्व में विंध्य प्रदेश की जनता में जन-प्रतिनिधि सरकार की स्थापना और विंध्य प्रदेश का संयुक्त प्रांत और मध्य प्रांत में विलयन की भारत सरकार की नीति के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किया। सरकार ने आन्दोलन दबाने का प्रयत्न किया। २५ जनवरी १९५० को लोहिया जी ने विंध्य प्रदेश का दौरा किया उन्हें जन-सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिया गया लेकिन उन्हें (१ जनवरी) अगले दिन विंध्य और संयुक्त प्रांत की सीमा पर मिर्जापुर के निकट लाकर छोड़ दिया गया।

समाजवादियों ने किसानों के एक वर्ग संगठन हिंद किसान पंचायत का गठन किया था। लोहिया जी इस संगठन के अध्यक्ष चुने गये और २५ नवम्बर १९४९ को उनके नेतृत्व में किसानों का एक व्यापक प्रदर्शन लखनऊ में हुआ था। " हिंद किसान पंचायत " का प्रथम अखिल भारतीय अधिवेशन २६ फरवरी १९५० को रीवा(मध्य प्रदेश) में आयोजित किया गया। सम्मेलन में निर्बैसा समाप्त करने के लिये एक प्रस्ताव पास किया गया एवं जिसे समाजवादी दल ने

मधु लिमये के एक प्रस्ताव के साथ १५ जून १९५७ को प्रकाशित किया । इस पुस्तिका में निर्धनता समाप्त करने के लिये तेरह प्रस्तावों का उल्लेख किया गया था, जिसके दो मुख्य मुद्दे थे - १- अन्न सेना एवं २- औद्योगीकरण(खासकर कुटीर उद्योगों द्वारा)।[1]

३ जून १९५१ को लोहिया जी के नेतृत्व में समाजवादियों का एक व्यापक प्रदर्शन दिल्ली में हुआ जिसे जनवाणी दिवस के रूप में सम्बोधित किया गया । लगभग एक लाख व्यक्तियों ने इस विशाल प्रदर्शन में भाग लिया था । जनवाणी दिवस की प्रमुख मांगे थीं १- और मुनाफे को खेती से लगान की समाप्ति २- खेतिहर मजदूरों को उचित मजदूरी की व्यवस्था ३- वस्तुओं के उचित दाम ४- अंग्रेजी भाषा की समाप्ति ।[2]

स्वतंत्रोत्तर भारतीय राजनीति और समाजवादी आन्दोलन के विकास के इस दौर में नेपाल में नागरिक स्वतंत्रता और लोकतांत्रिक अधिकारों की प्राप्ति के लिये लोहिया जी की संघर्षशील भूमिका और उनके योगदान का उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा क्योंकि उन्होंने ही सर्वप्रथम नेपाल में लोकतांत्रिक जनक्रांति की व्यापक रूपरेखा बनाने में नेपाल के राष्ट्रवादी क्रांतिकारियों को सक्रिय सहयोग दिया था । उनके सहयोग और प्रयत्न से ही नेपाल कांग्रेस का गठन हुआ था । नेपाली कांग्रेस की स्थापना के बाद लोहिया जी के मित्र विशेश्वर प्रसाद कोइराला के नेतृत्व में राणाशाही के विरुद्ध जन-आन्दोलन तीव्र वेग से आरम्भ हो गया था । सैकड़ों आन्दोलनकारी गिरफ्तार कर लिये गये । नेपाली कांग्रेस के आन्दोलन के प्रति भारतीय जनता की सहानुभूति व्यक्त करने की दृष्टि से २५ मई १९४९ को सोशलिस्ट पार्टी की ओर से नेपाल दिवस मनाने का निश्चय किया गया था । लोहिया जी के नेतृत्व में जुलूस निकाला गया । लोहिया जी को अन्य और व्यक्तियों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया । उन्हें और उनके साथियों को दो महिने की कैद और सौ रुपये जुर्माने की सजा दी गई।

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - फ्रेगमेन्ट्स आफ ए वर्ल्ड माइन्ड,पृष्ठ-६१
२- डा०राममनोहर लोहिया - समाजवादी आन्दोलन का इतिहास,पृष्ठ-५६

नेहरु जी समझौते के पक्ष में थे लेकिन लोहिया जी इसके विरुद्ध थे । वे क्रान्ति को दबाना नहीं चाहते थे । उन्होंने नेपाली कांग्रेस से आग्रह किया कि जिन क्षेत्रों को मुक्त करा लिया गया है और जो गांव नेपाली कांग्रेस के अधिकार में हैं, वहां वयस्क मताधिकार से चुनाव कर पंचायतें कायम कर दी जायें और नौकरशाही को उन्हीं के नियंत्रण में कर दिया जाये ।

लोहिया जी विश्व सरकार की स्थापना के प्रबल समर्थक थे । उन्होंने स्टाकहोम (स्वीडन) में विश्व सरकार आन्दोलन के समर्थक द्वारा आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन (सितम्बर १९४९) में भारतीय प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया था । उनका विचार था कि विश्व सरकार बनाकर विश्व युद्ध की सम्भावना से मुक्ति पाई जा सकती है । वहाँ उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक चौखम्भा व्यवस्था के पाँचवें खम्भे विश्व संगठन के महत्व को बहुत बताया । स्टाकहोम से वे जर्मनी गये , वहाँ पर सोशलिस्ट पार्टी के नेता डा० कूर्ट शूमाखेर से उनकी बातें हुईं । जर्मनी में जहाँ भी उन्हें अपने विचार प्रदर्शन का अवसर मिला वहाँ उन्होंने यूरोपीय समाजवाद की असफलता की ओर संकेत किया । बर्लिन से वे पैरिस गये और वहाँ उन्होंने रेडियो पर भाषण देते हुए श्रम-परिणाम के आधार पर विश्व में व्याप्त आर्थिक विषमता की चर्चा की । फ्रांस से वे इंग्लैण्ड , पश्चिमी अफ्रिका तथा दक्षिणी पश्चिमी एशिया के देशों की यात्रा पर गये । वे इजराइल भी गये जहाँ से मिस्र राष्ट्र होते हुए १५ नवम्बर को स्वदेश लौट आये।

१९५१ में जर्मनी के फ्रैंकफर्ट नगर में युद्ध के पश्चात पहला समाजवादियों का सम्मेलन होने जा रहा था वहाँ उन्होंने भाग लिया । वहाँ उन्होंने अपने भाषण में पूंजीवाद के समान साम्यवाद को खतरनाक बताया । फ्रैंकफर्ट से वे युगोस्लाविया , अमेरिका , हांगकांग , मलाया, थाईलैण्ड, मलेशिया ,लंका होते हुए जापान लौटे । इस भ्रमण में उन्होंने बताया - असल में दो दुनिया हैं, एक रोम से होनोलूलू तक जो स्वच्छ तुलनात्मक दृष्टि से पर्याप्त खाना खाने वाली और अच्छे मकानों में रहने वाली है , दूसरी दुनिया टोकियो से काहिरा तक जो गंदी, भूखी और बुरे मकानों वाली है ।[1]

१- डा०राममनोहर लोहिया - इन्टरवल ड्यूरिंग पालिटिक्स,पृष्ठ-१७०

ऐशियन समाजवादी सम्मेलन १६ मार्च से २६ मार्च तक रंगून में हुआ जहाँ बर्मा , इण्डोनेशिया एवं जापान के प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया । यहाँ उन्होंने ऐशिया के देशों की गरीबी पर प्रकाश डाला और प्रेरणा दी । १५ अप्रैल १६६४ को वे पूर्वी देशों में होते हुए विश्व भ्रमण को निकले । उनके विचारों को अमेरिकन लोगों ने बहुत पसंद किया । रंगभेद के विरुद्ध उन्होंने अमेरिका में सत्याग्रह किया और वे गिरफतार भी हुए । वे जहां भी भ्रमण के लिये गये वहां के जनजीवन को उन्हों ने निकट से और अच्छी तरह समझने का प्रयत्न किया।

१६५२ में सोशलिस्ट पार्टी और किसान मजदूर प्रजा पार्टी के विलय के फलस्वरूप प्रजा सोशलिस्ट पार्टी (प्रसोपा) का गठन हुआ था । १६५३ में लोहिया जी नई पार्टी के महासचिव चुने गये । इस पद पर वे १६५४ तक रहे। १६५४ में उत्तर प्रदेश सरकार ने सिंचाई कर में वृद्धि की और विरोधस्वरूप प्रसोपा ने सत्याग्रह करने का निर्णय लिया । इस सम्बन्ध में उन्होंने उत्तर प्रदेश का दौरा किया और वाणी स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ने के लिये लोगों को ललकारा। इन्दुमति केलकर के अनुसार - डा०लोहिया ने जनता को समझाया कि जुल्म सहना खतरनाक है और मुकाबला करना जरूरी है ।[१]

इस आन्दोलन के सिलसिले में उन्हें ४ जुलाई १६५४ को गिरफतार कर लिया गया था । इस गिरफतारी के विरुद्ध उन्होंने हैबियस कार्पस रिट हाइकोर्ट भेजी , रिट की सुनवाई के बाद उन्हें रिहा कर दिया गया लेकिन अप्रैल १६५५ में उनकी मणिपुर गिरफतारी हुई इससे लोकसभा में भारी हंगामा हुआ और दूसरे प्रार्थनापत्र पर उन्हें फिर न्याय आयुक्त ने मुक्त किया ।

दिसम्बर १६५५ में समाजवादियों का हैदराबाद में एक सम्मेलन हुआ। जिसमें लोहिया जी की अध्यक्षता में एक नई सोशलिस्ट पार्टी (सोपा) का गठन किया गया । १६५५ में ही लोहिया जी ने समाजवादियों के समक्ष सत्ता प्राप्त करने की एक सात वर्षीय योजना प्रस्तुत की । १ मार्च १६५६ को उन्होंने एक विशाल किसान सभा का नेतृत्व किया । १६५७ के दूसरे

१- इन्दुमति केलकर - लोहिया : सिद्धांत और कर्म , पृष्ठ-२६३

आम चुनाव में उन्होंने चकिया चन्दौली (वाराणसी) से लोकसभा का चुनाव लड़ा लेकिन कांग्रेस के उम्मीदवार त्रिभुवन नारायण सिंह से वे हार गये । १९६२ के तीसरे आम चुनाव में लोहिया जी ने किसी सुरक्षित निर्वाचन क्षेत्र से लड़ने के बजाये फूलपुर (उ०प्र०) से श्री नेहरू जी के विरुद्ध चुनाव लड़ना पसंद किया । वे हारे अवश्य लेकिन कई केन्द्रों पर उनकी भारी जीत हुई , इस प्रकार लोहिया जी ने सिद्ध कर दिया कि नेहरू जी अजेय नहीं है । १९६३ में उन्होंने फर्रुखा-बाद संसदीय निर्वाचन क्षेत्र से एक उप चुनाव में विजयी होकर लोकसभा में प्रवेश किया ।

८ अगस्त १९६५ पटना बंद के उपलक्ष में एक विशाल सभा को संबोधित करते हुए लोहिया जी ने विधान-सभा के घेराव का आवाहन किया । १०अगस्त को सुबह उन्हें भारत सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत गिरफ्तार कर हजारीबाग केन्द्रीय जेल भेज दिया गया । अपनी गिरफ्तारी के विरुद्ध उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय में बंदी प्रत्यक्षीकरण की याचिका प्रस्तुत की । ९ सितम्बर १९६५ को सर्वोच्च न्यायालय ने जिला मजिस्ट्रेट नजरबंदी आदेश को अवैध ठहराते हुए उन्हें मुक्त कर दिया । जुलाई १९६६ में उत्तर प्रदेश संसोपा ने महंगाई के विरोध में प्रदेश व्यापी आवाहन किया । बंद को सफल बनाने के लिये वह आगरा गये लेकिन १२जुलाई १९६६ को उन्हें रेलवे स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिया गया । स्वतंत्रोत्तर भारत में संघर्षशील राजनीति के इस समूचे चरण में उन्हें १८बार जेल जाना पड़ा । इसी से उनकी संघर्षशील राजनीति तथा विद्रोही व्यक्तित्व का संकेत मिलता है । १९६७ में चौथे आम चुनाव जीतकर वे संसद में पहुंचे । वहाँ कांग्रेस के एकाधिकार को समाप्त करने के लिये लोहिया जी ने " गैर कांग्रेसवाद " की रणनीति प्रतिपादित की और " कांग्रेस हटाओ , देश बचाओ " का नारा दिया । इस रणनीति के परिणामस्वरूप उत्तरी भारत में कांग्रेस का एकाधिकार समाप्त हो गया तथा बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि प्रांतों में संयुक्त विधायक दल की सरकारें स्थापित हुईं ।

लोकसभा के अपने अल्पकाल में उन्होंने देश की गरीब जनता के दुख-दर्द और आशा , आकांक्षाओं को उन्हीं की भाषा में मुखर अभिव्यक्ति दी।

जीवन के किसी भी पहलू से सम्बन्धित क्षेत्र उनकी दृष्टि से अछूता नहीं रहा । समय समय पर उन्होंने कामरोको प्रस्ताव, स्थगन प्रस्ताव, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव, अविश्वास प्रस्ताव तथा लिखित तथा मौखिक प्रश्नों के माध्यम से लोकसभा में विभिन्न समस्यायें उठाई और समाजवादी समाधान प्रस्तुत किये । वस्तुत: भारतीय संसदीय प्रणाली के विकास में उनका योगदान ऐतिहासिक है । उन्होंने राजनीति के लिये जो सिद्धांत प्रस्तुत किये , जो राजनीतिक मान्यतायें रखीं , उनके लिये देश सदैव ऋणी रहेगा ।

२) **लोहिया के राजनीति सम्बन्धी आदर्श एवं उद्देश्य -**

लोहिया जी का विचार था कि आदर्श राजनीतिक व्यवस्था तभी स्थापित की जा सकती है जबकि उसके प्रशासक चरित्रवान और स्वार्थपरता से मुक्त हों । इसलिये वे राजनीति में सैद्धांतिक दृढ़ता पर बल देते थे । वे मानते थे कि राजनीतिज्ञों में सच, मन से कर्म करने और उदारता ,मिलजुलकर काम करने की भावनायें होनी चाहिये जिससे व संकीर्ण भेदभाव व स्वार्थ के वशीभूत होकर कोई कार्य न करे । देश की प्रगति राजनीतिज्ञों के कर्मों पर ही निर्भर है । वे राजनीतिज्ञों के साथ-साथ जनता में भी सद्गुणों के विकास पर बल देते थे । उनके अनुसार - इस तरह से निषेधात्मक और निश्चयात्मक कामों के लिये सच, मन से काम , उदारता और मिलजुल कर काम करने जैसे गुणों की अभिवृद्धि की जरूरत होगी । इन गुणों पर न केवल किसी एक कौम का बड़प्पन निर्भर है बल्कि मनुष्य जाति की तृप्ति भी ।[१]

लोहिया जी इन गुणों का विकास न केवल राष्ट्र के अंदर बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लोगों में करना चाहते थे । वे मानते थे कि यदि इन गुणों को एक राष्ट्र तक सीमित कर दिया गया तो दुनिया का नुकसान होगा । जब इन गुणों का फैलाव समस्त विश्व में हो जायेगा तो सम्पूर्ण विश्व में

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - सच, कर्म , प्रतिकार और चरित्र निर्माण आवाहन , पृष्ठ-८८

विश्व-बंधुत्व की भावना का विकास होगा । वे संकीर्ण राजनीतिक विचारों के विरुद्ध थे । राष्ट्र व विश्व की एकता के लिये राजनीतिज्ञों के दृढ़ चरित्र व उदारता की भावना विकसित होना आवश्यक है । उन्होंने कहा - सच, कर्म, उदारता और दूसरे तत्व जिससे चरित्र बनता है, राजनीति का मुख्य काम होना चाहिये लेकिन मौजूदा खिन्न रूप में नहीं । इनकी मान्यता अधिक से अधिक सर्वव्यापी होना चाहिये । न केवल एक राष्ट्र में बल्कि समूची दुनिया में ही संगठनों का निर्माण या उसके लिये आन्दोलन करना होगा ।[1]

वे चाहते थे कि राजनीति में व्यक्ति को उदारता सीखना चाहिये और अपना कर्म सद्भाव के साथ करना चाहिये । राजनीति का लक्ष्य लोकप्रियता प्राप्त करना नहीं होना चाहिये । उन्हें किसी विशेष वर्ग, समुदाय, धर्म व प्रदेश के हितों को ध्यान में रखकर या स्वयं अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये सामान्य जनता का अहित नहीं करना चाहिये । उन्होंने कहा - आज की राजनीति में सबसे बड़ी चीज यह हो गई है, आप लोग उसके शिकार हैं, वह यह कि कहीं ऐसा काम न करो जिससे लोकप्रियता खत्म हो जाये । तब फिर राजनीति में क्यों आये ?[2]

लोहिया जी का सुझाव था कि जिन लोगों को लोकप्रियता की फिक्र है उन्हें राजनीति में प्रवेश नहीं करना चाहिये क्योंकि राजनीति में कई ऐसे समय आते हैं जबकि लोकप्रियता पर बट्टा लगता है । राजनीति में बदनाम भी हो सकते हैं, अगर कुछ तब्दीली करना चाहोगे तो लोग मारने-पीटने में आ सकते हैं । महात्मा गांधी तक को लोग लाठी लेकर मारने के लिये दौड़ पड़ते थे । यह निश्चित है कि जो राजनीतिज्ञ समाज को बदलना चाहेगा, तो लोगों का गुस्सा उसके ऊपर उतरेगा । उनके अनुसार - आज जो हिंदुस्तान का युग है इसमें आदमी अपनी लोकप्रियता को हमेशा बचाकर रखना चाहता है और तब कुछ बोलता है और तब कुछ करता है । मैं समझता हूं यह सबसे

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - सच, कर्म, प्रतिकार और चरित्र निर्माण आवाहन, पृष्ठ-२१

२- डा०राममनोहर लोहिया - क्रांति के लिये संगठन भाग-१, पृष्ठ-६७

खतरनाक चीज है ।[1]

लोहिया जी की राजनीति स्वार्थरहित थी क्योंकि उन्हें सत्ता से मोह नहीं था और ना लोकप्रियता प्राप्त करने की इच्छा रखते थे । उन्होंने दूसरे दल के व्यक्तियों को जो समान कार्यक्रम लेकर , कार्य करने को इच्छुक हुए उनको सहयोग प्रदान किया । वे सिद्धांतवादी थे । वे राजनीति में कभी अपने सिद्धांतों से विचलित नहीं हुए । उन्होंने कहा - मैं एक कैदी हूं । सिद्धांत का कैदी हूं । कुछ सनकी हूं । कहीं ऐसा काम नहीं करता जिससे बाद में लोग कहें कि देखा इसने अपने संविधान को तोड़ा ।[2]

वे मानते थे कि राजनीतिज्ञों का लक्ष्य देश का कल्याण करना होना चाहिये उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन देश की समस्याओं को सुलझाने में व्यतीत कर दिया । उन्होंने कहा - शक्ति ने मुझे विमोहित नहीं किया है । थके व बूढ़े लोग पद से संतुष्ट हो जाते हैं । प्रपंचहीन लोग शक्ति की अभिलाषा रखते हैं । वे यदि अपने विचारों को कार्यान्वित करने के लिये शासन सत्ता प्राप्त नहीं कर सकते तो वे हैरान नहीं होते , उनकी इसी बात की आशा रहती है कि एक न एक दिन शासन सत्ता उनके अनुरूप निश्चित ही चलेगी ।[3]

लोहिया जी का विश्वास था कि राजनीतिक व्यवस्था में उन्हीं व्यक्तियों को आना चाहिये जो उत्तम लक्ष्य की प्राप्ति के सिद्धांतों को अधिक महत्व देते हैं । राजनीतिज्ञों को देश की समस्याओं को सुलझाने के लिये सतत् संघर्ष करना चाहिये । उन्होंने सतत् संघर्ष के विषय में कहा था - कोई चीज न हो पावे तो उस पर दुःखी मत हुआ करो , दूसरे मार्ग पर चल पड़ो । कभी रचनात्मक पर चल पड़ो । कुछ सफलता हासिल हुई, कभी मामला ठप्प हो रहा है तो आन्दोलन पर चल पड़ो । प्रचार पर चल-पड़ो । विचार और बैठक पर चल पड़ो , कोई न कोई , कुछ न कुछ करते रहो ।[4]

१- डा०राममनोहर लोहिया - क्रांति के लिये संगठन भाग-३,पृष्ठ-१६७
२- डा०राममनोहर लोहिया - सम्कृष्टि ,पृष्ठ-३७
३- डा०राममनोहर लोहिया - भारत विभाजन के अपराधी,पृष्ठ-२६
४- डा०राममनोहर लोहिया - देश विदेश नीति के कुछ पहलू,पृष्ठ-६१

सत्ता की राजनीति के पीछे जीवन मूल्यों की आहुति देने के पक्ष में वे कभी नहीं थे । उन्होंने देश के सामने राजनीतिक आदर्श प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने चरित्र की राजनीति की है , भ्रष्टता का अवलंबन कभी नहीं लिया है। लोहिया जी का जीवन इस दृष्टि से स्वयं में आदर्श राजनीतिज्ञ मूल्यों की संस्थापना करता है । वे राजनीतिज्ञों के लिये एक आचार-विचार संहिता की व्यवस्था चाहते थे ताकि राजनीतिज्ञ भ्रष्ट न हो पायें । वे चरित्र को राजनीति में सर्वाधिक महत्व देते थे । वे राजनीतिज्ञ को लोकतंत्र का एक सशक्त पहलू मानते थे ।

लोहिया जी को राजनीति में दिखावा पसंद नहीं था । वे सच्चाई पर आधारित राजनीति के हिमायती थे । दांव पेंच की राजनीति उनके रास्ते के विपरीत थी एवं ऐसे नेताओं के वे कटु-आलोचक भी थे । उन्होंने बारम्बार कहा कि - मेरा किसी से निजी झगड़ा नहीं है एवं उनका एकमात्र झगड़ा राजनीतिक शुद्धता एवं देश के जनहित के कार्य की पद्धति को लेकर है। वे अपने सिद्धांतों को जनता तक पहुंचाने का प्रयत्न करते थे,जिससे जनसाधारण अपने अधिकारों के प्रति सजग हो । उनका कहना था कि सिद्धांतों को हजारों की सभा में , हजारों की गोली में उतारना मुश्किल है ।[1]

लोहिया जी ने अपने विचारों को देश की परिस्थिति के अनुसार ही रखा । वे एक राष्ट्रवादी नेता थे । उनकी राजनीतिक और राष्ट्रीय नीतियां देश के हित में रहती थीं । उन्होंने कहा - मेरा तो कर्तव्य है कि कभी देश-विदेश नीति के मामले में हिंदुस्तान मुसीबत में फंसे तो हमारे जैसे आदमियों से जितना बन पड़े हम जनता के मन को मजबूत रखेंगे । देशभक्ति के रास्ते में डिगने नहीं देंगे । यही हमारा कर्तव्य है , उस रास्ते पर चलते हुए जो कुछ भी तकलीफ, त्याग , जिंदगी और मौत का सामना करना पड़े तो उसके लिये हम भी तैयार रहेंगे ।[2]

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - देश-विदेश नीति के कुछ पहलू,पृष्ठ-१७

२- डा०राममनोहर लोहिया - भारत , चीन उत्तरी सीमायें, पृष्ठ-१७७

लोहिया जी का मत था कि राजनीति का उद्देश्य देश की समस्त जनता का कल्याण करना होना चाहिये । सभी व्यक्तियों को कानून के समक्ष समानता व स्वतंत्रता का अधिकार होना चाहिये । लोहिया जी कुछ प्रशासनिक अधिकारियों और सरकारी नौकरियों में सम्पत्ति के सम्बन्ध में विशेषाधिकार का विरोध करते थे । वे मानते थे कि उक्त नौकरियों में मिलने वाले विशेषाधिकार जैसे - निःशुल्क निवास , यातायात भत्ता आदि इन लोगों को वेतन के अलावा और कोई विशेषाधिकार नहीं दिया जाना चाहिये । उन्होंने कहा - मैं जब यह सवाल उठाता हूं कि इन नियमों को खत्म करो , लोक विभाग के इन मकानों को खुला करो , सबको वहां रहने दो और सबको वहां रहना चाहिये और परतंत्रता के जमाने के कानून बदलने चाहिये , तो सत्ताधारी नाराज होते हैं । जब कई लोग जाकर वहां रहना शुरू करेंगे तो गिरफ्तार होंगे , जेल जायेंगे तब गलत कायदे-कानून टूटेंगे ।[1]

लोहिया जी का विचार था कि बड़े अधिकारी विशेषाधिकार को समाप्त करने के प्रस्ताव का विरोध करेंगे क्योंकि इनके समाप्त होते ही उनकी सारी सुविधाओं का अंत हो जायेगा । वर्तमान समय में हिंदुस्तान में बड़े प्रशासनिक अधिकारियों को रहने की सुविधा , शान -सुविधा ,ठाठबाट की सुविधा, हर तरह से आदर सम्मान की सुविधा प्राप्त होती है । करोड़ों रुपये इनकी शान-शौकत के लिये खर्च किये जाते हैं । दूसरी ओर हिंदुस्तान में साधारण व निम्न वर्ग है जो आवश्यक जरूरतों को भी पूरा करने में असमर्थ रहता है । हिंदुस्तान में प्रत्येक वर्ग के लिये समान नियमों की व्यवस्था नहीं है । उनके अनुसार - छोटे और बड़े का फर्क हिंदुस्तान में बड़ा जबरदस्त है और खाई बड़ी भारी है । इसके कारण हर एक कायदा-कानून , नियम बिगड़ा हुआ है । सरकार का सब इन्तजाम बिगड़ गया है ।[2]

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - निजी और सार्वजनिक क्षेत्र, पृष्ठ-५

२- वही , पृष्ठ-६

लोहिया जी मानते थे कि भारतीय राजनीति में चारों ओर झूठ का वातावरण है, सच्चाई की कोई परवाह नहीं करता। सभी अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये कार्य करने में लगे रहते हैं। राष्ट्र के हितों को ध्यान में रखकर कोई भी व्यक्ति कार्य नहीं करना चाहता। वे राजनीति को स्वार्थ से ऊपर उठाना चाहते थे। वे मानते थे कि दलदल की राजनीति में कोई अच्छा सिद्धांत कायम या स्थिर नहीं रह सकता।

उनका विचार था कि राजनीति को क्षेत्रीयता, जातीयता और साम्प्रदायिकता से दूर रखना चाहिये। सभी को उन्नति के समान अवसर उपलब्ध होना चाहिये। वे मानते थे कि राजनीतिक दलों का संगठन भी राजनीतिक आधार पर नहीं होना चाहिये बल्कि उद्देश्यों और आदर्शों की एकता के अनुसार होना चाहिये, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय व धर्म के हों। उन्होंने कहा - इसमें सुधार होना चाहिये, साफ बात है कि मुसलमान जैसी कोई चीज नहीं रहना चाहिये जैसे हिन्दू टूटते हैं, अलग-अलग पार्टियों में बैठे हो मुसलमानों को भी टूटना चाहिये लेकिन यह बात कुछ मानी हुई सी है कि मुसलमान जायेगा तो एकसाथ जायेगा।[१]

वे मानते थे कि हिन्दू और मुसलमान के बीच एकता की भावना विकसित करने के लिये आवश्यक है कि भारतीय राजनीति में हिन्दू व मुसलमानों को समान रूप से उन्नति के लिये अवसर प्राप्त होना चाहिये।

लोहिया जी का विचार था कि भारतीय राजनीति में अधिकांशतः उच्च जातियों को ही नेतृत्व का अवसर प्राप्त होता है। वे निम्नजातियों को भी राजनीति में स्थान दिलाना चाहते थे। वे भारतीय राजनीति से जातीयता की भावना को समाप्त करना चाहते थे। उनका सुझाव था कि निम्न जातियों को राजनीति में भाग लेने के लिये विशेष अवसर देना चाहिये तभी पिछड़ी जातियों की योग्यताओं और संस्कारों का निर्माण होगा और समूचा हिन्दुस्तान सबल

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - हिन्दू और मुसलमान, पृष्ठ-८

बनेगा । उन्होंने कहा - इसलिये सोशलिस्ट पार्टी कटिबद्ध है कि पिछड़ी जातियों को नेतृत्व का अवसर मिले । सार्वजनिक जीवन में कम से कम ६० प्रतिशत नेतृत्व स्थान इन्हें मिले । जहाँ जरूरी हो , कानूनी संरक्षण द्वारा किन्तु साधारणत: दिमागी ढाँचे को बदलकर नेतृत्व का यह परिवर्तन हो ।[1]

वे विशेष अवसर के सिद्धांत को तब तक कायम रखना चाहते थे जब तक कथित द्विज जाति एवं पिछड़ी जाति के लोग ऊँची जातियों के स्तर पर न आ जायँ । जिस दिन दोनों धरातल पर आ जायेंगे, विशेष-अवसर का सिद्धांत समाप्त कर दिया जायेगा । उन्होंने जाति-प्रथा पर कठोर प्रहार किये इसका परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे जातिवाद की भावना समाप्त हो रही है और सभी जातियों को राजनीति में भाग लेने का अवसर प्राप्त हो रहा है । भारतीय राजनीति का उद्देश्य सभी जातियों का कल्याण करके देश में समानता लाना होना चाहिये , तभी देश का हित होगा ।

लोहिया जी अनुसूचित जातियों और आदिवासियों की स्थिति में सुधार करना राजनीति का मुख्य उद्देश्य बतलाते हैं । भारत में सभी प्रदेशों में प्रादेशिकता की भावना की झलक मिलती है । बिहार , असम , बंगाल, पंजाब, तामिलनाडु आदि प्रदेशों में प्रादेशिकता की भावना व्याप्त है । राजनीतिक दल प्रादेशिकता की भावना का पूरा लाभ उठाते हैं । १९६० में जब असम में असमियों और बंगालियों के बीच दंगे हुए तभी लोहिया जी ने एक पत्र रमा मित्रा को लिखा था । १५ अगस्त १९६० को इस पत्र में उन्होंने देश के मध्य वर्ग में पनपती दो विकारी प्रवृत्तियाँ जिम्मेदारी और भूमिपुत्र के नारे की आड़ में काम कर रही संकीर्ण प्रादेशिकता की ओर इशारा किया। उन्होंने लिखा - असम में जो कुछ हो रहा है , यह जिम्मेदारी के उस दर्शन का अनिवार्य परिणाम है , जो भारत पर पिछले १३ वर्षों से छाया हुआ है ,

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - जातिप्रथा, पृष्ठ-९२

इसका दार्शनिक पक्ष रखने से पहले , मैं तुम्हारे सामने कुछ तथ्य रख दूं । चाहे वे देवेश्वर शर्मा के नेतृत्व वाले असंतुष्ट कांग्रेसियों या सोशलिस्ट परेश्वर गोस्वामी हों या असमिया कम्युनिस्ट फणी गोरा हों , सभी मिलकर मुस्लिम के विचारों के इर्दगिर्द भावनायें पनपाने की कोशिश कर रहे हैं , ऐसा बिहार बिहार, बंगाल तामिलनाडु , देश के दूसरे हिस्सों में भी पिछले कुछ सालों से चल रहा है , नेता और सरकारी पार्टी चतुराई से इस वातावरण का पूरा-पूरा लाभ उठाते हैं ।[1]

लोहिया जी का विचार था - कि सरकारी अफसरों और कर्मचारियों की स्वार्थपरता के कारण पिछड़े हुए इलाकों का सुधार और उनकी उन्नति नहीं हो पाती । वे आदिवासियों की स्थिति में सुधार करना चाहते थे । वे आदिवासियों व विकसित क्षेत्रों के इलाकों के लोगों का जीवन समान चाहते थे। उन्होंने कहा - लोग नहीं जानते कि जीवन का बोझा क्या है ? वे उसे छूते हैं कि कौन बड़ा आदमी है , कौन रुतबे वाले आदमी है, उसके जीवन का बोझा ज्यादा होता है और जो मामूली आदमी है , जो आदिवासी है , चूंकि कपड़े नहीं पहनते इसलिये उनके जीवन की कीमत कम हो जाती है । ये लोग अदृश्य से कुछ सोचें कि जीवन का मूल्य एक जैसा है ।[2]

लोहिया जी ने भारत के पिछड़े हुए क्षेत्रों का विकास करना चाहा और देश के समस्त प्रदेशों की समान उन्नति चाही । यदि वर्तमान सरकार लोहिया जी की नीति का अनुसरण करे तो प्रादेशिक झगड़े नहीं होंगे ।अतः देश की सरकार को चाहिये कि वह प्रदेशों के मध्य विवाद व संघर्ष न पनपने दें। वर्तमान समय में प्रधानमंत्री राजीव गांधी लोहिया जी के विचारों पर अमल कर रहे हैं । श्री राजीव गांधी आदिवासी इलाकों की प्रगति की ओर ध्यान दे रहे हैं । इन क्षेत्रों की उन्नति के लिये वे स्वयं वे वहां के दौरे कर रहे हैं । इसके साथ ही हमारी वर्तमान सरकार ने असम के संघर्षों को दूर किया और पंजाब में खालिस्तान बनाने की मांग का विरोध करके पंजाब में शांति स्थापित

- -

१- लाडली मोहन निगम - उफ़्त चिट्ठी पत्री, " लोहिया पत्रों के आइने में यारों का रुतबा" धर्मयुग २४ से ३० जनवरी १९८४ गणतंत्र विशेषांक,पृष्ठ-४०

२- डा०राममनोहर लोहिया-लोकसभा में लोहिया भाग-९,पृष्ठ-४६

करने का प्रयास कर रही है । लोहिया जी का यह कहना सच था कि राष्ट्र के सभी प्रदेशों की उन्नति होने पर ही वह एक शक्तिशाली राष्ट्र बन सकता है। अतः हमारी राजनीति का उद्देश्य देश के सभी प्रदेशों व क्षेत्रों का विकास करना होना चाहिये ।

उनका विचार था कि राजनीति का उद्देश्य सभी वर्गों का विकास करना होना चाहिये । नीलम संजीवा रेड्डी के अनुसार - लोहिया समाजवाद और समता की वकालत करते हुए वर्गहीन समाज की माँग कर रहे थे । भारत में वर्गहीन समाज का मतलब दो बातें होंगी । एक तरफ वर्गभेद बढ़ने से रोका जाये और दूसरी ओर अतीत के वर्गभेद से जो जाति के रूप में , मिटाया जाये। भाषा और नौकरशाही के प्रति उनका दृष्टिकोण वर्गहीन समाज के इस विचार से पनपा था ।[१]

लोहियामानते थे-भारतीय राजनीति का उद्देश्यप्रमुख रूप से बिना जाति , धर्म , लिंग , क्षेत्र आदि का भेदभाव किये सभी को समान अवसर देना होना चाहिये । उन्हें समाज के पिछड़े वर्गों से विशेष सहानुभूति थी ।उन्हें जो बात जनता के हित के विरुद्ध प्रतीत होती थी , उसका उन्होंने डटकर विरोध किया। उन्हें किसी की आलोचना का भय नहीं था और न ही वे सत्ता मेंरहने के लिये किसी की खुशामद करते थे ।

उनका मत था कि अपराध के सम्बन्ध में भी छोटे व बड़े लोगों के लिये समान कानून की व्यवस्था होना चाहिये । मधु लिमये ने लिखा है - स्व०डा०राममनोहर लोहिया हमेशा कहते थे नजरबंदी कानून जिसकी विशेष बुराई होती है बड़े लोगों के खिलाफ कानून लागू किया जाता है , मगर जो बहुत गरीब लोग हैं , उनके लिये मीसा या नजरबंदी की जरूरत भी नहीं पड़ती है उनके लिये साधारण कानूनों का दुरुपयोग ही पर्याप्त हो जाता है ।[२]

उन्होंने अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये समाज में व्याप्त

१- नीलम संजीवा रेड्डी " राममनोहर लोहिया " लोहिया:बहुआयामी व्यक्तित्व, पृष्ठ-१२

२- मधु लिमये - समस्यायें और विकल्प, पृष्ठ-७०

अन्यायके खिलाफ लोकसभा में कई बार आवाज उठाई । लोकसभा में उन्होंने सदैव पीड़ित वर्ग का समर्थन किया । यही कारण है कि वे लोकसभा में विशेष स्थान रखते थे । वे भारतीय राजनीति का प्रमुख उद्देश्य देश का सर्वांगीण विकास करना बतलाते थे । वे देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक सभी क्षेत्रों में प्रगति चाहते थे । उन्हें देश की अखण्डता और एकता की विशेष चिंता थी । वे राष्ट्र की प्रगति के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी सुख-शांति व समृद्धि चाहते थे ।

३) राष्ट्रीय स्वतंत्रता -

संसार का एक बहुत बड़ा हिस्सा साम्राज्यवादी देशों का दासता में रहा है । अभी कुछ भाग इन देशों के शिकंजे से मुक्त हो गये हैं और कुछ अभी भी शोषणग्रस्त हैं । साम्राज्यवादी की स्थापना का मुख्य कारण विभिन्न देशों की आर्थिक असमानता है । लोहिया जी का विचार था कि विभिन्न देशों के मध्य आर्थिक विषमता को समाप्त करके गुलाम देशों को आजाद कराना मानवता के हित के लिये आवश्यक है । विश्व के सभी राष्ट्रों के व्यक्तियों में यदि राष्ट्रीय स्वतंत्रता की भावना का विकास है तो राष्ट्रों की स्वतंत्रता आसानी से कोई सबल राष्ट्र हनन नहीं कर सकता । राजनीति का उद्देश्य व्यक्तियों में राष्ट्रीय स्वतंत्रता की भावना का विकास करना होना चाहिये । उनके अनुसार - राष्ट्रीय स्वतंत्रता शायद हमेशा से मनुष्य की सबसे बड़ी कामना रही है । दुनिया की सभी कौमें कम से कम बड़ी कौमें आजाद हो जायेंगी, राष्ट्रीय स्वतंत्रता अब मनुष्य की स्थाई सम्पत्ति बनने जा रही है, कोई कौम अब किसी दूसरी कौम पर सीधे हुकुमत नहीं कर सकती ।[१]

वे मानते थे कि दुनिया में अभी भी अप्रत्यक्ष नियंत्रण और अन्याय विद्यमान है । इसलिये सभी राष्ट्रों को दुनिया में व्याप्त अन्याय को दूर

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ ३५-३६ (भूमिका)

करने के लिये संघर्ष करना चाहिये , तभी निर्बल राष्ट्रों की स्वतंत्रता सुरक्षित रह सकती है । लोहिया जी ने स्वयं साम्राज्यवाद को तोड़ने के लिये १९४२ के स्वतंत्रता संग्राम में कठिन लड़ाई लड़ी । उन्होंने लोगों को देश की आजादी के लिये प्रोत्साहित किया । उनका विचार था कि प्रजातंत्र के लिये राष्ट्रीय स्वतंत्रता एक आवश्यक शर्त है । वे साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद को सदैव के लिये समाप्त करने के पक्ष में थे । उन्होंने कहा - साम्राज्यवाद के सभी रूप जिन अँधेरे कोनों में छिपे हैं , उनमेंसे निकालकर उन्हें जब तक खत्म नहीं किया जायेगा तब तक दुनिया में समता और शांति नहीं आ सकती ।[1]

अपने देश में राष्ट्रीयता स्वतंत्रता कायम रखने के लिये देश की जनता में राष्ट्रीय प्रेम की भावना जागृत करना चाहिये । लोहिया जी का विचार था कि प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि वह राजनीतिक दृष्टि से पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो । कोई भी देश दूसरे देश की गुलामी को पसंद नहीं करता है । यदि किसी देश पर दूसरे देशका शासन है तो वह स्वतंत्र होने का प्रयास करता है । उन्होंने कहा - राष्ट्रीय स्वतंत्रता शायद हमेशा मनुष्य की सबसे बड़ी कामना रही है । देश, राष्ट्र , कौम , मातृभूमि या पितृभूमि की धारणा जितना जान पैदा करती है , उतनी कोई और चीज नहीं ।[2]

लोहिया जी मानते थे कि वर्तमान समय में संसार के सभी राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने और देश की प्रगति को महत्व देते हैं । कोई भी मुल्क दूसरे देश की पराधीनता किसी भी रूप में स्वीकार नहीं करना चाहता। यदि वर्तमान समय में कोई राष्ट्र लड़खड़ाता है अर्थात् राष्ट्रीय स्वतंत्रता को खतरा पैदा करता है तो रूस औरअमेरिका उस राष्ट्र की मदद करके उसकी राष्ट्रीय स्वतंत्रता को कायम करने का प्रयत्न करते हैं । उन्होंने कहा - मनुष्य जाति ऐसे युग में आ गई है जिसमें साम्राज्यवाद प्रत्यक्ष कब्जा करना स्वीकार नहीं करता और अपने शिकार को इतनी थोड़ी सी शक्ति प्रदान करना बेहतर

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-३७(भूमिका)
२- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी और सप्तक्रांति,पृष्ठ-५५

समझता है, जिससे कोई दूसरा उसे न खा सके ।[1]

वे मानते थे कि वर्तमान समय में साम्राज्यवाद हमारे सामने दूसरे रूप में आया है । सम्पन्न देश पिछड़े हुए देशों से कच्चा माल मंगा कर उत्पादित वस्तुएं गरीब देशों को भेजते हैं । इस कारण गरीब देश सम्पन्न देशों के प्रति आर्थिक दृष्टि से अधीन होते जा रहे हैं । सबसे पहले गरीब व पिछड़े हुए देशों को स्वयं अपने देश में उत्पादन बढ़ाकर आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होना चाहिये तभी वे अपनी राष्ट्रीय स्वतंत्रता को कायम रख सकते हैं ।

प्राय: किसी देश को आजाद तब माना जायेगा जबकि उसे सेना, व्यापार, विदेशिक नीति पर प्रभुत्व हो और देश की उन्नति और तरक्की करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त हो । साम्राज्यवादी देश पिछड़े हुए राष्ट्रों की प्रगति में एक रोड़ा है क्योंकि ये देश पिछड़े हुए देशों की उन्नति नहीं होने देना चाहते । हमारे देश को दूसरे देशों की साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों से बचकर रहना चाहिये और अपनी आजादी को कायम रखने का प्रयास करना चाहिये । लोहिया जी के अनुसार - आजादी हम देश और समाज की उस राजनीतिक स्थिति को कहेंगे जिसमें रहकर हम अपनी उन्नति के सभी तरीके बिना किसी रोकटोक के ला सकें । जब हमने देखा कि अपनी उन्नति के लिये चाहे वह सामाजिक हो, आर्थिक हो, सांस्कृतिक हो, हमें किसी पथ का अनुसरण करना है तो हमें कोई ताकत आगे बढ़ने से न रोक सके, इस अवस्था को हम आजादी कहेंगे ।[2]

उन्होंने साम्राज्यवाद का विरोध किया और देश के आर्थिक विकास पर बल दिया। ये दोनों बातें राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिये आवश्यक हैं । उनका कहना था कि - हमारे देश की राज्य सत्ता साम्राज्यवाद से बिल्कुल स्वतंत्र हो, हमारी हो, प्रजातंत्रात्मक हो । हमारा आर्थिक जीवन हमारी राज्य सत्ता के अधीन हो, जो देश की औद्योगिक उन्नति करके जनता की माली हालत सुधारे,

---

१- डा०राममनोहर लोहिया, मार्क्स, गांधी और सप्तक्रांति, पृष्ठ-५५

२- डा०राममनोहर लोहिया - 'स्वराज्य क्यों और कैसे' समाजवादी आन्दोलन के दस्तावेज, १९३४-५२, पृष्ठ-१३७

कुछ ऐसी जरूरतें भी हैं जो अभी स्पष्ट नहीं है लेकिन जिनका साम्राज्यवाद के साथ उतना ही गाढ़ा सम्बन्ध है ।[१]

लोहिया जी मानते थे कि साम्राज्यवाद के विरोध के लिये देश की आर्थिक दशा को सुधारना अत्यन्त आवश्यक है । देश में सभी व्यक्तियों को काम मिलने की व्यवस्था होनी चाहिये । देश के बड़े उद्योगधन्धे सामूहिक सम्पत्ति हो, हमारे देश के आर्थिक विकास पर सामूहिक प्रभुत्व हो , मजदूरों की मजदूरी बढ़े और काम के घण्टे कम हों , देश में कृषि व्यवस्था का सुधार हो । इसके साथ ही सच्ची राष्ट्रीय स्वतंत्रता स्थापित करने के लिये सभी प्रकार के साम्प्रदायिक व वर्गभेद को समाप्त करना आवश्यक है । उन्होंने कहा - सच्ची राष्ट्रीय स्वतंत्रता तभी जाग सकती है , जब वह सम्प्रदायों की हिन्दु-मुसलमान की , आम जनता अपनी अवनति के कारण समझकर साम्राज्यवाद के उन सभी किलों पर हमला करे जो उसकी उन्नति का रास्ता रोके हुए है । मजदूर का लगान , कर्जा , उद्योगनीति वगैरह के सवालों को उठाकर राष्ट्रीय एकता की पल्टन बनती है । यह एकता टिकाऊ होगी ।[२]

उनका विचार था कि देश में सभी व्यक्तियों को अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार रोजगार मिलने की व्यवस्था होनी चाहिये , तभी देश आर्थिक दृष्टि से समृद्ध होगा । उन्होंने कहा - वे रोजगारों की बुनियादी मांग है - " काम दो या भत्ता दो " समाज की राजकीय सत्ता का कर्तव्य है कि हरेक आदमी को जिंदगी बसर करने के लिये अपनी क्षमता का इस्तेमाल करने के लिये उपयुक्त अवसर दे । जब इसकी सम्भावना नहीं रहती , तब यह साफ है कि समाज का आर्थिक और राजकीय प्रबन्ध पुराना हो गया , सड़ गया और प्रतिक्रियागामी है । अगर इस बन्दोबस्त के खिलाफ आवाज उठाई जाती है कि बेकारों को काम मिले या मदद मिले तो वह साम्राज्यवाद से सीधा मोर्चा है।[३]

१- डा० राममनोहर लोहिया- " स्वराज्य क्यों और कैसे " समाजवादी आन्दोलन के दस्तावेज, १९३४-५२, पृष्ठ-१३७

२- वही पृष्ठ-१४८

३- वही पृष्ठ-१५४

लोहिया जी मानते थे कि यदि हमारे देश में उद्योगधन्धों के सवाल, देशी उद्योगों की रक्षा और फौज का खर्च आदि कार्यक्रम की बुनियाद बनते रहते हैं तो हमारा देश आगे नहीं बढ़ सकता । उन्होंने कहा - ये सब सवाल देश की तरक्की के लिये जरूरी हैं, लेकिन इनकी अगुवागिरी हमेशा पूंजीवाद करता है। हमारे देश का पूंजीवाद साम्राज्यवाद के प्रबन्ध में इतना जकड़ा हुआ है कि वह अपने मसलों और तकलीफों को हल करने की अगुवाई की ताकत नहीं ।[1]

लोहिया जी राष्ट्र की स्वतंत्रता और सुरक्षा को महत्व देते थे । मधु लिमये ने लिखा है - आज डा०राममनोहर लोहिया की बात भी मैं कहना चाहता हूं । उन्होंने एक दिन मुझसे कहा था - कोनों आक्रमणों के बाद कि सदियों बाद हमें स्वतंत्रता मिली है । उसकी जी-जान से रक्षा करनी चाहिये। इसके लिये जरूरत पड़ने पर किसी की भी मदद लेनी चाहिये ।[2]

लोहिया जी का विचार था कि एक हजार साल बाद देश को स्वतंत्रता मिली है, अपना राज्य मिला है इसलिये हमें अपने देश की स्वतंत्रता पर आंच नहीं आने देना चाहिये । लोहिया जी के राष्ट्रीय स्वतंत्रता के विचार से मधु लिमये भी सहमत हैं । इसलिये उन्होंने कहा - एक हजार साल के बाद जिस देश को अपनी स्वतंत्रता मिली हो, अपना राज्य मिला हो, देश की सुरक्षा नीति के साथ, वैदेशिक नीति के साथ खिलवाड़ नहीं करना चाहिये और कोई करेगा तो मैं कहूंगा कि सार्वजनिक जीवन में उसको रहने का अधिकार नहीं है, वह घोर अपराधी है ।[3]

लोहिया जी देशवासियों में राष्ट्रीय स्वतंत्रता की भावना को विकसित करने पर बल देते थे । देश की राजनीतिक व्यवस्था ऐसी हो प्रत्येक राष्ट्र में प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर राष्ट्रप्रेम की भावना जागृत हो । आपका यह विचार सत्य है कि देश के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक

१- डा०राममनोहर लोहिया' स्वराज्य क्यों और कैसे -समाजवादी आन्दोलन के दस्तावेज १९३४-५२, पृष्ठ-१५६

२- मधु लिमये - राजनीति का नया मोड़, पृष्ठ-८६

३- वही पृष्ठ-८६

उत्थान पर ही राष्ट्रीय स्वतंत्रता निर्भर है । लोहिया जी ने स्वयं अपना जीवन देश के लिये अर्पित कर दिया । उन्होंने देश को आजादी के लिये अनेक कष्ट सहे और कई बार जेल गये । देश की आजादी के लिये उन्होंने अकथनीय प्रयास किये और देश की आजादी के बाद भी देश की सभी प्रकार की उन्नति के लिये प्रयत्नशील रहे । वे अपने देश की जनता में राष्ट्रप्रेम की भावना जागृत करना चाहते थे । देश में व्याप्त विभिन्न असमानताओं और विभेदों को दूर करके राष्ट्रीय एकता पर बल देते थे । वे देश की राष्ट्रीय स्वतंत्रता को बहुत महत्व देते थे ।

४) प्रजातंत्र -

लोहिया जी प्रजातंत्र के समर्थक थे । वे देश में सभी व्यक्तियों को समानता व स्वतंत्रता प्रदान करने के पक्ष में थे । वे देश में ऐसी राजनीतिक व्यवस्था चाहते थे जिसमें शासन जनता की इच्छा के अनुसार हो । वे राज्य के शासन पर जनता का नियंत्रण रखना चाहते थे । उनके विचारों को डा० राजेन्द्र मोहन भटनागर ने स्पष्ट करते हुए लिखा है - वे स्वयं प्रजातांत्रिक समाजवाद के पोषक थे । अतः जनशक्ति के वे प्रबल समर्थक थे । उनका विश्वास था कि जिस प्रकार स्वचेतना की भावना से मनुष्य अपना पूर्ण विकास करने में समर्थ रहता है , उसी प्रकार स्वतंत्र जनशक्ति राज्य को विकसित ही नहीं करती अपितु सशक्त बनाती है । वे दण्ड व्यवस्था के हामी थे किन्तु वह विधि के अनुसार होनी चाहिये । अतः लोहिया का विचार था कि राज्य में चाहे आन्तरिक मामले हों अथवा बाह्य , दोनों में शक्ति का प्रयोग जन-इच्छा से करना चाहिये ।[१]

जनइच्छा का प्रतिनिधित्व व्यवस्थापिका करती है । व्यवस्थापिका की उन्होंने कड़ी आलोचना की क्योंकि व्यवस्थापिका की दशा बड़ी दयनीय है-

- -

१- डा० राजेन्द्रमोहन भटनागर - डा० लोहिया , पृष्ठ-८८६

वह जनता के हितों को ध्यान में रखकर कार्य नहीं करती है। व्यवस्थापिका का जनता से सीधा सम्बन्ध होना चाहिये और जनता के हितों को ध्यान में रखकर कार्य करना चाहिये। व्यवस्थापिका का काम जनता की इच्छा का प्रतिनिधित्व करना है न कि अपने आदेशों को जनता पर लादना।

नोट - X मैं लोहिया जी के प्रजातंत्र के सम्बन्ध में विचारों को पिछले अध्याय ५ में विस्तार से लिख चुका हूं, इस कारण पुनःदोहरा कर नहीं लिख रहा हूं X

(ख) आर्थिक उत्थान -

लोहिया जी ने देश के आर्थिक उत्थान पर बहुत बल दिया। इसके लिये उन्होंने उद्योग, कृषि और व्यापार से सम्बन्धित अपने विचारों को प्रस्तुत किया। उन्होंने सरकार के बढ़ते हुए खर्चों का भी विरोध किया। उनका मत था कि देश की आर्थिकप्रगति होने पर ही राजनीतिक प्रगति सम्भव है।

(क) उद्योग - आजादी के बाद देश में बृहत् उद्योग प्रणाली अपनायी गयी। लेकिन लोहिया जी बृहत् उद्योगों के पक्ष में नहीं थे। १९६५ में होने वाली पार्टी से बम्बई अधिवेशन में इस नीति की आलोचना करते हुए लोहिया जी ने कहा था कि- पिछले १७ वर्षों में सभी मामलों में सरकार की नीति हीनता और निर्णय हीनता रही है सिवाय औद्योगीकरण की नीति के लेकिन औद्योगीकरण नहीं हुआ क्योंकि उससे जुड़े हुए सभी मामले उलझे रहे। मिसाल के लिये सरकार निजी और सरकारी धन्धों के प्रबन्ध में फंसी रही और उससे जुड़े हुए एक भी प्रश्न हल नहीं कर सकी।[१]

लोहिया जी ने औद्योगीकरण के लिये नयी दिशा दी। वे देश में पूंजी के अभाव के कारण बृहत् उद्योगों की सफलता पर विश्वास नहीं करते थे।

१- डा०राममनोहर लोहिया- देश विदेश नीति के कुछ पहलू,पृष्ठ-१११

उन्होंने देश में पूंजी के अभाव के कारण वृहत् स्तरीय उद्योग प्रणाली के क्षेत्र का सीमित रूप में समर्थन किया क्योंकि बड़े पैमाने पर चलने वाले कारखानों को चलाना इस देश में लागत पूंजी के अभाव में नामुमकिन है। यही कारण है कि विदेश में जनसंख्या की अधिकता और पूंजी के अभाव के कारण छोटी मशीन योजना को महत्व देते थे। उन्होंने कहा भी है - पिछड़े राष्ट्रों में पूंजी की कमी ने छोटी मशीन के विचार को जन्म दिया, छोटी मशीन के विचार के पीछे उसे समझने और चलाने में आसानी, आर्थिक उत्पादन क्षमता और पूंजी की कमी के तत्व थे।[१]

लोहिया जी ने १६५५ में पचमढ़ी व्याख्यान में छोटी मशीन योजना की विस्तार से व्याख्या की। छोटी मशीन योजना का उत्पादन सस्ता होता है, इस योजना से गरीबों की आर्थिक स्थिति में सुधार हो सकता है। उन्होंने कहा - यह मशीन अर्ध-विकसित संसार की केवल आर्थिक समस्या का समाधान नहीं करेगी बल्कि समाज के सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति तथा विकास भी करेगी।[२]

१६५२ में हरदोई व्याख्यान में लोहिया जी ने इस योजना के महत्व पर और भी विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला। उन्हीं के अनुसार छोटी मशीन योजना का यत्न करने में समाजवादी लोग उद्योगीकरण तथा संस्कृति का युद्ध जीतने वाले हैं। इस योजना को वर्तमान तकनीक पर प्रगति के रूप में देखना चाहिये, न कि प्राचीन व्यवस्था की ओर चले जाने वाले रूप में। यह भारी मशीनों से कम क्षमता की है, यह आवश्यक नहीं, इससे सामाजिक उपलब्धि भी होगी।[३]

लोहिया जी ने शक्ति संचालित करके, पम्पिंग सेट, पेरने व पीसने की मिलों का समर्थन किया। ये मशीनें कम कीमत और अधिक कार्य क्षमता की होंगी। विकसित भारी मशीनों के युग में छोटी मशीन की बात कुछ

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-४-५(भूमिका)
२- वही पृष्ठ-३२६
३- वही पृष्ठ-३७०

अजीब सी प्रतीत होती है । इसकी सभी जगह आलोचना भी हुई है । इसका उत्तर देते हुए उन्होंने महत्वपूर्ण तर्क किया - अन्तरिक्ष यात्रा, संचार उपग्रह राकेट, हाइड्रोजन बम और इलेक्ट्रानिक औजारों का तेजी से बढ़ते उपयोगों को देखते हुए छोटी मशीन की बात सोचने के लिये ऐसे साहस की आवश्यकता प्रतीत होती है जो बुद्धि और तर्क से परे हो जाता है उसको बात करने में इतनी विस्तृत व्याख्या करनी पड़ेगी जो असहनीय लगती है।[1]

लोहिया जी ने सम्पूर्ण जनशक्ति से ज्यादा बुद्धिपूर्ण इस्तेमाल करने के लिये ऐसी तकनीक की बात सोची जो उस क्षेत्र की बचत से बनाई जा सकेगी। छोटी मशीन योजना की व्यवस्था से सभी के लिये रोजगार की व्यवस्था हो सकेगी । छोटी मशीन योजना से आर्थिक विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहन मिलेगा और भारत में पूर्ण रोजगारी की व्यवस्था सम्भव होगी । समाजवादी नेता मधु दण्डवते के अनुसार - डा०लोहिया का जोर बिजली या तेल से चलने वाली मशीन के आविष्कार के लिये और और नई रचना पर था ।[2]

डा०लोहिया देश के आर्थिक विकास के लिये छोटी मशीन योजना के समर्थक थे । मधु लिमये ने लिखा है कि- डा०राममनोहर लोहिया वर्षों से कह रहे थे कि इस देश में पूंजीकरण की बड़ी समस्या है । बड़े-बड़े अनावश्यक कारखाने मत लगाइये । कुछ उद्योगों के लिये बड़े यंत्र जरूरी है , लगाइये । बड़े बिजली घर हैं , बड़ी सिंचाई परियोजना है , कोयला है , इस्पात है , रसायन उद्योग है इसमें चाहिये बड़ी मशीन लेकिन उपयोग के जो सामान हैं , उन्हें बनाने के लिये बड़े यंत्र , विदेशी सहयोग, बड़ी फैक्ट्रियाँ क्यों ? छोटे यंत्र , छोटी इकाइयाँ मंजूर करिये ।[3]

लोहिया जी छोटी मशीन योजना से अनेक लाभ बताते हैं । वे मानते थे कि इस व्यवस्था से व्यक्ति को अपने श्रम का उचित पारिश्रमिक मिलेगा , सभी वर्गों को अपने विकास का अवसर मिलेगा । देश में आर्थिक

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-२(भूमिका)
२- मधु दण्डवते - प्रतिपक्ष दिल्ली २५ मार्च १९७३, पृष्ठ-६
३- मधु लिमये - भारतीय राजनीति का नया मोड़, पृष्ठ-६३

विकेन्द्रीकरण होने से व्यक्ति का शोषण समाप्त हो जायेगा । वे छोटी मशीन योजना का अविष्कार करना चाहते थे , इसके लिये वे व्यावसायों के लिये वैज्ञानिक तकनीकी शिक्षा पर बल देते थे । डा०राजेन्द्र मोहन भटनागर के अनुसार - लोहिया जी चाहते थे कि - देश के वैज्ञानिकों को बेकार के शोध-कार्य की अनुमति नहीं दी जानी चाहिये । अत: वैज्ञानिक विकास को एक योजनाबद्ध तरीके से देश में लागू करना होगा ताकि देश के साधन व सम्पत्ति का दुरुपयोग नहीं हो सके । इसमें कोई सन्देह नहीं कि छोटी मशीन योजना की व्यवस्था में दाम सस्ते होगा और देश में व्याप्त बेकारी की समस्या को सुलझाया जा सकेगा ।[१]

इसका अभिप्राय यह नहीं है कि लोहिया जी बड़े उद्योगों को समाप्त करना चाहते थे बल्कि वे चाहते थे कि बड़े उद्योगों पर राज्य का नियंत्रण हो । लोहिया जी की धारणा थी कि विकेन्द्रीकरण देश की आवश्यकतानुसार ही होना चाहिये क्योंकि राज्य का हर क्षेत्र में एकाधिकार या नियंत्रण अधिनायक-तंत्र को जन्म दे सकता है । ऐसी स्थिति से बचने के लिये हमें सचेत रहना होगा और राष्ट्रीयकरण को विकेन्द्रित करना होगा ।

राष्ट्रीयकरण के कारण ही अनेक बुराइयाँ जन्म लेती है लेकिन वास्तव में राष्ट्रीयकरण बुरा नहीं होता । सरकार राष्ट्रीयकरण को किस प्रकार लागू करती है, इससे उसकी अच्छाई या बुराई स्पष्ट हो जाती है । लोहिया जी भी इसकी ओर ध्यान नहीं दे पाये ।

लोहिया जी के छोटी मशीन योजना का विचार भारतीय परिस्थिति के अनुकूल है क्योंकि इस प्रकार की मशीनों की व्यवस्था से सभी को पूर्ण रोजगार प्राप्त होगा और उससे देश में गरीबी दूर होगी । लेकिन इसके साथ-साथ देश को बड़े उद्योगों के विकास पर भी ध्यान देना चाहिये तभी वह दूसरे देशों के समान आर्थिक प्रगति कर सकेगा । लोहिया जी ने जहां एक ओर छोटी मशीन

- -

१- डा०राजेन्द्र मोहन भटनागर - सक्रा लोहिया , पृष्ठ-२०५

योजना पर बल दिया वहाँ दूसरी ओर वृहद् उद्योगों के विकास की ओर वे ध्यान नहीं दे पाये । जबकि आज के आर्थिक युग में आत्म निर्भर होने के लिये देश की आर्थिक प्रगति के लिये बड़े बड़े उद्योगधन्धों का निर्माण किया जाना और उसका विकास करना आवश्यक है । फिर भी लोहिया जी की छोटी मशीन व्यवस्था देश बेकारी को रोजगार दिलाने का अच्छा साधन है । वे इस व्यवस्था से गरीबी का अन्त करना चाहते थे ।

(ख) <u>कृषि -</u> चूंकि भारत एक कृषि प्रधान देश है । इसलिये शासन की आर्थिक प्रगति कृषि पर निर्भर है । लोहिया जी ने भारत की कृषि-व्यवस्था में सुधार करके पैदावार को बढ़ाने पर जोर दिया । वे सहकारी खेती के पक्ष में थे । उनका विचार था कि प्रत्येक खेतिहर मजदूर तथा कृषक परिवार को कम से कम २० बीघा जमीन और आय प्राप्त हो सकेगी । ग्रामीणों की मनोवृत्ति से मेल खाने वाली विभिन्न प्रकार की सहकारी खेती शुरू की जायेगी , प्रति २० गांव पीछे एक ट्रैक्टर और प्रत्येक गांव में सहकारी आधार पर एक तालाब की खुदाई का कार्य करेगी । अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन के लिये दी जाने वाली सहायता इन्हीं पंचायतों के जरिये खर्च की जायेगी ।

लोहिया जी का सुझाव था कि समाजवादी सरकार सहयोगी कृषि के लिये नई जमीन का प्रबन्ध करेगी । उन्होंने सहकारी कृषि के बारे में कार्यप्रणाली निश्चित करतेहुए कहा है - उसको चलाने के लिये कुछ आधारभूत नियम बनाने चाहिये । पहला नियम तो यह कि चाहे गलत इन्तजाम हो लेकिन कोई गैर-किसान इसमें ना हो । उनको इकट्ठा किया जाये जो कुछ खेती कर रहे हैं । दूसरी बात यह कि फिर इसे जरा व्यापक पैमाने पर चलाना होगा ।[१]

लोहिया जी चाहते थे कि - खेती के लिये जमीन का वितरण इस प्रकार हो जिससे भूमिहीनों को भी जमीन प्राप्त हो सके । इसलिये लोहिया जी

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - समाजवादी अर्थनीति , पृष्ठ-३०

ने भूमि की सीमा निर्धारण करने का सुझाव दिया । उनका कहना था -
जहाँ तक जमीन का सवाल है, जमीन के बारे में हमारी बिल्कुल स्पष्ट राय
है कि खेतिहर खानदान बिना मशीन चलाये जितनी जमीन पर खेती कर सके उसकी
तीन गुनी तक जमीन उसके पास रहनी चाहिये ।[1]

लोहिया जी ने खेती में अधिक पैदावार बढ़ाने की दृष्टि से १९६७
के चुनाव में एक सुझाव दिया था कि जमीन की उत्पादन सीमा को निर्धारित
कर दिया जावे । जो व्यक्ति जमीन से निर्धारित सीमा से कम उत्पादन करता
है, उसकी जमीन को जब्त कर लिया जावे । जमीन के अधिग्रहण से बचने के लिये
बाध्य होकर कृषक अधिक पैदावार बढ़ाने का प्रयास करेंगे । लोहिया जी के
समय देश में अन्न की कमी थी । अन्न की कमी को दूर करने के लिये विदेशों
से भारत खाद्यान्न मँगाना पड़ता था । वे अपने देश में कृषि की पैदावार बढ़ाने
के लिये क्रांतिकारी परिवर्तन करना चाहते थे । डा०राजेन्द्र मोहन भटनागर के
अनुसार - इस सम्बन्ध में उनका यह भी सुझाव था कि आधुनिक भूमि को कृषि
योग्य बनाया जाय । सिंचाई की सुविधायें बढ़ाई जायें । कृषि में नवीन
वैज्ञानिक शोध-व्यवस्था को जन्म दिया जाये तथा आधुनिकतम् तकनीक से लाभ
उठाया जाये । कृषकों को प्रशिक्षण दिया जाये । ट्रैक्टर तथा अन्य कृषि
सम्बन्धी सामान किसान को उधार उपलब्ध कराया जाये । उत्पादन में वृद्धि की
ओर सरकारी तथा गैर-सरकारी प्रयत्न हों और इससे एक सामान्य दृष्टि पैदा
हो जिसका काम कृषक को सरकारी तंत्र की सुविधाओं से जोड़ना हो ।[2]

लोहिया जी चाहते थे कि - भू-अन्न सेना की योजना बनाई जाये।
यह सेना बेकार पड़ी हुई भूमि को कृषि योग्य बनायेगी। इससे व्यक्तियों को
रोजगार मिलेगा और देश में खाद्य उत्पादन बढ़ेगा, जिससे अन्न की समस्या का
समाधान होगा । उन्होंने कृषि के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन पर जोर दिया।

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - लोकसभा में लोहिया, भाग-१, पृष्ठ-१११
२- डा०राजेन्द्रमोहन भटनागर- समग्र लोहिया, पृष्ठ-२००

इसके साथ ही सहकारी खेती, अन्न सेना, सिंचाई, कृषि में वैज्ञानिक उपकरण आदि के प्रयोग का सुझाव दिया।

लोहिया जी कृषि सम्बन्धी विचारों में सबसे महत्वपूर्ण चकबंदी व्यवस्था की ओर ध्यान नहीं दे पाये। जबकि वर्तमान समय में खेती की सीमा विस्तार के लिये चकबंदी व्यवस्था शुरू कर दी गई है। इससे कृषि व्यवस्था में सुधार हुआ है क्योंकि इस व्यवस्था से पहले खेत दूर-दूर बिखरे व छोटे होते थे, जिसके कारण किसान को कार्य करने में असुविधा होती थी। बड़े आश्चर्य की बात है कि लोहिया जी ने कृषि की पैदावार बढ़ाने की दृष्टि से उसमें अनेक क्रांतिकारी परिवर्तनों का सुझाव दिया लेकिन वे चकबंदी व्यवस्था की ओर ध्यान नहीं दे पाये। जबकि यह व्यवस्था कृषि में सुधार व पैदावार बढ़ाने के लिये अत्यन्त आवश्यक है। चकबंदी व्यवस्था के आरम्भ हो जाने के बाद कृषि व्यवस्था में पर्याप्त सुधार भी हुए हैं। इसके परिणामस्वरूप देश में कृषि के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता बढ़ रही है।

(ग) राष्ट्रीय आय - लोहिया जी ने आजादी के बाद देश के आर्थिक विकास का मूल्यांकन किया। वे मानते थे कि विदेशों से पूंजी लेकर भारत ने अनेक उद्योगों की स्थापना की, इससे उसकी आर्थिक प्रगति भी हुई। उन्होंने कहा - कम से कम इस वर्ष के मुकाबले में हम थोड़ा आगे रेंगे हैं। उसी से कुछ लोगों को कहने का अवसर मिल जाता है कि हम आगे बढ़े, अब हालत यह है कि हमलोग पैदावार बढ़ा रहे हैं, डेढ़ सैकड़ा के हिसाब से और आबादी बढ़ रही है दो, सवा दो, ढाई सैकड़ा के हिसाब से।[1]

लोहिया जी ने माना कि इस बढ़ती हुई जनसंख्या की तुलना करने पर हम पिछड़े हैं। मूल्यांकन पद्धति के सम्बन्ध में १९५५ के हैदराबाद व्याख्यान में उन्होंने कहा था कि - एक ओर बढ़ती हुई जनसंख्या तथा दूसरी ओर घटता हुआ उत्पादन इन दो दृष्टियों से औद्योगिक उत्पादन का निरीक्षण करना चाहिये। चालू जीवन स्तर तथा अनुमानित प्रति व्यक्ति भोजन, कपड़ा व

१- डा० राममनोहर लोहिया, लोकसभा में लोहिया भाग-१, पृष्ठ-३०

निवास की क्षमता में वृद्धि और यदि सम्भव हो तो दूसरी आवश्यक वस्तुएं तथा उत्पादन के औजारों में वृद्धि । ये सब कृत के रूप में नहीं बल्कि उत्पादन के विस्तार के रूप में हों । यही सबकी अपेक्षा ईमानदार मूल्यांकन का तरीका है ।[१]

लोहिया जी का विचार था कि राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति की आय देखें तो उनके विकास की दर बहुत नीची देखने को मिलती है । देश में चारों ओर स्वार्थपूर्ण मनोवृत्ति देखने को मिलती है । हिन्दुस्तान में लोगों में आपस में जलन , ईर्ष्या और गिरोह है । लोकसभा के सामने कभी बीमा का जुलूस, कभी कम्पनी का जुलूस, कभी बैंकों का जुलूस, कभी पुलिस द्वारा सताये गये लोगों के जुलूस आते हैं पर जनता का जुलूस बहुत कम आया करता है । हिन्दुस्तान में जनता के मध्य नौकरियों के ग्रेड्स बना दिये गये हैं । उन्होंने कहा इन ग्रेड्स के कारण लोगों में आपस में जलन और गिरोह स्थायी बन जाते हैं । देश की सारी तस्वीर लोगों के सामने नहीं आ पाती कि जब तक पूंजी का निर्माण नहीं होगा उस वक्त तक देश की उन्नति नहीं हो सकती । हर एक सोचता है कि केन्द्र के भण्डार में से अपना हिस्सा बना लो । यह भावना चारों ओर फैल गई है ।[२]

इससे न स्वयं की तरक्की होती है और न राष्ट्र की । लोहिया जी ने इस मनोवृत्ति को सुधारने का आग्रह किया है । उनका सुझाव था कि देश में प्राकृतिक साधन बहुत हैं इसलिये उत्पादक वर्ग को कार्य करने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये । प्रति व्यक्ति की आय में वृद्धि होने पर ही देश की राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी । इसलिये वे प्रति व्यक्ति की आय को बढ़ाकर देश की आर्थिक स्थिति सुधारना चाहते थे ।

(घ) खर्च पर सीमा - लोहिया जी का विचार था कि देश में खुला

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - लोकसभा में लोहिया ,भाग-५,पृष्ठ-५४

२- डा०राममनोहर लोहिया - लोकसभा में लोहिया, भाग-३,पृष्ठ-६६-८७

प्रशासनिक अधिकारियों और लोगों पर खर्च की एक सीमा बना दी जाये । इससे जो धन संचित होगा , वह देश के आर्थिक विकास में लगाया जा सकता है। भारत सरकार प्रदेशों से कर्जा अपने देश के उत्पादन को बढ़ाने के लिये लेती है लेकिन इस धन में से अधिकारी वर्ग अपने स्वार्थ के लिये बहुत कुछ खर्च कर देते हैं। वर्तमान समय में भारत पर विदेशी कर्जा बढ़ता ही जा रहा है । करीब ६०अरब कर्ज हमारे देश पर होगा लेकिन इस कर्जे में देश के विकास कार्यों में खर्च के अलावा , अधिकतर कुछ प्रशासनिक अधिकारियोंद्वारा उड़ाया जाता रहा है । कर्जा लेकर यदि उसका सदुपयोग न किया जाय तो स्थिति अधिक गम्भीर और शोचनीय हो जाती है । उनका विचार था कि - जिस प्रकार कोई पिता अपना व्यापार या खेती या कारखाने के लिये कर्जा लेता है , अपने बच्चों पर कोई बोझ नहीं डालना चाहता तो वह अच्छा पिता कहलाता है लेकिन अगर कोई पिता अपने चालू खर्चे के लिये कर्जा लेता है और अपने बेटे और पोतों पर बोझ डालता है तो वह कलंकी कहलाता है । उसी प्रकार यह सरकार कलंकी रही है क्योंकि उसने आजकल के पांच-दस वर्ष के बच्चों पर जबर्दस्त बोझ डाला है । अपने चालू खर्चों के लिये , चालू पेट भरने के लिये भी और महल बनाने के लिये भी ।[1]

लोहिया जी का विचार था कि खर्च पर सीमा लगाने के साथ-साथ आमदनी की जांच करने के लिये लोकसेवा आयोग की स्थापना की जाये जिससे जो भी गलत तरीके से मिल्कियत इकट्ठी करता है , उसकी मिल्कियत जब्त कर ली जाये । इससे भारत की जनता हमेशा के लिये यह समझ सके कि अब घूस का जमाना गया और दूसरा जमाना आ रहा है । उन्होंने शासकों की ऐयाशी को कम करने और चालू खर्चों को कम करने के लिये लोकसभा में खर्च-सीमा लगाओ और मुझे यह कहना है कि पहली बार गैर-कांग्रेस सरकार अब जिसकी भी बने जो पहले बनेगी उसका फर्ज होगा कि हर एक के खर्चे के ऊपर सीमा बांध दे, खर्चे और आमदनी पर ताकि खेती में सुधार किया जा सके और इसके साथ-साथ दूसरा काम है , एक जांच कमीशन बिठाये । ये जांच कमीशन

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - लोकसभा में लोहिया ,भाग-१०,पृष्ठ-१४२

नाजायज तरीके से इकट्ठा की गई मिल्कियत की जांच करेगा ।[१]

लोहिया जी का विचार था कि देश में जब तक अभाव ,तंगी व कमी है तब तक हम जनता से नहीं कह सकते कि वह तकलीफ उठाकर देश को बनाये । उन्होंने कहा - जो लोग इस देश का निर्माण करने वाले हैं, कानून बनाने वाले हैं , सरकार को चलाने वाले हैं , यदि वे विलासिता में रहते हैं, ठाठबाट में रहते हैं उनके मोह में यह शक्ति नहीं है कि वह जनता से कह सके कि तुम मन लगाकर और पेट काट कर के देश का निर्माण करो ।[२]

वे विदेशी पैसे से उत्पादन के विरुद्ध थे क्योंकि इससे देश में आत्म-निर्भरता की भावना के स्थान पर आत्मसमर्पण की भावना विकसित होती है । उनका विचार था कि हिन्दुस्तान की राजनीति को विदेशी पैसे की मदद ने बिगाड़ दिया है। भारतीय समाज में जिस प्रकार से जातिभेद और धर्मभेद की विषमतायें हैं, उसी प्रकार आर्थिक विषमता भी विद्यमान है । इन विषम-ताओं ने देश व समाज को दो वर्गों में विभाजित कर दिया है । वर्ग निर्माण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका आर्थिक विषमता की है । डा०राजेन्द्र मोहन भटनागर के अनुसार - लोहिया जी की अवधारणा थी कि सारे संसार में छोटे और बड़े आदमी के बीच अन्तर है । लेकिन यह अन्तर भारत में मारक है। गोरे देशों में चाहे पूंजीवादी अथवा समाजवादी हों , लोगों की आय में दो, पांच , सात गुने का अन्तर होगा । यह अन्तर भारत में पचास, सौ, तीन सौ गुने का साधारण तौर पर होता है । परिणाम है कि एक तरफ भोजन और कपड़ा नहीं है और दूसरी ओर आधुनिकता और शौकीनता का सदा बढ़ता परिहास है ।[३]

लोहिया जी के खर्च सीमा सम्बन्धी विचार की अनेक विद्वानों ने आलोचना की है । इस सीमा बंदी से व्यक्ति कामना रहित हो जाता है।

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया, लोकसभा में लोहिया ,भाग-७ ,पृष्ठ-१४२-४३
२- डा०राममनोहर लोहिया, खर्च पर सीमा, पृष्ठ-६
३- डा०राजेन्द्र मोहन भटनागर, समग्र लोहिया,पृष्ठ-१९६

इससे उत्पादकों को उत्पादन बढ़ाने की प्रेरणा नहीं मिलती है । इस कारण उससे सम्पत्ति या पूंजी निर्माण अवरुद्ध होने की सम्भावना रहती है । एक और अभाव इस सीमा बंदी में दिखाई देता है वह है और व्यापारी व कर के धन में वृद्धि ।

लोहिया जी के खर्च पर सीमा सम्बन्धी विचार में कुछ कमी होने के बावजूद भी भारतीय परिस्थिति के अनुकूल उनका यह विचार है क्योंकि हमारे देश में एक ओर जहाँ भुखमरी है, वहीं दूसरी ओर शानशौकत है । जब तक इस स्थिति में सुधार नहीं होगा तब तक देश की प्रगति असम्भव है । लोहिया जी खर्च पर सीमा सम्बन्धी विचारों के आधार पर उच्च वर्गीय विलासिता को नियंत्रित करना चाहते थे जिससे देश में प्रत्येक व्यक्ति को खाना, कपड़ा, निवास व शिक्षा मिल सके और वह अच्छी जिंदगी बसर कर सके । व्यक्ति को खर्च करने से इस प्रकार रोका जाये, जिससे वह स्थिति को समझ सके अन्यथा स्थिति विपरीत भी हो सकती है, इससे व्यक्ति अत्यधिक उत्पादन करना बंद कर सकता है ।

लोहिया जी ने सिर्फ फिजूलखर्ची व विलासिता के खर्चों पर रोक लगाई है, न कि आवश्यक आवश्यकताओं पर खर्च करने से रोका है । धनिकों के विलासितापूर्ण खर्चों पर रोक लगाकर ही धनी व निर्धन के बीच की खाई को समाप्त किया जा सकता है । चूंकि हमारा देश प्रगति की प्रारम्भिक अवस्था में है, इसलिये आवश्यक है कि धन की बचत करके देश का उत्पादन बढ़ाया जाये जिससे सभी व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त हो सके और देश की आर्थिक प्रगति हो सके । आर्थिक प्रगति होने पर ही देश राजनीतिक दृष्टि से शक्तिशाली होगा ।

६) <u>सांस्कृतिक विकास -</u>

लोहिया जी ने सांस्कृतिक विकास के लिये देश की सांस्कृतिक एकता बहुत बल दिया। संस्कृति का विकास हर जगह किसी न किसी रूप में अवश्य हुआ है । भारत एक विशाल देश है, इसके विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न संस्कृतियाँ

विकसित हुई पर मूलरूप से सारे हिन्दुस्तान की संस्कृति एक है । लोहिया जी ने कहा - उड़ीसा एक ऐसे संगम स्थान पर है , जहाँ एक ओर कोणार्क है और दूसरी ओर एलोरा । भारत में पाँच महान सांस्कृतिक केन्द्र हैं , जिनमें एलोरा कोणार्क और खजुराहो के मन्दिर जमना के दक्षिण में है । जमुना के दक्षिण में ही कला विकसित हुई है , उत्तर में नहीं । गंगा और यमुना का पानी बड़ा विशाल है । वहाँ महाकाल की चलती है , मनुष्य की कुछ नहीं चल पाती ।[१]

आंध्र की संस्कृति की विशेषता बताते हुए लोहिया जी ने लिखा है- आत्मोत्सर्ग , उदारता, त्याग और उत्साह आंध्र संस्कृति की विशेषता है । ऊँचे आदर्शों के लिये बड़ा उत्साह रहता है और प्राण तक देने की तत्परता रहती है पर टिकाऊ नहीं रह पाता । मैं इसे समीक्षा के तौर पर कह रहा हूं, प्राणाहुति की तात्कालिक भूमिका अधिक दिनों तक नहीं रहती । राजनीति और सामाजिक कार्यों में अक्सर यह देखने में आता है ।[२]

वे मानते थे कि सारा भारत सांस्कृतिक दृष्टि से एक है लेकिन जो लोग जिस सांस्कृतिक एकता को नहीं समझते हैं , वह अपने में से ही आपस में सम्बन्ध विच्छेद करने की कोशिश करते हैं । उदाहरण के लिये नागा भारत के स्वतंत्र नागरिक हैं। भारत सरकार ने उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया । भारत सरकार ने नागाओं के साथ सैनिक सम्बन्ध कायम किये । फौजी पल्टन में नागाओं के साथ मस्त हाथी जैसा व्यवहार किया , यह व्यवहार अंग्रेजों जैसा ही क्रूर था । इन फौजियों ने उनकी औरतों के साथ बलात्कार जैसे हीन कार्य भी किये । फौज के ऐसे भ्रष्ट कर्मों के कारण नागाओं में विद्रोह की भावना का विकास हुआ । बाद में गुस्से में आकर वे स्वतंत्र देश की मांग करने लगे । हो सकता है इसमें नागाओं की भी गलती हो पर असली जिम्मेवारी भारत सरकार और सैन्य नीति की है । नागाओं के साथ भारत का सांस्कृतिक भेद नहीं है ।

लोहिया जी ने कहा - जो लोग देश की एकता की सांस्कृतिक बुनियाद

१- डा०राममनोहर लोहिया- मर्यादित,उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व और रामायण मेला, पृष्ठ-२३

२- वही पृष्ठ-२३-२४

को नहीं समझते, वे युद्ध की बात करते हैं। वका तौर पर ऐसे कुछ लक्षण भी दिखाई दे रहे हैं। देश के पूर्वी भाग में नागाओं की समस्या है। उनकी संख्या लगभग ५ लाख की है। वे चार साल से भारतीय फौज को फँसाये हुए हैं। इसके कारण वहाँ की पर्वतमालाएँ अथवा सांस्कृतिक भेद नहीं है। भारत सरकार द्वारा बरती गई नीति के कारण ऐसा हुआ है। हमें यह न भूलना चाहिये कि नागा भी स्वतंत्र भारत के नागरिक हैं।

लोहिया जी का विचार था कि नागाओं के समान ही द्रविड़-कझगम के बारे में अखबारों ने गलतफहमियाँ पैदा की हैं। जब तक यह गलत-फहमियाँ हैं, तब तक देश की एकता को खतरा है। उन्होंने कहा - प्रधानमंत्री श्री नायकर को देश निकाले की और न जाने क्या क्या धमकी दे डालो मगर यह सब तो सामयिक ग्रहण है। हिन्दुस्तान जब भारत के नकली और झूठे झगड़ों से पार हो जायेगा तो कलाकृतियों के देश से और भी अच्छे नतीजे निकलेंगे। देश की सांस्कृतिक एकता पर भी अच्छा प्रभाव पड़ेगा।[१]

लोहिया जी मानते थे कि पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में आकर भारत के लोग अपनी संस्कृति भूलते जा रहे हैं और विदेशी भाषा, वेशभूषा, भवन और आचार-विचार अपनाते जा रहे हैं। हमारी सरकार भी यूरोपी ढंग के बड़े-बड़े होटल और वायु अनुकूलित इमारतें बनाकर सामंती मनोवृत्ति का परिचय दे रही है। विदेशों की नकल यदि हम अपनी भिन्न परिस्थितियों में करेंगे तो निश्चय ही उसके नतीजे खराब निकलेंगे। लोहिया जी के अनुसार सामंती और लोक का यह अंतर अपनी संस्कृति में इतना गहरा है कि सांप के विष की तरह फैल रहा है। अपना देश और देशों के मुकाबले में दुर्बल क्यों है? इसका कारण है फर्क पैदा हो गया है आप इस पर विचार करें, अच्छा हो।[२]

लोहिया जी मानते थे कि हम भारत की संस्कृति दूसरे देशों से नीची नहीं बल्कि महान रही है। भारत की जो प्राचीन कलाकृतियाँ हैं, वे उसकी

१- डॉ० राममनोहर लोहिया- कर्मनिष्ठ, उन्मुक्त और अलौकिक व्यक्तित्व और रामायण मेला, पृष्ठ-२४-२५

२- वही पृष्ठ-२५

महानता का परिचय हमेशा देती रहेंगी । हिन्दुस्तान को अपनी संस्कृति पर गर्व करना चाहिये । उन्होंने कहा - कहने को मैं उत्तर भारत में पैदा हुआ हूं, पर मेरा दिल दक्षिण में है विशेषकर तामिलनाडु मे । आगरा, दिल्ली और सीकरी को स्थापित हुए चार सौ या पांच सौ साल हुए लेकिन कोणार्क, एलोरा और खजुराहो २२०० सेलेकर. ८०० साल तक पुराने हैं , वे आगे हजारों साल तक रहेंगे । मेरा विश्वास है कि प्राणाहुति की शक्ति और उत्साह हिन्दुस्तान के चरित्र में स्थायित्व ले आयेंगे ।[१]

लोहिया जी एक राजनीतिज्ञ थे लेकिन वह भारतीय संस्कृति से भी जुड़े हुए थे । उन्होंने चित्रकूट में रामायण मेले को बहुत महत्व दिया है क्योंकि इसी मेले के माध्यम से वे देश को सांस्कृतिक प्रगति करना चाहते थे । वे रामायण मेले से राजनीति को दूर रखकर सांस्कृतिक चेतना से भारतीयों को जोड़ना चाहते थे , जिससे उत्तर दक्षिण का प्रश्न खत्म हो जाये , वे राजनीतिक शक्तियों को केन्द्र बनाने के पक्ष में नहीं थे ।

कुंभ सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है लेकिन लोहिया जी ने कुंभ के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत नहीं किये , चार धाम भी सांस्कृतिक एकता के केन्द्र हैं इस पर भी लोहिया जी ने अपने विचार व्यक्त नहीं किये । यही कारण था कि इस मेले की कड़ी आलोचना हुई और वह अपने मंतव्य में फलीभूत न हो सका । आशा है कि भविष्य में उसका स्वरूप परिवर्तित होगा और रामायण मेला संस्कृति के पुनरुद्धार में सफल होगा ।

लोहिया जी की सांस्कृतिक चेतना बहुत गहरी थी , वे भारत की वस्तुकला और मूर्तिकला आदि की बहुत प्रशंसा करते थे । वे सारनाथ , रामेश्वर , कोणार्क, अजंता और एलोरा की मूर्तिकला की बहुत प्रशंसा करते थे । उनका प्राचीन संस्कृति का ज्ञान अत्यन्त सूक्ष्म और व्यापक था । उनकी राजनैतिक चेतना संस्कृति विमुख नहीं थी ।

१- डा०राममनोहर लोहिया मर्यादित,उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व और रामायण मेला,पृष्ठ-२५

लोहिया जी ने रामायण मेले को सांस्कृतिक विकास और देश की एकता का साधन माना है। वे मानते थे कि राम और रामायण हमारे सांस्कृतिक जीवन के अभिन्न अंग हैं। रामकथा संसार व्यापी है इसलिये रामायण मेला विश्व मैत्री का एक प्रबल सांस्कृतिक आधार भी है। ये राष्ट्रीय एकता का अनुपम साधन है। वे रामायण मेले के आधार पर भारतीयों में सांस्कृतिक गौरव बढ़ाना चाहते थे, इससे भारतीयों में सांस्कृतिक चेतना जागृत होगी तभी वे राजनीतिक समस्याओं को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझा सकते हैं। शिवप्रताप सिंह के अनुसार - लोहिया का सांस्कृतिक मानस बहुत व्यापक और उदार था। उन्होंने निरंतर चौड़ा दिल और उदार मानस की बात की। वे मानते थे कि हमारे देश के प्राचीन महापुरूषों के किस्से चाहे वे राम के हों, उन्मुक्त कृष्ण के हों, असीमित शिव के हों, राष्ट्र की आत्मा को विराट और व्यापक बनाते हैं। ये देश के मानस की इच्छाओं और सपनों के साक्षी हैं।[१]

लोहिया जी मनुष्य को उदार प्रकृति का मानते थे। वे मनुष्य में उदारता व समझदारी इसलिये चाहते थे जिससे वह बेहतर सांस्कृतिक मनुष्य बन सके। शिवप्रताप सिंह ने लोहिया के विचारों को स्पष्ट करते हुए लिखा है - संस्कृति तथा कथित बड़े-बड़े लोगों के भीतर ही नहीं, सामान्य जन की आवश्यकता में प्रकट हुआ करती है। उन्होंने मामूली हिन्दुस्तानी के भीतर उच्चता और समझदारी की ओर बराबर ध्यान आकृष्ट कराया। उनके भाषणों और लेखों में अनेक प्रसंग और उदाहरण मिलेंगे।[२]

लोहिया जी का विचार था कि राजनीतिक प्रगति सांस्कृतिक विकास होने पर ही सम्भव है। उन्होंने देश की सांस्कृतिक एकता पर बल दिया और भारत की प्राचीन मूर्तिकला, वस्तुकला और पुरातत्व वस्तुओं और स्थानों की महत्ता बतलाई इससे उन्होंने भारतीयों के सोये हुए सांस्कृतिक

- -

१- शिवप्रताप सिंह - 'लोहिया का सांस्कृतिक मानस' लोहिया : बहुआयामी व्यक्तित्व, पृष्ठ-५६

२- वही पृष्ठ-५७

गौरव का भान कराया और उन्हें आगे बढ़ने के लिये प्रेरित किया। सच यह है कि लोहिया जी ने भारतीय संस्कृति के विकास पर जोर दिया लेकिन अपने दल के प्रति ही अपार निष्ठा रखी जैसे उन्होंने नागा और आसाम जातियों पर सरकार द्वारा हुए अत्याचार का जो रूप प्रस्तुत किया वह सत्य प्रतीत नहीं होता है क्योंकि सरकार का ध्यान क्षेत्रीयता की समस्या की ओर भी है। सरकार ने नागा, आसाम, द्रविड़ संघर्षों को समाप्त किया और वर्तमान समय में भी अकाली दल द्वारा हुए संघर्ष को समाप्त करने का प्रयत्न कर रही है और खालिस्तान बनाने की माँग का विरोध कर रही है।

लोहिया जी देश का सांस्कृतिक विकास करके उसकी राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करना चाहते थे। वे समस्त भारत को सांस्कृतिक दृष्टि से एक मानते थे। हमारी सरकार को भी विभिन्न संस्कृतियों के मध्य के भेदभाव को त्याग कर देश की एकता को बनाये रखने का प्रयास करना चाहिये।

लोहिया जी एक कुशल राजनीतिज्ञ थे। उनका विचार था कि राजनीतिज्ञ को चरित्रवान होना चाहिये और राजनीतिज्ञों का उद्देश्य सत्ता के मोह को त्यागकर जन-कल्याण होना चाहिये। लोहिया जी देश को आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न और सांस्कृतिक दृष्टि से विकसित करना चाहते थे जिससे देश पुनः अपने गौरव के प्रति जागृत हो सके। वे देश की आय को बढ़ाकर उसे समृद्ध करना चाहते थे। उन्होंने देश के स्वतंत्र होने के पहले एक कुशल सेनानी के रूप में देश की सेवा की और स्वतंत्र होने के बाद वे देश की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक प्रगति के सपने देखने लगे। उन्होंने स्वयं अपने स्वार्थसिद्ध के लिये कभी कार्य नहीं किया बल्कि अपना सम्पूर्ण जीवन देश की सेवा में अर्पित कर दिया।

-: ० :-

अध्याय ८

एशियायी राजनीति

-: अष्टम् अध्याय :-

एशियायी राजनीति

एशिया पूर्व में प्रशांत महासागर से पश्चिम में हिन्द महासागर के मध्य बसा हुआ विश्व का सबसे बड़ा महाद्वीप है। दुनिया की आधी से अधिक जनसंख्या इस महाद्वीप पर निवास करती है। सभी प्रकार के धर्मों और सभी संस्कृतियों तथा भाषाओं का महाद्वीप घर है। इस महाद्वीप पर विभिन्न प्रकार के खनिज, भौगोलिक स्थिति एवं जलवायु पायी जाती है परन्तु इन सब विभिन्नताओं के होते हुए भी इस महाद्वीप में एक चीज समान है आर्थिक, भौतिक और तकनीकी विकास की अवस्था अठारहवीं व उन्नीसवीं शताब्दियों में जब यूरोप तथाकथित औद्योगिक क्रांति के प्रभाव से मध्यकालीन अवस्था त्यागकर आधुनिक अवस्था में पहुँच रहा था तो ऐसे समय एशिया ने अपनी अर्थव्यवस्था, संस्कृति एवं राजनैतिक संगठन सम्बन्धी प्राचीन प्रथाओं को परित्याग करने से इन्कार कर दिया। इसका स्वाभाविक परिणाम यह निकला कि यूरोप प्रगति करता चला गया और एशिया पिछड़ता गया। इतना ही नहीं पश्चिम ने यूरोप को पराजित करके उसके स्वतंत्र अस्तित्व को धीसनाप्य कर दिया। शनैः शनैः जापान, थाइलैण्ड, ईरान, नेपाल और चीन को छोड़ कर लगभग सम्पूर्ण एशिया पाश्चात्य राष्ट्रों के अस्तित्व में आ गया। अंग्रेज भारत, बर्मा, श्रीलंका, मलाया, सिंगापुर और हांगकांग में जम गये। फ्रांसीसियों ने हिंद चीन पर डेरा जमा लिया। डचों ने ईस्ट-इंडीज में पैर रोप दिया। रूसियों ने चीन के आमूर प्रांत सहित साइबेरिया या बाह्य मंगोलिया में और स्पैनिश लोगों ने फिलीपाइन्स में अपने अड्डे जमा लिये। यहाँ तक कि पुर्तगाल जैसे छोटे से राज्य ने भी अपने उपनिवेश कायम कर लिये। वे देश भी प्रकट रूप में स्वतंत्र थे व्यावहारिक दृष्टि से विदेशी राष्ट्रों के आर्थिक और राजनैतिक प्रभाव से मुक्त रह सके। पश्चिमी एशिया अथवा मध्य पूर्व के राष्ट्र जो प्रथम विश्वयुद्ध से पहले ' ओटोमन साम्राज्य ' के अधीन थे, १९१९ के पेरिस शांति सम्मेलन द्वारा अन्वेषित एक नवीन व्यवस्था पद्धति के अन्तर्गत

अब यूरोप के शोषक शासकों के नियंत्रण में आ गये । केवल जापान ही एक ऐसा राष्ट्र रहा जिसने पाश्चात्य अधिनायकवाद से पूर्ण शिक्षा लेते हुए स्वयं को औद्योगीकृत किया, अपने पिछड़ेपन के सभी चिन्हों को मिटाया और शेष - एशियायी राष्ट्रों के दुर्भाग्य से अपने आप को बचाने में सफल हो गया । यही नहीं वह कालान्तर में औद्योगिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में पश्चिम का एक और प्रतिद्वन्दी सिद्ध हुआ ।

वास्तव में यह कहना सर्वथा उपयुक्त होगा कि १९१९ के बाद एशिया और अफ्रीका के महाद्वीपों में साम्राज्यवाद की पराजय आरम्भ हुई और १९४५ के बाद इसका समूलोन्मूलन होने लगा । आज एशिया के अधिकांश भूभाग स्वतंत्र वातावरण में सांस ले रहे हैं । वर्तमान समय में एशिया यूरोपीय देशों के समान अपनी प्रगति का प्रयास कर रहा है ।

१) ऐशियायी देशों की आन्तरिक स्थिति -

लोहिया जी ऐशियायी देशों की दशा देखकर बहुत चिंतित थे । वे इन देशों की प्रगति करना चाहते थे । उन्होंने ऐशियायी देशों की आन्तरिक स्थिति का वर्णन निम्नप्रकार से किया है :-

१- धर्म, जाति, प्रजाति या भाषायी वादों पर आधारित राजनीति.
२- दमन और आतंक के द्वारा शासन की प्राप्ति तथा हत्या और सशस्त्र विद्रोह की विरोधी राजनीति.
३- राजनीतिज्ञों और प्रशासकीय कर्मचारियों के नये मध्यम वर्ग का उदय, जिसकी आदतें यूरोप वालों की तरह खर्चीली हैं ।
४- लुभावने और लच्छेदार नारों और मुहावरों का प्रयोग करने वाले राजनेता जिसकी कथनी व करनी में अन्तर है ।
५- सामाजिक दर्शन का और सर्वमान्य नीति और कार्यक्रमों का अभाव.

लोहिया जी का विचार था कि एशिया की सबसे बड़ी कमजोरी है कि वहाँ धर्म या जाति , भाषा की नीति का सिद्धांत विद्यमान है । सभी राष्ट्र इस कमजोरी को जानते हैं । ये कमजोरी भारत में ही नहीं समस्त एशिया में फैली हुई है । उन्होंने कहा - इण्डोनेशिया जैसे देश में जिसे हाल में ही स्वतंत्रता प्राप्त हुई है , धर्मनीति का शिकार है । एक मुस्लिम साम्प्रदायिक दल जिसका नाम दारुल इस्लाम है , विद्रोह कर उठा है जिसने इण्डोनेशिया के खिलाफ हथियार उठा लिये हैं । परन्तु इण्डोनेशिया की सरकार आजकल दूसरी मुस्लिम पार्टी मास्यूमी की सहायता से ही चल रही है ।[1]

लोहिया जी का विचार था कि इन दोनों मुस्लिम पार्टियों के बीच सिर्फ थोड़ा ही निर्धारित मतभेद है । एक पार्टी जो उत्तेजक है और हथियारों के साथ विद्रोह पर उतारू है , वहीं दूसरी पार्टी थोड़ी शांतिप्रिय है और सरकार में है लेकिन दोनों ही पार्टियाँ मुस्लिम राज्य बनाने का वकालत कर रही है । उत्तर में मलाया भी इस बात का उदाहरण है कि क्या हो सकता है और नहीं हो सका है क्योंकि एशियायी जनता अब भी भाषा ,प्रजाति और धर्म की राजनीति से अभिप्रेरित है । सिंगापुर एक महासागर है और इसका पोषण क्षेत्र भी वहाँ है । यहाँ हिंद और प्रशांत महासागर मिलते हैं। मलाया में प्राचीन भारत , इण्डोनेशियाई और चीन व्यक्तियों ने संघर्ष किया, एक दूसरे से प्रेम किया है और इस प्रकार वर्तमान मलाया का उदय हुआ है पर मलाया की वर्तमान स्थिति क्या है ?

लोहिया जी ने कहा - वहाँ ढाई लाख मलेशियायी , दो लाख से कुछ अधिक चीनी और आधे लाख से अधिक कुछ भारतीय रहते हैं । कुछ यूरोप वाले भी पहुँचे हैं और इस तरह से अगर मलाया चाहे एक नये सुखी व्यक्ति को जन्म दे सकता है पर प्रजाति , धर्म और भाषा की राजनीति उन्हें विभाजित किये हुए है , उनमें अविश्वास पैदा किये हुए है जिसके कारण वे एक सबल राज-नीतिक दल के रूप में संगठित नहीं हो सकते हैं चूँकि मलाया गणतंत्र को वैसा

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - फ्रैगमेन्ट्स ऑफ ए वर्ल्ड माइन्ड,पृष्ठ-२३२

बनायें जिससे प्रत्येक नागरिक को समता मिल सके ।[1]

लोहिया जी का विचार था कि भारत के उत्तर में नेपाल है । अगर नेपाल के बुद्धिमान लोग गोरखा , नेपाल , तराई और विभिन्न सम्प्रदाय वादियों के बीच पैदा हुई रुकावटों को दूर कर सकें तो निश्चय ही नेपाल एक गौरवशाली उदाहरण प्रस्तुत कर सकता है । उन्होंने कहा - पश्चिम एशिया का पतन निरन्तर जारी है , इसका कारण धार्मिक राजनीति है । यही दशा लगभग पाकिस्तान , भारतवर्ष और लगभग सारे पश्चिमी एशिया की है । एशिया के बहुसंख्यक निवासियों के आर्थिक उत्थान और अधिक शांतिप्रिय तथा अच्छे पड़ोसी भावना की बात कभी महसूस ही नहीं की गई क्योंकि यह सभी विभिन्न गुटों में बटे हैं और एक दूसरे के प्रति अविश्वास रखकर हिंसात्मक रुख अपनाये हुए हैं ।[2]

उनका विचार था कि एशिया विशेषकर दक्षिणी एशिया को छोड़कर सारा विश्व इस धर्म , जाति और भाषा की उग्रवादी और जातिवादी विश्व से अपने को मुक्त कर चुका है ।

लोहिया जी ने माना कि एशिया की पुरानी दुर्बलता समन्वित विचार धारा का अभाव है , केवल पूंजीवादी और साम्यवादी दल एक दृष्टिकोण रखते हैं पर एशिया के लिये कोई महत्व नहीं रखते क्योंकि उनका कोई महत्वपूर्ण दल नहीं है और जो एशियायी राजनैतिक दल है उनका कोई राजनैतिक दृष्टिकोण नहीं है । अपने चिंतन और अभिव्यक्ति में पूंजीवाद से समाजवाद तक और वर्तमान जमींदारों और पूंजीपतियों के मध्य तितली से इधर-उधर जाते हैं । ऐसे ही दल जापान , बर्मा, कम्युनिस्ट देशों और पश्चिम एशिया को छोड़कर जिनका कि दृष्टिकोण निश्चय ही साम्यवादी है , अधिकांश एशिया पर नियंत्रण किये हुए है । उन्होंने कहा - एशियायी राजनेता समाजवाद की बात करते हैं और पूंजीवाद के कार्य करते हैं । उनके वाक्यांश उग्रवादी हैं और उनके कार्य अनुदार-वादी है । समेकित राजनीतियों और सामाजिक दर्शन के अभाव का उदाहरण

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-२८०

२- डा०राममनोहर लोहिया - फ्रेगमेन्ट्स ऑफ द वर्ल्ड माइन्ड,पृष्ठ-२३३

भारत और इण्डोनेशिया प्रमुख रूप में है । इण्डोनेशिया के राष्ट्रपति ने राजनीति के पांच स्तम्भ बतलाये हैं । भारतवासियों को यह जानकर कौतूहल होगा कि इण्डोनेशिया में इन्हें पंचशील कहा जाता है । यह प्रकट करता है कि ऐशिया के कुछ भागों में भाषा की कितनी भिन्नता है। राष्ट्रपति सुकर्णो ने इन्हें राष्ट्रवाद,अन्तरराष्ट्रवाद , सामाजिक न्याय, ईश्वरोपासना और प्रजातांत्रिक प्रतिनिधित्व का नाम दिया । राजनीति के अन्य तीन स्तम्भ अस्पष्ट और अर्थहीन हैं और अवसर के अनुसार उनकी भी व्याख्या की जा सकती है ।[१]

लोहिया जी का विचार था कि भारतीय उदाहरण भी उससे अच्छा नहीं है । स्वतंत्रता पाने के बाद वर्षों भारतीय प्रधानमंत्री तथा शासक दल ने भारतीय राज्य के सर्वोच्च आदर्शों की परिभाषा करने के पांच प्रयास किये - सहकारी राष्ट्रकुल से प्रारम्भ करते हुए वर्गहीन और जाति-विहीन समाजवाद -विहीन राज्य , लोक कल्याणकारी राज्य ऐसे शब्द दिये । ऐशिया के लिये यदृभाव्यम् नीति का समय नहीं है । उसके लिये एक व्यापक सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है इसके अभाव के कारण एशिया के किसी भी देश में उत्पादन नहीं बढ़ा है और यह स्पष्ट प्रमाण है कि उनके पास कोई समेकित नीतियां या दृष्टिकोण नहीं है । जनता इसकी चिंता नहीं करती । लोहिया जी ने कहा कि - वे स्वयं आराम से रहने और विलासिता में रहने , ऐसे राजनीतिज्ञों में जो सामाजिक सम्पर्क नहीं रखते और दूसरे जो इन सम्पर्कों का दुरुपयोग प्रभाव या धनसंग्रह के लिये करते हैं । स्त्री-पुरुषों में स्वतंत्र सामाजिक सम्बन्ध और चरित्र की असम्यता, वचन भंगता और वे कार्य जो दल या राज्य , धन का दुरुपयोग करने में पृथक नहीं है । यह निरपेक्ष रूप में भिन्न भिन्न स्तर हैं , इनके मध्य रेखा खींचना आवश्यक है । ऐशिया को संयत आचरण या कार्य के स्तर की संकल्पना पुनः ग्रहण करनी होगी ।[२]

१- डा०राममनोहर लोहिया-मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-२६१-२६२
२- वही पृष्ठ-२६३

लोहिया जी का विचार था कि एशियायी राजनीति की तीसरी दुर्बलता है कि एशियायी राजनीति दिखावे पर आधारित है । यह दुर्बलता एक ऐसे आदमी की दुर्बलता है जो वास्तव में छोटा आदमी है । बड़ा आदमी बड़ा चतुर है जो मंच पर बड़ी बड़ी बातें करता है , पर उसकी उपलब्धियां आंतरिक व बाह्य दोनों विषयों में रिक्त हैं । बड़ा आदमी ही एक अवसर पर लच्छेदार या लुभावने मुहावरे बनाना चाहता है , वह आदमी भीड़ में भी कूद सकता है और बगैर पुलिस अधिकारी के होते हुए भी अपना अधिकार जताता है। वह बड़ा आदमी भ्रष्टाचार को भाषणों में गालियां देता है और आचरण में भ्रष्टाचार से लिप्त रहता , वह बड़ा आदमी बार-बार इस्तीफे देता है और बार-बार अपनी आत्मप्रशंसा और आत्मसम्मान की बात करता है जिसकी जबान से पूंजीपतियों और जमींदारों को फटकार निकलती है । वही उन्हें जी भर के धन लाभ कमाने की छूट देता है । खान मजदूर या बन्दरगाहों पर काम करने वाले मजदूर कैसे उसकी लुभावनी बातों और व्यवहार को समझ सकते हैं । उन्होंने कहा - एशिया में लच्छेदार और लुभावनी बातें बनाने वालों की संख्या बढ़ रही है और बहुसंख्यक लोगों को उन पर निर्भर रहना पड़ रहा है । इन सारे नाटकों को मैं नापसंद नहीं करता हूँ । थोड़ा बहुत नाटक कुछ मौकों पर, रंगीन जीवन का करने से , अच्छी बातों के विकास में दिक्कतें करता है लेकिन कभी भी ड्रामे या नाटक को ही कार्य या जीवन का विकल्प नहीं बनाना चाहिये ।[१]

वे मानते थे कि ऐसी कार्य पद्धति और नाटक जिसकी आवश्यकता एक दूसरे की मदद करने के लिये हो , अपनाना चाहिये ताकि लोगों में निर्माण कार्य करने की क्षमता बढ़ावे लेकिन कार्य को एकदम भूलकर सिर्फ नाटक ही नाटक एशिया भर में चल रहा है जिससे सिर्फ ऊँची या हवाई बातें ही एशिया में है और उपलब्धि बिल्कुल नहीं ।

लोहिया जी का विचार था कि एशिया की चौथी दुर्बलता है कि

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया, फ्रेगमेन्ट्स आफ ए वर्ल्ड माइन्ड,पृष्ठ-२३६

मध्यम वर्ग में विलासिता की प्रवृत्तियों का विकास होना। उन्होंने कहा - उद्घाटनीय बात है कि जो व्यक्ति एशिया की विभिन्न सत्ताओं में आये हैं, वे अपना सामाजिक और आर्थिक महत्व यूरोपीय लोगों की तरह रहने में समझते हैं। जापान को छोड़कर एशिया में राजनीतिज्ञों और प्रशासनिक कर्मचारियों का जो वर्ग उत्पन्न हो रहा है, उसके स्वाद और आदतें बड़ी महँगी हैं और चूंकि इससे बहुत सी जटिलतायें उत्पन्न होती हैं इसलिये उसके परिणाम भयानक होते हैं।[1]

लोहिया जी का विचार था कि एशिया के बहुत देशों में स्वतंत्रता के बाद एक नया मध्यम वर्ग राजनेताओं, कूटनीतिज्ञों और अफसरों का जन्मा है। यह आदमी और औरत को चेतावनी है कि चाहे उन्हें स्वतंत्रता अपने क्रांतिकारी कार्यों से आई हो या विदेशी सहयोग या दबाव से, राजनेताओं या कूटनीतिज्ञों ने इसकी उपलब्धि का श्रेय अपने ऊपर लेकर अपना महत्व बढ़ाया है और यूरोपीय ढंग के मकानों और फर्नीचरों, कपड़े, खाना और आदतों को अपनाने लगे हैं। इस तरह से तब खर्चा अत्यधिक बढ़ जाता है। उनके अनुसार - यूरोपियन समुदाय बहुत कम खर्च में ही अपना ढांचा बनाते हैं लेकिन एशिया के राजनेता और कूटनीतिज्ञ जोकि यूरोपियन ढंग से ही रहना पसंद करते हैं, एशिया के लिये बहुत खर्चीला है। जापान ही एशिया में एक ऐसा देश है जहां कि राजनेता और कूटनीतिज्ञ दो, तीन या ज्यादा से ज्यादा चार कमरों वाले मकानों में रहने की कोशिश करते हैं।[2]

वे मानते थे कि जापानियों को छोड़कर सारे एशिया में राजनेताओं, कूटनीतिज्ञों के रूप में जन्मे मध्यम वर्ग जिनकी खर्चीली आदतें और महंगे स्वाद यूरोपियन हो गये हैं, ने ही सारी जटिलतायें पैदा की हैं। लोहिया जी समता में विश्वास करते थे। उनका कहना था कि - एक परीक्षा जो मैं एशिया के विकास के लिये निर्धारित करूँगा, वह होगी कि नौकरानी और मालकिन अपने देश और प्रान्त्य में समान दिखाई दें।[3]

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया-मार्क्स,गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-२६५
२- डा०राममनोहर लोहिया -फ्रेगमेन्ट्स ऑफ ए वर्ल्ड माइन्ड,पृष्ठ-२३६
३- डा०राममनोहर लोहिया -मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,पृष्ठ-२६५

उन्होंने एशिया की अति वृहद दुर्बलता, हत्या और आतंक को राजनीति को माना है । उनका विचार था कि किसी को नहीं मालूम कि उसे कब, कहां हत्या या कत्ल कर दिया जायेगा, कब किसकी सड़क पर खड़ी कार या जाती हुई कार जला दी जायेगी, कुछ विद्वेषी या विद्रोहीपार्टी या समुदाय कानून को अपने हाथ में ले लेता है और सरकार बदलने के लिये हथियार उठा लेता है । सारी एशिया में यही स्थिति बनी हुई है । लोहिया जी ने कहा - ४० या ५० वर्ष पहले पश्चिमी यूरोप और अमेरिका में कुछ ही खूनी संघर्ष और सरकारें बदलती हैं, जबकि एशिया के हर देश में लगभग ऐसे खूनी संघर्ष राजनीतिक कारणों या सेना के विद्रोह या सरकार के जरूरत से ज्यादा दबाने की प्रवृत्ति के कारण होता ही रहता है ।[१]

लोहिया जी के समय से वर्तमान समय में एशिया की राजनीति में हत्या और आतंक अधिक बढ़ गया है ।

२) एशियायी देशों की समस्यायें -

भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक भूमिकाओं, धार्मिक दृष्टिकोणों तथा राजनीतिक अनुभव वाले लोगों का महाद्वीप एशिया जब स्वतंत्रता की अंगड़ाइयां लेने लगा तो स्वाभाविक रूप से अनेक प्रकार की विघटनकारी शक्तियां सत्तारूढ़ स्वदेशी शासकों को चुनौती देने लगा । जाति वैमनस्य और शत्रुओं ने साम्प्रदायिकता व स्वार्थ लिप्सा ने, पूंजीवाद और साम्यवाद आदि ने अपना सिर उठाया। कुछ राज्यों में गृहयुद्ध हुए, कहीं साम्प्रदायिक दंगे और विद्रोह हुए तो कहीं भूख और निर्धनता से त्रस्त तथा पीड़ित जनता के प्रदर्शन हुए। राष्ट्रवादी नेताओं को जिन्होंने " विदेशी शैतानों " से लोहा लिया था, अब स्वदेशी शैतानों का सामना करना पड़ा । जब उन्होंने अपने इर्दगिर्द के विश्व पर दृष्टि डाली तो उन्हें एक दूसरे को पराजित करने पर तुले हुए दो " शक्ति-गुटों " का संघर्ष दिखाई दिया । यह संघर्ष एशिया-वासियों के लिये खतरनाक था, उनकी भयावह समस्याओं के समाधान के लिये प्रयास की आवश्यकता है ।

१- डा० राममनोहर लोहिया-फ्रैगमेन्ट्स आफ ए वर्ल्ड माइन्ड, पृष्ठ-२३८-३९

लोहिया जी ने ऐशियायी देशों की समस्याओं पर ध्यान दिया। उनका विचार था कि इस ऐशिया महाद्वीप का कोई भी देश तब तक अपना उत्थान और तरक्की नहीं कर सकता जब तक कि वहाँ आन्तरिक कलह और संघर्ष जारी है। राजनीतिज्ञ भी अपने स्वार्थ और लाभ के लिये देश को बर्बाद करने पर तुले है। उन्होंने कहा - बर्मा में एक पार्टी स्थापित हुई है जिसका विश्वास है कि करेनों का एक अलग राज्य होना चाहिये और इसी तरह बर्मा के कम्युनिस्ट जो अपने विचारों की व्यवस्था वाली ही सरकार चाहते हैं, में परस्पर हथियारों से संघर्ष हुआ है। बर्मा के करेन और कम्युनिस्टों के मध्य ३ वर्ष बर्मा जनतंत्र में हुआ है। इसी तरह दारुल इस्लाम ने इण्डोनेशिया गणतंत्र के खिलाफ हथियार उठाये हैं और उसके साथ ही कम्युनिस्टों ने भी इण्डोनेशिया गणतंत्र के खिलाफ हथियार उठा लिये। सारे ऐशिया में, संघर्ष राजनीति और सरकारों के द्वारा उत्पन्न भयावहता के कारण है।[1]

ऐशियायी देशों की अपेक्षा यूरोपीय देशों का विकास तीव्र गति से हो रहा है। लोहिया जी ने कहा कि - वास्तव में यूरोप, अमेरिका को देखते हुए किसी ऐशियायी देश के बारे में पहले स्थान या किसी स्थान की बात करना बेमतलब है।[2]

लोहिया जी मानते थे कि ऐशियायी देशों में अन्य समस्याओं के साथ-साथ आर्थिक समस्या गम्भीर है क्योंकि ऐशिया केदेशों की आर्थिक प्रगति यूरोप के देशों से बहुत पीछे है। यूरोप और ऐशिया के बीच आर्थिक असमानता की खाई बढ़ती ही जा रही है। लोहिया जी ने कहा - ऐशिया और यूरोप अमरीका के बीच खाई पहले ही बहुत बड़ी थी, बराबर बढ़ती जाती है। यूरोप-अमरीका में उत्पादकता ऐशिया की दस गुनी है और दिन-प्रति-दिन फर्क बढ़ता जाता है। यह बात हथियारों के मामले में भी सच है और भोजन के मामले में भी। दोनों ही मामलों में यूरोप अमेरिका की श्रेष्ठता में कोई शक नहीं।

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - फ्रेगमेन्ट्स आफ ए वर्ल्ड माइन्ड, पृष्ठ-२३६

२- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-८

३- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-६

लोहिया जी मानते थे कि चूंकि एशिया की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ नहीं है इसलिये विश्व की बड़ी-बड़ी शक्तियां इस क्षेत्र पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न कर रही हैं । उन्होंने कहा - बड़ी-बड़ी राजनीति ताकतें एशिया और विश्व में दखल कर रही हैं वे हैं पूंजी-वादी, विस्तारवादी, साम्यवादी और समाजवादी ताकतें ।[1]

वे मानते थे कि इन ताकतों के अलावा एशिया की स्वयं की राजनीति साम्प्रदायिक या जातिवाद पर आधारित है । इसके अतिरिक्त एशिया के बारे राजनीतिज्ञ उच्च आदर्श तो स्वतंत्रता और समानता के रखते हैं परन्तु उनका अंत यहाँ असमानता और परतंत्रता पर हो रहा है ।

लोहिया जी का विचार था कि दक्षिण और पश्चिमी एशिया में लगभग एक दर्जन से ऊपर मुल्क हैं जिनका धर्म आपस में भिन्न है और जो भाषायें एक दूसरे से मिलती हैं । उन्होंने कहा - यह विश्व का गरीबतम हिस्सा है और सबसे अधिक यहाँ धर्म के कारण झगड़े-फसाद होते हैं । आन्तरिक सुरक्षा और शक्ति इन देशों में अधिकतर धार्मिक भावना से निहित और नियंत्रित होती है जो कभी कभी एक दूसरे मर्म में बुराई पैदा करती है और आपसी सम्बन्धों में बाधा डालती है ।[2]

वास्तव में यह एशिया का दुर्भाग्य है कि आज एशियायी ऐक्य में काफी चौड़ी दरारें पड़ चुकी हैं । भारत और चीन संघर्ष के कगार पर खड़े हैं, पाकिस्तान भारत के विरुद्ध सम्भवत: भावी युद्ध की तैयारी में व्यस्त है, पाकिस्तान और अफगानिस्तान में पख्तुनिस्तान के प्रश्न को लेकर तीव्र मन-मुटाव है । साम्यवादी चीन और फारमोसा स्थित राष्ट्रवादी सरकार (चीन) में एक दूसरे के अस्तित्व को मिटाने की बलवती आकांक्षा पल्लवित हो रही है, अरब देश और इजराइल संघर्षपूर्ण तनाव की स्थिति में है, अरब राज्यों में स्वयं परस्पर स्पर्धा और विरोधी भावनायें विद्यमान है तथा इण्डोनेशिया एवं अन्य अनेक राष्ट्र चीन के प्रति घोर आक्रोश की स्थिति में है । इसके अतिरिक्त

- -

१- डा॰ राममनोहर लोहिया - फ्रैगमेन्ट्स आफ ए वर्ल्ड माइन्ड, पृष्ठ-२४०

२- वही पृष्ठ-२४२

आर्थिक विकास की समस्याओं के प्रति विचार शैली में मतभेद है और राजनीतिक व्यवस्थाओंमें अन्तर है। इस प्रकार ऐशिया में एक ही व संयोग की अपेक्षा मतभेद का क्षेत्र विस्तृत है। सम्पूर्ण महाद्वीप संसार भर में समस्या का एक केन्द्र बना हुआ है। आज अधिकांश ऐशियायी देश विभिन्न विचारधाराओं, प्रणालियों, गुटबंदियों आदि के शिकार बने हुए हैं और विश्व की महाशक्तियां उन्हें अपने हाथों का खिलौना बनाये हुए है। ऐशिया का क्षेत्र वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय युग में संघर्ष का एक प्रमुख केन्द्र बन गया है।

3) <u>ऐशियायी राजनीति की प्रांकनियता और उद्देश्य -</u>

आज ऐशिया राष्ट्रवाद की लहरोंसे व्याप्त है। ऐशिया के अधिकांश भूभाग स्वतंत्र वातावरण मेंसांस ले रहे हैं। पश्चिमी देशों की बराबरी करने कीबलवती भावना ऐशिया के राष्ट्रों में है। वे अपने को औद्योगिक एवं यांत्रिक दृष्टि से विकसित कर लेना चाहते हैं कि उनके औद्योगिक विकास के शिखर को प्राप्त पश्चिमी देशों के बीच कोई अन्तर न रह जाये। इस भावना को अधिक से अधिक तीव्र बनाने के लिये राष्ट्रवाद और भी अधिक समर्थ होता चला जा रहा है। शताब्दियों की दासता और सामंतवादी व्यवस्था के कुप्रभावों से झुकी हुई अपनी रीढ़ को पुनः खड़ा करके आज का ऐशिया अपना कायकल्प करने को कटिबद्ध है।

लोहिया जी का विचार था कि चूंकि ऐशिया आन्तरिक रूप से दुर्बल है इस कारण पहले ऐशिया की आन्तरिक स्थिति को सुदृढ़ करना होगा, तभी वह उन्नति कर सकता है। ऐशिया दुर्बलता से ग्रस्त है, वह व्यापकता से सोचने की स्थिति में नहीं है। इस तरह से यदि चलता रहा तो ऐशिया का भविष्य क्या होगा ? उसकी भावनायें इतनी गिर चुकी है कि भाषायी, धार्मिक, जातीय या सांस्कृतिक मतभेद से उत्पन्न प्रक्रियाओं के कारण उसका विकास असम्भव है। लोहिया जी ने कहा - सिर्फ तब ही जब कि ऐशिया का बहुसंख्यक समुदाय सोचने लगे कि चाहे कोई भी कार्य (बुरा) जिससे प्रगति या

अस्तित्व खतरे में पड़ने लगे उससे सहानुभूति या प्रोत्साहन नहीं दिया जाये तभी एशिया में राजनीतिक स्थिरता आ सकती है ।[१]

लोहिया जी का विचार था कि अगर सभी एशियायी देश इस तरह सोचना प्रारम्भ कर दें वे एक संकीर्ण राष्ट्रीय स्वार्थपरता और किसी भी विरोधि दल को असंतुष्ट नहीं करेंगे और दृढ़तापूर्वक सामना करने से इन्कार नहीं करेंगे । वे इस प्रकार की यदि विघटनकारी और विद्वेषी नीतियों को प्रोत्साहन हो नहीं देंगे जिससे वे अपना प्रभाव एशिया में कायम रख सकें । एशिया को बड़ी जरूरत है कि वह संयुक्त होकर अपने को धार्मिक, भाषायी आधारित नीतियों से मुक्त करे । उनका विचार था - एशियायी राजनीतिज्ञों को और राजनीतिक दलों को आपस में मेलजोल से रखना चाहिये जिससे व्यापक मनो मस्तिष्क हो सके जिससे कि उचित निर्णय और कार्य विघटनकारी शक्तियों का मुकाबला करने के लिये कर सके ।[२]

वे मानते थे कि एशिया के देशों की सरकारें और राजनीतिक दल यूरोप और अमरीका की विचारधारा अपनाने का प्रयत्न कर रहे हैं, इसका कारण वे अपनी प्रगति का मार्ग स्वयं बनाने में असमर्थ हैं । एशिया के देशों की सरकारें और राजनीतिक दलों को चाहिये कि वह रंग, धर्म, भाषा, जन्म आदि की द्वेषपूर्ण नीतियों से दूर रहें । इनका उद्देश्य मानवता का कल्याण करना होना चाहिये ।

लोहिया जी का विचार था कि एशियायी धार्मिक लोग साम्प्रदायिक हिंसा और उत्पातों में उलझ जाते हैं तो इस जघन्य अपराध का दाग एशिया के दूसरे दलों और बहुसंख्यकों को भी लगेगा और विशेष तौर पर समाजवादी पार्टी पर क्योंकि वे अपना ध्येय सही तरीके से कायम नहीं रख पाये । वे चाहते थे कि चाहे जैसे भी संघर्ष करना पड़े बुरी ताकतों में कोई समझौता नहीं करो उस धर्म के लिये जो निष्क्रिय है और जिसने गरीबी और अन्याय

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - फ्रैगमैन्ट्स ऑफ ए वर्ल्ड माइन्ड,पृष्ठ-२४०

२- वही पृष्ठ-२४२

का विरोध किया । ऐशिया के समाजवादियों को अभी सीखना है कि अगर वे अनन्त समय तक शांतिपूर्ण तरीके से अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने का इन्तजार करते हैं, तो निश्चय ही कोई दूसरी ताकत मंच पर आ जायेगी और सारे कार्यों का नियंत्रण अपने हाथों में ले लेगी । ऐशिया के पास अब अपने आप कार्यों के हो जाने के लिये अनन्त समय नहीं है, सिर्फ वैधानिक तरीकों पर ही निर्भर रहना और जो आजकल धार्मिक और प्रतिक्रियावादी साम्यवादियों के हाथों खेलने से घटित हो रहा है, साथ न देना । उन्होंने कहा - कम से कम उस समय तक जब तक ऐशिया भयावह गरीबी और पूंजीवादी सरकारों की शिकार है जो शासन को डरा धमका रहे हैं, ऐशिया के समाजवादियों को बुराई और अन्याय के विरुद्ध सिविल नाफरमानी (नागरिक अवज्ञा) करना चाहिये । निःसंदेह नागरिक अवज्ञा के बिना समाजवाद हो ही नहीं सकता ।[1]

लोहिया जी का विचार था कि ऐशिया को अपने आर्थिक उत्थान के लिये अधिक औजारों और मशीनों की जरूरत है, नये उद्योगों और व्यवसायों की आवश्यकता है, इसमें अभी खाली पड़ी भूमि को उपजाऊ बनाना है और पुरानी खेती की जमीनों को और अधिक उत्पादन के लिये उपजाऊ बनाना है लेकिन कोई भी योजना तेजी से औद्योगिक विस्तार के लिये या खेती का विस्तार और उन्नति के लिये, हमें पहले ऐशियायी अर्थव्यवस्था का ध्यान रखना है, जिसके पास लाखों गरीब व्यक्ति हैं और पुराने तौर-तरीके वाले यंत्र हैं । ऐशिया की आर्थिक प्रगति रूस और अमेरिका की आर्थिक प्रगति के आधार पर सम्भव नहीं है बल्कि उसकी प्रगति उसकी स्थिति को ध्यान में रखकर की जा सकती है । लोहिया जी ने कहा - इस जटिल समस्या का हल अमरीकी या रूसी तकनीक से सम्भव नहीं है लेकिन इसका हल किसी एकदम नई तकनीक के द्वारा सम्भव है जिसे ना तो पूंजीवादी या साम्यवादी ही सोच पाये हैं । इस तरह का विचार तो ऐशियायी समाजवादियों के पास है । जिन्होंने एक विचार बनाने का प्रयास किया है, जिसमें छोटी मशीनों और छोटे रोजगार हैं जिन्हें

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - फ्रॉगमेन्ट्स ऑफ ए वर्ल्ड माइन्ड, पृष्ठ-२४५

बिजली या डीजल से चलाया जाये । मेरा विश्वास नहीं है कि बड़ी कम्पनी मिलें उदाहरणार्थ ऐशिया की गरीबी दूर कर सकती हैं वरन् जैसे कि जापान में हुआ है , कुटीर पावरलूम जैसी व्यवस्था इस समस्या को हल करने में सहायक है।

लोहिया जी ने ऐशियायी राजनीति का मुख्य उद्देश्य ऐशियायी देशों का आर्थिक व राजनैतिक विकास करना बतलाया है । ऐशिया देशों को अपनी प्रगति के लिये पूंजीवादी व साम्यवादी देशों पर निर्भर नहीं रहना चाहिये। ऐशिया आर्थिक दृष्टि से कच्चे माल का प्रधान उत्पादक है , जिसकी औद्योगिक संसार में अत्यधिक मांग है । यदि ऐशिया के देश अपने कच्चे माल का सदुपयोग करके अपना उत्पादन बढ़ायें तो उनकी शीघ्र ही आर्थिक प्रगति हो सकती है । आर्थिक प्रगति होने से उनकी राजनीतिक स्थिति स्वत: ही सुदृढ़ हो जायेगी। ऐशियायी देशों को भाषायी , धार्मिक व जातीय विद्वेषों से दूर रहना चाहिये ।

४) ऐशियायी नीति के तत्व -

लोहिया जी का विचार था कि सारा ऐशिया विभिन्न प्रकार के तनावों से ग्रसित हो रहा है । जिसके कारण या तो युद्ध होंगे या पहले ही हो चुके हैं और सारे ऐशिया की विदेशी नीति इस प्रकार बनानी चाहिये जिससे कि प्रत्येक प्रकार के तनाव दूर हो सकें - :

१- इस प्रकार के तनाव,जिसमें विद्रोह प्रदर्शित प्रत्यक्षत: अटलांटिक या सोवियत समर्थक गुटों के कारण हुए हैं और जिन्होंने संघर्ष प्रारम्भ कर दिया है और जहाँ कोई शक्ति विद्यमान नहीं है । इसका प्रतिनिधित्व कोरिया और इण्डोचाइना कर सके । तीसरी शक्ति के हस्तक्षेप की सम्भावना को नजरंदाज नहीं करना चाहिये ।

२- तनाव जहाँ शत्रु पड़ोसी हो है या यौगिक कुछ अंश तक अटलांटिक और सोवियत समर्थक गुटों के नियंत्रण में है और जहाँ बर्ताव और आक्रामक नीतियों को प्रारम्भ हुआ है जैसा कि उदाहरणार्थ - भारत और पाकिस्तान, इजराइल और अरब जगत और पीकिंग चाइना और कुमिनटांग फारमोसा के

मध्य संघर्ष है । धार्मिक और साम्प्रदायी राजनीति को निकृष्ट करने वाली प्राथमिक नीति के अलावा , तत्काल उपाय आवश्यक है कि विद्यमान सीमा-बतियों को मान्यता दी जाये और परस्पर मान्य अनुबंध किये जाने के प्रयास हों ।

३- तनाव, जिसमें ऐशियायी लोग और सरकारें चुकी या रही एक या दूसरे शक्तिशाली लेमे द्वारा जैसा कि जापान में प्रदर्शित है । समूचा ऐशिया इस बात के लिये दोषी है कि ७ वर्ष संघर्ष होने के उपरान्त भी जापान के लिये कोई नीति निर्धारित नहीं कर सका और सिर्फ औपचारिक बहसों में उलझा रहा , सैन-फ्रांसिस्को सम्मेलन के बारे में और इस बात में कि कौन शांति संधि पर हस्ताक्षर करे । रचनात्मक कार्य को नजरंदाज करने की प्रवृत्ति और क्रिया आत्मघाती है । जापान उस खतरनाक लेमे से सम्बन्धित है जिसमें वे देश शामिल हैं जो पिछले युद्ध में हार चुके हैं और सारे ऐशिया को आगे ऐसी नीति निर्धारण करना आवश्यक है जिससे कि जापान के साथ शांति की सुरक्षा के प्रति विश्वास पैदा हो सके ।

४- तनाव , जो कि विदेशियों के निजी हितों के कारण सारे ऐशिया में विद्यमान है उदाहरणार्थ - ईरानियों की तेल सम्पदा ,पुर्तगालियों का गोआ में । सारे ऐशिया को एकजुट हो,पड़ोसियों सचित हो जाना चाहिये जिससे कि विदेशी ताकतों का सामना किया जा सके , लेकिन इसमें बड़ी सतर्कता और सावधानी की जरूरत है नहीं तो कोई भी पड़ोसी किसी भी समय अचानक अटलांटिक लेमे से निकल कर सोवियत लेमे में चला जाये या इसका उल्टा हो ।

५- तनाव , जो कि शारीरिक और मानसिक ऐशियायी दोनों की कमजोरी का कारण है जो किसी भी लेमे में शामिल नहीं है , अभी धीरे-धीरे सुलग रहे हैं जो इण्डोनेशिया से लेकर मिस्र की सीमा तक विद्यमान हैं । आदर्श और आर्थिक पुनरुत्थान के लिये संयुक्त प्रयासों के अलावा , परस्पर सहयोग करने वाले समझौतों के प्रति कार्य करना आवश्यक है । इस क्षेत्र को स्वयं अपना संयुक्त आदेश , आर्थिक सम्पन्नता और सैन्य सुरक्षा स्थापित करना

होगा । बिना आन्तरिक आर्थिक पुनरुत्थान के कोई भी एशियायी देश ऐसी संयुक्त एशियायी विदेश नीति में अपनी अग्रणी भूमिका के लिये योग्य नहीं हो सकता । लोहिया जी के अनुसार - एशिया में व्याप्त तनावों को दूर करने के लिये कहा कि एशियायी नीति के प्रमुख पांच सिद्धांत तनाव रहित, मैत्रीपूर्ण तटस्थता, विस्तारवादी ताकतों का निर्मूलन व परस्पर सहयोग के समझौते हैं जिससे कि एशिया में विद्यमान विभिन्न समस्यायें निपटायी जा सकती है । यह शांति की नीति है, साथ ही साथ स्वतंत्रता की नीति है और जिसका तत्कालीन तनाव पर प्रयोग किया जा सकता है जैसा कि जापान और उसकी शांति संधि द्वारा प्रदर्शित होता है ।[1]

लोहिया जी का विचार था कि सीमाओं के अस्तित्व को मान्यता के सन्दर्भ में और परस्पर सहमति के प्रयासों के सन्दर्भ में, समझदार परिपक्व एशियायी नीति यह होना चाहिये कि उन सारे झंझटों और विवादों को काबू करके दूर किया जाये जो पड़ोसियों का ज्यादतियों और विदेशियों के कारण पैदा हुए हैं । अरबों में इजराइल के प्रति विद्वेष भावना है, पार्किंग के चाइनीज, फारमोसाइ चाइनीज के साथ एक ही मेज पर बैठने में अपनी हेटी समझते हैं लेकिन दोनों कभी भी बेहतर सुझाव देंगे कि भारत और पाकिस्तान मित्रवत् रहें । एशिया के लोगों को एक दूसरे के प्रति महान हमदर्द और सहयोगी होना सीखना चाहिये । कोई भी परिस्थिति जो उनकी कमजोरी या साम्राज्यवादी धोखाधड़ी से पैदा हुई है, पछताने की अपेक्षा उन्हें उन राष्ट्रों को ढूंढना और अपनाना चाहिये जिससे कि परिस्थितियों पर काबू पाया जा सके ।

लोहिया जी ने कहा - साम्राज्यवादी धुनों पर और अधिक नाचने या षड्यंत्र पैदा करने की अपेक्षा उन्हें उन नीतियों को धारण करना चाहिये जिससे कि कठिन परिस्थितियां दूर हो सकें और असंतोष की जगह संतोषजनक वातावरण बन सके ।[2]

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - फ्रैगमेन्ट्स ऑफ ए वर्ल्ड माइन्ड, पृष्ठ-२४२

२- वही पृष्ठ-२४४

लोहिया जी का विचार था कि गैर कम्युनिस्ट एशिया अभी भी उस प्रवृत्ति का शिकार है जो यूरोप में पश्चिमी समाजवादियों की ओर देखते हैं। वे वास्तव में एशियायी प्रगतिवादियों में अच्छे साम्यवादी हैं लेकिन उनके स्वयं के स्थानीय झगड़े हैं। वचनबद्ध होकर काम में लाना, व्याकुल इच्छा के कारण जिससे कि यूरोप के तनाव में कमी एशियन समझौते से हो सके। युद्ध अमेरिका के साथ और शस्त्रों की होड़ एशिया के लोगों को अपने लिये स्वयं ही सोचना चाहिये। उन्हें अपना योगदान न केवल अपनी प्रगति के लिये करना है बल्कि विश्वशांति के लिये भी योगदान करना है। उन्होंने कहा - एशियायी नीति में एक विश्व चेतना की उपलब्धि के लिये भी स्थान होना चाहिये जिसमें सारी मानव जाति के लिये लगभग समानता का स्थान हो।[1]

उनका विचार था कि गुलामी और गरीबी विवादों की जड़ एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका और वास्तव में संसार के दो-तिहाई हिस्से में है। जागीरदारी, पूंजीवादी और सामंतवादी तरीके, खतरनाक शक्ति और साम्यवादी आकांक्षायें एशिया के रास्ते में रुकावटें हैं। उन्होंने कहा कि - एशिया को अपना पुनर्निर्माण स्वयं करना चाहिये। बिना अन्दरूनी बदलाव के अच्छी से अच्छी विदेश नीति किसी भी एशियन देश को अपने आप को निकम्मा सिद्ध कर देगी।[2]

लोहिया जी का विचार था कि आज एशिया पर दबाव है कि वह अटलांटिक गुट में जाये या सोवियत खेमे में। एशिया को अपनी पृथक नीति अपनानी होगी। उन्होंने कहा जहांतक सम्भव हो समझौता कराया जाये और तीसरी शक्ति का निर्माण किया जाये और अटलांटिक, सोवियत संघ के संघर्षों में भाग न लिया जाये।[3]

लोहिया जी का विचार था कि सह-अस्तित्व की भावना बराबरी के आधार पर होना चाहिये और प्रयोग में लाना चाहिये। अगर सह-अस्तित्व

१- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-३४५

२- डा०राममनोहर लोहिया - फ्रेगमेन्ट्स ऑफ ए वर्ल्ड माइन्ड, पृष्ठ-२५७

३- डा०राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-३०८

का सिद्धांत बराबरी के दर्जे पर भारत और पाकिस्तान के मध्य, चाइना और फारमोसा के मध्य अपनाया गया होता, ये बहुत अच्छा तरीका बन जाता जिससे कि सीमावर्ती शक्तियों और उनके पिछलग्गुओं को पहचानकर ऐसी कार्यवाही कर सकते थे कि अधिनायकवादी प्रभावों को कमजोर किया जाय ताकि लगभग बराबरी का दर्जा प्राप्त किया जा सके और किसी समय स्वतंत्र और जनतांत्रिक विचार लोगों और देशों को परस्पर मिला सके, जो कि कृत्रिमता के कारण पृथक है। ये बहुत से अच्छा ऐशिया के देशों के घावों पर मरहम लगा सकेगा। वास्तव में मानव जाति को शांति और स्वतंत्रता से जीना सीखना है।

डा० लोहिया ने ऐशिया की आन्तरिक स्थिति का वर्णन करते हुए कहा कि ये देश आर्थिक दृष्टि से बहुत दुर्बल है, अनेक भाषायें, जातीय और धार्मिक विभेद विद्यमान है। इस कारण ये देश यूरोप की भांति उन्नति नहीं कर पाये हैं। ऐशियायी देश आपस में सहयोग की अपेक्षा संघर्ष की स्थिति बनाये हुए हैं। लोहिया जी चाहते थे कि ऐशियायी राजनीति का उद्देश्य ऐशियायी देशों का आर्थिक व राजनैतिक उत्थान होना चाहिये। ये देश आपसी सहयोग से प्रगति कर सकते हैं। इन देशों को अटलांटिक गुट व सोवियत गुट से पृथक रखकर अपनी तटस्थतापूर्ण नीति अपनाना चाहिये। लोहिया जी ऐशियायी देशों की दयनीय स्थिति को देखकर बहुत चिंतित हुए इसलिये उन्होंने ऐशिया की प्रगति के लिये सदैव प्रयास किया। वे चाहते थे कि जापान की तरह ही ऐशिया के देशों को लघु उद्योगों को विकसित करके अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करनी चाहिये। वे यूरोप व अमेरिका की भांति ऐशिया का विकास करना चाहते थे।

-: o :-

अध्याय ९

भारतीय विदेश नीति

-: नवम् अध्याय :-

भारतीय विदेश नीति

यद्यपि भारत की स्वतंत्र विदेश नीति का श्रीगणेश तो १५ अगस्त १९४७ से ही माना जा सकता है, किन्तु इसकी आधारशिला देश के स्वाधीन हो जाने के बहुत पूर्व ही देश के कर्णधारों द्वारा रखी जा चुकी थी और इस नीति-निर्धारण पर तत्कालीन राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का व्यापक प्रभाव पड़ा था। उदाहरणार्थ - अणुबम का आविष्कार हो चुका था, शीत युद्ध का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा था तथा विश्व की शांति एवम् सुरक्षा के साथ-साथ उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया था। भावी युद्ध को टालने के लिये संयुक्त राष्ट्रसंघ का जन्म हो गया था। पश्चिमी और साम्यवादी दोनों ही पक्षों की गतिविधियां बड़ी तीव्रता के रूप में चल रही थी। एशिया और अफ्रीका महाद्वीप करवट बदल रहा था। वहां सदियों से विदेशी दासता की जंजीरें एक के बाद एक टूटना प्रारम्भ हो चुकी थी। अनेक कारणों से विश्व-राजनीति में एशिया महाद्वीप का महत्व बढ़ गया था। इन सभी अन्तर्राष्ट्रीय विकासों के साथ-साथ देश के आन्तरिक रूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये जा चुके थे। अनेक संवैधानिक एवम् राजनीतिक विकासों के साथ-साथ देश की अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में भी उल्लेखनीय क्रांतिकारी विकास हो रहे थे। इन्हीं आन्तरिक एवं बाह्य परिस्थितियों के सांचे में भारतीय राजनीतिज्ञों और नेताओं ने देश की विदेश नीति के रूप में ढाला। उन्होंने समझ लिया कि पूंजीवादी और साम्यवादी किसी भी गुट को अपनाने से भारत अपनी स्वतंत्रता की शैशवावस्था में ही सैनिक शिविर में परिणित हो जायेगा और नव-प्राप्त स्वाधीनता की रक्षा करने तथा भारत की करोड़ों जनता को आर्थिक गुलामी से मुक्ति दिलाने के भागीरथ प्रयासों को सफल बनाने के उद्देश्यों से वंचित हो जाने का खतरा पैदा हो जायेगा।

प्रारम्भ से ही भारतीय विदेश नीति का उद्देश्य रहा कि वैदेशिक सम्बन्धों के क्षेत्र में भारत एक स्वतंत्र नीति का अनुसरण करेगा और गुटों की

खींचतान से दूर रहतेहुए संसार के समस्त पराधीन देशों के आत्म निर्णय का अधिकार प्रदान करने तथा जाति-भेदभाव की नीति का दृढ़ता पूर्वक उन्मूलन करेगा । साथ ही वह संसार के अन्य स्वतंत्रता प्रेमी और शांतिप्रिय राष्ट्रों के साथ मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और सद्भावना के प्रसार के लिये भी निरन्तर प्रयत्नशील रहेगा ।

लोहिया जी ने सन् १९३६ में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस में विदेश-सचिव के पद पर कार्य करना आरम्भ किया था । यहां उन्होंने भारतीय विदेश नीति को करीब से देखा और उसमें अनेक दोष देखे । उन्होंने भारतीय विदेश नीति की सफलता के लिये कुछ सिद्धांतों का प्रतिपादन किया । उनका सुझाव था कि विदेश नीति ऐसी हो जिससे वाणिज्य सम्बन्धी एवं कर सम्बन्धी नीतियां भारत के लिये फायदे की हों , न कि ब्रिटेन के लिये । उन्होंने घोषणा की कि भारतीय सेना को भारतीयों का समर्थन प्राप्त नहीं है एवं हमें दूसरे देशों से राजनैतिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध बढ़ाने चाहिये । भारतीय सेना को सक्षम बनाने के लिये वे जनता को सैनिक प्रशिक्षण या अन्य शस्त्र प्रशिक्षण में प्रशिक्षित करना चाहते थे । लोहिया जी साम्राज्य विरोधी एवं राष्ट्रों के बीच समानता एवं स्वतंत्रता , युद्ध विरोधी एवं एक विश्व का सपना देखते थे ।

वे स्वतंत्र भारत की अपनी स्वतंत्र आदर्श विदेश नीति चाहते थे । उनका विचार था कि भारत को पूँजीवादी देशों या साम्यवादी देशों पर आश्रित नहीं होना चाहिये । वे तटस्थता की नीति के समर्थक थे । वे चाहते थे कि भारत विदेश नीति के मामले में किसी दूसरे देश पर आश्रित नहीं रहे । वे गरीब देशों की मदद करना अपनी विदेश नीति का लक्ष्य मानते थे । वे चाहते थे कि भारत को अपने विदेश नीति के सिद्धांतों को निश्चित कर लेना चाहिये और अपने राष्ट्र के साथ ही साथ दूसरे राष्ट्रों के हितों को ध्यान में रखकर कार्य करना चाहिये । उन्होंने भारतीय विदेश नीति के लक्ष्यों और साधनों के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं । :-

१) <u>विदेश नीति के लक्ष्य -</u>

लोहिया जी का विचार था कि उसी देश की विदेश नीति अच्छी

हो सकती है, जो कि सम्पन्न व समृद्ध है। जो देश अपना पेट नहीं भर पाता उसकी विदेश नीति हो ही नहीं सकती। इसके अतिरिक्त एक और बड़ा कारण है कि विदेश नीति बनाते वक्त साधन व नीति में संतुलन होना चाहिये। ऐसा न हो कि साधन तो हों चुहिया के बराबर नीति बना लो पहाड़ जैसी, वह भी खराब होगा।

उनका विचार था कि - रूस और अमेरिका के पास साधन बहुत ज्यादा हैं लेकिन इनकी दूसरे देश के सम्बन्ध में नीति स्वार्थ है क्योंकि ये देश गरीब व पिछड़े हुए देशों की मदद करके उनको अपने अधीन करना चाहते हैं। जबकि ये गरीब देश की मदद करके उनकी स्थिति सुधार सकते हैं। इसलिये वे मानते थे कि अच्छा राजनीतिज्ञ वही होगा जो साधन और नीति में सन्तुलन कायम कर सकेगा। उनका कहना था कि - जब तक किसी देश की विदेश नीति यथार्थ के ऊपर नहीं खड़ी रहती है, जब तक उसके अन्दर दुनिया की वस्तु-स्थिति की बातें नहीं रहती हैं तब तक उस विदेश नीति में मनमौजी आ जाती है, व्यक्तिवादिता आ जाती है और किसी तरह का उससे अच्छा नतीजा नहीं निकला करता।[1]

लोहिया जी का विचार था कि हिन्दुस्तान की विदेश नीति रूस और अमेरिका से प्रभावित रहती है। हमारे हिन्दुस्तान की विदेश नीति भयशून्य नहीं है। उसे रूस व अमेरिका जैसे शक्तिशाली देशों का भय बना रहता है इस कारण हमारी विदेश नीति सफल नहीं हो सकती। विदेश नीति के बारे में हमारा निश्चित सिद्धांत होना चाहिये। हमारे पास आर्थिक साधन नहीं है और सेना का अभाव है, इसके कारण हम अपनी विदेश नीति बनाने में असफल नहीं हो सकते। उन्होंने कहा कि - हमारे पास क्या नहीं है ६०करोड़ आदमी, महात्मा गांधी, पुराना देश यह सब हमारे हक में थे जिनके द्वारा हम अपनी विदेश नीति को सफल बना सकते थे, लेकिन सिद्धांत की कमी ने सबको खत्म कर डाला।[2]

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - लोकसभा में लोहिया भाग-२,पृष्ठ-८

२- डा०राममनोहर लोहिया -' विदेश नीति' लोहिया: बहुआयामी व्यक्तित्व, पृष्ठ-२८६

लोहिया जी देश की प्रगति के लिये निश्चित सिद्धांतों का निर्माण करना चाहते थे जिसके आधार पर विदेश नीति बनाई जा सके। उनका कहना था कि - हिन्दुस्तान में पिछले १५ वर्षों में सारे एशिया में एक दलदल बना रहा है। एशिया में वैसे भी दलदल है - गरीबी का दलदल, बुनियापरस्ती का दलदल, विचार का दलदल और सिद्धांत हीनता का दलदल। इस दलदल में हिन्दुस्तान ने सिद्धांत के खूंटे नहीं गाड़े इसलिये मेरी पहली कसौटी यह होगी कि हिन्दुस्तान को एशिया के दलदल में सिद्धांत के खूंटे तो गाड़ने ही चाहिये।[1]

लोहिया जी स्वतंत्र भारत के लिये तटस्थता की नीति अपनाना चाहते थे। वे देश को आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे। उनका विचार था कि- अपने देश की प्रगति के लिये आंग्ल, अमरीकी या सोवियत सहारा लेना उचित नहीं है। हमारा देश इन देशों के अलावा कुछ एशियायी सहारा लेना चाहता है। यह तो लूले की लकड़ी का सहारा लेना जैसा होगा। वे इन देशों का सहारा लेना एकदम बंद करना देश के हित के लिये आवश्यक मानते थे क्योंकि ये देश हमारे देश की तरह अविकसित हैं, इनसे हम दोस्ती कर सकते हैं। उन्होंने कहा - आंग्ल अमरीकी और सोवियत सहारे पर निर्भर रहना गलत है। हमारे देश में कुछ लोग आंग्ल अमरीकी सहारे पर निर्भर रहना चाहते हैं और कुछ सोवियत सहारे पर। मैं कहूंगा कि हमारी रणनीति व विदेश नीति में लोच होना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर हम किसी भी देश से सहायता ले सकते हैं। हमें अपने को किसी एक गुट में नहीं बांधना चाहिये।[2]

लोहिया जी मानते थे कि हिन्दुस्तान राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र हो गया है लेकिन वह आर्थिक दृष्टि से अभी भी परतंत्र है। वह दूसरे देशों पर आश्रित रहना चाहता है। जब तक हिन्दुस्तान दूसरे देशों की सहायता को स्वीकारता रहेगा, तब तक वह स्वावलंबी नहीं हो सकता और न ही विदेश नीति के मामले में अपनी स्वतंत्र राय रख सकता है। उनका कहना था- जब तक हिन्दुस्तान इस आश्रय से छुटकारा नहीं ले लेता, हथियार के मामले में,

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया -' विदेश नीति' लोहिया: बहुआयामी व्यक्तित्व, पृष्ठ-२८७

२- डा० राममनोहर लोहिया - लोकसभा में लोहिया भाग-३, पृष्ठ-१३०-३१

रूस के रोक चोट से और पंचवर्षीय योजना के मामले में अमरीका के डालर से , तब तक उसके लिये एक स्वतंत्र राय रखना प्राय: असम्भव है । उसका नतीजा यह हुआ कि हिन्दुस्तान की विदेश नीति भय के हिसाब से चली ।[1]

लोहिया जी का विचार था कि हमारे देश में विदेशनीति बिल्कुल निर्मोदा और निकम्मा की नीति नहीं है । उन्होंने कहा - निर्मोदा की नीति तब होगी जब देश विदेशी मसलों पर एक देश की तरह बोलता है । आज हम टूटे हुए हैं। मंत्रीमण्डल दो हिस्सों टूटा हुआ है । लोकसभा विदेशी मामलों में दो हिस्सों में टूटी हुई है । सारा देश टूटा हुआ है । मैं जानता हूं कि इतिहास में और कोई भी देश ऐसा रहा है , जो किसी विदेशी प्रश्न पर इतना टूटा है , जितना हिन्दुस्तान ।[2]

लोहिया जी का विचार था विदेश नीति के निर्धारण में सर्वोपरि स्थान राष्ट्रीय हित का है । राष्ट्रीय हित ही विदेश नीति की आधारशिला है। विदेश नीति का निर्धारण सिद्धांतों के आधार पर होना इतना आवश्यक नहीं है जितना कि राष्ट्रीय हितों के आधार पर । एक राष्ट्र को अपनी रक्षा के लिये सक्षम होना चाहिये । हमारा देश अपनी रक्षा नहीं कर सकता क्योंकि वह दूसरे देशों पर आश्रित रहता है । हमारे देश पर हमला हो तो हमें उसकी रक्षा करना चाहिये । वह इस सम्बन्ध में वे कहते हैं कि - कभी तो प्रधानमंत्री कहते हैं कि हम नाखून से लड़ेंगे, लाठी से लड़ेंगे फिर कहते हैं कि हथियार खरीद लेंगे । जब कोई डंडा जोर से पड़ता है तो कहते हैं कि हम उधार व दान के हथियार ले लेंगे और जोर की मार पड़ती है तो कहते हैं कि हवाई ताकत को शिक्षा के लिये सिपाही ले लेंगे । अगर और मामला जाता तो कहते हैं कि हम सिपाही भी ले लेंगे ।[3]

उनका विचार था कि यदि हम अपने देश की रक्षा के लिये दूसरे

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - विदेश नीति 'लोहिया:बहुआयामी व्यक्तित्व
पृष्ठ-२८५

२- डा०राममनोहर लोहिया- 'अविश्वास क्यों' लोहिया:बहुआयामी व्यक्तित्व
पृष्ठ-२४६

३- वही
पृष्ठ-२७२

देशों पर आश्रित रहेंगे तो अपना स्वयं की हमारी विदेश नीति हो ही नहीं सकती । अतः हम अपने देश को सशक्त बनाकर निरपेक्षता की नीति अपनानी होगी । उनका सुझाव था - हमारी विदेश नीति का लक्ष्य रंगीन दुनिया की मदद करना होना चाहिये । लेकिन हो सकता है कि इससे भी हमारा विदेश मंत्रालय डरे और सोचे कि ऐसा करने में अमरीका और रूस और दूसरे राष्ट्र और उनकी सरकारें नाराज हो जायेंगी ।[1]

लोहिया जी चाहते थे कि हमारी विदेशनीति का लक्ष्य सामंजस्य की भावना लाना होना चाहिये । उन्होंने कहा कि - हिन्दुस्तान की विदेश नीति का दिमाग अगर दिमाग है तो , और शरीर किधर रहे हैं । जीभ यानि वचन यह तो रूसी रहा है पिछले आठ-दस बरसों में लेकिन शरीर रहा है अंग्रेजी । व्यापार अंग्रेजों के साथ , मशीन अंग्रेजों का , जहाज पल्टन सब अंग्रेजों के समान सब अंग्रेजों के यहाँ से खरीदते रहे हैं और शरीर सब अंग्रेजों के साथ रहा है और दिमाग अगर दिमाग हो , तो वह रूसियों के साथ रहा है । यह चल नहीं पायेगा । कुछ थोड़ा सा सामंजस्य लाओ । जिधर दिमाग रखते हो उधर शरीर को भी थोड़ा बहुत रखो । यह करोगे तो मामला ठीक हो जायेगा ।[2]

वे मानते थे कि मौखिक रूप से भारत की विदेश नीति सोवियत सेमे के साथ रहा है लेकिन भौतिक रूप से अंग्रेजों के साथ रहा है व्यापार में और सभी चीजों में । अंग्रेजों के साथ जितने कम भौतिक सम्बन्ध रहें , उतना ही अच्छा है । वे चाहते थे कि अंग्रेजों से यह कह देना चाहिये कि हम राष्ट्र-कुल से अलग हो जायेंगे । अमेरिका और रूस वर्तमान समय में बहुत शक्तिशाली हो गये हैं अगर वह चाहें तो भारत , पाकिस्तान व चीन को एक घंटे में खत्म कर सकते हैं । राष्ट्रों की अपना स्वयं की ताकत नहीं है इसलिये लोहिया जी चाहते थे कि हिन्दुस्तान की विदेश नीति का लक्ष्य दो भाइयों की लड़ाई को समाप्त कर स्वयं की ताकत बढ़ाना चाहिये । उन्होंने कहा- जब दो भाइयों

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - " लोकसभा " जन० अगस्त ६६,पृष्ठ-३८

२- डा०राममनोहर लोहिया - लोकसभा में लोहिया भाग-४ पृष्ठ-४८

की बात लोग करते हैं कि तुम कैसे लड़ोगे पाकिस्तान से हो , चीन से भी । उस वक्त मुझे कहना है कि हिन्दुस्तान की विदेश नीति इस तरीके की होना चाहिये जिससे दो में से एक मोर्चा खत्म हो जाय वरना दो मोर्चों की लड़ाई में हिन्दुस्तान तबाह हो जायेगा ।[1]

लोहिया जी का विचार था कि सरकार को चीन व पाकिस्तान के सम्बन्ध में पहले किसी भी एक देश का मामला निश्चित कर लेना चाहिये, उसके बाद दूसरे देश का । उन्होंने कहा - दो मोर्चों पर लड़ाई की बात करना मेरी समझ में पैतरेबाजी की कमी है क्योंकि हिन्दुस्तान के नेतृत्वविहीन नेताओं ने सोचा होगा कि जैसे भी हो मामला ठीक ठाक रखेंगे । हम इतने कमअक्ल हैं कि एक साँप को बीन बजाकर ठीक रखेंगे , दूसरे को ठोक रखेंगे , सब साँपों व बिच्छुओं बीन बजाकर ठीक रखेंगे । इसी प्रकार प्रधानमंत्री के रहते-रहते शायद इनके जाने के बाद एक समय आयेगा जब यह सैकड़ों साँप व बिच्छू एक साथ हमारे मुल्क पर हमला करेंगे तब पता नहीं क्या होगा,तब इतिहास कहेगा कि विदेश नीति को कितना बिगाड़ कर रखा गया ।[2]

वे मानते थे कि हिन्दुस्तान व पाकिस्तान की सरकारें अपने देश की जनता को झूठी खबरों व प्रचार के द्वारा एकदूसरे के विरुद्ध भड़का देती हैं इससे लोगों का दिमाग बिगड़ता है । उन्होंने कहा कि - सूचना के बारे में भी कोई न कोई तरकीब निकाली जाये , जिससे दोनों जगहों पर सूचना इस ढंग से जाये जिसमें थोड़ा बहुत सच्चाई हो।[3]

लोहिया जी का विचार था कि हिन्दुस्तान को रूस व अमेरिका के साथ सोच-समझ कर नीति अपनानी चाहिये । उन्होंने कहा - जो देश हिन्द-पाक एका के लिये प्रयत्न करे और मोर्चा हटाने के लिये मदद देने को तैयार है,उस देश के हित में हम भी पूरी मदद देंगे । जब तक हमारी विदेश नीति

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - हिन्द-पाक युद्ध और एका", पृष्ठ ६-७
२- डा० राममनोहर लोहिया- लोकसभा में लोहिया ,भाग-३,पृष्ठ-७
३- वही पृष्ठ-११

बिना पेंदे की रही है । उसके न तो कोई उद्देश्य रहे हैं , न ही कोई नींव रही है , वह खत्म हो जानी चाहिये ।[1]

वे मानते थे कि भारतीय विदेश नीति का लक्ष्य देश की स्वतंत्रता की रक्षा करना और अपनी अखण्डता को कायम रखना होना चाहिये । भारतीय विदेश नीति के उद्देश्यों को स्पष्ट व साफ तस्वीर सामने रखना चाहिये । मौजूदा स्थिति में भारत की सुरक्षा और अखंडता इसका लक्ष्य होना चाहिये। जब तक चीन का अक्साई चीन पर कब्जा है तब तक भारत की अखंडता व सुरक्षा खतरे में है । दुर्भाग्यवश भारत की विदेश नीति को अपने लक्ष्य में शामिल करने तक में असफल रही है । भारत के लिये अपने खोये हुए क्षेत्रों को मुक्त कराना विदेश नीति का ही लक्ष्य व कर्तव्य नहीं है वरन अपनी राष्ट्रीय अनिवार्यता भी है ।

लोहिया जी अपने देश का झुकाव न पूंजीवादी देशों की ओर चाहते थे और न साम्यवादी देशों की ओर । इन दोनों गुटों से पृथक वे एक तीसरा - खेमा बनाने को प्रयत्नशील थे । इस खेमे के द्वारा वे संसार के सभी अविकसित देशों की प्रगति करना चाहते थे । रामचंद्र प्रधान के अनुसार - विदेश नीति का मस्तावक दर्शन लोहिया के पास था जिसका विवेचन उन्होंने अपने तीसरे खेमे के सिद्धांत में किया । उन्होंने यह अच्छी तरह समझा था कि पूर्व और पश्चिम की लड़ाई नकली है । वास्तविक लड़ाई तो गोरे-काले , गरीब-अमीर की है । इसके पीछे एक दर्शन था साम्यवाद और पूंजीवाद , तीसरी दुनिया के देशों के लिये दोनों बेमतलब हैं क्योंकि दोनों का आर्थिक ढांचा एक है । इसलिये लोहिया जी ने एक नये दर्शन " तीसरे खेमे के सिद्धांत का विचार रखा ।[2]

वे पूंजीवादी व साम्यवादी दोनों में से किसी गुट में भारत को शामिल होना स्वीकार नहीं करते थे । उन्होंने कहा - ऐंग्लो अमेरिकन प्रभाव के विस्तार से विश्व के सभी भागों पर , पृथ्वी पर अमरीका की पद्धति को सर्व शक्तिमान बना देगी और उससे समाजवादी दलों को विकसित होने और

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - हिन्द पाक युद्ध और रक्षा, पृष्ठ-१३

२- डा०रामचन्द्र प्रधान - " भारतीय राजनीतिक दल और विदेश नीति"

बन आत्मा,१९६८,पृष्ठ-८८

अन्ततोगत्वा पूंजीवादी पद्धति की सर्वोच्चता को चुनौती देने का अवसर न देगी और दूसरी ओर सोवियत क्षेत्र में विश्व के समाहित हो जाने से प्रत्येक स्थान पर क्रेमलिन नियंत्रित साम्यवादी दल शक्ति में आ जायेगी और प्रजातंत्र व समाजवादी शक्तियों का विनाश हो जायेगा ।[1]

इस विश्लेषण से यह स्पष्ट होगा कि इन गुटों में किसी की विजय से मनुष्य जाति का शोषण प्रारम्भ हो जायेगा । इसलिये किसी को वरीयता नहीं देनी चाहिये । भारत को चाहिये कि वह कोई ऐसा कार्य न करे जिससे इन गुटों में से किसी की शक्ति बढ़े बल्कि उसे तटस्थता का एक तीसरा समूह निर्मित करने के लिये प्रयास करना चाहिये और यथासम्भव इस तृतीय समूह के क्षेत्र का विस्तार करने का प्रयत्न करना चाहिये । लोहिया जी ने कहा - अटलांटिक गुट का एक बड़ा गुण समाजवादी दृष्टिकोण से है - यह प्रतीत होता है कि इसमें प्रजातांत्रिक और शांतिपूर्ण परिवर्तन की सम्भावना है, सच्चे ही समाजवादी गुटों में यह प्रमुख विशेषता है कि एक राष्ट्र में और सारे विश्व में समान जीवन स्तर और इस प्रकार युद्ध और निर्धनता के विरुद्ध अंतिम सुरक्षा प्रदान करता है ।[2]

लोहिया जी मानते थे कि प्रत्येक सिद्धांत की परीक्षा उसके द्वारा उत्पन्न परिणामों से होना चाहिये । मानव-भविष्य के लिये तीन प्रश्न सबसे महत्वपूर्ण हैं । - पहला - सभी मनुष्यों के लिये एक भरा उदर, दूसरा - मानव का स्वतंत्र चिंतन और तीसरा - युद्ध विरोध इन तीनों के लिये अटलांटिक गुट और सोवियत गुट किसी के पास उत्तर नहीं है । सम्पत्ति सम्बन्धिता से पृथक दोनों समूहों की आर्थिक मान्यतायें दोषपूर्ण है और वे न तो भरा उदर और न स्वतंत्र मस्तिष्क को ही सुनिश्चित करते हैं ।

उनका विचार था कि बर्लिन में जहां दोनों पद्धतियां मिलती हैं और एक दूसरे से टक्कर लेती हैं, नगर को इतना भिन्नशील बनाती है कि दोनों

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-२४२

२- वही पृष्ठ-२४२

पद्धतियों के अन्तर को देखा जा सकता है और फिर उनका भविष्य भी रखा जा सकता है। डोहिया जी ने सोवियत बर्लिन में सफाई कामिओं को नगर की गन्दगी को उसी प्रकार अपर्याप्त उपकरणों से साफ करते देखा जैसा कि भारत में देखा जाता है। अटलांटिक बर्लिन में एक कामिक तभी कार्य कर सकता है जब कि उचित वेतन उसे उपलब्ध हो और उसका उत्पादन मध्य न्यूनतम से कम न हो। इससे उन्हें सोवियत जर्मनी के दावे का रहस्य मालूम हुआ कि वहां बेरोजगारी नहीं है, उन्होंने इस दावे को स्वीकार किया। सोवियत में रोजगारी का उसी प्रकार का कार्य जबकि अटलांटिक समाज में इसका अर्थ है कि ऐसा कार्य जिसमें उचित जीवन का न्यूनतम आधार हो और बाकी बेरोजगार रहें। लोहिया जी ने विदेश नीति के निम्नांकित सिद्धांत बताये - १- रूस और अमरीका गुटों को विवादों में न फंसना और संयुक्त राष्ट्र को यह आश्वासित करना कि समाजवादी भारत किसी भी आक्रमण को सहायता नहीं देगा।

२- संयुक्त राष्ट्र संघ और उसके विभिन्न अभिकरणों को उनके सभी प्रयासों में जिनसे स्वतंत्रता, समानता और विश्वशांति-पूर्ण सहायता मिले, शक्तिवान बनाना।

३- विश्व केवल सभी भागों में जो अटलांटिक और सोवियत संघ की भिन्नता से पृथक रहते हैं, विशेषकर इण्डोनेशिया से मिस्र तक पेटी की सामूहिक सुरक्षा के लिये प्रयास करना।

४- सभी राष्ट्रों और सरकारों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध के लिये प्रयास करना।

५- स्वतंत्र राष्ट्रों विशेषकर अस्वतंत्र फिर विशेषकर अफ्रीका के राष्ट्रों के स्वतंत्रता आन्दोलन का समर्थन करना तथा यह प्रयास करना कि वे किसी भी गुट के प्रभाव से पृथक रहें।

६- उन सभी ऐसी संधियों, समझौतों और अधिकार पत्रों को संशोधित करने के लिये प्रयास करना जिन्होंने एक ओर सम्पन्न और शक्तिशाली

राष्ट्रों और दूसरी ओर मुक्ति और निर्धन राष्ट्रों की अन्तर्राष्ट्रीय बिरादरी पद्धति की स्थापना की है और इस प्रकार सभी राष्ट्रों की समानता के सिद्धांत को स्थापित करना।

७)	मानव जाति को राजनैतिक रूप में विश्व संसद और आर्थिक रूप में विश्व विकास निगम और विश्व सामान्य संग्रह जैसे अधिकरणों के माध्यम से संयुक्त करने के सभी प्रयासों में सहायता देना जिससे कि प्रत्येक मानव को, वह किसी भी देश का हो जीवन-यापन का उचित स्तर सुनिश्चित हो।

८-	सारे विश्व में समाजवादी आन्दोलनों का और उन सभी लोक - आन्दोलनों का जोकि भूख और युद्ध के विरुद्ध समाजवाद और प्रजातंत्र के माध्यम से संघर्ष करने का प्रयास कर रहे हैं, समर्थन करना।[१]

उनका विचार था कि आधुनिक सभ्यता का मस्तिष्क अपनी यात्रा के अन्त पर अब से कुछ दशक पहले आ चुका है। वर्तमान शताब्दी में केवल एक प्रारम्भक, महात्मा गांधी हुए हैं और केवल एक खोज अणुबम हुई है। आधुनिक सभ्यता ने चित को केवल एक शक्ति को सेवा में लगाया है और जब तक उसके दोनों प्रयासों को निरन्तर परीक्षा की जाती, स्थिति ऐसी ही रहेगी। लोहिया जी ने कहा - संयुक्त राज्य और सोवियत संघ के पूँजीवाद और साम्यवाद का परस्पर दोषारोपण जारी है पर वे निर्धनता और युद्ध की रासायों की हत्या करने में असमर्थ हैं। उन्होंने विश्व को भय और घृणा से आवेष्टित कर दिया है। मनुष्य अब अपने में शांत नहीं है, उसे पूंजीवाद और साम्यवाद दोनों को ही वर्तमान सभ्यता से दूर हटाना होगा। उनके दोषपूर्ण गुण और प्रयास दोनों ने नई सभ्यता के विकास के लिये समान रूप से असन्दर्भित बना दिया। ये सिद्धांत ऐसा है जिस पर गम्भीरता से विचार करना है।[२]

उनका विचार था कि यह सिद्धांत निष्क्रियता नहीं बल्कि सक्रियता

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया ' १९५१ के सामान्य निर्वाचनों में समाजवादी दल के चुनाव घोषणापत्र से देखिये, मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-२४४-४५

२- वही	पृष्ठ-४५

पर बल देता है । कभी कभी एक वर्ग और कभी दूसरे वर्ग के पक्ष में दिखाई देता है। इसके प्रयोग विशेषकर मुख्य राजनीतिक कार्यवाहियों के सम्बन्ध में अनेक त्रुटियां प्रतीत होती हैं । इस सिद्धांत का प्रारम्भ यद्यपि इसे नाम नहीं दिया गया, सन् १९३७-३८ में हुआ । उस समय कुछ लोग ब्रिटिश पराक्रम पर प्रसन्न हुए, कुछ उनके समर्थन में कार्य कर रहे थे । लोहिया जी ने कहा कि - उस समय संकटों को दूर रखने के लिये तृतीय समूह सिद्धांत का जन्म हुआ । १९४२ के आन्दोलन में इस सिद्धांत को स्वीकृति मिली । इसका सैद्धांतिक कथन समाजवादी दल और गांधी जी द्वारा प्रस्तुत किया गया । अब यह सिद्धांत हमारे मस्तिष्क का केन्द्र बिन्दु बन गया है ।[1]

लोहिया जी ने भारतीय विदेश नीति का लक्ष्य मुख्यतः भारत की सुरक्षा और अखण्डता को माना । उन्होंने भारत के लिये साम्यवादी व पूंजीवादी गुटों से पृथक तटस्थता की नीति का समर्थन किया । मधु लिमये के अनुसार- इसे गुट निरपेक्षता की नॉन-एलाइनमेन्ट या तटस्थता नीति भी कहते हैं, न्यूट्रलिटी कहते हैं या कुछ लोग तीसरी शक्ति, थर्ड फोर्स कहते हैं । यह कुछ कल्पना थी इसके निर्माता थे डा० राममनोहर लोहिया । इसकी जड़ में यूरोप केन्द्रित, पश्चिम केन्द्रित विदेश नीति का विरोध था ।[2]

लोहिया जी अमेरिका व रूस के प्रभाव से मुक्त भारत की विदेश नीति बनाना चाहते थे । लोहिया जी का तटस्थीकरण का सिद्धांत उचित प्रतीत होता है लेकिन उनका तीसरे खेमे का सिद्धांत कुछ परिस्थितियों के कारण लागू करना मुश्किल है । उनके तीसरे खेमे के सिद्धांत के प्रतिपादन के समय एशिया में कई जगह समाजवादी सरकारें थीं लेकिन वर्तमान समय में ये सरकारें अपनी आत्म-रक्षा भी न कर सकीं, तीसरी दुनिया की लड़ाई तो दूर की बात है । दूसरे भारत व चीन की लड़ाई हो जाने से इस नीति को लाना मुश्किल है । तीसरे आज विश्व की बड़ी शक्तियां सामने मिल गई हैं, ये इस सिद्धांत को चलाने वालों का विरोध करेंगी । चौथे तीसरे खेमे के सिद्धांत में सामरिक शक्ति बढ़ाने की बात पर जोर नहीं था । यह सिद्धांत सैद्धान्तिक रूप में ठीक है पर इसके

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया, मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-२७
२- मधु लिमये भारतीय राजनीति का नया मोड़, पृष्ठ-७२

व्यवहारिक रूप में कुछ संशोधन करना होगा।

इस प्रकार लोहिया जी की विदेश नीति के मुख्य दो उद्देश्य एक तो देश की रक्षा करना , दूसरे दो विदेशी शक्तियों का प्रत्यक्ष हस्त-क्षेप रोकना । देश की शक्ति को बढ़ाने के लिये इन दो उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए भारत को अपनी विदेशी नीति बनाना चाहिये ।

२) विदेश नीति के आदर्श -

लोहिया जी ने देश की विदेश नीति का आदर्श समस्त संसार की प्रगति माना है । वे दुनिया से गरीबी का अंत करना चाहते थे । उन्होंने कहा - जब यह दो गुट हैं अमरीका और रूस वाले । उनके बारे में मैं चाहूंगा कि हिन्दुस्तान की विदेश नीति साफ-साफ बातचीत कि एक ओर दाम का सन्तुलन और दूसरी ओर गरीबी को मिटाना ।[१]

उनका विचार था कि भारत की विदेश नीति आदर्श तभी होगी जबकि वह आर्थिक रूप से सम्पन्न होगा । वे भारत को आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे । वे प्रत्येक क्षेत्र में विदेशी मदद का विरोध करते थे । वे मानते थे कि देश को मजबूत करने के बाद ही दूसरे देशों की समस्याओं पर विचार किया जा सकता है । उन्होंने कहा - अपनी आर्थिक बुनियादी समाजवाद के आधार पर डालिये , फिजूलखर्च खत्म कीजिये , जो आपस में गैर-बराबरी है उसको खत्म कीजिये जो पैसा बचे उसमें खेती और कारखाने सुधारिये, इसके बाद ही आप विदेश नीति में हुनर व चमत्कार दिखा सकेंगे ।[२]

लोहिया जी हिन्दुस्तान की स्वयं की नीति चाहते थे । अभी तक भारत ने अन्दरूनी स्तर पर अमरीका की नीति अपनाई है । अमरीका का जीवनस्तर विलासिता, ऊँचे ऊँचे आर्थिक संगठन सभी कुछ भारत ने अपनाया

- -

१- डा॰राममनोहर लोहिया : लोकसभा में लोहिया,भाग-३ पृष्ठ-[illegible]

२- वही भाग-५,पृष्ठ[illegible]

बाहरी स्तर पर भारत ने रूस की नीति को अपनाया है । भारत में जनता क्रांति के लिये सिसकती है । उनकी सलाह थी कि - आप अन्दरूनी स्तर पर रूसी बनें और बाहरी स्तर पर अमरीकी बनें अगर आपको दुनिया के खतरों का इस्तेमाल करना है तो असल में हमें हिन्दुस्तानी बनना चाहिये ।[1] लोहिया जी भारत के साथ ही साथ पूरे विश्व से असमानता दूर करना चाहते थे । उन्होंने माना कि - संसार में दो बड़े रोग हैं और हिन्दुस्तान में ये रोग सबसे ज्यादा हैं । ये रोग है गैर-बराबरी और अलगाव और उनको दूर करनेकी एक दवाई समता की और दूसरी दवाई सामीप्य की । इन दोनों का सारी जनता के बीच इस्तेमाल होना चाहिये ।[2]

लोहिया जी का विचार था कि - भारत की विदेश नीति में संकल्प की बड़ी शक्ति होना चाहिये , उसी के साथ कुछ सैद्धांतिक परिवर्तन होने चाहिये , ठोस आदर्श होने चाहिये और उसके लायक व्यवहार होना चाहिये। उन्होंने कहा कि - हिन्दुस्तान की वैदेशिक नीति को चाहिये कि वह एक तरफ तो महासंघ का आदर्श रखे और दूसरी तरफ चूंकि इतिहास थोड़ा सा रचनात्मकता से चलता है और थोड़ा झगड़े से चलता है इसलिये आदर्श होना चाहिये महासंघ और जंग। जंग अपनी तरफ से नहीं करना चाहिये ।[3]

लोहिया जी विदेश नीति का आदर्श शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व में ही मानते थे । उनका विचार था कि अभी तक रूस व अमेरिका ने प्रक्षेपास्त्र का इस्तेमाल नहीं किया है । इसका तो प्रक्षेपास्त्र सह-अस्तित्व है लेकिन यह शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व नहीं है । ये गालीपूर्ण सह-अस्तित्व है । लोहिया जी ने हिन्दुस्तान की विदेश नीति का आधार शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व ही माना है । इसलिये हिन्दुस्तान को यह समझ लेना चाहिये कि संयुक्त राष्ट्र-संघ ने उसे ईमानदारी से सभी राष्ट्र का साथ बिना किसी दबाव के देना - चाहिये । विश्व में शांति की स्थापना के लिये प्रयत्न करना चाहिये । उन्होंने

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - लोकसभा में लोहिया ,भाग-५,पृष्ठ-१४३
२- डा०राममनोहर लोहिया - लोकसभा में लोहिया,भाग- ४ पृष्ठ-७५
३- वही पृष्ठ-१०१

कहा - हिन्दुस्तान को छोटे राष्ट्रों से यह अपील और करनी चाहिये खास कर क्रांतिकारी शक्ति की नीति, सभी राष्ट्रों की पूरी आजादी और समानता राष्ट्रों के बीच आर्थिक समानता का बढ़ता हुआ सामीप्य, शक्ति-गुटों में शांति रखने और उनके झगड़ों का फैसला करने के बारे में। इस सिलसिले में हिन्दुस्तान राष्ट्र संघ के सामने यह प्रस्ताव रख सकता है कि सभी राष्ट्रों टुकड़ियों के साथ रूस और अमरीका भी शामिल हों। शांति के अन्तर्राष्ट्रीय दस्ते बनाये जायें जो सारी दुनिया में रचनात्मक कामों को मिला सकें।[1]

लोहिया जी पिछड़े देशों के विकास के लिये विदेशी मदद का विरोध करते थे। वे विश्व विकास निगम के द्वारा मदद देने व लेने के पक्ष में थे। उनका विचार था कि हिन्दुस्तान को खिल कड़ा करके कदम उठाना चाहिये और कहना चाहिये कि इस तरह की विदेशी मदद हम नहीं लेते, ऐसी मदद दुनिया में नहीं होना चाहिये, जो एक देश दूसरे देशको दिया करते हैं। अब तो हमको विश्व विकास निगम बनाना चाहिये, जिसमें देश अपनी ताकत के अनुसार दे और जरूरत के मुताबिक ले। वे विश्व स्तर पर विभिन्न राष्ट्रों की सरकारों में सम्बन्ध नहीं चाहते थे। वे सारे विश्व के पैमाने पर जनता का जनता से सम्बन्ध कायम करना चाहते थे। उन्होंने कहा - विदेश नीति में यह बहुत जरूरी है कि जनता का जनता से सम्बन्ध कायम हो। इस वक्त केवल सरकार का सरकार से सम्बन्ध हो रहा है।[2]

लोहिया जी विभिन्न देशों के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने केलिये हथियारों का विरोध करते थे। रूस और अमेरिका के पास काफी हथियार हैं, यदि देशों ने इनका इस्तेमाल किया तो एक तिहाई दुनिया समाप्त हो जायेगी। हथियारों पर व्यय व्यर्थ किया जाता है क्योंकि ये बेकार पड़े रहते हैं। यदि इनमें लगाये गये धन का उपयोग आर्थिक विकास योजनाओं पर लगाया जाये तो देश में आर्थिक सम्पन्नता बढ़ सकती है। दूसरी ओर हथियारों

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया' हिन्दुस्तान और पाकिस्तान, जन गांधी शताब्दी अंक सित०-अक्टू० १९६९, पृष्ठ-१०

२- डा०राममनोहर लोहिया-' लोकसभा ' जन अगस्त १९६९, पृष्ठ-४४

का प्रयोग विनाश का सूचक है । उन्होंने कहा कि - या तो हथियार खत्म होंगे या दुनिया खत्म होगी और हथियार कब खत्म होगा, जब अन्याय खत्म होगा । तो मेरा कहना है कि हिन्दुस्तान की विदेश नीति तभी कामयाब होगी जबकि दुनिया में जो सात क्रांतियाँ इस वक्त चल रही हैं , और मजा हो रहा है , उसके साथ मिल जोलकर एक हो जायें , उससे पहले नहीं ।[1]

लोहिया जी संसार से दरिद्रता व शस्त्र दोनों को समाप्त करने के पक्ष में थे। इन दोनों को समाप्त करने के बाद ही संसार में सुख व समृद्धि का विकास होगा। उनका विचार था कि आज संसार का जो रोग है उसका एशियायी बाजू है दरिद्रता और यूरोपी अमरीकी बाजू है शस्त्र और अगर दुनियाद को बदलना चाहते हो तो एक तरफ शस्त्र खत्म करो और दूसरी ओर दरिद्रता खत्म करो । निःशस्त्रीकरण और दरिद्रता का एक संयुक्त उपाय रखना चाहिये, यह आधारभूत बात है ।

लोहिया जी का विचार था कि विदेश नीति का मुख्य उद्देश्य भारत और संसार में गरीबी मिटाना है । भारत संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन के प्रवेश पर तब तकमौन रहेजबतक कि तिब्बत का मामला हल नहीं हो जाता। भारत ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल की सदस्यता त्याग कर विश्व सरकार की स्थापना का प्रयत्न करे और भारत व पाकिस्तान का महासंघ बनाने का भी प्रयास करे। भारत की विदेश नीति में स्वयं की कोई मौलिकता नहीं है । ये दोनों खेमों के कामों पर हाँ या ना किया करती है । इसके कुछ बुरे परिणाम भी हुए हैं। १९६२ के सोशलिस्ट पार्टी के चुनाव घोषणापत्र मे लोहिया जी के विदेश नीति के आदर्शों को दोहराया गया है । उसमें लिखा है - समाजवादी दल मानता है कि विदेश नीति का मुख्य ध्येय इस प्रकार होना चाहिये , एक ऐसी कोशिश होगी कि विदेशी मदद का इस्तेमाल अपव्यय से नाना नाकरण और फिजूलखर्ची में न हो , दूसरे संसार में विदेशी मदद लेने व देने की एक निष्पक्ष विकास सत्ता बने , तीसरे दामों की गैर-बराबरी अथवा ब्याज के ऊँचे दर पर और ऐसे ही

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया' विदेश नीति ' लोहिया: बहुआयामी व्यक्तित्व, पृष्ठ-२८८

तरीकों से जितनी एक हाथ से विदेशी मदद मिले या उससे ज्यादा दूसरे हाथ से निकल न जाये ।[1]

समाजवादी दल का आरोप है कि हिन्द सरकार की विदेश नीति में जितना जोर निःशस्त्रीकरण और शांति पर दिया उतना उपनिवेश विरोध कल्याण पर नहीं । समाजवादी दल ने अपने घोषणा पत्र में लोहिया जी के सिद्धांतों को माना । घोषणापत्र में लिखा है कि - संसार भर के मनुष्य अपनी एक लोकसभा बनायें और उसके मातहत जरूरी मामलों का एक विश्व-सरकार और इस उद्देश्य को हासिल करने के लिये विश्व सत्याग्रह करें ।[2]

लोहिया जी ने भारत व समस्त संसार की सम्पन्नता और समृद्धि के लिये एक आदर्श विदेश नीति के निर्माण के लिये सतत प्रयत्न किया । वे अपने देश को सशक्त व मजबूत व आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे ।

३) <u>प्रमुख राष्ट्रों से सम्बन्ध -</u>

भारत की विदेश नीति की प्रमुख विशेषता यह है कि वह एशिया के देशों और अन्य पड़ोसियों से तथा विश्व के प्रत्येक राष्ट्र से मित्रता का हर सम्भव प्रयास करता है , हालांकि कभी कभी देशों के इस आचरण का बड़ा करारा अनुभव प्राप्त होता है । भारत ने अधिक से अधिक देशों के साथ मैत्री-संधियाँ और व्यापारिक-समझौते किये हैं । भारत का प्रमुख राष्ट्रों से सम्बन्ध इस प्रकार है :-

भारत व पाकिस्तान विभाजन से पूर्व एक राष्ट्र थे । भारत के शांतिप्रिय नेताओं को इस प्रकार की पूरी आशा थी कि देश के विभाजन से शांति और पारस्परिक मेलजोल को प्रोत्साहन मिलेगा तथा भारत और पाकिस्तान दोनों शांति, सद्भावना और सहयोग के वातावरण में आर्थिक विकास के लम्बे एवं कठिन कार्य में मिल पड़ेंगे । इसी लक्ष्य को ध्यान में रख

- -

१- सोशलिस्ट पार्टी का चुनाव घोषणा-पत्र, चौखम्भा पुनः विशेषांक हैदराबाद सोमवार १२ फरवरी १९६२, पृष्ठ-१७

२- वही ,पृष्ठ-१७

कर भारत सरकार ने पूर्ण दृढ़ता के साथ साम्प्रदायिक दंगों को समाप्त कर दिया। किन्तु पाकिस्तान का तो जन्म ही साम्प्रदायिक आधार पर हुआ था और उसके नेता भारत के प्रति कटुता और वैमनस्य के जाते-जागते विष-वृक्ष थे। अतः उन्होंने आरम्भ से ही विरोध, आक्रमण तथा भारतीय भूभाग को हड़पने और भारत को हर सम्भव प्रकार से क्षति पहुंचाने की विद्वेष नीति का आश्रय लिया। वर्तमान समय में भारत व पाकिस्तान के सम्बन्ध मधुर नहीं है।

लोहिया जी ने भारत व पाकिस्तान के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए कहा - शान्ति की बात भी दोनों सरकारें खाली अपने देशवासियों को भूल-भुलैया और चक्कर में डालने के लिये करती है। वे दिल से शान्ति के लिये काम नहीं करती हैं। न युद्ध है और न शान्ति है, दोनों सरकारें खाली तनाव की स्थिति बनाये हुए है ताकि वे अपनी जनता से कह सकें कि देखो सीमा पर दुश्मन खड़ा है और अगर चावल, गेहूं ना मिले उनके दाम ज्यादा हों, तो अपनी जनता को चुप रख सकें।[१]

लोहिया जी भारत व पाकिस्तान के बीच अच्छे सम्बन्ध स्थापित करना चाहते थे। उनका विचार था कि पाकिस्तान के साथ हमारी नीति नई बुनियादों पर बननी चाहिये। वे भारत व पाकिस्तान के बीच संघीय - रिश्ता स्थापित करना चाहते थे। उन्होंने कहा - हिन्दुस्तान की सरकार ने पाकिस्तान की सरकार से कहकर अच्छा किया है कि वह युद्ध न करने का समझौता करने को तैयार हो। सामान्य विदेश नीति और संघीय रिश्तों के जरिये समस्याओं को हल करने के प्रस्ताव भी रखने चाहिये।[२]

लोहिया जी का विचार था कि विश्व की समस्याओं और पाकिस्तान के बारे में भारत की कमजोरी का कारण उसकी आर्थिक स्थिति है। यदि हिन्दुस्तान को आर्थिक रूप से समृद्ध बना दिया जाये तो पाकिस्तान में फिर से हिन्दुस्तान से मिलने की इच्छा पैदा होगी और हिन्दुस्तान को दुनिया का

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - लोकसभा में लोहिया, भाग-७, पृष्ठ-१६२
२- डा० राममनोहर लोहिया - 'हिन्दुस्तान और पाकिस्तान' जन-गांधी शताब्दी अंक अक्टू० १९६९, पृष्ठ-६

बाहर और निकलता मिलेगी । वे हिन्दुस्तान की जनता के पाकिस्तान की जनता के साथ मधुर सम्बन्ध चाहते थे । वे मानते थे कि हिन्दुस्तान व पाकिस्तान के सम्बन्ध मधुर करने के लिये यदि पाकिस्तान को कश्मीर दे दिया जाये तो उनके बीच झगड़ा समाप्त नहीं होगा । उनके बीच किसी न किसी मामले को लेकर फिर से झगड़े शुरू हो जायेंगे।इसलिये लोहिया जी ने इस सारे मामले का एक ही सुझाव निकाला - वह यह कि हिन्दुस्तान व पाकिस्तान का महासंघ बना दिया जाये इससे हिन्दुस्तान व पाकिस्तान एक होकर रहेंगे।[1]

वे मानते थे कि हिन्दुस्तान व पाकिस्तान को अपनी विदेश नीति एक ही प्रकार की बनानी चाहिये क्योंकि अगर दोनों इलाकों की विदेश नीति अलग अलग रहा तो निश्चय ही अटलांटिक या सोवियत गुट अपने हितमें इसका लाभ उठायेंगे । इसी तरह पाकिस्तान व हिन्दुस्तान दोनों को यह लोभ होता है कि वे अटलांटिक या सोवियत गुट का इस्तेमाल एक-दूसरे के खिलाफ करें । देश के बटवारे के कारण हिन्दुस्तान अपनी कमजोरी व लोभ के कारण विश्व-शान्ति व प्रगति के हक में हस्तक्षेप करने में असमर्थ है । उन्होंने कहा - हिन्दुस्तान व पाकिस्तान के मध्य सम्मानपूर्ण एकता कायम हो या कम से कम झगड़ा हो इसके लिये दोनों सरकारों को विदेश नीति के मामले में नजदीक आने की जरूरत ज्यादा है । हिन्दुस्तान व पाकिस्तान को विदेश नीति के मामले में एक तरफ रहना चाहिये चाहे वे युद्ध में एकतरफा रहें या तटस्थ रहें । ऐसा तभी हो सकता है जब दोनों राज्य दोनोंगुटों से रचनात्मक स्वतंत्रता की नीति पर, तीसरे खेमे और दोनो खेमोंके युद्ध पूर्ण झगड़ों से बिल्कुल अलग रहने की नीति पर चले ।[2]

उनका विचार था कि हिन्दुस्तान व पाकिस्तान के बीच के झगड़ों को चार हिस्सों में बाटा जा सकता है - अल्पसंख्यकों सम्बन्धी, दौलत सम्बन्धी, व्यापार सम्बन्धी, विदेश नीति सम्बन्धी । इनमें अल्पसंख्यकों की समस्या अधिक

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - " हिन्दुस्तान और पाकिस्तान " जन अगस्त, १९६६, पृष्ठ-५

२- वही पृष्ठ-८

रचनात्मक प्रभाव के लिये डा० लोहिया को धन्यवाद दिया था ।[१]

लोहिया जी का हिन्दुस्तान व पाकिस्तान के महासंघ का विचार आदर्श के रूप में उत्तम है पर व्यावहारिक दृष्टि से इसको लागू करना बहुत कठिन कार्य है । क्योंकि दोनों देशों के मध्य इतना अधिक मन-मुटाव हो गया है कि उसको समाप्त करना कठिन कार्य है । वर्तमान समय में एक परिवार के बटवारे के बाद पुनः उसे संयुक्त परिवार बनाना कठिन हो गया है फिर लोहिया जी इतने बड़े देश के बटवारे को समाप्त कर उन्हें एक करना चाहते हैं, मुझे इस कार्य में भविष्य में सफल होने की सम्भावना नहीं दिखती है । हाँ इतना अवश्य है कि लोहिया जी के विचारों के आधार पर दोनों देशों के सम्बन्धों को मधुर बनाया जा सकता है । भारत की विदेश नीति पाकिस्तान से अच्छे सम्बन्ध बनाने की होनी चाहिये ।

शताब्दियों से भारत और चीन के सम्बन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण रहे हैं । इतिहास इस बात का साक्षी है कि दोनों महान राष्ट्रों ने एक-दूसरे पर कभी आक्रमण करने की चेष्टा नहीं की और प्राचीनकाल में दोनों के सांस्कृतिक सम्बन्ध रहे । पश्चिमी साम्राज्यवाद की स्थापना हो जाने के उपरान्त दोनों देशों के प्राचीन सम्बन्धों का विच्छेद हो गया लेकिन औपनिवेशिक अनुभव ने दोनों देशों को निकट लाकर खड़ा कर दिया । १९४८ में राष्ट्रवादी सरकार के पतन के पश्चात चीन में साम्यवादी सरकार की स्थापना हुई । भारत ने इस नव-स्थापित सरकार को तुरन्त मान्यता प्रदान करके अपने मैत्रीपूर्ण व्यवहार का परिचय दिया । परन्तु चीन ने भारत की मित्रता का जवाब भारत पर आक्रमण करके दिया । भारत पर चीन के आक्रमण ने न केवल सामुद्रिक क्षति पहुँचाई है बल्कि अपने मौलिक सिद्धांतों, राष्ट्रीय योजनाओं और राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रश्नों पर नये सिरे से सोचना बाध्य कर कर दिया है । वर्तमान परिस्थितियों में भारत के लिये यह अपेक्षा वांछनीय है कि अन्तर्राष्ट्रीय राज्य की निर्मित चीन-पाक धुरी के कारण वह अपनी सीमाओं की रक्षा के लिये प्रतिक्षण जागरूक रहे और इस कटु सत्य को

- -

१- डा० के०रामर्दव - भारत पाक महासंघ क्यों और कैसे ? ,पृष्ठ-१४

विस्तृत न होने दे कि शक्ति से ही शान्ति प्रतिष्ठित होती है। पुनश्च, स्वतंत्र भारत के लिये सबसे अधिक महत्व इस बात का है कि चीन के विस्तारवाद को रोकने के लिये वह ढाल का काम करे।

लोहिया जी का विचार था कि हिन्दुस्तान की विदेश नीति चीन से अपना बचाव करने के लिये सजग होनी चाहिये। उन्होंने लिखा है - बाहर हस्तक्षेप करने वाला और घर में जनता को कुचलने वाला चीन उतना ही साम्राज्यवादी है जितना कि और कोई यूरोपीय देश। मानवीय विचार के अतिरिक्त अगर कोई राष्ट्रीय विचार रखते हों तो उनकी स्थापना हित और सिद्धांतों में अच्छी तरह से होनी चाहिये।[1]

वे मानते थे कि मार्क्सवाद या साम्यवाद देशों के अन्दर समानता ला सकते हैं लेकिन विभिन्न देशों के बीच जो असमानता है उसको दूर नहीं कर सकते हैं। चीन भी यह नहीं चाहता। लोहिया जी ने कहा कि - आज चीन गड़बड़ कर रहा है, दुनिया में अशान्ति कायम कर रहा है या सबको अणु बमोंपर लगाने की बातें बोला करता है या अपनी पलटन के द्वारा जगह-जगह पर गड़बड़ करता है। इसका कारण यही है कि चीन ने जो विचारधारा अपनाई है, वह संसार में समता लायक है नहीं।[2]

लोहिया जी चीन से भारत के सम्बन्ध अच्छे रखने के पक्ष में नहीं थे। इसका मतलब यह नहीं है कि वे चीन पर हमला करने के पक्ष में थे। उन्होंने कहा - जिस राक्षस चीन ने हमारे देश पर हमला किया है उससे सम्बन्ध रखना मेरी समझ में कभी नहीं आता है। उसके साथ बैठ सकते हैं, बैठना लाजमी होता है, जरूरी बैठना पड़ता है क्योंकि दुनिया में राक्षस भी हैं और मनुष्य भी हैं लेकिन चीन के साथ सम्बन्ध रखने का साफ मतलब है कि अभी तक हिन्दुस्तान की विदेश नीति निर्धारक मामले को नहीं समझा है।[3]

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - समदृष्टि, पृष्ठ-६४
२- वही , पृष्ठ-५७
३- डा० राममनोहर लोहिया - लोकसभा में लोहिया, भाग-३, पृष्ठ-९५

उनका विचार था कि - हमें दक्षिण एशिया के झगड़ों के बारे में कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिये जिससे चीन की ताकत बढ़े और हमको मदद देने वाले देशों की ताकत घटे। हमें किसी देश के झगड़े में चाहे वह हिन्दुस्तान का हो, मलेशिया का हो, चाहे थाई देश का हो कोई ऐसी बात नहीं करनी चाहिये जिससे चीन के पक्ष को समर्थन मिलता हो। उन्होंने कहा - हमको अभी एक प्रतिज्ञा कर लेना चाहिये कि दक्षिण एशिया में हम एक बात न करेंगे, एक काम न करेंगे जिससे चीन का पक्ष मजबूत हो जाया करता है।[१]

वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने तिब्बत पर चीन के हमले का विरोध किया। भारत की सरकार को सर्वप्रथम आरम्भ में ही चेतावनी दी थी कि चीन रूपी राक्षस से तिब्बत रूपी शिशु की हत्या होने से भारत रक्षा करे। सोशलिस्ट पार्टी के अनुसार - जिस समय तिब्बत की आजादी का अपहरण किया जा रहा था और भारत सरकार ने उसमें अपनी सहमति प्रगट की थी, देश के किसी भी कोने से उसके खिलाफ एक भी आवाज नहीं उठी थी सिवा सोशलिस्ट पार्टी की ओर से। उस पार्टी के नेता डा०राममनोहर लोहिया ने चीन की इस कार्यवाही का खुलकर विरोध किया था और उसे तिब्बत की 'शिशु हत्या' कहा था।[२]

लोहिया जी भारत के पड़ोसी देशों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना चाहते थे। उन्होंने सरकार से निवेदन किया कि - आप विदेश नीति को बुनियादी तौर पर बदलें। अपने पड़ोसी देश अफगानिस्तान, नेपाल, मलेशिया, थाई देश आदि आप अपना दोस्त बनाने की कोशिश करें।[३]

उनका विचार था कि विदेश नीति के मामले में भारत कभी सबसे आगे था लेकिन आज वह विदेश नीति के मामले में पीछे पड़ गया है। १९४८ में जापान साधारण स्थिति में था लेकिन आज वह अपनी विदेश नीति के कारण उन्नति कर गया है। लोहिया जी भारत की विदेश नीति को सशक्त

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया - लोकसभा में लोहिया, भाग-५, पृष्ठ-१९५
२- सोशलिस्ट पार्टी बिहार - हिमालय बचाओ और देश बचाओ, पृष्ठ-प्रथम (भूमिका)
३- डा०राममनोहर लोहिया - लोकसभा में लोहिया भाग-६, पृष्ठ-७१

बनाने के लिये ऐशिया के देशों के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने के पक्ष में थे। वे मानते थे कि जो ऐशिया के सात देश हैं - थाई देश, बर्मा, मलेशिया, फिलीपीन, दक्षिणी कोरिया, दक्षिणी जापान और ताइवान। इनके साथ भारत को अपने सम्बन्ध सुधारने की कोशिश करनी चाहिये। उनकी किसी शक्ति में नहीं जाना चाहिये, उनके पल्टनी करार में नहीं जाना चाहिये लेकिन उनके साथ अपने सम्बन्ध इस तरह सुधारने चाहिये कि जिस तरह से जापान में हुआ है।

वे हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का बटवारा नकली मानते थे। उनका कहना था कि जब तक इनका विभाजित अस्तित्व रहेगा तब तक यहाँ उन्नति नहीं होगी। इसी प्रकार उत्तरी कोरिया, दक्षिणी कोरिया, दक्षिणी वियतनाम, उत्तरी वियतनाम, पूर्वी जर्मनी और पश्चिमी जर्मनी के द्वन्द का समाधान महासंघ अथवा एकीकरण में देखते थे। वे मानते थे कि पड़ोसी देशों से अच्छी मित्रता रखना ही विदेश नीति की सबसे बड़ी कसौटी है। भारत की अपेक्षा चीन ने पड़ोसियों को अच्छा दोस्त बना रखा है। वे भारत के पड़ोसी देशों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध रखना चाहते थे। उन्होंने कहा - हमारे पड़ोसी देश हैं - अफगानिस्तान, पाकिस्तान, तिब्बत, नेपाल बर्मा और श्रीलंका। इन देशों में किसी का नाम यह कहकर नहीं बताया जा सकता कि अमुक देश चीन से अच्छा भारत का दोस्त है। हिन्दुस्तान के मुकाबले में चीन के बड़े दोस्त इन पड़ोसी देशों से मिल जायेंगे।[1]

वे मानते थे कि भारत की विदेश नीति तभी सफल होगी जबकि वह पड़ोसी देशों से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करेगी। जहाँ तक नेपाल, सिक्किम और भूटान का सम्बन्ध है हर प्रजातांत्रिक शक्ति को मदद करनी होगी।

लोहिया जी का विचार था कि आज स्थान-स्थान पर होने वाले विद्रोह युद्ध विश्व युद्ध में परिवर्तित हो सकते हैं। इस युद्ध को रोकने के लिये या जब वह आवे तो उसे कम करने का एकमात्र मार्ग ऐशिया, अफ्रिका और

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - 'लंगड़ी विदेश नीति' चौखम्भा दीपावली विशेषांक, १९६२, पृष्ठ-५५

और मध्य तथा दक्षिणी अमेरिका की राजनीतिक शक्ति को निरन्तर बढ़ाना है इसलिये इन देशों के समाजवादियों को प्रभावपूर्ण राष्ट्रवादी होना चाहिये। लोहिया जी के अनुसार - एक वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था उन राष्ट्रों के समूह द्वारा प्राप्त की जा सकती है जो इन दोनों गुटों से स्वतंत्र हैं। भारत की विदेश नीति का निरूपण हो रहा है। हमें अपने मित्रों लंका, बर्मा, मलाया, वियतनाम, इण्डोनेशिया, तिब्बत, अफगानिस्तान, ईरान, ईराक पूर्वी अफ्रीका और अन्य देशों से पूर्ण मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना होगा क्योंकि भारत को उनकी राजनैतिक शक्ति और आर्थिक समृद्धि का निर्माण करने में भूमिका अदा करना है। हमारी बाना अक्षा से मित्रता अधिक होना चाहिये। विश्व के अन्य देशों से हमारे सम्बन्ध ठीक और जहां तक सम्भव हो मैत्रीपूर्ण होना चाहिये।[१]

भारत और संयुक्त राज्य अमरीका के बीच भारत द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व से ही सहयोग और मित्रता पूर्ण सम्बन्ध विद्यमान रहे हैं। दोनों देशों में मैत्री की तीव्र इच्छा होते हुए भी दुर्भाग्यवश अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की शुरुआत सन्देह के वातावरण में आरम्भ हुई। भारत का एक शक्तिशाली अधिकारी वर्ग प्रारम्भ से ही अमेरिकन विदेश नीति को कुछ अरुचि और नफरत से देखता था। इस वर्ग की मान्यता थी कि अमेरिकन कूटनीति भारत के प्रति शत्रुता और वैमनस्य की है। भारत और अमेरिका के मतभेदों का यह अर्थ नहीं लगाना चाहिये कि दोनों देश सदैव एक दूसरे के विपरीत मार्गों पर ही चलते रहे अथवा इनमें किसी प्रकार की शत्रुता स्थापित हो। वास्तविकता यही है कि महत्वपूर्ण मतभेदों के होते हुए भी दोनों को बांधने वाले मैत्री तथा सहयोग के सूत्र अधिकाधिक शक्तिशाली और स्थायी थे और आज भी हैं। दोनों देशों के सम्बन्ध न्यूनाधिक रूप से तनावपूर्ण होते हुए भी मैत्री और सहयोग के सूत्र से आबद्ध रहे और आज भी हैं। भारत व अमेरिका की बढ़ती दूरियां केवल आर्थिक और राजकीय क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रही है वरन् सामाजिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों के क्षेत्रों में मौजूद

१- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एवं सोशलिज्म, पृष्ठ-४८४-८५

विस्तार हुआ है । भारत और सोवियत संघ के बीच मित्रता की भावना क्षणिक आदर्श या स्वार्थी भावना पर आधारित नहीं है वरन् इसकी जड़े इतनी गहरी हैं कि समय पर उत्पन्न होने वाले विचारों के मतभेद में यह अपने को सुरक्षित रख सकती है । १९५३ के बाद भारत और रूस के बीच आर्थिक सम्बन्ध उत्तरोत्तर विकसित होते गये । रूस मुख्यतः भारत को भारी उद्योगों के ऐसे कारखाने स्थापित करने में सहयोग दे रहा है, जिनके बारे में पश्चिमी देशों का सहयोग हमारे लिये लाभदायक शर्तों पर सुलभ नहीं है। निःशस्त्रीकरण के क्षेत्र में भी सोवियत संघ और भारत के दृष्टिकोण में काफी समानता रही है ।

वर्तमान समय में रूस और अमेरिका दोनों का प्रयास है कि वे भारत को अपने प्रभाव क्षेत्र में रखे । इसलिये लोहिया जी चाहते थे कि भारत को रूस व अमेरिका से समान रूप से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने का प्रयास करना चाहिये, उसे किसी एक देश के प्रभाव में नहीं जाना चाहिये । उन्होंने कहा- मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि विदेश नीति के किसी बड़े उद्देश्य में न रूस और न अमेरिका ही समझ-बूझ के साथ और व्यवस्थित ढंग से कोई मदद कर सकता है । जब यह उनके राष्ट्रीय हित में हो और तभी उसी हद तक वे ऐसा कर सकते हैं, लेकिन भारत की विदेश नीति को दो उद्देश्यों को लेकर चलना सीखना होगा । एक रचनात्मक और दूसरा नकारात्मक । नकारात्मक रूप में उसे सीखना होगा कि दोनों में से किसी को भी अकारण चिढ़ाये नहीं, सामान्य शिष्टाचार बरते, ऐसे मामलों में टाँग न अड़ाये जिससे उसे मतलब नहीं और सबसे अधिक वामपंथी या दक्षिणपंथी दुनिया के किसी गुटों भरे भ्रम के पीछे अनु पड़ोसियों की शक्ति बढ़ा कर राष्ट्र की शक्ति कमजोर न करे ।[1]

लोहिया जी चाहते थे कि संयुक्त राष्ट्र और रूस से हमारे सम्बन्धों की मधुरता इस पर निर्भर होनी चाहिये कि वे किस सीमा तक पिछड़े हुए राष्ट्रों को एक सशक्त गणतंत्र बनाने में कहाँ तक बाधा नहीं डालते हैं । इंग्लैण्ड के साथ हम मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध तभी रखेंगे जबकि वह हमारे सहायक बने

- -

१- डा०राममनोहर लोहिया : लोकसभा में लोहिया, भाग-७, पृष्ठ-३३०

के मार्ग के बाधाओं को डालना बंद कर देता है । इसी मार्ग से एक विश्व संघ बनेगा ।[१]

लोहिया जी ने सदैव विदेशों के साथ भारत के अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया । मधु लिमये ने लिखा है कि - हमारे नेता स्व० डा० लोहिया को २७ साल की उम्र में वैदेशिक विभाग का सचिव नियुक्त किया गया। उस जमाने में डा० राममनोहर लोहिया ने विश्व के जितने प्रगतिशील आंदोलन थे, उनके साथ राष्ट्रीय कांग्रेस के रिश्ते स्थापित किये थे । इतना ही नहीं फिजी, मारिशस जैसे देशों के प्रवासी भारतीय हैं, वेस्टइंडीज इण्डियन्स उनकी संस्थाओं के साथ डा० लोहिया जी ने नाता-रिश्ता जोड़ा और आज तक इन देशों के साथ अपने अच्छे रिश्ते रहे हैं ।[२]

मधु लिमये जी ने आगे कहा है - पिछले ३३ साल की अगर बात करेंगे तो, विदेश नीति के बारे में जानकारी रखने वाले और उस पर अधिकार से चर्चा करने वाले, मेरी राय में दो ही राजनेता निकले हैं । एक जवाहरलाल नेहरू और दूसरे डा० राममनोहर लोहिया ।[३]

लोहिया जी ने भारत के सामने विदेश नीति के जो तथ्य और आदर्श प्रस्तुत किये, यदि उनके आधार पर भारत अपनी विदेश नीति बनाये तो यह अवश्य अपनी विदेश नीति में सफल होगा और उससे विश्व के विभिन्न राष्ट्रों से मधुर सम्बन्ध स्थापित होंगे ।

- -

१- डा० राममनोहर लोहिया - मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ-३६६
२- मधु लिमये - भारतीय राजनीति का नया मोड़, पृष्ठ-४७-४८
३- वही , पृष्ठ-४८

-: ० :-

अध्याय १०

निष्कर्ष

-: निष्कर्ष :-

लोहिया जी एक महान देशभक्त, स्वतंत्रता संग्राम के अग्रण्य नेता, मौलिक विचारक और क्रान्तिकारी व्यक्ति थे। उनका व्यक्तित्व अनूठा, विविधताओं से परिपूर्ण और बहुमुखी प्रतिभाओं से सम्पन्न था। वे स्वयं विवाद का विषय रहते थे और नये-नये विवाद खड़े करने में रस लेते थे। उन्होंने राष्ट्र के जीवन को एक नई दिशा देने का यत्न किया, वह एक नये राज्य और नये शासन के संदेशवाहक और संयोजक थे। उनके विचारों से किसी को मतभेद हो सकता है किन्तु दलितों के लिये, पीड़ितों के लिये उनके हृदय में जो अग्नि जलती थी, वह उनके निकट आने वाले को बिना झुलसाये, बिना आलोकित किये नहीं रहती थी।

लोहिया जी गांधी जी के अनुयायी थे लेकिन वे रूढ़िवादी अर्थ में गांधीवादी कतई नहीं थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से विचार व्यक्त किया था कि गांधीवादी या मार्क्सवादी होना मूर्खता है और किसी एक व्यक्ति के विचारों को कर्म या चिंतन का केन्द्र नहीं बनाया जाना चाहिये। इसी तरह लोहिया जी गांधी विरोधी या मार्क्स विरोधी भी नहीं थे। वस्तुतः उन्होंने मार्क्सवाद और गांधीवाद को भारत की यथार्थ समस्याओं के सन्दर्भ में समाजवाद की पद्धति और अपने चिंतन के विकास क्रम में सहायक रूप में इस्तेमाल किया था। खासतौर पर गांधी जी के जीवन, कर्म और चिंतन का उन पर गहरा प्रभाव था। गांधी जी पहले व्यक्ति थे जिन्हें भारत की समस्याओं का यथार्थ बोध था और गांधी के बाद लोहिया पहले राजनीतिक विचारक थे जिनका सम्पूर्ण सोच उन्हीं यथार्थ समस्याओं से सम्बद्ध था। लोहिया जी ने गांधी जी को सही अर्थों में एक मानवतावादी और समाजवादी के रूप में ग्रहण किया और उनके अधूरे या निर्गुण सिद्धांतों तथा मौलिक अवधारणाओं को संशोधित और परिवर्धित कर पूर्ण या सगुण रूप देने का प्रयत्न किया। संक्षेप में लोहिया जी ने गांधीवाद को सैद्धांतिक या शास्त्रीय आधार प्रदान किया। उन्होंने एक सूत्र मार्क्स से और एक सूत्र गांधी से लेकर उसकी रस्सी बनाने की मानसिक कलाबाजी नहीं की बल्कि रेशा समान कपड़ा बुनने का प्रयत्न किया

जिसे समाजवाद के शारीरिक ढांचे पर सही तरीके से पहना जा सके। इसलिये लोहिया जी को गांधी जी का विकासोन्मुख अनुयायी भी कहा गया।

लोहिया जी ने गांधीवाद के सार (निर्गुण सिद्धांत) को ग्रहण किया, उसके ठोस प्रतीक (चरखे) को त्याग दिया उन्होंने विकेन्द्रीकरण की गांधीवादी अवधारणा को तर्कसंगत सैद्धांतिक आधार प्रदान किया और शक्ति से संचालित, "छोटी इकाई मशीन" का सिद्धांत प्रतिपादित किया।

लोहिया जी को गांधी जी के अहिंसा के सिद्धांत में विश्वास तो था लेकिन वर्ग सहयोग और पूंजीपतियों के हृदय परिवर्तन में उनकी आस्था नहीं थी। उनको अहिंसक जनसंघर्ष और क्रांति की निरन्तरता में विश्वास था। इसलिये उन्होंने गांधी जी के सत्याग्रह के सिद्धांत को सिविल नाफरमानी (नागरिक-अवज्ञा) के रूप में विकसित किया था। लोहिया जी ने गांधी जी के सत्याग्रह के सिद्धांत को स्वीकार किया और इस सिद्धांत से प्रभावित होकर अपने जीवन-भर के अन्याय के खिलाफ लड़ते रहे। उन्होंने अहिंसा को स्वीकार करते हुए और सत्याग्रह के सिद्धांत को अन्याय के खिलाफ अपना आधार बनाया। लोहिया जी का कर्मक्षेत्र विस्तृत था। एक ओर उन्होंने गोवा में सत्याग्रह किया तो दूसरी ओर नेपाल भी उनकी कर्मभूमि था। अमरीका में सत्याग्रह किया तो म्यूनिसिपिया में भी रंगभेद को लेकर सत्याग्रह किया। लोहिया जी का विचार था कि पूंजीपतियों के बजाय शोषित और चेतनाहीन जनता का हृदय परिवर्तन ज्यादा जरूरी है। अन्याय के अंत की प्रक्रिया में अगर पूंजीपतियों का हृदय भी परिवर्तित हो जाता तो वह उनको स्वीकार्य था।

लोहिया जी का गांधीवादी होने का अपना जो भी दावा हो लेकिन गांधी जी की अधिक बातों और विचारधाराओं का अपने कार्यक्रमों और आचरण का समन्वय उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन गया था। शायद ही अपने देश के अन्दर शुद्ध राजनीति में रहते हुए किसी भी राजनेता ने गांधी जी के विचारों को उतना मूर्त रूप दिया हो जितना कि अकेले लोहिया जी ने दिया।

लोहिया जी ने गांधीवादी जन-आन्दोलन को नई दिशा दी थी। उन्होंने अहिंसा, सत्याग्रह, अंग्रेजी विरोध, स्वदेशी, विकेन्द्रीकरण जैसी विचार-धाराओं को पुनर्जीवित किया। स्वतंत्रता के बाद उन्होंने समता की क्रांति की कोशिश की। उन्होंने गांधी जी के अस्पृश्यता निवारण हरिजनों का मंदिर में प्रवेश, नारी व पिछड़े वर्ग के उद्धार व उत्थान, नर-नारी समता और साम्प्रदायिकता आदि के सपने को पूरा करने का प्रयत्न किया। भाषा, जाति व गरीबी के सवालों को मिला कर उन्होंने गांधीवादी विचारधारा को एक नई दृष्टि दी। इस दृष्टि से लोहिया जी गांधी जी के विकसित उत्तराधिकारी साबित हुए। गांधी जी के बाद देश में जो पीड़ित वर्ग है, पिछड़ा वर्ग है, हरिजन वर्ग है उसके उत्थान के लिये और समाज में समान अधिकार का दर्जा दिलाने के लिये जितना काम लोहिया जी ने किया उतना आज तक किसी ने नहीं किया।

भाषा और जाति के मसले पर लोहिया जी गांधी जी से आगे गये। भाषा का सवाल उन्होंने गरीबी से जोड़ा और जाति का देश के पिछड़ेपन से। उनके मत से ये दोनों देश की बुनियादी समस्यायें हैं। देशी भाषा के बिना देश बोल नहीं सकता और जाति प्रथा की समाप्ति के बिना एक समाज, एक जाति, एक राष्ट्र का भाव पनप नहीं सकता। इन प्रश्नों को लोहिया जी समाजवाद का अंग बनाकर समाजवादी चिंतन में अलग भारतीय आयाम प्रदान करते हैं।

लोहिया जी एक अहिंसक क्रांतिकारी थे जबकि मार्क्स की क्रांति का अर्थ मूलतः हथियारी क्रान्ति से है। मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और इतिहास के आर्थिक आधार तथा वर्ग संघर्ष को आधार बनाकर अपने दर्शन को तैयार किया है। इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या और वर्ग-संघर्ष पर जोर के कारण मार्क्स मात्र सर्वहारा वर्ग के नेता थे किन्तु लोहिया जी वर्गों के नेता उस अर्थ में थे कि वे न केवल सर्वहारा वर्ग की मुक्ति चाहते थे बल्कि प्रत्येक प्रकार के पीड़ितों के प्रति उनकी सहानुभूति थी। लोहिया जी मुख्यतः रंगविरोध की नीति का विरोध करने वाले नेता थे। जबकि

मार्क्स इस प्रकार के नेता नहीं थे । इस प्रकार लोहिया जी मार्क्स की अपेक्षा अधिक किन्तु गांधी की अपेक्षा कम मानवतावादी थे । मार्क्स ने अपने एक व्यवस्थित दर्शन का विकास किया था । लोहिया जी ने मार्क्स की तरह विचार दर्शन नहीं दिया ।

लोहिया जी ने अन्याय का विरोध करने के लिये सिविल नाफरमानी (नागरिक अवज्ञा) या सत्याग्रह पर जोर दिया जबकि मार्क्स ने अन्याय का विरोध करने के लिये इस प्रकार का कोई हथियार या उपाय नहीं बताया । मार्क्स के सिद्धांत आर्थिक क्षेत्र से सम्बन्धित है लेकिन लोहिया जी ने सामाजिक, आर्थिक , राजनीतिक , अन्तर्राष्ट्रीय सभी पक्षों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं ।

मार्क्स विचारक और दार्शनिक थे , वे नेता और विचारों के प्रयोक्ता कम थे । उनके विचार मुख्यत: पुस्तकालयों से बने हैं । इसके विपरीत लोहिया जी नेता थे , वे न केवल विचारों के प्रयोक्ता थे बल्कि जनता की प्रयोगशाला में ही उनके विचारों का निर्माण हुआ है । मार्क्स सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद स्थापित करना चाहता था और मानता था कि उद्योग - सापेक्ष सभ्यता के साधन है जो प्रतिगामी और पीछे जाने वाले हैं , बड़ी मशीनें साम्यवादी सभ्यता की निर्मात्री होती हैं । जबकि लोहिया जी आर्थिक व राजनैतिक दोनों क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण के पक्ष में थे । वे छोटी मशीन - योजना की व्यवस्था करना चाहतेथे ।

लोहिया जी एक साथ चिंतक और कर्मवीर थे । वह कहा करते थे कि समाजवाद की आवश्यकता की ऐसी समझ जो सही होने के बावजूद भी निर्गुण व बांझ हो, उन्हें संतुष्ट नहीं करती । इस लक्ष्य के लिये उन्होंने कर्म के ठोस व सगुण रूप व तरीके खोजने की अनवरत चेष्टा की । इस लक्ष्य की प्राप्ति में जो सब तर्क-वितर्क उठते हैं , वे भी लोहिया जी के पूर्ण कर्म और त्यागमयी जीवन की तरह ही कर्म और प्रगति का मार्ग प्रशस्त करते हैं ।

लोहिया जी का समानता सम्बन्धी विचार उत्तम है । उन्होंने

समाज में व्याप्त प्रत्येक प्रकार की असमानताओं को दूर करने का प्रयत्न किया क्योंकि उनका विचार था कि समाज में समानता आने पर ही समाजवाद की स्थापना सम्भव हो सकेगी । उन्होंने समाज में व्याप्त अन्याय को दूर करने के लिये सिविल नाफरमानी पर जोर दिया जिससे समाज में पूर्ण समता स्थापित की जा सके । लोहिया जी का पूर्ण समता सम्बन्धी विचार भले ही स्वप्नदर्शी क्यों न हो परन्तु वे आशावादी विचारक थे इसलिये उन्होंने आदर्श की एक रूपरेखा प्रस्तुत की और आदर्श को यथार्थ में लाने की पद्धति भी बताया। अब यह आने वाले युग पर निर्भर है कि वह आदर्श को लाने में कहां तक सफल हो सकते हैं।

विश्व के महान चिंतकों में लोहिया ही शायद पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने हमारा ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट किया कि पूंजीवादी शोषण को साम्राज्यवादी व्यवस्था से अलग करके पहचाना नहीं जा सकता और उन्होंने शोषकों तथा सर्वहारा के बीच वास्तविक वर्ग विभाजन को विश्व की साम्राज्यवादी व्यवस्था के सन्दर्भ में देखा । लेकिन यह दुःख की बात है कि समाजवादियों ने अपने आन्दोलन को कभी विश्व स्तर पर नहीं जोड़ा । लोहिया के सच्चे अनुयायियों को अन्तर्राष्ट्रीय शोषण के खिलाफ संघर्ष करना चाहिये ।

मार्क्सवाद के बारे में लोहिया जी की एक बुनियादी आलोचना कम्युनिस्ट देशों में व्यापक गैर-बराबरी से सम्बन्धित है । मार्क्सवादी सपने की इस व्यवहारिक असफलता ने लोहिया जी को सभी तरह के सपनों के बारे में थोड़ा शंकालु बना दिया था और परिणाम स्वरूप उन्होंने एक ओर सम्पूर्ण और सम्भव बराबरी को समझने की कोशिश की , दूसरी ओर आदमी की हालत की बेहतरी के लिये शाश्वत संघर्ष चलाते रहने की नियति , सिविल नाफरमानी पर जोर दिया। मार्क्सवाद के बारे में उनकी दूसरी बुनियादी आलोचना तानाशाही से सम्बन्धित है । इस समस्या का निदान उन्होंने राजनीतिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण और चौखम्भा राज्य की परिकल्पना में तथा आर्थिक क्षेत्र में सहकारिता और लोकतांत्रिक प्रशासन तथा टेक्नोलोजी के क्षेत्र में छोटी मशीन की परिकल्पना में निकाला ।

लोहिया जी ने अपने अन्तर्राष्ट्रवाद सम्बन्धी विचारों में विश्व-

नागरिकता , विश्व संसद , विश्व सरकार , विश्व बाजार , युद्ध विरोध, अणु बमों के निर्माण का विरोध, विश्व के आर्थिक पुनर्निर्माण तथा अन्तर्राष्ट्रीय विकास के प्रावधानों तथा नियमों की व्याख्या की है । उन्होंने राष्ट्रों के मध्य समानता स्थापित करने के लिये विश्व सरकार की स्थापना के विचार को व्यक्त किया । विश्व सरकार लोहिया जी के चौखम्भा राज्य का पोषक पाया है तथा यही समाजवादी व्यवस्था के विकास की चरम परिणति है । यद्यपि लोहिया जी का विश्व सरकार की स्थापना का विचार स्वप्नदर्शी है, इसे व्यवहार में लाना कठिन होगा । मानव के विचारों की भिन्नता तथा अपने तरीके से रहने की इच्छा इस संगठन को नहीं बनने देगी । उनका विश्व-सरकार की स्थापना का विचार सिद्धांत रूप में अति-उत्तम है ।

लोहिया जी में एक अन्तर्राष्ट्रीय नेता के सभी गुण विद्यमान थे क्योंकि उन्होंने भारत से अलग नेपाल की राजशाही के खिलाफ विद्रोह का बिगुल फूंका , गोवा में पुर्तगालियों के औपनिवेशिक शासन के विद्रोह का झण्डा खड़ा किया और जेल की भीषण यातनायें सहीं । लोहिया जी ने अमेरिका में जातिभेद एवं रंगभेद के खिलाफ प्रदर्शन कर अपने आप को संसार के सबसे शुद्ध राष्ट्र में गिरफ्तार कराया । गांधी को छोड़कर विदेश में किसी भारतीय नेता ने इतनी सफलता पूर्वक अपने आचरण से संसार को विमोहित नहीं किया । हम लोहिया जी में संसार के प्रति एक विश्वास एवम् अटूट आस्था पाते हैं ।

लोहिया जी ने यह भी व्यक्त किया कि उनकी दो इच्छायें हैं पहली यह कि बिना पासपोर्ट के दुनिया भर में कहीं भी घूमने की छूट हो और कहीं भी मरने की आजादी हो । इन चीजों को चाहकर लोहिया जी ने अपने को विश्व नागरिक का रूप दिया । लोहिया जी एक ओर विश्व नागरिकता के लिये सतत् प्रयत्नशील थे तो दूसरी ओर वे यह भी चाहते थे कि व्यक्तियों की निष्ठा एवम् मूल्यों में कमी नहीं की जाये ।

लोहिया जी न केवल समाजवादी आन्दोलन के एक अग्रगामी नेता थे , न केवल संसद के एक प्रमुख अभिवक्ता थे बल्कि संसद के एक सजग प्रहरी थे

उनके भाषण सरकारी निर्णयों के लिये एक मजबूत अंकुश का काम करते थे।

लोहिया जी जनतंत्र को सफल बनाने के लिये जनता के प्रतिनिधियों की योग्यता को विशेष महत्व देते थे। वे मानते थे कि अच्छे प्रतिनिधियों के माध्यम से ही जनता को सही प्रतिनिधित्व मिल सकता है। लोहिया जी के मन में जन-जन के प्रति अपार स्नेह की भावना हम पाते हैं जो आज के राजनीतिज्ञों में नहीं के बराबर है। अगर इस तरह की बात आज के राजनीतिज्ञों में हो जाये तो शायद भ्रष्टाचार स्वयं ही बहुत कम हो जाये।

भाषा का प्रश्न भी देश के जनजीवन को जो आंदोलित कर रहा है, उस पर भी लोहिया जी का विचार अधिक विचारणीय है। वे भारत जैसे निर्धन एवम् विकासशील देश में राष्ट्रभाषा के रूप में ऐसी भाषा को स्थापित करना चाहते थे जो देश की बहुसंख्यक आबादी आसानी से पढ़ व समझ सके। ऐसी भाषा के रूप में उन्होंने हिन्दी को स्थापित करना चाहा। लोहिया जी ने देश के निर्माण में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान बताया है। वे अंग्रेजी भाषा के बहिष्कार द्वारा और अपनी लोकभाषा के माध्यम से देश के विकास का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

लोहिया जी ने जाति-प्रथा पर भी उतना ही जबर्दस्त प्रहार करने की सिफारिश की जितना वर्ग संघर्ष पर प्रहार करने की। इस तरह मौलिक चिंतन का श्रीगणेश राजनीति की इस विकटतम स्थिति में, जो भारत में जाति व्यवस्था के रूप में देखने को मिलता है, उसका लोहिया जी ने जो सूत्रपात किया उसी का परिणाम है कि आज जाति-व्यवस्था धीरे-धीरे अपना असली रूप एवं दूषित रूप अब धीरे-धीरे खोती जा रही है।

लोहिया जी स्त्री को समाज का पिछड़ा वर्ग मानते थे और उसको भी कुछ विशेष सुविधायें दिये जाने की बात करते थे। वस्तुतः स्त्री-पुरुष एक गाड़ी के दो पहियों की तरह हैं जब तक दोनों को समान धरातल पर रखकर उनके विकास की योजनायें नहीं बनाई जाती, नारियों का विकास असम्भव है। आज लोहिया जी के विचारों के अनुरूप कम से कम स्त्रियों को वे सभी अधिकार

मिलने चाहिये जिनका उपभोग पुरुष कर रहे हैं ।

लोहिया जी ने साम्प्रदायिकता की समस्या के निराकरण का भी प्रयत्न किया । साम्प्रदायिकता के उन्मूलन के लिये आज गांधी और लोहिया जैसे व्यक्ति की आवश्यकता है जो जान को जोखिम में डालकर इस विभीषिका से निपटने की क्षमता रखता हो । गांधी जी ने साम्प्रदायिकता के लिये उपवास किया और लोहिया जी अपनी जान जोखिम में डालकर दंगाग्रस्त इलाकों में पैदल घूमे। अब किसमें इतनी शक्ति है जो इन महामारियों का इलाज कर सके । जान जोखिम में डालने की बात तो दूर रही , आज इस भोग के युग में केवल नेताओं के भोग का समय है । गांधी और लोहिया की सादगी आज राजनीति में नहीं है ।

लोहिया जी प्रजातंत्र की सफलता के लिये प्रतिनिधियों की योग्यता बढ़ाने के साथ-साथ जागृत जनता आवश्यक समझते थे इसलिये वे जनता को शिक्षित करना चाहते थे । वे शिक्षा के क्षेत्र में समानता लाने के लिये प्राइमरी व कान्वेन्ट स्कूल के पाठ्यक्रम की विभिन्नताओं को दूर करने के पक्ष में थे । वे समस्त देश में एक ही प्रकार की शिक्षा प्रणाली लागू करना चाहते थे ।

लोहिया जी ने समाजवाद , सामाजिक न्याय और बराबरी के लिये अनथक प्रयत्न किया। उनकी तरह सोचने वाले प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह इन आदर्शों के अनुरूप निर्णय करे ताकि समाज अधिक समता, न्याय और कुशलता हासिल करने की तरफ बढ़े । लोहिया जी ने निम्न वर्ग की सुख-सुविधाओं के लिये जो प्रयत्न किये समाज सुधार में उनका प्रयोग सदा दिशा-निर्देशक का होगा । उन्होंने स्त्रियों , हरिजनों और शूद्रों को चेतना देकर सामाजिक परिवर्तन का जो मंत्र फूंका उसके लिये देश सदैव उनका ऋणी रहेगा।

लोहिया जी ने देश के सर्वांगीण विकास के लिये विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता पर बल दिया । वे केन्द्र की शक्ति को सीमित करके उसे स्थानीय संस्थाओं में वितरित करने के पक्ष में थे । वे राज्य शक्ति को चौखम्भा राज्य के सिद्धांत के अनुसार दो पायों की जगह चार पायों में वितरित करना चाहते थे।

उन्होंने चौखम्भा व्यवस्था के द्वारा देश की प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया और
जनकल्याण की भावना का विकास किया । चौखम्भा राज्य से सम्बन्धित
विचार न केवल राजनीतिक क्षेत्र में लोहिया जी द्वारा एक वैज्ञानिक और
महत्वपूर्ण कदम है अपितु यह सर्वसाधारण के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने का
अद्भुत एवं नवीन मौलिक प्रयास भी है ।

लोहिया जी ने राजनीतिक, आर्थिक और प्रशासनिक क्षेत्र में विकेन्द्री-
करण की व्यवस्था पर बल दिया है । वे राजनीतिक क्षेत्र में केन्द्र की शक्तियों
को सीमित करके उसे प्रांत, जिला व गांवों में वितरित करना चाहते थे । वे
राजनैतिक विकेन्द्रीकरण के द्वारा व्यक्ति को शासन में भाग लेने का अवसर
देना चाहते थे । वे विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था के द्वारा गांवों को आर्थिक
क्षेत्र में स्वावलम्बी बनाना चाहते थे । इस व्यवस्था में आर्थिक व राजनैतिक
दोनों ही प्रकार की सर्वोच्च शक्तियाँ केन्द्र व संघ के पास रहेंगी, साथ ही
स्थानीय क्षेत्रों की उन इकाइयों में बंट जायेंगी जो वहां के निवासियों से सम्ब-
न्धित है । वे प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण के आधार पर शासकों के अत्याचारी
स्वरूप पर नियंत्रण रखना चाहते थे ।

लोहिया जी की समग्र राजनीतिक आस्था की अवेतना का संवि-
श्लेषण करते हुए निष्कर्ष निकलता है कि उनकी राजनीतिक विचारधारा
मानव मूल्यों को संस्थापित करने में थी । वे स्वस्थ राजनैतिक मूल्यों के
पक्षधर थे । वे चरित्र को राजनीति में सर्वाधिक महत्व देते थे ।

लोहिया जी की मानव में गहरी आस्था थी । वे ईश्वर से
मानव को अलग नहीं मानते थे । उनकी राजनीति भेदभावों से दूर सामान्य
जनों के दुख दर्द की राजनीति थी । वे लोकतंत्र में सामान्य जनों की सुख-
सुविधाओं का ख्याल रखने का समर्थन करते थे । वे राजनीतिज्ञों को लोकतंत्र
का सजग प्रहरी मानते थे । इस कारण वे राजनीतिज्ञों को कुशल व चरित्र
वान बनाने के पक्ष में थे । उनकी राजनीति एक देश की सीमा से आबद्ध नहीं
थी । लोहिया जी आशावादी राजनीतिज्ञ थे । उन्होंने जब किसी विषय
पर आन्दोलन उठाया, उसके पीछे उनकी राजनीति तथा समाज व्यवस्था की

प्रभावित करने का उनका मंतव्य रहा ।

सर्वोपरि बात जो लोहिया जी की राजनीति में थी और जो उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग थी, वह यह कि वे अपने सिद्धांतों के बड़े पक्के थे और किसी भी स्थिति में सिद्धांतों से समझौता करने को तैयार नहीं रहते थे। चाहे इसके लिये कितना भी बड़ा बोझ क्यों न उन्हें झुकाना पड़े। सिद्धांत के प्रति कठोरता तथा राजनीतिक प्रलोभनों के सामने अडिग रहने की भावना उनके व्यक्तित्व की खास विशेषतायें थी। उनकी राजनीतिक समझ तथा सिद्धांत प्रियता से उनके विरोधी भी उनके प्रशंसक बन जाते थे।

एक बात लोहिया जी की राजनीति में जो विशेष ढंग की थी वह यह कि वे आर्थिक स्थिति को देश की स्थितियों के अनुरूप बनाना चाहते थे और उसके लिये वे धन प्राप्ति भी देश में ही करना चाहते थे। जहाँ अन्य समाज-सुधारकों एवं राजनीतिक सिद्धांतवेत्ताओं को राजनीति में सिद्धांत को बता दिया जाता है किन्तु उसके लिये धन कहाँ से प्राप्त हो और किस तरह की आर्थिक मितव्ययता बरती जाये, यह सब वे नहीं बताते किन्तु लोहिया जी में यही बात थी कि वे न केवल खर्च करने के लिये कृषि योजनायें, भूमि सेना की ही मौलिक कल्पना करते थे अपितु उसके लिये धन प्राप्ति के आधार भी खोज निकालते थे।

लोहिया जी की सबसे मौलिक देन है कि वे लघु उद्योगों द्वारा औद्योगीकरण के पक्ष में थे। इससे भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश में बड़े उद्योगधन्धों एवं मशीनों के द्वारा औद्योगीकरण करने के फलस्वरूप जो विशाल बेरोजगारी के रूप में महामारी फैलायेगा उससे देश बच पाता। अधिक से अधिक लोगों को रोजगार मिले और देश सभी को साथ लेकर संपन्नता और प्रगति के पथ पर आगे बढ़े, तभी देश का भविष्य उज्ज्वल होगा और देश का कल्याण होगा। ये छोटी मशीन योजना से ही सम्भव है। छोटी मशीन योजना भारती परिस्थितियों के अनुकूल है जिससे गरीबों की रोजगारी बढ़ती है। जापान छोटी मशीन योजना से ही सम्पन्न हो सका है। छोटी मशीन अर्थ बेकारी के लिये अति उत्तम है।

लोहिया जी ने अपने समय की भारतीय राजनीति के दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया । वे गरीबों को उठाने के लिये संसद में और संसद के बाहर सदैव संघर्ष करते रहे । उनकी राजनीति गरीबों को उठाने की राजनीति थी । वे भारतीय राजनीति में व्याप्त जातिभेद , साम्प्रदायिकता , क्षेत्रीयता को समाप्त करना चाहते थे । वे समाज में व्याप्त कुरीतियों के प्रति सजग थे उनका विचार था कि जब तक समाज की पुरातन पंथी व्यवस्थाओं को समूल नष्ट नहीं कर दिया जाता तब तक हमारे देश में शुद्ध राजनीतिक जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती । उन्हें सत्ता की राजनीति पसंद नहीं थी । उनकी राज-नीति स्वार्थ से रहित तथा संघर्षमय जीवन की राजनीति थी ।

लोहिया जी ने भारतीय राजनीति की नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व प्रक्रिया के पांच सिद्धांत बतलाये - १- समता २- प्रजातंत्र ३ अहिंसा ४- विकेन्द्रीकरण ५- समाजवाद ।

वे मानते थे कि राजनीति का ढांचा उपर्युक्त सिद्धांतों के आधार पर आधारित होना चाहिये तभी सम्पूर्ण मानवता का कल्याण होगा ।

लोहिया जी का एशियायी राजनीति का विचार अधिकांशतः एक मौलिक विचार है और किसी भी विचारक ने इसे इतना महत्व नहीं दिया है जितना कि लोहिया जी ने दिया है । श्री नेहरू ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस ओर कुछ ध्यान दिया था परन्तु कालान्तर में घरेलू समस्याओं में लिप्त हो जाने के कारण वह भी इस ओर ध्यान नहीं दे सके । नेहरू जी अन्तर्राष्ट्रीयता में विश्वास करते थे अतः उन्होंने एशियायी राजनीति की प्रासंगिकता को विशेष महत्व नहीं दिया और उनका निर्गुटता का आन्दोलन सारे पिछड़े हुए देशों में फैला है जिससे कि वह अधिक क्रियाशील नहीं हो रहा है । यदि भारत एशियायी राजनीति का अनुसरण करता तो वह अधिक प्रभावशाली होता ।

लोहिया जी ने भारतीय विदेश नीति का लक्ष्य मुख्यतः भारत की सुरक्षा और समृद्धि माना है । उन्होंने भारत के लिये साम्यवादी व पूंजीवादी

नीति का विरोध किया और तटस्थता की नीति का समर्थन किया। वे विदेश नीति का आदर्श शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व में मानते थे। वे विश्व के समस्त राष्ट्रों के साथ भारत के सम्बन्ध मित्रतापूर्ण चाहते थे। उन्होंने अनेक विदेशी राष्ट्रों के साथ भारत के सम्बन्ध मधुर बनाने का प्रयास किया। वे विदेश नीति के बारे में विशेषकर जानकारी रखते थे।

लोहिया जी का सारा जीवन उनके प्रिय आदर्शों के लिये, दबे और वंचित लोगों के लिये संघर्ष था। उन्होंने हमारे स्वाधीनता संघर्ष में स्मरणीय भाग लिया, विशेषकर " भारत छोड़ो आन्दोलन " में और वे इस देश में समाजवादी आन्दोलन के जन्मदाताओं में से एक थे। उन्होंने देश में चलने वाले बहुसंख्यक जन-आन्दोलन में भाग लिया। यद्यपि वे राजस्थान के थे। और उनका कार्यक्षेत्र उत्तर था, किन्तु १९३५ में ही बंगाल में भी उनका काफी प्रभाव था। फिर गोवा में, नेपाल में, उत्तरी पूर्वी सीमांचल में और अन्य कितने ही स्थानों पर जहां उन्हें साहसपूर्ण नेतृत्व की आवश्यकता का अनुभव हुआ, वे बे-हिचक आगे आये।

लोहिया जी ने केवल विचार ही प्रस्तुत नहीं किये, वरन वे एक राजनेता भी थे। वे केवल एक दल के नेता नहीं थे बल्कि समूचे देश के नेता थे। उनकी मान्यता थी कि जो देश के हितों के विरुद्ध है वह अपने दल के हितों के विरुद्ध है। जितना बड़ी संख्या में प्रत्यक्ष सम्पर्क के द्वारा भारतीय-जनता के साथ उन्होंने सीधा सम्बन्ध बनाया। उतना निश्चय ही आधुनिक युग में किसी अन्य भारतीय नेता ने नहीं बनाया। इस प्रकार लोहिया जी एक केन्द्र थे जहां बौद्धिक जगत, राजनैतिक संगठन और जनजीवन तीनों मिलते थे।

-: o :-

संदर्भ सूची

-: सन्दर्भ सूची :-

डा०राममनोहर लोहिया की पुस्तकें -

१-	अंग्रेजी हटाओ -	गंगाप्रसाद तिवारी, चौखम्भा प्रकाशन ८।५, कमाठर मार्ग इन्दौर, १९८२
२-	अर्थशास्त्र मार्क्स के आगे-	लोकभारती प्रकाशन, १५९ महात्मा-गांधी मार्ग, इलाहाबाद, १९८०
३-	इन्टरवल ड्यूरिंग पोलिटिक्स-	राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, १९६५
४-	इतिहास चक्र -	उदर प्रकाशन, इलाहाबाद, १९५५
५-	क्रांति के लिये संगठन, भाग-१	नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, १९६३
६-	किसान समस्या और चौखम्भा - राज्य	रंजना प्रकाशन, इलाहाबाद
७-	खर्च पर सीमा -	विजय डालमिया कलकत्ता द्वारा प्रकाशित
८-	जातिप्रथा -	समता प्रकाशन प्रा०लि०पुर्वी लोहानीपुर, पटना, १९८१
९-	दि विठन्दू पामर	नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, १९५६
१०-	देश गरमाओ -	राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, १९७०

११- देश विदेश नीति के कुछ पहलू- समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, १९७०

१२- धर्म पर एक दृष्टि - समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, १९६२

१३- निराशा और सामयिक दौर- राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, १९६६

१४- नरम और गरम पंथ - राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, १९६६

१५- फ्रेगमेन्ट्स ऑफ ए वर्ल्ड माइन्ड- मैत्रायणी, १९ए राजेन्द्रलाल स्ट्रीट, कलकत्ता.

१६- मार्क्स, गांधी और सप्त क्रांति - प्रताप अंबेकर, राममनोहर लोहिया स्मृति केन्द्र ९०१ सिद्ध रत्नाकर, रत्नाकर हाउसिंग सोसाइटी बम्बई, १९८१

१७- मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म - राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय न्यास, सुल्तान बाजार, हैदराबाद, १९६३

१८- मर्यादित, उन्मुक्त, असीमित व्यक्तित्व और रामायण मेला- समता विद्यालय न्यास, सुल्तान बाजार, हैदराबाद, १९६६

१९- भारत में समाजवाद- समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, १९७३

२०- भारत विभाजन के अपराधी - राममनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, १९७०

२१- भारत चीन और उत्तरी सीमायें- नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, १९६५

२२- राज जिम्मेदारी की भावना और अनुशासन की समझ - राममनोहर लोहिया, समता न्यास, बेगम बाजार, हैदराबाद, १९७१

२३-	सगुण और निर्गुण-	राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, १९६९
२४-	सच, कर्म, प्रतिकार और चरित्र निर्माण का आह्वान	समाजवादी प्रकाशन, हिमायत नगर, हैदराबाद, १९६७.
२५-	सात क्रांतियां-	राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, १९६६
२६-	सुधारो अथवा टूटो -	समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद १९७१
२७-	समदृष्टि -	राममनोहर लोहिया, समता न्यास हैदराबाद, १९७०
२८-	समाजवाद की राजनीति-	राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, १९६९
२९-	समाजवाद की अर्थनीति -	समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, १९७३
३०-	समाजवाद का सगुण रूप -	प्रताप [illegible], राममनोहर लोहिया स्मृति केन्द्र शिव रत्नाकर, रत्नाकर हाउसिंग सोसायटी, बम्बई.
३१-	समाजवादी आन्दोलन का - इतिहास	राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय न्यास, बेगम बाजार, हैदराबाद, १९६९
३२-	हिन्दू बनाम हिन्दू -	समता [illegible], राममनोहर लोहिया स्मृति केन्द्र, १०१ शिव रत्नाकर, रत्नाकर हाउसिंग सोसायटी, बम्बई
३३-	हिन्दू और मुसलमान -	नवहिन्द प्रकाशन, बेगम बाजार, हैदराबाद, १९६३

३४- हिन्द पाक एका - राममनोहर लोहिया, समता न्यास हैदराबाद, १९७०

- लोहिया के लेख और वक्तव्य -

३५- "अविश्वास क्यों" - लोहिया : बहुआयामी व्यक्तित्व, राममनोहर लोहिया स्मारिका समिति, सी-२, पार्क रोड, लखनऊ, १९८४

३६- "कुछ का वैभव या सब का सुधार" - जन,दिसम्बर, १९६८ - जनेश्वर मिश्र सरयू कुटीर, मकापुर, इलाहाबाद

३७- "गांधीवाद, सम्पत्ति और सिविल नाफरमानी" जन,जनवरी ,१९७० - जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मकापुर,इलाहाबाद

३८- "दाम और जाति की नाइंसाफी" जन नवम्बर १९७० - जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मका पुर, इलाहाबाद.

३९- "न झूठ और न हत्या - जन नवम्बर १९७० - जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मकापुर, इलाहाबाद

४०- "नर-नारी समता और सिविल नाफरमानी" जन अगस्त १९७० - जनेश्वर मिश्र , सरयू कुटीर, मकापुर, इलाहाबाद

४१- "पूर्ण कौशल" जन मई, १९६४ - जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मकापुर, इलाहाबाद

४२- "बिना हथियारों की दुनिया और सात क्रांतियां - जन मार्च १९७० जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मकापुर, इलाहाबाद

४३- "मार्क्सवाद और समाजवाद" चौखम्भा चुनाव विशेषांक,जनवरी-१९६२ राममनोहर लोहिया,समता विद्यालय न्यास,हैदराबाद ,

४४- "भौगोलिक परिवर्तन" - जन० जनवरी-फरवरी १९६६
जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मकापुर,
इलाहाबाद

४५- "अंग्रेजी विदेशनीति" - चौखम्भा साप्ताहिक विशेषांक, १९६३
राममनोहर लोहिया समता विद्यालय
न्यास, हैदराबाद.

४६- "डा० लोहिया की चिट्ठी कुलमणि के नाम - २५-१-६७" - राष्ट्रवाणी, कानपुर १९७१-लोहिया
स्मृति अंक.

४७- "लोकसभा" - जन० अगस्त, १९६८ - जनेश्वर मिश्र
सरयू कुटीर, मकापुर,
इलाहाबाद.

४८- "लोकसभा" - जन० अगस्त। १९६९ जनेश्वर मिश्र,
सरयू कुटीर, मकापुर,
इलाहाबाद

४९- "लोकसभा-विधानसभा एक आइना है" - साप्ताहिक राष्ट्रवाणी, कानपुर
लोहिया स्मृति अंक, १९७१

५०- "वर्ण और योनि के दो कटघरे" - जन० गांधी शताब्दी अंक, सित०-अक्टू०
१९६९ जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर,
मकापुर, इलाहाबाद

५१- "विदेशनीति" - लोहिया: बहुआयामी व्यक्तित्व,
लोहिया स्मारिका समिति, बी-२
पार्क रोड, लखनऊ, १९७४

५२- "सत्याग्रह असली या रस्मी" - जन० सित०-अक्टूबर, १९७० जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, अल्लापुर, इलाहाबाद

५३- "सम्पत्ति और सिविल नाफरमानी" जन० जनवरी, १९७० - जनेश्वर मिश्र सरयू कुटीर, अल्लापुर, इलाहाबाद

५४- "समाजवादी सिद्धांत का धरातल" - समाजवादी आन्दोलन के दस्तावेज, सी०पी० ३९ प्रीतमपुरा, दिल्ली, [illegible] नागरी प्रिन्टर्स नवीन शाहदरा, दिल्ली, १९८५

५५- "स्वराज्य क्यों और कैसे" - लोहिया: बहुआयामी व्यक्तित्व, लोहिया स्मारिका समिति, बी-२ पार्क रोड, लखनऊ, १९८४

५६- "सिविल नाफरमानी" जन० अगस्त, १९७० - जनेश्वर मिश्र सरयू कुटीर, अल्लापुर, इलाहाबाद.

५७- "सोशलिस्ट सिविल नाफरमानी" जन० सित०-अक्टू० १९७० जनेश्वर मिश्र सरयू कुटीर, अल्लापुर, इलाहाबाद.

५८- "हिन्दुस्तान और पाकिस्तान" जन० जुलाई, १९६९ जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, अल्लापुर, इलाहाबाद.

५९- "हिन्दुस्तान और पाकिस्तान" - जन० अगस्त, १९६९, जनेश्वर मिश्र सरयू कुटीर, अल्लापुर, इलाहाबाद.

६०- हिन्दुस्तान और पाकिस्तान" जन० गांधी शताब्दी अंक सित०-अक्टू० १९६९ जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, अल्लापुर, इलाहाबाद

६१- "हत्यारे के बढ़ते हुए हाथ" - जन० दिसम्बर १९६६, जनेश्वर मिश्र सरयू कुटीर, अल्लापुर, इलाहाबाद

६३- लोकसभा में लोहिया,भाग-१ राममनोहर लोहिया,समता विद्यालय न्यास, बेगम बाजार,हैदराबाद,१९७१

६४- लोकसभा में लोहिया भाग-२ राममनोहर लोहिया,समता विद्यालय न्यास, बेगम बाजार,हैदराबाद,१९७२

६५- लोकसभा में लोहिया,भाग-३ राममनोहर लोहिया,समता विद्यालय न्यास, बेगम बाजार,हैदराबाद,१९७२

६६- लोकसभा में लोहिया भाग-५ राममनोहर लोहिया,समता विद्यालय न्यास, बेगम बाजार,हैदराबाद,१९७३

६७- लोकसभा में लोहिया,भाग-६ राममनोहर लोहिया,समता विद्यालय न्यास, बेगम बाजार,हैदराबाद,१९७४

६८- लोकसभा में लोहिया,भाग-७ राममनोहर लोहिया ,समता विद्यालय न्यास बेगम बाजार,हैदराबाद,१९७४

६९- लोकसभा में लोहिया,भाग-८ राममनोहर लोहिया,समता विद्यालय न्यास, बेगम बाजार,हैदराबाद,१९७४

७०- लोकसभा में लोहिया भाग-९ राममनोहर लोहिया,समता विद्यालय न्यास बेगम बाजार, हैदराबाद,१९७५

७१- लोकसभा में लोहिया,भाग-१० राममनोहर लोहिया,समता विद्यालय न्यास बेगम बाजार,हैदराबाद,१९७५

७२- लोकसभा में लोहिया-भाग-११ राममनोहर लोहिया,समता विद्यालय न्यास ,बेगम बाजार,हैदराबाद,१९८५

७३- लोकसभा में लोहिया,भाग-१२ राममनोहर लोहिया,समता विद्यालय, न्यास, बेगम बाजार,हैदराबाद,१९८६

- डा० लोहिया पर पुस्तकें -

७४- हनुमान वेलकर : - लोहिया सिद्धांत और कर्म, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, १९६३

७५- ओंकार शरद : - लोहिया के विचार - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६९

७६- ओमप्रकाश दीपक: - लोहिया अध्यात्म भावना, समता अध्ययन न्यास, (प्रकाशन विभाग) मुद्रित को-आपरेटिव हाउसिंग सोसायटी, १९वाँ रास्ता, जयप्रकाश नगर, गोरेगांव (पूर्व) बम्बई, १९७८

७७- ब्रजकृष्ण नन्दन ठाकुर - डा० राममनोहर लोहिया के आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक विचार, एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०, रामनगर, नई दिल्ली, १९७९

७८- गणेश मंत्री : - मार्क्स, गांधी और सामयिक सन्दर्भ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नई दिल्ली, १९८३

७९- बा० रा० राजहंस: - भारत पाक महासंघ क्यों और कैसे ? प्रकाशक श्री० र० का० पटवर्धन, सुदीपन प्रेस, ४३०-३१ शनवार, पुना-२

८०- मधु लिमये : - चौखम्भा राज्य: एक रूपरेखा, समता प्रकाशन, कलकत्ता, १९७३

८१- मधु लिमये : - भारतीय राजनीति का नया मोड़, समता पुस्तकमाला ए-४५, न्यू फ्रेन्ड्स कालोनी, नई दिल्ली, १९८१

८२- मधु लिमये : - समस्यायें और विकल्प,
समता पुस्तकमाला, ए-४५
न्यू फ्रैन्ड्स कालोनी,
नईदिल्ली, १९८२

८३- मधु दण्डवते
(प्राक्कथन लेखक) - गांधी लोहिया और दीनदयाल,
दीनदयाल शोध संस्थान, ७ई,
स्वामी रामतीर्थ नगर, नईदिल्ली,
१९७८

८४- भगवानसिंह: - डा०राममनोहर लोहिया, समता
प्रकाशन बलिया, १९७२

८५- डा०यतीन्द्र वर्मा: - डा०लोहिया का अर्थदर्शन,
चित्रा प्रकाशन, ५८३/४,
शास्त्रीनगर, कानपुर-५, १९७६

८६- राजेन्द्र मोहन भटनागर - [illegible] लोहिया, किताबघर,
नईदिल्ली, १९८२.

८७- विनोद प्रसाद सिंह)
सुनील मिश्र) - समाजवादी आन्दोलन के दस्तावेज,
१९३४-५२, प्रतिभा प्रकाशन,
पो०बा० ३९, प्रीतमपुरा,
दिल्ली-३४, १९८५

- डा० लोहिया पर लेख -

८८- अनिल कुमार - गांधी और लोहिया जीवन और
चिंतन के स्तर पर, [illegible]
१९७७, बनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर,
मक्कापुर, इलाहाबाद

८९- ओमप्रकाश दीपक : 'नई सभ्यता का सपना' लोहिया: बहुआयामी व्यक्तित्व, लोहिया स्मारिका समिति, बी-२ पार्क रोड, लखनऊ, १९७४

९०- श्रीकान्त वर्मा : 'लोहिया के बगैर भारत' रविवार, मार्च १९७८, आनंद बाजार, प्रकाशन ६ तथा ९ प्रफुल्ल सरकार स्ट्रीट कलकत्ता.

९१- कन्हैयालाल डुंगरवाल : 'गांधी और लोहिया कानून की दुनिया में', जन०गांधी शताब्दी अंक, सित०-अक्टू० १९६९ जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मक्कापुर, इलाहाबाद

९२- कन्हैयालाल डुंगरवाल : 'डा०लोहिया जिनसे कम भी प्रभावित होते थे' जन०सित०-अक्टू०१९६९ जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मक्कापुर, इलाहाबाद.

९३- कन्हैयालाल डुंगरवाल : 'डा०लोहिया जिनसे कम भी प्रभावित होते थे' दैनिक भास्कर, झांसी मंगलवार १५ अगस्त, १९७८

९४- कैलाश जैन : 'हिन्दू बनाम हिन्दू' जन०अगस्त, १९६९ जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मक्कापुर, इलाहाबाद.

९५- किशन पटनायक: 'इस्टोरिज्म पर विचार' जन०गांधी शताब्दी अंक, १९६९, जनेश्वर मिश्र सरयू कुटीर, मक्कापुर, इलाहाबाद

९६-	कृष्णनाथ ठाकुर :	' गांधी, लोहिया और सत्याग्रह ', लोहिया : बहुआयामी व्यक्तित्व राममनोहर लोहिया स्मारिक समिति सी-२, पार्क रोड, लखनऊ, १९८४
९७-	डा०कृष्ण नन्दन :	' डा०लोहिया सामाजवाद राजनीति ' कादम्बिनी, मार्च, १९७२ हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली
९८-	कृष्णनाथ ठाकुर :	' भाषा का सवाल और न्यायालय ' जन०नवम्बर, १९७० जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मम्फोर्डगंज, इलाहाबाद
९९-	दिनकर:	' स्व०लोहिया साहब ' लोहिया: बहु-आयामी व्यक्तित्व, लोहिया स्मारिक समिति, सी-२ पार्करोड, लखनऊ, १९८४
१००-	निर्मल कुमार बोस :	' गांधी और लोहिया ' जन गांधी शताब्दी अंक, सित०-अक्टू० १९६९ जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मम्फोर्डगंज, इलाहाबाद.
१०१-	नीलम संजीव रेड्डी :	' राममनोहर लोहिया ' लोहिया : बहु-आयामी व्यक्तित्व, लोहिया स्मारिका समिति, सी-२, पार्करोड, लखनऊ, १९८४
१०२-	प्रकाश वीर :	' लोक सभा लोहिया के बिना ' जन दिस० १९६७ जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मम्फोर्डगंज, इलाहाबाद
१०३-	गुल्जार अहमद :	' लोहिया के धार्मिक विश्वास ' रविवार मार्च १९८५, आनंद बाजार, प्रकाशन ६ तथा ९ प्रफुल्ल सरकार स्ट्रीट कलकत्ता

१०४- मधु लिमये : 'लोहिया के और भारत'
रविवार मार्च, १९८५ आनंद बाजार
प्रकाशन ६ तथा ९ प्रफुल्ल सरकार
स्ट्रीट, कलकत्ता

१०५- मधु लिमये : 'लोकसभा लोहिया के बिना'
जन, दिसम्बर, १९६७ जनेश्वर
मिश्र, सरयू कुटीर, कमलापुर,
इलाहाबाद

१०६- रामानन्द मिश्र : 'लोहिया' लोहिया : बहु-आयामी
व्यक्तित्व, लोहिया स्मारिका
समिति, बी-२, पार्क रोड,
लखनऊ

१०७- रामचन्द्र प्रधान : 'भारतीय राजनीतिक दल और
विदेश नीति, जन, अगस्त, १९६९
जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, कमलापुर
इलाहाबाद.

१०८- रमेश दीक्षित : 'लोहिया के सच्चे उत्तराधिकारी
राजीव गांधी, रविवार मार्च, १९८५
आनन्द बाजार प्रकाशन ६ तथा ९
प्रफुल्ल सरकार स्ट्रीट, कलकत्ता

१०९- लाडली मोहन निगम : 'पत्रों के आईने में यादों के रूप'
धर्मयुग जनवरी १९८४ गणतंत्र -
विशेषांक, टाइम्स आफ इण्डिया
प्रेस, डा० डी० एन० रोड, बम्बई-१

११०- विनय कुमार : 'लोहिया' लोहिया विचार मंच, इलाहाबाद

१११- शिव प्रताप सिंह : 'लोहिया का सांस्कृतिक मानस लोहिया: बहुआयामी व्यक्तित्व, लोहिया - स्मारिका समिति, बी-२ पार्करोड, लखनऊ, १९८४

११३- शंका प्रसाद पाण्डेय : 'विविध नामकरणों और लोहिया' जनगांव अप्रैल अंक, सित०-अक्टू० १९६६ जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मकापुर, इलाहाबाद.

११४- स्वराज्य कुमारी : 'नर और नारी एक राजनीतिक और सामाजिक समानता - चौखम्भा दीपावली विशेषांक, १९६२' राममनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, बेगम बाजार, हैदराबाद.

११५- सोशलिस्ट पार्टी का घोषणा-पत्र : चौखम्भा चुनाव विशेषांक, फरवरी १९६२ राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय न्यास, बेगम बाजार, हैदराबाद

- विषय सम्बन्धी पुस्तकें -

११६- अमलेश त्रिपाठी : 'स्वतंत्रता संग्राम, निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया ए-५ ग्रीन पार्क, नई दिल्ली, १९७२

११७- अमर बहादुरसिंह अमरेश : हमारा समाजवाद, राष्ट्रीय प्रकाशन मंदिर, अमीनाबाद, लखनऊ, १९७०

११८- अयोध्यासिंह: फासीवाद, दि मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लि० नई दिल्ली, कलकत्ता, मद्रास, समस्त विश्व में सहयोगी कम्पनियाँ १९८०

११९- आज कार्यालय द्वारा प्रस्तुत — स्वतंत्रता संग्राम, वाराणसी ज्ञान मण्डल लि०वाराणसी, संवत २०२८

१२०- इरावती कर्वे - हिन्दू समाज और जाति व्यवस्था रवि व्यास राजकमल मैमिर, औरियेन्ट लांगमेन लि० नईदिल्ली, १९७५

१२१- इन्द्र चन्द्र शास्त्री - लोकतंत्र के तत्त्व, सस्ता साहित्य मण्डल, नईदिल्ली, १९६५

१२२- इन्द्रा स्वप्न - स्वामी रामतीर्थ के प्रेरक प्रसंग, विज्ञान प्रकाशन, ३०१४, बल्लीमारान, दिल्ली-६, १९८५

१२३- ए०डी०पीगू - कैपिटलिज्म वर्सेस सोशलिज्म, मैकमिलन न्यूयार्क, १९६८

१२४- एन०जी०जोग: - बाल गंगाधर तिलक, सूचना और प्रसारण मंत्रालय पटियाला हाउस, नईदिल्ली, १९६६

१२५- एम०वेंकटपतिराव - आधुनिक भारत के निर्माता जवाहर लाल नेहरू, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार पटियाला हाउस, नईदिल्ली, १९८२

१२६- एस०पी०[illegible]लानी : - मोतीलाल नेहरू, एस०चन्द एण्ड कं० नईदिल्ली, जालंधर, लखनऊ। बम्बई

१२७- एल०लियोन्सेव: - फन्डामेन्टल ऑफ मार्क्सिस्ट, पोलिटिकल एकोनोमी, नोवोस्ती प्रेस एजेंसी, मास्को १९७०

१२८- एलेक्जेन्डर ग्रे : दि सोशलिस्ट ट्रेडीशन
लांगमैन्स ग्रीन एण्ड कं० लंदन,
न्यूयार्क, १९४८

१२९- ओमप्रकाश त्रिखा : लोकतंत्र एक आध्यात्मिक संस्था,
ग्राम भावना प्रकाशन,आश्रम पट्टी
कल्याणा(करनाल), १९६६

१३०- कमलापति त्रिपाठी : बापू और भारत,सरस्वती मंदिर
जतनबर, बनारस , १९४८

१३१- कमलापति त्रिपाठी : बापू और मानवता, सरस्वती मंदिर,
जतनबर, बनारस, १९४५

१३२- के०एम०पाणिक्कर : हिन्दू समाज निर्णय के द्वार पर
एशिया पब्लिशिंग हाउस,बम्बई,
कलकत्ता, नईदिल्ली , मद्रास,१९५५

१३३- गांधीजी : सम्पादक- (आर०के०कुमारप्पा) अहिंसक समाजवाद की ओर
नवजीवन प्रकाशन मंदिर,अहमदाबाद,१९५९

१३४- गांधीजी : सम्पादक - (भारतन् कुमारप्पा) सर्वोदय, नवजीवन प्रकाशन मंदिर,
अहमदाबाद,१९६३

१३५- गांधीजी, संग्राहक- (आर०के०प्रभु) मेरा समाजवाद, नवजीवन प्रकाशन मंदिर,
अहमदाबाद, १९५९

१३६- गांधीजी : संग्राहक - (आर०के०प्रभु) प्रजातंत्र सच्चा और झूठा ,नवजीवन
प्रकाशन मंदिर,अहमदाबाद,१९६३

१३७- गांधीजी : हिन्द स्वराज्य, सर्व सेवा संघ प्रकाशन,
राजघाट, वाराणसी,१९८२

१३८- गिरधरलाल मैरोठा - भारतीय स्वतंत्रता की कहानी, अनुराग प्रकाशन, नईदिल्ली, १९८४

१३९- गिरिराज शरण: - क्रांतिवीर सुभाष, अरविन्द प्रकाशन, २०५ चावड़ी बाजार, दिल्ली, १९८२

१४०- गिरिराज शरण: - गांधीजी ने कहा था, प्रकाशन प्रतिभा प्रतिष्ठान, १६८५ दरवनी राय स्ट्रीट, नेताजी सुभाष मार्ग, नईदिल्ली, १९८२

१४१- गणेश मंत्री : - मिथकला, एकता अध्ययन केन्द्र, गोरेगांव, बम्बई-६२, १९७४

१४२- गोविंद सदाशिव घुर्ये: - जाति, वर्ण और व्यवसाय, ग०र० भटकल पॉप्युलर प्रकाशन, ३५-सी, ताड़देव रोड, बम्बई-३४, १९६१

१४३- गोपीनाथ दीक्षित : - गांधी की चुनौती कम्युनिज्म को, समाजवन प्रकाशन मंदिर, अलकापाप बनारस, १९७४

१४४- आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री:- हिटलर और युद्ध, राष्ट्रीय प्रकाशन मंदिर, ७०१ कूचा हरपतराय बाजार, सीताराम, नईदिल्ली, १९४०

१४५- चिरंजीलाल पाराशर: - नारी और समाज, राकेश पब्लिकेशन, गाजियाबाद, मेरठ, १९६१

१४६- जमुनादास : - भारत के महान सुधारक राजाराम मोहनराय, हिंदी पॉकेट बुक्स प्रा० लि० जी०टी० रोड शाहदरा, नईदिल्ली-३२, १९७२

१४७- वी० गोरोशिव, डी० वैलिनस्टेव - दि यूनाइटेड नेशन्स, इन्स्टीट्यूट आफ फैकल्टीज़ एण्ड एजेन्सीज़, सोवियत प्रेस एजेंसी पब्लिशिंग हाउस, मास्को, १९५५

१४८- जयदेव सेठी : - गांधी की प्रासंगिकता, राधाकृष्ण प्रकाशन, २/३८ अंसारी रोड, दरियागंज नईदिल्ली, १९७९

१४९- जवाहरलाल नेहरू : - उलझती दुनिया, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नईदिल्ली, १९४९

१५०- टामस स्प्रिगान : - राजनीतिक दायित्व के सिद्धांत हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, १९६६

१५१- डा० ताराचन्द: - भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, भाग-३ प्रकाशन विभाग - सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नईदिल्ली, १९८२

१५२- डा० ताराचन्द : - भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, भाग-४ प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नईदिल्ली, १९८२

१५३- वैजनाथ दक तथा गोपीनाथ - भारत में औद्योगिक विकेन्द्रीकरण, प्रकाशचन्द्र जोशी, मैनेजिंग डायरेक्टर दत्त बंधु लि० अजमेर, १९६१

१५४- आचार्य नरेन्द्र देव : - राष्ट्रीयता और समाजवाद, ज्ञान मण्डल लि० वाराणसी, संवत् २००६

१६३- भाई दयाबेन- - ऐसे थे नेहरूजी, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली। १९६८

१६४- मार्क्स : - पूंजी - फ्रेडरिक एंगेल्स द्वारा संपादित प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९८३

१६५- मधु लिमये: - स्वतंत्रता आन्दोलन का विचारधारा, पल्लव प्रकाशन, ८०/२२ मान - शाहदरा, १९८३

१६६- मन्मथनाथ गुप्त - कांग्रेस के सौ वर्ष, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, नई दिल्ली, १९८५

१६७- मन्मथ नाथ गुप्त - भारतीय आन्दोलन का इतिहास, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट नई दिल्ली, १९६०

१६८- श्रीमन्नारायण : - भारतीय संयोजन में समाजवाद, सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली, १९६६

१६९- मौरिस क्रेन्स्टन - राजनीतिक शब्दावली, मैकमिलन कम्पनी ६ अंसारी मार्केट, दरियागंज, नई दिल्ली, १९७०

१७०- यशपाल : - गांधी वाद की शव परीक्षा, लोकभारती प्रकाशन, १५ए महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, १९७२

१७१- यू०एस० विनराव - महात्मा गांधी का संदेश,
प्रकाशन विभाग - पटियाला हाउस,
नई दिल्ली, १९६९

१७२- राबर्ट गिडमां - गान्धी ऑन इकोनामिक्स,
पैन्गुइन, इंग्लैण्ड, १९६८

१७३- रामजी सिंह - महात्मा गांधी और विश्व शांति,
साहित्य निकुंज प्रकाशन, १९
शिवचरनलाल रोड, इलाहाबाद, १९८४

१७४- पं० रा० देवगिरि - गोपालकृष्ण गोखले, प्रकाशन
विभाग, पुराना सचिवालय,
नई दिल्ली-6, १९६७

१७५- रामगोपाल - स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास,
७२, हजरतगंज, लखनऊ, भार्गव
भूषण प्रेस, १९७४

१७६- रजनी पाम दत्त - भारत वर्तमान और भावी,
पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, प्रा० लि०
नई दिल्ली, १९५९

१७७- राजेन्द्र प्रसाद - गांधी जी की देन,
सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली, १९८१

१७८- रास्किन बाण्ड - युग पुरुष नेहरू, प्रकाशन
ओरियेन्ट पेपरबैक्स, कश्मीरी गेट,
नई दिल्ली, १९८३

१७९- लास्की - राजनीति के मूल तत्व,
प्रकाशक - जॉर्ज एलेन एण्ड
अनविन लि० लंदन, एलाइड
पब्लिशर्स एण्ड स्टेशनरी मैन्यु-
फैक्चरर्स, प्रा०लि० बम्बई, कलकत्ता,
दिल्ली, १९५९

१८०- लास्की - राज्य का सैद्धांतिक और व्यावहारिक
स्वरूप - एस० चांद लि०नईदिल्ली,
१९५९

१८१- डा०कर्णसिंह - आधुनिक भारतीय, राजनैतिक एवं
सामाजिक विचारधारा,
कालेज बुक डिपो, जयपुर, १९७२-७३

१८२- डा०जितेन्द्रपाल सिंह - भारतीय राष्ट्रवाद एवं आर्य समाज
आन्दोलन, विभूति प्रकाशन बी
२४, नवीन, शाहदरा, दिल्ली,
१९८४

१८३- विनोबा भावे - सर्वोदय का दूसरा भाग,
नवजीवन प्रकाशन मंदिर,
अहमदाबाद, १९६३

१८४- विनोबा भावे - तीसरी शक्ति, नरेन्द्र भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस,
वाराणसी, १९६९

१८५- वीरेन्द्र सिंह - युगदृष्टा भगतसिंह, राजपाल
एण्ड संस, कश्मीरी गेट,
नईदिल्ली, १९८२

१८६- विश्वामित्र उपाध्याय - भारत का मुक्ति संघर्ष और क्रान्ति
प्रवृत्ति, मथुरा पब्लिशर्स, मोवर गार्डन
मार्केट, चांदनी चौक दिल्ली, १९८१

१८७- शम्भु रत्न त्रिपाठी - भारतीय समाजशास्त्र, किताब घर, परेड, कानपुर, १९६०

१८८- शीला गुजराल - दादा नेहरू, भारतीय साहित्य मंदिर, रामनगर नईदिल्ली, १९७०

१८९- सी०एल०वेपर - राज्य दर्शन का स्वाध्ययन, मुद्रक- ईगल आफसेट प्रिंटर्स, १५ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद, १९६३

१९०- जोन स्टुअर्ट मिल - स्वतंत्रता और प्रतिनिधि शासन, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, मुद्रक- श्री बी०पी० ठाकुर, लीडर प्रेस इलाहाबाद, १९६३

१९१- सच्चिदानंद सिन्हा - मार्क्स को कैसे समझें, समता संगठन सामयिक वार्ता कार्यालय, एल १०८ कैलाश कालोनी, जनकीव, वाराणसी,

१९२- डा०सीताराम झा श्याम - भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और हिंदी उपन्यास, हिन्दी प्रचारक प्रकाशन, पो०बा० नं०२३, आदि विश्वनाथ ज्ञानवापी, वाराणसी, १९६६

१९३- सम्पूर्णानन्द - समाजवाद, पब्लिकेशन ब्यूरो, सूचना-विभाग, उ०प्र०लखनऊ, १९७६

१९४- सौमेन्द्र नाथ टैगोर - राजाराम मोहनराय - साहित्य एकादमी, प्रधान कार्यालय रवीन्द्र भवन, ३५ फिरोजशाह रोड, नईदिल्ली, १९७२

१९५- प्रभात श्याम - संविधान की कहानी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस नईदिल्ली, १९७९

१९६- सोमनाथ शुक्ल - जय प्रकाश नारायण, व्यक्ति और विचार, सर्वोदय शिक्षा संस्थान प्रकाशन कानपुर, १९६८

१९७- सोशलिस्ट पार्टी बिहार - हिमालय बचाओ देश बचाओ श्री भागीरथ शर्मा, कतरी बाजार, मुंगेर द्वारा प्रकाशित (पटना) १९६२,

१९८- हेनरी पेलिंग - दि चैलेंजिंग ऑफ सोशलिज्म, वादम एण्ड चार्ल्स ब्लैक लि० लंदन, १९५४

-: o :-